सादर भेंट
लेखक और प्रकाशक की ओर से
श्री Prof. M. Mujeeb जी को
सम्मति और प्रचार के लिए—

डॉ० ज़ाकिर हुसैन व्यक्तित्व और विचार

भारत के तृतीय राष्ट्रपति के व्यक्तित्व और कृतित्व का
देश के मूर्धन्य मनीषियों द्वारा मूल्याङ्कन
तथा
उनके प्रेरणादायक विचारों का संग्रह

•

सम्पादक :
ताराचन्द वर्मा

चिन्मय प्रकाशन

प्रकाशक :

चिन्मय प्रकाशन

चौड़ा रास्ता,

जयपुर—३ (राजस्थान)

प्रमुख वितरक :

दी स्टूडेण्ट्स बुक कम्पनी

चौड़ा रास्ता, जयपुर—३

सोजतीगेट, जोधपुर

प्रथम संस्करण

१९६९

मूल्य

३५) रुपया

मुद्रक :

दी यूनाइटेड प्रिंटर्स

राधा दामोदर की गली

चौड़ा रास्ता

जयपुर-३



डॉ० जाकिर हुसैन : व्यक्तित्व और विचार

सम्पादन-परामर्श-मण्डल

●

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी
बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय

डा० नगेन्द्र
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

डा० देवेन्द्रनाथ शर्मा
पटना विश्वविद्यालय

डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
प्रयाग विश्वविद्यालय

डा० अम्बाशंकर नागर
गुजरात विश्वविद्यालय, अहमदाबाद

डा० कन्हैयालाल सहल
मंत्री, बिरला एज्यू० ट्रस्ट, पिलानी

डा० सत्येन्द्र
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

डा० सरनामसिंह शर्मा 'अरुण'
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

डा० चन्द्रप्रकाश सिंह
भूतपूर्व अध्यक्ष हिन्दी विभाग,
जोधपुर विश्वविद्यालय, जोधपुर

Advisory Board

●

Sri Fakhruddin A. Ahmad
Industries Minister, India

Sri Barkatullah Khan
Education Minister, Rajasthan.

Sri Shiv Charan Mathur
Power Minister, Rajasthan

Sri Ram Niwas Mirdha
M.P

Sri Panna Lal Barupal
M.P.

Sri Abdul Aleem
Vice-Chancellor
Aligarh University.

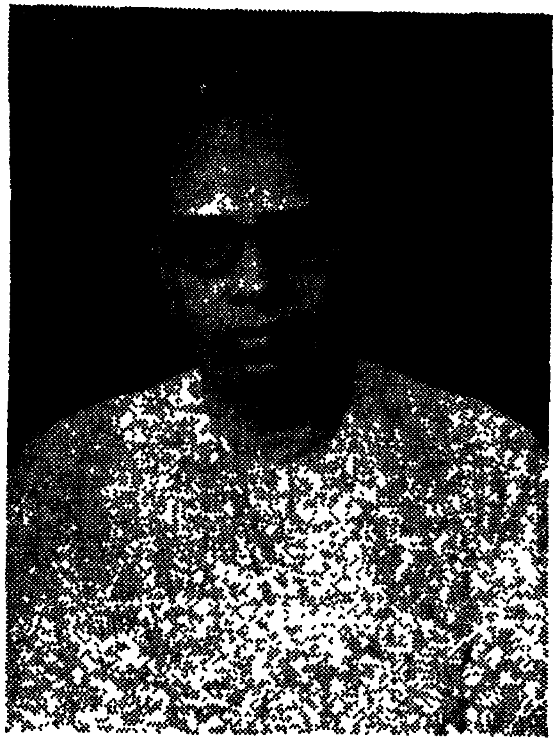
Prof M. V. Mathur
(Formerly) Vice-Chancellor
Rajasthan University.

Sri A. K. Jain
Editor
Nav Bharat Times.

Sri Kamalnayan Bajaj
Industrialist.

●

प्रस्तावना



प्रोफेसर ए० चन्द्रहासन

महामहिम राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन के व्यक्तित्व और विचारों से सम्बन्धित विभिन्न विद्वत्तापूर्ण अन्तरंग लेखों तथा काव्यांजलियों के इस महत्वपूर्ण संकलन की प्रस्तावना लिखने का कार्य सौंप कर आपने मुझे गौरवान्वित किया है। शैक्षणिक चिंतन एवं अनुशीलन के क्षेत्र में उनका सहयोग सर्वोपरि एवं अतुल्य रहा है। राजनीति तथा शिक्षा के समन्वय ने उनके व्यक्तित्व को जो गरिमा प्रदान की है, उसके फलस्वरूप उनके विचार तथा चिंतन पद्धति सदैव मानवता की प्रगति एवं सांस्कृतिक तथा सार्वजनिक विकास की ओर अग्रसर रहे हैं। उन्होंने प्राथमिक, माध्यमिक तथा विश्वविद्यालय स्तर पर शिक्षण पद्धति के विकास में जो योगदान दिया है, वह स्तुत्य है। बुनियादी शिक्षा का जो बीजारोपण महात्मा गांधी के करकमलों द्वारा सम्पन्न हुआ था, उसका क्रमिक विकास तथा प्रतिष्ठापना डा० हुसैन द्वारा संभव हुई। वस्तुतः डा० जाकिर हुसैन सच्चे अर्थों में गांधीवादी हैं।

डा० हुसैन का व्यक्तित्व अत्यन्त आकर्षक, सादगीभरा तथा दिलचस्प है। उनके व्यवहार में बच्चों की सी सरलता तथा कार्यकलाप में अजेय व्यक्तित्व की झलक दिखाई देती है। विभिन्न अवसरों पर दिये गये उनके भाषण तथा शिक्षा सम्बन्धी पुस्तकें इस बात की साक्षी हैं। वे जितने सफल शिक्षाविद् हैं, उतने ही कुशल अर्थशास्त्री तथा साहित्यकार भी। अंग्रेजी तथा उर्दू भाषा के प्रकाण्ड विद्वानों में उनकी गणना होती है। शिक्षा, संस्कृति तथा साहित्य का अभूतपूर्व संगम उनके व्यक्तित्व में परिलक्षित होता है। आज का समाज या आने वाली पीढ़ी उनके व्यक्तित्व को एक आदर्श की तरह स्मरण रखेगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

प्रस्तुत पुस्तक में संकलित लेखों द्वारा उनके व्यक्तित्व की यह तस्वीर साफ दिखाई देती है। "जामिया मिलिया" के संरक्षक, प्रस्तावक तथा आदर्श अध्यापक के रूप में डा० हुसैन के कर्मठ शिक्षा-शास्त्री-जीवन के सम्बन्ध में अत्यन्त रोचक तथा अनुकरणीय प्रसंग इस पुस्तक में संकलित हैं। उनके मित्रों, सहयोगियों तथा विभिन्न कवि, साहित्यकारों एवं राजनीतिज्ञों द्वारा प्रदत्त यह स्नेहांजलियाँ डा० हुसैन के व्यक्तित्व की व्यापक और सर्वांगीण व्याख्या प्रस्तुत करती हैं।

निश्चय ही, यह पुस्तक उस महान् व्यक्ति के जीवन और आदर्श से सम्बन्धित है, जो इस शताब्दी का एक महत्वपूर्ण व्यक्ति है और दुनिया के सबसे बड़े गणतन्त्र का राष्ट्रपति। पुस्तक में उनके विभिन्न अवसरों पर दिए गए भाषणों को संग्रह कर इसकी उपादेयता को बढ़ाया गया है। मैं संकलित सामग्री के लेखकों को साधुवाद देता हूँ व राष्ट्रपति के प्रति अपनी स्नेहांजलि अर्पित करता हूँ।

ए० चन्द्रहासन
निदेशक

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय नई दिल्ली।

सम्पादकीय

हमारे राष्ट्रपति डॉ० जाकिर हुसैन इतने महान् हैं, उनका व्यक्तित्व इतना बहुमुखी है कि एक ग्रन्थ के सीमित पृष्ठों में उन्हें पूर्णतया चित्रित कर पाने का प्रयास गागर में सागर भरने का सा कार्य है। विद्वानों के आशीर्वाद और स्नेहियों के सहयोग से मै इसमें कहां तक सफल हुआ हूँ यह निर्णय तो कृपालु पाठक ही करेंगे; मुझे बस इतना संतोष है कि अपनी ओर से मैंने कोई प्रयत्न उठा नहीं रखा है।

कुछ व्यक्ति जन्म की अपेक्षा कर्म से बड़े होते हैं। हाँ, उनका जन्म व बचपन उनके भावी जीवन के कुछ सूत्र दे जाता है, और उनका शैशव अनेक ऐसे संदर्भ-संकेत समय की शिला पर अङ्कित करता रहता है जो कि उनके निरंतर प्रगतिशील जीवन की महानता के सूचक होते हैं। डॉ० जाकिर हुसैन साहब का निष्ठावान, अनुशासनमय, तपस्वी जीवन इसका प्रमाण है। उनके जैसा कर्णधार किसी भी राष्ट्र के लिए गर्व की बात है; भारत उन्हें पाकर धन्य है। ऐसे महामानव के अभिनन्दन में कितना ही कुछ कहा जाय, सूर्य को दीपक दिखाने के समान है; हमारा उद्देश्य केवल इतना है कि हम उनकी जीवनगत आस्था, कर्मठता और त्याग का सन्देश जन-जन तक पहुँचाएँ ताकि देशवासी उससे अनुप्रेरित हो सकें; उनके युगप्रेरक विचार हमें नई दिशाएँ, नये आयाम दे सकें। यही इस ग्रन्थ की अनिवार्यता और उपादेयता है।

डॉ० जाकिर हुसैन साहब को निकट से जानने का जो सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है उसके आधार पर मैं कह सकता हूँ कि जितना कुछ मैं इस ग्रन्थ के माध्यम से अभिव्यक्त कर पाया हूँ, व्यक्तिगत रूप से मैं उससे कहीं अधिक उनके विराट व्यक्तित्व से प्रभावित हूँ। सर्व प्रथम डॉ० साहब से एक प्रकाशक के रूप में मिलते रहने का सौभाग्य उस समय प्राप्त हुआ जब कि वे सैण्ट्रल बोर्ड ऑफ सैकेण्ड्री एजूकेशन, अजमेर के अध्यक्ष थे। यह काल अपने प्रभाव की अमिट रेखाएँ मेरे मानस पटल पर छोड़ गया। मैंने देखा कि डॉ० साहब सर्व प्रथम एक सहृदय, विनयशील इन्सान हैं, एक आदर्श अध्यापक, शिक्षा-प्रेमी हैं; बाद में कुछ और। मेरा अपना भी आरम्भ से ही शिक्षा से लगाव रहा है, अतः यह स्वाभाविक था कि ऐसे कर्मठ शिक्षा शास्त्री के अभिनन्दन का विचार मेरे मन में अंकुरित हो। कई वर्षों के बाद स्वर्गीय प्रधान मन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री के स्मृति ग्रन्थ के प्रकाशन के सिलसिले में पुनः मुझे डॉ० साहब के, जो कि उन दिनों उपराष्ट्रपति थे, सम्पर्क में आने का अवसर मिला। उन मुलाकातों से मुझ पर उनका प्रभाव और भी गहरा होता गया। अन्त में गत वर्ष मैंने ग्रन्थ के सम्पादन की योजना बना ही डाली। इस प्रकार प्रस्तुत ग्रन्थ का सम्पादन मेरे लिए एक पुरानी अभिलाषा की पूर्ति है।

डा० जाकिर हुसैन साहब के बहुमुखी व्यक्तित्व की समग्र और अंतरंग झांकी प्रस्तुत करने के लिए मैंने कितनी लगन और परिश्रम से प्रयास किया है, इसका अनुमान कृपालु पाठक इसी बात से लगा सकते हैं कि केवल उनसे स्वयं से मुलाकातों और उनके स्वजनों, मित्रों, परिचितों से सामग्री संग्रह कर लेने पर ही संतोष न कर मै स्वयं तीर्थ-यात्री की तरह जेठ की तपती दोपहर और प्रचण्ड लू की

परवाह न कर उनके जन्म-स्थान पितौरा गया जो कि कायमगंज (उत्तर प्रदेश) के एक सुदूर कोने में स्थित है। वहां मैंने उनकी कोठी के दर्शन करने के अलावा कितने ही निकट के बुजुर्गों से महत्वपूर्ण जानकारी के रूप में आशीर्वाद लिया। और मैं जो कुछ भी कर पाया उसके बारे में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं क्योंकि उसका फल इस ग्रन्थ के रूप में आज आपके सामने है।

अभिनन्दन ग्रन्थ में चार खण्ड हैं। प्रथम खण्ड में मनीषियों, विद्वानों, मित्रों व स्वजनों ने अपनी-अपनी नजर से डा० साहब के व्यक्तित्व की विशेषताओं के शब्द-चित्र प्रस्तुत किये हैं; दूसरे खण्ड में काव्यांजलियों के रूप में कुछ भाव-कुसुम अर्पित किये गये हैं; तीसरे खण्ड में विभिन्न विषयों पर डाक्टर साहब के युग-प्रेरक विचार संकलित हैं तथा अन्तिम खण्ड में उनकी गौरव गरिमामय जीवनी चित्रों सहित प्रस्तुत की गई है।

यों तो ग्रन्थ में प्रस्तुत सारी सामग्री ही विशिष्ट है, किन्तु हमने विचार संकलन में विशेष रूप से इस बात का ध्यान रखा है कि आज के सदर्भों को देखते हुए कोई भी महत्वपूर्ण विषय अछूता न रहे। हमें विश्वास है कि धर्म, राष्ट्रीयता, दायित्व-भावना छात्र असंतोष, अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव, सहयोग, शिक्षा व शैक्षणिक पुनर्निर्माण पर डाक्टर साहब के सारगर्भित विचार देश को नई रोशनी देंगे। इन विचारों के माध्यम से ही हम उनके व्यक्तित्व के भीतरी पर्दे पर अंकित अक्षरों को बखूबी पढ़ सकते हैं। और तब हम पायेंगे कि इस लिखावट में सबसे गहरे अक्षर वे हैं जो शिक्षा और शिक्षणालयों के सम्बन्ध में हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि डाक्टर साहब न केवल एक आदर्श शिक्षक हैं बल्कि शिक्षा के प्रतीक हैं। इसीलिए उन्हें विद्यालयों से सर्वाधिक लगाव है। मुझे आशा है कि यह ग्रन्थ इस दृष्टि से विद्यालयों के लिए विशेष रूप से उपयोगी सिद्ध होगा। यदि नई पीढ़ी इससे प्रेरणा और दिशानिर्देश प्राप्त कर सकी तो मैं अपना प्रयास सफल मानूंगा।

यद्यपि मात्र आभार-प्रदर्शन से मैं उऋण नहीं हो सकता, किन्तु इसके बिना सम्पादकीय कथ्य अधूरा रहेगा, अतः दो शब्द और कहूँगा। सर्व प्रथम मैं उन विद्वानों, नेताओं आदि के प्रति आभारी हूँ जिन्होंने अपने बहुमूल्य परामर्श से मेरा मार्गदर्शन किया। ग्रन्थ के विद्वान् लेखकों व कवियों के अलावा मैं उन महानुभावों के प्रति भी आभारी हूँ जिन्होंने सामग्री एकत्र करने में मुझे बहुमूल्य सहयोग दिया है। इस संदर्भ में डाक्टर साहब के परिजनों में से श्री सुल्तान आलम खां, श्रीमती सईदा खुरशीद आदि तथा अन्य महानुभावों में श्री गुलाम रब्बानी तांबा, श्री मुजीब अहमद खाँ, श्री ए. जी. नूरानी, श्री सदानन्द भटकल तथा जामिया मिलिया के पदाधिकारियों की मैं विशेष कृपा मानता हूँ। जामिया मिलिया के ही सौजन्य से अनेक पुराने चित्र व ब्लॉक भी मिले हैं।

श्री सी. पी. रंगा भाई के महत्वपूर्ण सुझावों का मैं अत्यन्त आभारी हूँ जिन्होंने अपना अमूल्य समय देकर मेरे कार्य को और भी सुलभ बनाया।

अन्त में मैं, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय के निदेशक प्रोफेसर ए० चंद्रहासन, जिन्होंने ग्रन्थ की प्रस्तावना लिखने की कृपा की तथा राजस्थान के यशस्वी पत्रकार श्री जयसिंह एस० राठौड़, व श्री लक्ष्मीनारायण श्रीवास्तव जिन्होंने उर्दू में प्रकाशित सामग्री का हिन्दी में अनुवाद कर बड़ी लगन और परिश्रम से मेरे सम्पादन कार्य में मदद दी, का भी आभारी हूँ।

गणतन्त्र दिवस, १९६९ —ताराचन्द वर्मा



ग्रन्थ के सम्पादक श्री ताराचन्द वर्मा मधुर मुस्कान से राष्ट्रपति जी को ग्रन्थ भेंट करते हुए ।



राष्ट्रपतिजी को ग्रन्थ का निरीक्षण कराते हुए सम्पादक श्री वर्मा ।



राष्ट्रपतिजी को ग्रन्थ भेंट करने के बाद सम्पादक श्री ताराचन्द वर्मा तथा उनके स्नेही श्री रंगाभाई विचार विमर्श करते हुए ।



राष्ट्रपति-भवन में डॉ० जाकिर हुसैन को पुष्पहार भेंट करते हुए प्रकाशक सुभाष वर्मा ।



राज्य-शिक्षा मंत्री श्री भक्तदर्शन जी से विचार-विमर्श करते हुए श्री ताराचन्द वर्मा ।



ग्रन्थ-विमोचन समारोह पर श्री मोरारजी देसाई उप-प्रधान मंत्री का प्रवेश द्वार पर स्वागत करते हुए श्री भक्तदर्शन और श्री वर्मा ।



समारोह के अध्यक्ष श्री भक्तदर्शनजी, श्री मोरारजी देसाई उप-प्रधान मंत्री का स्वागत-भाषण देते हुए



ग्रन्थ-विमोचन के लिए श्री मोरारजी देसाई को ग्रन्थ भेंट करते हुए श्री भक्तदर्शन राज्य-शिक्षा मंत्री ।



ग्रन्थ-विमोचन समारोह का भाषण देते हुए श्री मोरारजी देसाई उप-प्रधान मंत्री ।



समारोह में कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के सम्मुख भाषण देते हुए श्री मोरारजी देसाई ।



श्री मोरारजी देसाई उप-प्रधान मंत्री के साथ सम्पादक श्री ताराचन्द वर्मा विचार-विमर्श करते हुए---



श्री मोरारजी देसाई ग्रन्थ पर हस्ताक्षर करते हुए



समारोह के अवसर पर भाषण देते हुए डा० के. जी. सैयदैन



समारोह में भाषण देते हुए ठा० श्री यशपालसिंह एम. पी.



समारोह से लौटते समय श्री मोरारजी देसाई उप-प्रधान मंत्री प्रमुख व्यक्तियों के साथ।



President

of

United Arab Republic

I have received your message concerning the publication of a special commemorative volume on the occasion of the birthday of H. E. Dr. Zakir Hussain, President of the Republic of India.

It is a great pleasure that I avail of this occasion to convey to H. E. the President and the people of India my greetings and best wishes.

H.E. Dr. Zakir Hussain is not only a towering personality in the history of cultural, educational and national struggle of India but holds to his credit significant and useful international contributions in the earnest endeavour of the non-aligned countries towards the establishment and assertion for all mankind of the rights of education, culture, peace, justice and freedom.

He is, therefore, a person to be highly esteemed by his people as well as by others all over the world who recognize his contributions.

Gamal Abdel Nasser

V. V. Giri



VICE-PRESIDENT OF INDIA

I am glad you are bringing out the special Volume for Commemorating the Birthday of our revered Rashtra patiji, Dr. Zakir Hussain this year. I have had the privilege and pleasure of knowing Dr. Zakir Hussain intimately well since I became Governor of Uttar Pradesh in 1957 and even before, when I was the Governor of the National Planning Committee in 1937. No one, who has come in close contact with this illustrious Statesman, will fail to be impressed by his erudition, intellectual radiance, and above all his all-pervading humanism. The Founder-father of Jamia Milia Dr. Zakir Hussain's dedicated endeavours for educational reconstruction have been largely instrumental in helping the movement for the establishment of a net-work of Rural Universities to gather momentum. Endowed with a magestic personality, Dr. Zakir Hussain has been a tower of strength to our country in its challenging task of bringing into fruition national regeneration. Our Rashtrapati has been the embodiment of refinement in thought, word and deed and has set a shining example of ceaseless yearning for attaining excellence in every field of human activity—aesthetic, intellectual or administrative. The 'best birthday present' we can offer to this scholar-statesman is to strengthen the forces of secularism and democratic humanism. I whole-heartedly join millions of my compatriots in offering my warm felicitations to Dr. Zakir Hussain and in wishing him many, many more years of healthy life replete with memorable achievements and *inspiring services. I wish the special commemoration* volume all success.

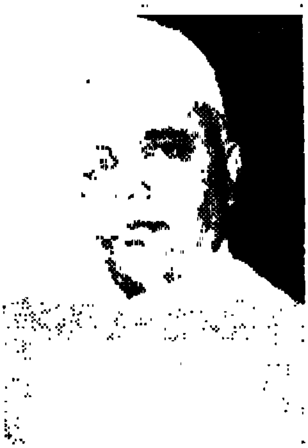
एच. वाई. शारदा प्रसाद
प्रधान मन्त्री जी के उप-सूचना
सलाहकार

आपका पत्र प्राप्त हुआ। प्रधान मन्त्री जी को यह जान कर प्रसन्नता हुई कि माननीय राष्ट्रपति जी के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करने के लिए आप अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित करने जा रहे हैं। आपके इस प्रयास की सफलता के लिए वे अपनी हार्दिक शुभ कामनाएं भेजती हैं।

सधन्यवाद,



इन्दिरा गांधी
प्रधान मन्त्री



गृह मंत्री, भारत

यशवंतराव चव्हाण

मुझे यह जान कर बड़ी खुशी हुई कि राष्ट्रपति डॉ० जाकिर हुसैन की वर्षगांठ पर आप अभिनन्दन ग्रन्थ निकाल रहे हैं।

डॉ० जाकिर हुसैन आज भारत के सर्वोच्च पद को सुशोभित कर रहे हैं। परन्तु उनकी महानता का राज उनके पद से भी अधिक उनके गरिमामय व्यक्तित्व में है। उन पर गांधीजी के जीवन-दर्शन का बड़ा प्रभाव पड़ा है। वे प्रकाण्ड शिक्षाविद् हैं और भारत की भावी-पीढ़ी की समुचित शिक्षा-दीक्षा के बारे में गहरी दिलचस्पी लेते हैं।

मुझे आशा है, अभिनन्दन ग्रन्थ द्वारा डॉ० जाकिर हुसैन के बहुमुखी व्यक्तित्व को पूरी तरह से पाठकों के सम्मुख रखा जा सकेगा। मैं आपके प्रयास की सफलता चाहता हूं।

जगजीवनराम



खाद्य एवं कृषि मन्त्री,
भारत

राष्ट्रपति डॉ० ज़ाकिर हुसैन की वर्षगांठ के अवसर पर चिन्मय प्रकाशन, जयपुर द्वारा एक अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित किया जारहा है यह जान कर प्रसन्नता हुई।

डॉ० ज़ाकिर हुसैन देश के विख्यात शिक्षाविद्, राष्ट्रवादी एवं देश-भक्त हैं। शिक्षा के क्षेत्र में ही नहीं राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र में भी इनकी सेवाएं अपना स्थान रखती हैं। डॉ० ज़ाकिर हुसैन द्वारा राष्ट्रपति का पद सुशोभित होने से देश के धर्म-निरपेक्षता के सिद्धान्त की परिपुष्टि हुई है। राष्ट्रपति के रूप में अपने पूर्ववर्ती राष्ट्रपतियों द्वारा स्थापित परम्परा को आगे बढ़ा कर आप एक आदर्श स्थापित कर रहे हैं। डॉ. ज़ाकिर हुसैन का अभिनन्दन देश की राजनीतिक मान्यताओं का अभिनन्दन है।

आशा है, अभिनन्दन ग्रन्थ में इनकी सेवाओं, आदर्शों और सिद्धान्तों का समुचित दिग्दर्शन हो। मेरी शुभकामना है कि डॉ० ज़ाकिर हुसैन दीर्घायु हों एवं देश और राष्ट्र की सेवा में सदा रत रहें।

अभिनन्दन ग्रन्थ उपयोगी सिद्ध हो।

सत्यनारायणसिंह

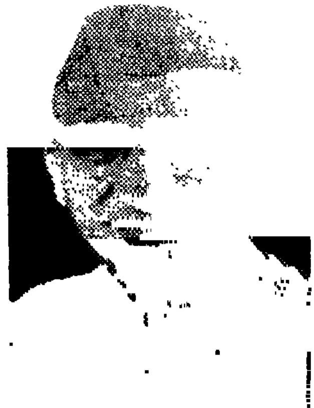


मन्त्री, स्वास्थ्य, परिवार-नियोजन
एवं नगरीय विकास
भारत

मुझे यह जान कर प्रसन्नता हुई कि आप हमारे आदरणीय राष्ट्रपति डॉ० ज़ाकिर हुसैन की वर्ष गांठ के अवसर पर एक अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित कर रहे है। आपका प्रयास बहुत ही सराहनीय है।

आपके प्रयास की सफलता के लिए मैं अपनी शुभकामनायें भेजता हूं।

के० के० शाह



मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप डॉ ज़ाकिर हुसैन को श्रद्धांजलि भेंट करने के लिए एक अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित कर रहे हैं। डॉ० ज़ाकिर हुसैन का जीवन श्रेष्ठ से श्रेष्ठतर स्तर ढूँढने का प्रयास है। वे भारत मे शिक्षा आन्दोलन के आचार्य और नेता रहे है। बुनियादी शिक्षा के क्षेत्र में तो उन्होंने अग्रगामी कार्य किया है। उनकी विद्वत्ता और उनका साहित्य भारतीय साहित्य की निधि है। मुझे आशा है कि यह ग्रन्थ भारतीय जनता को प्रेरणा प्रदान करने में अत्यन्त उपयोगी होगा।

मन्त्री, सूचना और प्रसारण
भारत

पैट्रोलियम और रसायन एवं समाज
कल्याण मन्त्री,
भारत

हर्ष का विषय है कि आप माननीय राष्ट्रपति के "व्यक्तित्व और विचार" सम्बन्धी विभिन्न विचारधारा के लेखों का समावेश एक अभिनन्दन ग्रंथ के रूप में उनकी वर्ष गांठ के शुभावसर पर प्रकाशित करने जा रहे है।

अशोक मेहता

सी० एम० पुनाचा



रेल मंत्री,
भारत

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि चिन्मय प्रकाशन, जयपुर, 'डा० जाकिर हुसैन अभिनन्दन ग्रन्थ' प्रकाशित कर रहा है।

प्रकाण्ड विद्वान और महान राजनीतिज्ञ होने के साथ-साथ डा० जाकिर हुसैन इस समय देश के सर्वोच्च पद पर आसीन हैं। मुझे विश्वास है कि उनके बुद्धिमत्तापूर्ण निर्देशन में हम एक दिन अवश्य ही कल्याणकारी समाज की स्थापना में सफल होंगे। इस उद्देश्य की पूर्ति में जो असफलताएं आज सामने आ रही हैं वे अस्थायी हैं।

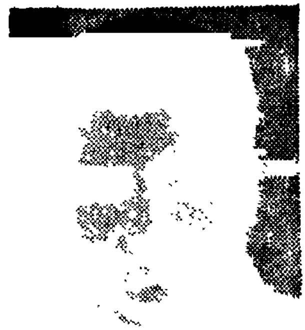
उनकी वर्षगांठ पर मैं कामना करता हूं कि वे दीर्घायु हों और देश को अनेक वर्षों तक उनकी निष्ठापूर्ण सेवा का सुफल मिलता रहे।

Education Minister,
India

I am glad to know that the Chinmay Prakashan, is bringing out an Abhinandan Granth "Dr. Zakir Hussain his personality & thoughts" for honouring him on his Brithday. I wish the publishers all success in their efforts to place before their readers the wisdom, learning, noble thoughts and achievements of leaders of modern India like Dr. Zakir Hussain.

Triguna Sen

दिनेश सिंह



प्रसन्नता की बात है कि डा० जाकिर हुसैन अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित होने जा रहा है। हमारे राष्ट्रपति देश के सादे स्वभाव एवं उच्च आदर्श के प्रतीक है। वे उद्‌भट विद्वान होने के साथ-साथ कुशल राजनीतिज्ञ भी है। उनके संरक्षण में देश निश्चय ही उन्नति के पथ पर अग्रसर होता रहेगा। मैं कामना करता हूं कि वे चिरायु हों।

वाणिज्य मंत्री,
भारत



पी० गोविन्द मेनन

यह जान कर प्रसन्नता हुई कि आप राष्ट्रपति डॉ० जाकिर हुसैन के सम्मान में उनकी वर्ष-ग्रन्थि के शुभ अवसर पर "डॉ० जाकिर हुसैन अभिनन्दन ग्रन्थ" प्रकाशित करने की योजना बना रहे हैं। यह प्रयास सराहनीय है।

विधि मंत्री,
भारत

A.K. R.V. Rao

I am glad to know that the Chinmay Prakashan is bringing out a commemoration Volume on the occasion of the Birthday of our respected President, Dr. Zakir Hussain.

He is not only a renowned educationist, but a true Gandhian whose life has been one of dedicated and fearless service to the country. His election to the high office of President of India is not only a tribute to the greatness and warmth of his personality but also a visible vindication of the basic spirit underlying our Constitution. May God Almighty bestow on him long years of health and life for his continued service of the nation.

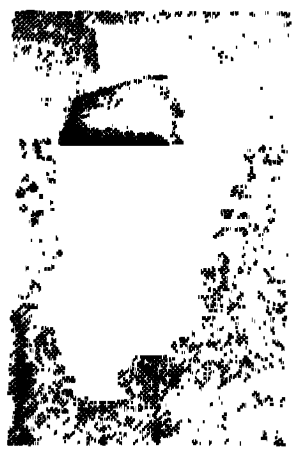
Minister of Transport
& Shipping
India

Fakhruddin Ali Ahmed

The best introduction of Zakir Saheb if an introduction is at all needed for a man of his stature will be to describe him as a true disciple of the Father of the Nation. His many splendoured life, since the days of non-cooperation movement, has been an inspiring story of unflinching devotion to the precepts propagated by the Great Mahatma.

A man of extraordinary intelligence and capabilities, Zakir Saheb has left an indelible mark on this generation and history alone would assess his contribution to the country as an educationists, economist and political thinker. Above all, Zakir Saheb is a symbol of Hindu-Muslim unity.

I wish him a long life, so that he may steer us through the trying days which the country is passing through.



Minister of Industrial
Development & Company
Affairs

Govt. of India

शेरसिंह

मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि आप राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन के सम्मानार्थ एक अभिनन्दन ग्रन्थ छाप रहे हैं।

राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन हमारे समाज के सुयोग्य शिक्षाविद् और शिक्षक हैं। उन्होंने जिन-जिन संस्थाओं में कार्य किया है, उन सभी में अपने व्यक्तित्व की एक अमिट छाप छोड़ी है। देश के ऐसे महान् समाज-सेवी को देश का प्रथम नागरिक चुना जाना वस्तुतः उनके व्यक्तित्व और कृतित्व के प्रति देश की एक अपूर्व श्रद्धांजलि थी।

शिक्षा राज्य मंत्री, भारत

मुझे विश्वास है कि आपका यह अभिनन्दन-ग्रन्थ देश की इस श्रद्धांजलि को ही साकार रूप प्रदान करेगा। मैं आपके आयोजन की सफलता चाहता हूं।



राज्य मन्त्री, खाद्य तथा कृषि, भारत

अन्ना साहब पी० शिन्दे

मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि राष्ट्रपतिजी की वर्षगांठ के अवसर पर एक अभिनन्दन ग्रंथ प्रकाशित किया जा रहा है।

मैं आशा करता हूं कि अभिनन्दन ग्रन्थ से डा० जाकिर हुसैन के बहुमुखी जीवन का वृतान्त जनता के सम्मुख आ सकेगा।

मैं आपके इस आयोजन की सफलता चाहता हूं।



परिमल घोष

रेलवे राज्य मंत्री, भारत

बड़ी प्रसन्नता की बात है कि चिन्मय प्रकाशन राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन की वर्ष गांठ के अवसर पर 'डा० जाकिर हुसैन' अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित कर रहा है।

हमारे राष्ट्रपति अनेक विशेषताओं के धनी हैं। वे भारत के उच्चतम पद पर आसीन होने के नाते ही नहीं, अपनी सहृदयता तथा अन्य मानवीय गुणों के कारण भी आदरणीय हैं। वर्षगांठ पर उनका सादर अभिनन्दन है।

प्रकाशन की सफलता की कामना सहित।

उप रेल मंत्री, भारत

चिन्मय प्रकाशन, जयपुर ने डाक्टर जाकिर हुसैन की वर्षगांठ पर एक अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित करने का निश्चय किया है, यह अत्यन्त हर्ष का विषय है।

डाक्टर जाकिर हुसैन हमारे आदरणीय राष्ट्रपति ही नहीं हैं, वलिक स्वाधीनता संग्राम के एक प्रखर सेनानी भी रहे हैं। शिक्षा-जगत् से उनका विशेष सम्बन्ध रहा है। शिक्षा को तो वे मानव-गुणों के विकास का एक प्रधान साधन समझते हैं। शिक्षा व्यक्ति को स्वावलम्बी बनाये, इसी विचार धारा से प्रेरित होकर आपने गांधीजी की देख-रेख में 'बुनियादी तालीम' का संचालन किया था।

डा० जाकिर हुसैन मानवीय सद्भावना में पूरी आस्था रखने वाले उदारमना व्यक्ति हैं। सभी प्रकार की स्थितियों में वे राष्ट्र का मार्गदर्शन करते रहें, यही मेरी हार्दिक कामना है।

रोहनलाल चतुर्वेदी



उपमंत्री, परिवहन तथा नौवहन, भारत

भक्त दर्शन

यह जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई कि चिन्मय प्रकाशन हमारे माननीय राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन की आगामी वर्षगांठ के शुभावसर पर एक अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित करने का आयोजन कर रहा है। आपका यह निश्चय बहुत ही स्वागत योग्य है और मैं उसकी हृदय से प्रशंसा करता हूं।

डा० जाकिर हुसैन के व्यक्तित्व में हम उन सभी गुणों का समन्वय पाते हैं, जिनके कारण हमारा देश अभी भी आदर का स्थान प्राप्त करता है। उनमें विद्वता के साथ नम्रता है तथा वे अगाध राष्ट्रप्रेम की भावना ओत-प्रोत हैं। उनका सारा जीवन देश और समाज की निरन्तर निःस्वार्थ सेवा में व्यतीत हुआ है। शिक्षा के क्षेत्र में तो उन्होंने ऐसी सेवाएं की हैं जो कभी भी नहीं भुलाई जा सकेंगी। हम लोग सौभाग्यशाली हैं कि उनके रूप में हमें एक आदर्श राष्ट्रपति प्राप्त हुए हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि उनकी संरक्षता में हमारा देश तेजी के साथ प्रगति करेगा और प्रभु अभी उन्हें अनेक वर्षों तक जीवित रखेंगे, ताकि वे हमारे देश का नेतृत्व अभी और वर्षों तक कर सकें।

मैं आपके आयोजन की सफलता के लिए हार्दिक शुभकामनाएं प्रेषित करता हूं।

धन्यवाद के साथ।



M. M. Lal Jain, Secretary to the Governor

HARYANA

Governor

With regard to your request to the Governor to agree to be nominated on the Advisory Board for the compilation of Dr. Zakir Hussain Abhinandan Granth, I am desired to say that owing to his very heavy pre-occupations because of the President's Rule in the State of Haryana, it would not be possible for him to do so.

He, however, wishes a success to your efforts.

राज्यपाल, गुजरात

राज भवन, अहमदाबाद

हमारे राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन देश के एक महान् शिक्षक हैं। यह हमारा सद्भाग्य है कि भारत में एक योग्य, अनुभवी व देशप्रेमी शिक्षक को अपना राष्ट्रपति चुना है।

डा० जाकिर हुसैन हमारे देश के उन रत्नों में से हैं जो सौ फीसदी सच्चे व सरल राष्ट्रसेवक हैं, जिन्हें अभिमान की भावना छू भी नहीं गई है और जो दिन-रात इसी चिन्ता में रहते हैं कि हमारा देश किस प्रकार तेजी से उन्नति करे। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की बुनियादी शिक्षा--योजना के वे शुरू से ही हिमायती रहे हैं। वे दिल से चाहते हैं कि सभी बच्चों को उत्पादक काम करते हुए सभी विषयों का शिक्षण प्राप्त होना चाहिए। हम आशा करते हैं कि उनके मार्गदर्शन में अगले कुछ वर्षों में यह कार्य पूरा हो सकेगा।

मैं राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन के प्रति अपना हार्दिक अभिनन्दन भेजता हूं।

श्रीमन्नारायण



मोहनलाल सुखाड़िया

मुख्य मंत्री (राजस्थान)

मुझे यह जान कर प्रसन्नता हुई है कि राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन की वर्षगांठ के शुभ अवसर पर एक अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है। हमारे राष्ट्रपति जी का सम्पूर्ण जीवन शिक्षा और समाज की सेवा में ही बीता है। गांधीजी की प्रेरणा से बुनियादी शिक्षा के क्षेत्र में इन्होंने जो कार्य किया है उससे हमारे शिक्षा जगत में एक क्रान्तिकारी वातावरण की सृष्टि हुई है। ये एक महान् राष्ट्रवादी हैं और हमारी धर्म-निर्पेक्षता के प्रतीक हैं। राष्ट्रपति पद पर निर्वाचित होने से पूर्व उप-राष्ट्रपति एवं राज्य सभा के अध्यक्ष के रूप में इनका जो व्यक्तित्व सामने आया उसने सबको प्रभावित और प्रेरित किया है।

मुझे आशा है कि इनके मार्ग-दर्शन में हमारा देश निरन्तर प्रगति की ओर अग्रसर होता रहेगा। मैं इस अवसर पर राष्ट्रपति जी के लिए सुदीर्घ एवं स्वस्थ जीवन की कामना करता हूं तथा अभिनन्दन ग्रन्थ की सफलता चाहता हूं।

यह गौरव का विषय है कि माननीय राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन की वर्ष गाँठ पर आप अभिनन्दन-ग्रन्थ प्रकाशित करने जा रहे हैं। बुनियादी शिक्षा व विभिन्न क्षेत्रों में उनके द्वारा की गई सेवायें भावी नेतृत्व के लिए आदर्श हैं, तथा उनका सर्वतोमुखी व्यक्तित्व हमारे लिये चिर प्रेरणास्पद रहेगा।



कमलनयन बजाज

ईश्वर उन्हें देश और समाज के हितार्थ स्वस्थ रखे व शतायु करें, यही मेरी हार्दिक कामना है।

वसन्तराव नाईक



मुख्यमन्त्री, महाराष्ट्र

मेरा राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैनजी से परिचय बहुत पुराना तो नहीं है, लेकिन जो भी कुछ उनसे सम्पर्क आया उससे मुझ पर उनके महान् व्यक्तित्व का असर जरूर पड़ा है। उनकी वर्षगांठ के अवसर पर उनके लिए शुभकामनाएं व्यक्त करना मैं अपना फर्ज समझता हूं।

मैं कोई लेखक नहीं हूं कि उनका स्वभाव दर्शन ठीक रूप से कर सकूं। लेकिन हाल ही में जो मैंने उनके साथ दो-तीन बार मुलाकातें कीं उनसे मैं अवश्य प्रभावित हुआ हूं। विभिन्न विषयों का उनका ज्ञान तथा अभ्यास और उन विषयों पर चर्चा करने का उनका ढंग मुझे विशेष जंचा। आधुनिक विज्ञान की मदद से मानव चाहे जितनी भौतिक प्रगति करे, किन्तु जब तक ज्ञान की नींव संस्कृति एवं मानवता के साथ न हो, तब तक हमारा जीवन सूना रहेगा। उसमें यथार्थता में सफलता नहीं आ पावेगी, यह उनका विश्वास है और मेरी राय में इन दोनों का सुन्दर संगम उन में हुआ है, जिनसे वे आज वैचारिक समतौल के लिए ख्यातनाम हुए हैं।

राष्ट्रपिता बापूजी के समय से जिनको अखिल भारत जानता है, उनमें से डा० साहब हैं। उनकी पीढ़ी के लोग अब इनेगिने ही है। मैं प्रार्थना करता हूं कि भगवान उन्हें दीर्घ आयु दे और उनकी नई विचारधारा का लाभ हमें बहुत समय तक मिलता रहे।



Ghief Minister, Gujarat

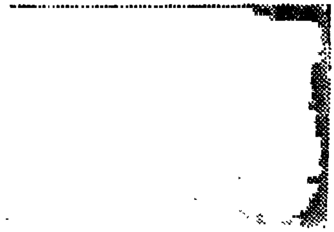
Hitendra Desai

Dr. Zakir Hussain occupies a unique position in our political and educational life. His services as an ardent patriot and educationist are inestimable. He is an apostle of national unity and communal harmony and represents a true image of India's secularism.

On this auspicious occasion, I heartily wish that the Almighty may bestow on him many more years of happy life to enable him to serve the people of the country.

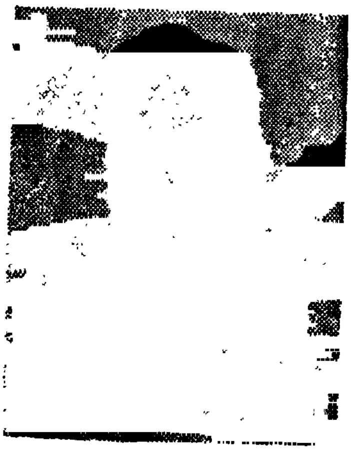
I wish the publication of Abhinandan Granth success.

बरकतुल्ला खाँ



यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि आप डा० जाकिर हुसैन पर एक अभिनन्दन ग्रन्थ निकाल रहे हैं। आपका यह प्रयास स्वागत योग्य है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि ग्रन्थ राष्ट्रपति महोदय के बहुमुखी व्यक्तित्व का पाठकों को दिग्दर्शन करायेगा।

शिक्षा मंत्री, राजस्थान



पावर मंत्री, राजस्थान

शिवचरण माथुर

मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि चिन्मय प्रकाशन, जयपुर डा० जाकिर हुसैन अभिनन्दन ग्रन्थ के रूप में स्वर्गीय श्री जवाहर लाल नेहरू, स्व० श्री लालबहादुर शास्त्री और वर्तमान प्रधान मंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी सम्बन्धी विशिष्ट ग्रन्थों की शृंखला में एक और महत्वपूर्ण कड़ी जोड़ने जा रहा है।

हमारे राष्ट्रपति, श्रद्धेय डा० जाकिर हुसैन धर्म-निरपेक्ष भारत की आदर्श परम्पराओं के प्रतीक हैं। उनका अभिनन्दन भारत की महानता का अभिनन्दन है। अभिनन्दन ग्रन्थ की रूप रेखा को देख कर मैं कह सकता हूं कि यह प्रकाशन उनके युग-प्रवर्तक विचारों तथा बहुमुखी व्यक्तित्व का दर्पण ही नहीं, प्रेरणा-स्रोत भी सिद्ध होगा।

मैं ग्रन्थ की सफलता और आदरणीय डा० जाकिर हुसैन की दीर्घ आयु की कामना करता हूं।

अपर निदेशक
प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा
राजस्थान, बीकानेर

राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन पर "चिन्मय प्रकाशन" द्वारा ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है, यह जानकर खुशी है। यह प्रयास राजस्थान के लिये सराहनीय है।

पुस्तक का महत्व संग्रहणीय होने से जहां प्रत्येक पुस्तकालयों के लिए विशिष्ट है, वहां भावी पीढ़ी के लिए किशोर, किशोरियों को भी इस पुस्तक के अवलोकन का अवसर मिलना नितान्त आवश्यक है कि इससे प्रेरणा लेकर अपने जीवन को तदनुरूप ढालकर राष्ट्र की सेवा कर सके तथा देश को प्रत्येक दृष्टि से सफल बना सकें।

मुझे आशा है कि यह ग्रन्थ भारतीय जनता को प्रेरणा प्रदान करने में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा।

हरिमोहन माथुर

प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा,
राजस्थान, बीकानेर

यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई है कि राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित करने का निर्णय किया है। यह हमारे देश का सौभाग्य है कि डा० राधाकृष्णन् तथा डा० जाकिर हुसैन दोनों ही शिक्षा शास्त्री तथा शिक्षक हैं। इनके राष्ट्रपति पद को सुशोभित करने के कारण राष्ट्रपति केवल प्रथम नागरिक न हो कर भारत का प्रथम शिक्षक भी हो गया है।

डा० जाकिर हुसैन महान् शिक्षा शास्त्री होने के अतिरिक्त श्रेष्ठ मानवतावादी विचारक भी हैं। मेरा विश्वास है कि उनका अभिनन्दन करने के लिए प्रकाशित ग्रन्थ में आप इन विषयों पर श्रेष्ठ विचारकों द्वारा लिखे निबन्ध अवश्य प्रकाशित करेंगे।

अनिल बोर्दिया
भूतपूर्व अपर निदेशक

अनुक्रमणिका

व्यक्तित्व : खंड-१

काव्यांजलियाँ : खंड–२

विचार : खंड–३

प्रमुख घटनाएँ व चित्र : खंड–४

खण्ड : १

व्यक्तित्व

अभिनन्दन

श्री पी० गोविन्द मेनन्
विधि मंत्री, भारत

राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन हमारे उन अग्रगण्य राष्ट्रनायकों में से हैं जिन्होंने अपना समूचा जीवन राष्ट्र के लिए अर्पित कर दिया है। देश के वयोवृद्ध राजनीतिज्ञ होने के साथ-साथ वे एक सफल शिक्षा शास्त्री भी हैं। राजनीति के क्षेत्र में वे सही अर्थों में महात्मा गांधी के अनुयायी हैं। वे एक ऐसे समाज के निर्माण के लिए सतत् प्रयत्नशील रहे हैं जो बन्धुत्व, सौहार्द, प्रेम और एकता पर आधारित हो और जिसमें गरीब और कमजोर लोगों के प्रति अपार सहानुभूति हो। सत्य और अहिंसा को वे ऐसे समाज का अभिन्न अंग मानते हैं और उनका विश्वास है कि ऐसे समाज का निर्माण करके ही हम गांधी जी की कल्पना के आदर्श राज्य, अर्थात् राम राज्य की स्थापना की दिशा में आगे बढ़ सकते हैं। वे संकीर्ण साम्प्रदायिकता के घोर विरोधी और धर्मनिरपेक्षता के प्रबल समर्थक रहे हैं।

धीर, गम्भीर एवं सरल व्यक्तित्व वाले इस महान् राजनीतिज्ञ का प्रमुख कर्मक्षेत्र शिक्षा का क्षेत्र रहा है। गांधीजी की बुनियादी शिक्षा की योजना के संबंध में उनके महत्वपूर्ण योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। उनका विश्वास है कि देश के निर्माण में शिक्षा का महत्व बहुत अधिक है और इसीलिए इस ओर बहुत अधिक ध्यान भी दिया जाना चाहिए। शिक्षा की तुलना वे मैदान में मंद गति से बहने वाली सरिता से करते हैं जो मनुष्यों में जीवन के शाश्वत मूल्यों और अनन्त सहनशीलता के प्रति आस्था को पनपाती है।

सुन्दर फूल उनको बहुत प्रिय हैं। वे चाहते हैं कि मानव जीवन भी उन फूलों जैसा ही सुन्दर, मोहक और सब को हर्षित करने वाला हो।

मैं जब-जब भी उनसे मिला हूँ, मैंने यही अनुभव किया कि मैं अपने कुटुम्ब के किसी बुजुर्ग से बातें कर रहा हूँ। उनका व्यक्तित्व इतना सरल और प्रेरक है कि बार-बार उनसे मिल कर बातें करने को जी चाहता है। उनकी इस ७१ वीं वर्षग्रन्थि के शुभ अवसर पर मैं उनका सादर अभिनन्दन करता हूँ। ऐसे परम मनीषी और मानवतावादी राष्ट्रनायक का नेतृत्व हमारे राष्ट्र को चिरकाल तक मिलता रहे, यही हमारी कामना है। ●

एक जटिल और संवेदनशील जीवन

प्रो० मुजीब

लगभग २५ वर्ष हुए एक चित्रकार ने डा० जाकिर हुसैन का एक चित्र बनाया था, जिसमें उनके एक फोटो-चित्र को ही बड़े आकार में प्रस्तुत किया गया था। उसे फोटो-चित्र का ही बड़ा रूप कहा जा सकता था। उन्नत मस्तक, संवेदनशील और आभिजात्य को प्रकट करने वाली नासिका तथा अच्छी प्रकार छंटी हुई दाढ़ी, जिसमें कोई-कोई सफेद बाल भी थे। वह चित्र उनके चरित्र का एक अध्ययन था। उसमें उनकी आँखों के भाव पूर्ण रूप से प्रतिबिम्बित नहीं हुए थे, परन्तु चित्र को देखकर उनके विषय में कल्पना की जा सकती थी। वह काफी बड़ा चित्र था और फ्रेम-सहित इतना भारी हो गया था कि जामिया मिलिया के बड़े कमरे भी उसे रखने के लिए छोटे प्रतीत होते थे, तथा उसे दीवार में टांगने का भी कोई उपाय समझ में नहीं आता था। अतः कुछ दिनों तक वह मेरे कमरे में मेंटल-पीस पर रखा रहा था। उन्हीं दिनों एक वार स्व० मैगडा नैकमैन मेरी मेंहमान बनी थीं। कमरे में घुसते ही चित्र को देख कर उसके पास तक गयीं तथा उसे ध्यान से देखकर उसकी ओर पीठ करके खड़ी हो गयीं। उनके चेहरे से परेशानी प्रकट हो रही थी। मैंने पूछा कि "इसमें क्या त्रुटि है?" "इसमें त्रुटि?" उन्होंने तिरस्कार के साथ उत्तर दिया, "इससे खराब कोई चित्र हो ही नहीं सकता। इसमें न कोई रंग है, न जीवन। यह पूर्णतया मिथ्या है।"

जब मैं पिछले ४४ वर्षों पर एक दृष्टि डालता हूँ, जब कि मै उनके सम्पर्क में रहा हूँ, और १५ वर्ष तो जामिया मिलिया में उनका निकट सहयोगी रहा हूँ, आज भी मैं यह महसूस करता हूँ कि उनका जो शब्द चित्र मैं प्रस्तुत

करूँगा, उसमें रंग और जीवन नहीं होगा, जिसके कारण वह मिथ्या प्रतीत हो सकता है। समस्त परिस्थितियों और आवश्यकताओं के प्रति वे इतने जीवन्त, इतने जटिल, इतने संवेदनशील हैं कि उनका कोई सूक्ष्म और संतोषजनक चित्र प्रस्तुत करना अत्यन्त कठिन है।

मनोविज्ञान का यह प्रसिद्ध तथ्य है कि हमारे आचरण में हमारे आन्तरिक उद्वेग प्रतिफलित होते हैं। डा० जाकिर हुसैन के व्यक्तित्व में समाज की परिस्थितियों से उत्पन्न गतिशील उद्वेगों की जटिलता है, जिनमें से कुछ का अध्ययन मैंने किया है।

डा० जाकिर हुसैन प्रभुत्व जमाने की भावना से घृणा करते हैं तथा ऐसी भावना को व्यर्थ कर देने वाली प्रतिक्रियाओं का स्वागत करते हैं। ऐसी प्रतिक्रियाओं का मूल्यांकन वे बहुत ऊँचे मापदण्ड से करते हैं, परन्तु उनके दृष्टिकोण के अनुसार वे मानदण्ड बुद्धि और भावना युक्त मानव-प्राणी के लिए न्यूनतम हैं। वे किसी बात को आदेश के रूप में नहीं कहते। जिन बातों को वे अनिवार्यतः क्रियान्वित होते देखना चाहते हैं उनको प्रश्नों या विरोधाभासों में प्रस्तुत करते हैं, परन्तु जब लोग उनका मतलब नहीं समझ पाते तो उनको बड़ी परेशानी और निराशा होती है। पिछले वर्षों में मैंने उनसे बहुधा यह अनुरोध किया कि वे अपनी बात को सीधे सादे ढंग से कहें, परन्तु यह उनको बहुत ही कठिन प्रतीत होता है। शायद यह उनकी प्रकृति के विरुद्ध है। किसी व्यक्ति से गलती होने पर वे उसके विरुद्ध तत्काल कार्रवाई नहीं करते हैं, परन्तु फिर भी उससे सुधार की आशा करते हैं, जो स्वयं उनकी दृष्टि में उस व्यक्ति के लिए असम्भव होता है। इसका कारण यह है कि उनके अन्तर में एक सच्चे अध्यापक का विश्वास है, जो कि मनुष्य स्वभाव के सुधार की आशा रखता है। इसका यह अर्थ नहीं कि वे व्यक्ति को पहचानते नहीं। वे उदारता का व्यवहार करते हैं, परन्तु उनको धोखा नहीं दिया जा सकता।

व्यक्तियों से विचारों तथा परिस्थितियों के प्रति स्वस्थ प्रतिक्रिया की आशा के पीछे उनका आत्म-शिक्षा का सिद्धान्त रहता है, जिसके लिए स्वतंत्र चिन्तन, निर्णय-शक्ति, सुविचारित योजना तथा किये हुए कार्य का निर्मम मूल्यांकन आवश्यक होता है। आत्म-शिक्षा के सिद्धान्त को डा० जाकिर हुसैन ने स्वयं अपने जीवन में अपनाया है तथा कितने ही कटु अनुभवों के बाद भी उन्होंने दूसरों से यह आशा रखना नहीं छोड़ा है कि वे भी इस सिद्धान्त को अपनायेंगे। मैं नहीं जानता कि उन्होंने राजनीतिज्ञों को आत्म-शिक्षा की प्रेरणा दी है या नहीं। परन्तु शिक्षा और विकास पर उन्होंने जो कुछ कहा है उसका सारांश यदि एक शब्द में कहना हो तो हम कह सकते हैं कि वे भारतीय जनता को आत्म-शिक्षा का उपदेश देते रहे हैं।

डा० जाकिर हुसैन के व्यक्तित्व में परिलक्षित दूसरा उद्वेग-समूह उत्कृष्टता की महत्वाकांक्षा पर केन्द्रित है। वे सदैव ऐसे व्यक्ति की खोज में रहते हैं जो उत्कृष्टता प्राप्त करने के लिए उत्सुक है। इसका यह अर्थ नहीं कि वे प्रतिभाओं को खोजते रहते हैं। वे तो केवल ऐसे मानव चाहते हैं जिनमें आत्म-सुधार की तीव्र लालसा हो, जो अपने काम में अधिकाधिक दक्षता प्राप्त करने के इच्छुक हों तथा जो अपनी योग्यता बढ़ाने के हर अवसर का लाभ उठाना चाहते हों।

अभी कुछ दिन पूर्व उदाहरण के रूप में उन्होंने मुझे एक नवयुवक के विषय में बताया था, जो उनके माली का सहायक नियुक्त हुआ था पौधों और पुष्पों में अपनी रुचि के कारण इस नवयुवक ने समस्त पौधों के वनस्पति-शास्त्रीय नाम याद कर लिये और उनको सही रूप में लिखने का भी अभ्यास कर लिया। बाग में जो ३५० प्रकार के गुलाब लगे थे उन सब की किस्मों के नाम उसने याद कर लिये और फूलदान में रखने के समय वह प्रत्येक के साथ उसके नाम की एक चिट लगाने लगा। प्रत्येक चिट पर उस गुलाब का नाम सुन्दर अक्षरों में सही-सही लिखा होता था। यह सब वह इसलिए नहीं करता था कि उसे इसके लिए आदेश दिया गया था। उसे केवल यह पता चला था कि डा० जाकिर हुसैन की यह इच्छा है। इससे पूर्व उनकी यह इच्छा पूर्ण नहीं हुई थी। इस नवयुवक के विपरीत डा० जाकिर हुसैन को रोज ऐसे बीसियों व्यक्तियों से साबका पड़ता है जो ऐसा काम मांगते हैं जिसे वे अपने लिए काफी अच्छा और लाभदायक समझते हैं, परन्तु इस सिद्धान्त से सर्वथा अपरिचित रहते हैं कि जितना पारिश्रमिक मिले उतना परिश्रम अवश्य करना चाहिए।

डा० जाकिर हुसैन की आलोचना हमेशा स्वीकार होनी चाहिए, क्योंकि उत्कृष्टता के प्रति उनका प्रेम सच्चा और उत्कट है। उनके निकट सम्पर्क में व्यतीत किये पिछले ४४ वर्षों में मैंने उनको बेमन से किये गये किसी काम की उपेक्षा करने को तैयार होते नहीं पाया। हो सकता है कि शालीनतावश वे स्पष्ट आलोचना न करें, परन्तु उनके भावों से दर्शक को यह समझते देर नहीं लगती कि उन्होंने त्रुटियों को भांप लिया है और उनको क्षमा नहीं किया है। जो कुछ भी वे स्वयं करते हैं या अपनी देख-रेख में करवाते हैं उसकी प्रत्येक सूक्ष्म से सूक्ष्म बात की पहले से योजना बना लेते हैं, और यद्यपि सदैव सफल होते हैं, परन्तु कार्य समाप्त होने तक उनके मन में भय और संदेह उठते रहते हैं। इन भयों और संदेहों के कारण वे अपनी जिम्मेदारी किसी अन्य पर छोड़ने को तैयार नहीं होते, किसी का भरोसा नहीं करते, दोहरा-तिहरा कर वे सब बातें निश्चित कर लेते हैं, अपने सबसे विश्वसनीय और प्रवीण मित्रों पर भी उनको यह संशय रहता है कि कहीं वे असावधानी न कर दें।

अपने क्षेत्र में उन्होंने निश्चय ही असाधारण योग्यता अर्जित की है। उनकी उर्दू और अंग्रेजी की लिखावट बड़ी सुन्दर होती है। अत्यन्त साधारण वार्तालाप में भी उनकी अभिव्यक्ति की शैली बड़ी मार्मिक रहती है। वे बड़े ही व्यवहारकुशल हैं और प्रत्येक परिस्थिति का निर्वाह बड़ी कुशलता से करते हैं। उन्होंने विचारों को सुन्दरतम ढंग से अभिव्यक्त करने की कला में असाधारण सफलता प्राप्त की है, जिसका उपयोग वे बड़े ही प्रभावशाली ढंग से करते हैं। जो भाषण वे बिना किसी तैयारी के देते हैं, वे भी यदि अधिक नहीं तो उतने ही प्रभावशाली अवश्य होते हैं जितने तैयारी के बाद दिये हुए भाषण। उनका कोई भी भाषण निम्न स्तर का या उबाने वाला नहीं होता। उनकी रेडियो वार्ताएं या लघु-कथाएं बोलचाल की मंजी हुई उर्दू की उत्कृष्ट कृतियां हैं। उनके कुछ भाषण साहित्य में अमर रहेंगे। दूसरी ओर, जिन्होंने उनको संसद में हिन्दी में अभिभाषण देते हुए सुना है वे इससे इन्कार नहीं कर सकते कि उनके भाषण में पूर्णता रहती है। हिन्दी में अपनी कुशलता का भरोसा न करने के कारण वे "भाषण" को बार-बार पढ़ते हैं, स्वयं अपने हाथ से लिखते हैं तथा जोर-जोर से पढ़कर अभ्यास करते हैं। भाषण को पढ़ते समय यदि उनको जरा-सा भी अटकना पड़ जाय तो यह स्वयं उनकी दृष्टि में अक्षम्य

अपराध होगा—केवल उस गरिमामय अवसर के कारण ही नहीं, बल्कि उनकी अपनी सख्त और निर्मम अन्तरात्मा के भय के कारण।

उनके व्यक्तित्व का तीसरा भावसमूह उनकी बहुमुखी प्रतिभा से सम्बन्धित है। उनकी बुद्धि बड़ी प्रखर है जो हर परिस्थिति का सामना करने की सामर्थ्य रखती है तथा अपनी प्रखरता को मापने के लिए नये-नये क्षेत्रों की खोज में रहती है। उनके मस्तिष्क में नये-नये विचार भरे रहते हैं, जिनमें क्रियान्वित होने के लिए प्रतिद्वन्द्विता होती रहती है। इसका परिणाम यह होता है कि उनके विषय में यह धारणा बन जाती है कि वे बहुत अधिक काम, बहुत शीघ्र तथा निश्चय ही सर्वश्रेष्ठ कोटि का करवाना चाहते हैं, जिससे लोग कुछ भयभीत हो जाते हैं। उनकी कल्पना तथा मस्तिष्क की उर्वरता से वे लोग अवश्य ही परेशान हो जाते हैं, जो सोचने और काम करने के बंधे-बंधाये तरीकों से सन्तुष्ट रहते हैं और जिनको समय या परिणाम की कोई परवाह नहीं होती। परन्तु यदि कहीं ऐसे लोग हों जो अच्छे से अच्छा काम करने को दृढ़ प्रतिज्ञ हों तो उनके बीच डा जाकिर हुसैन एक आदर्श नेता सिद्ध होंगे, क्योंकि वे लगातार सोचेंगे, योजना बनायेंगे, तुलना करेंगे, जो प्रशंसा के योग्य होंगे उनकी हार्दिक प्रशंसा करेंगे तथा अपने आचरण के द्वारा स्पष्ट चिन्तन, सूझ-बूझ, तथा शीघ्र निर्णय का आदर्श प्रस्तुत करेंगे, जिससे उनके सहकर्मियों (वे किसी को अपने अधीनस्थ नहीं समझना चाहते) को अपनी कार्यक्षमता में उत्तरोत्तर उन्नति की प्रेरणा मिलेगी। क्या कोई आशा है कि उनको कोई ऐसा अवसर मिलेगा? या चतुर्दिक् के वातावरण की उदासीनता उन्हें अपने आप में सीमित होने तथा व्यक्तियों और घटनाओं के प्रति उदासीन बनने को विवश कर देगी?

इन समस्त संवेगों और भावनाओं के होते हुए कोई व्यक्ति सुखी नहीं रह सकता। इतना ही नहीं बल्कि उसका जीना दूभर हो जायगा। परन्तु डा० जाकिर हुसैन में अपार धैर्य है जिसकी जड़ें उनकी प्रकृति में इतनी दृढ़ और गहरी हैं कि निराशा से अधीर होने पर भी वे उस पेड़ की तरह अचल रहते हैं जिनकी पत्तियां उड़ती हैं और शाखाएँ हवा में झूलती हैं, परन्तु तना अपने स्थान से नहीं हटता। उनका यह धैर्य प्रायः अनासक्ति के रूप में दिखाई पड़ता है। यह कोई आध्यात्मिक अनासक्ति नहीं है, जो प्रत्येक नाशवान वस्तु को असार समझती है, बल्कि सांसारिक मूल्यों के सबसे उग्र तूफान में लंगर का काम देने वाली अनासक्ति है। धैर्य और अनासक्ति जिस रूप में हमें डा० जाकिर हुसैन में दृष्टिगोचर होते हैं वह अद्वितीय है क्योंकि वे बड़े स्वाभाविक ढंग से मिलकर एक हो गये हैं और उनके संपूर्ण व्यक्तित्व में व्याप्त हो गये हैं। यह सच है कि घनिष्टता के वार्तालाप में वे मुख्यतः अपनी असफलता और पराजयों की ही चर्चा करते है, परन्तु वे अपने व्यक्तित्व की शक्ति से अपरिचित नहीं है, तथा किसी भी परिस्थिति की चुनौती का सामना करने को तैयार हैं। उनको मानसिक निष्क्रियता, स्वाभाविक तथा सुचिन्तित स्वार्थपरता, जिद या अभद्र व्यवहार से पराजित नहीं किया जा सकता है। वे जानते हैं कि मनुष्य जाति के ये शत्रु आमतौर से लोगों में पाये जाते हैं। परन्तु उनमें महान साहस है तथा उनकी व्यवहार-कुशलता के समान ही उनकी बौद्धिक श्रेष्ठता भी अजेय है। उनकी सबसे बड़ी दुर्बलता यह है कि वे दूसरों की भावनाओं को चोट पहुँचाने से घबराते हैं और यही उनका सबसे सराहनीय गुण है। यदि उनमें यह गुण न होता तो शिक्षा में कताई को स्थान न मिलता तथा बेसिक शिक्षा का आज कुछ और ही रूप होता।

डा० जाकिर हुसैन से जो लोग स्वयं उनके बारे में प्रश्न करते हैं उनका सामना वे विरोधाभासपूर्ण तथा स्पष्ट उत्तरों द्वारा करते हैं। कुछ ही समय हुआ बम्बई से एक मित्र ने उनको एक पत्र लिखा जिसमें यह प्रार्थना की कि एक नवयुवक को अपने पूर्व जीवन के विषय में कुछ बताने की कृपा करें, जो कि उनकी जीवनी लिखना चाहता था। उन्होंने उत्तर लिखा—"मैं किसी को अपने भूतकाल के विषय में क्या बता सकता हूँ? मेरा कोई भूतकाल नहीं है, मेरा जीवन तो अभी प्रारम्भ हुआ है।" मैंने भी जब कभी कुछ जानना चाहा तो मुझे भी कुछ इसी प्रकार के उत्तरों से चुप कर दिया गया।

अतः यदि मैं यहाँ उनके धार्मिक या राजनीतिक विश्वासों के विषय में कुछ लिखूँ, तो वे ऐसे व्यक्ति के अध्ययन मात्र समझे जायँ, जिसने डा० जाकिर हुसैन को निकट से देखा है, बहुत से विषयों में उनसे मतभेद रखे हैं तथा सराहना की भावना को समझने की इच्छा पर हावी न होने देने का हमेशा प्रयास किया है। यह भी ध्यान रहे कि डा० जाकिर हुसैन के बुनियादी विश्वासों पर कुछ लिखने का आधार अनुमान ही हो सकता है। प्रायः मेरी धारणा रही है कि उनको इसमें आनन्द आता है कि लोग उनके विषय में अनुमान करते रहें। कभी-कभी मुझे उनके वचन और कार्य उनके बुनियादी विश्वासों से गम्भीर साम्य रखते प्रतीत होते हैं। मैं कह सकता हूँ कि वे अपनी नैतिक स्वतन्त्रता की रक्षा हर कीमत पर करने के लिए दृढ़ संकल्प हैं। इस कथन में सब बातें आ जाती हैं या कोई भी बात नहीं आती। यदि और स्पष्ट रूप में कहा जाय, तो कह सकते हैं कि वे अनुयायी नहीं बल्कि प्रवर्तक होने की महत्वाकांक्षा रखते हैं, आदेश का पालन करने वाले के स्थान पर आदेश देने वाला बनना चाहते हैं। परन्तु इसे भी स्पष्ट करने के लिए विस्तृत व्याख्या आवश्यक है।

ईश्वर के प्रति डा० जाकिर हुसैन की निष्ठा और आस्था को जानने का प्रयास मैंने किया है। उनकी निष्ठा में मेरा अटूट विश्वास है, परन्तु उसको पूर्ण रूप से मैं तभी समझ सकूँगा जब मेरी निष्ठा भी उसी रूप और अवस्था की हो जाय। परन्तु मैं उसके विषय में कुछ नहीं कहूँगा। देश के अन्य सब लोगों के समान ही मैं भी यह जानता हूँ कि वे मुस्लिम हैं, परन्तु वे मेरे जैसे या मेरे परिचित अन्य किसी मुस्लिम जैसे मुस्लिम नहीं हैं। मुस्लिमों के सूफी सन्तों से परिचित व्यक्ति को इसमें कुछ भी आश्चर्यजनक नहीं लगेगा। डा० जाकिर हुसैन धर्म के वाह्य क्रिया-कलाप के प्रति सूफियों जैसी उदासीनता रखते हैं, परन्तु वे उन क्रियाओं का सम्मान भी करते हैं। स्वयं अपने धर्माचरण के विषय में सूफियों जैसी अनुत्तरदायित्वपूर्ण बातें भी वे कर दिया करते हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि सूफियों के समान उन्होंने ईश्वर से सम्पर्क स्थापित करने का प्रयास किया है, जिसमें अन्य लोग कोई दिलचस्पी नहीं रखते। अबू सुलेमान अल-दरानी ने इस स्थिति का वर्णन बहुत पहले निम्न शब्दों में किया था: "तसव्वुफ (सूफीवाद) यह है कि घटनाएँ व्यक्ति पर से गुजरती जायँ, जो कि अल्लाह को ही विदित होती हैं, और व्यक्ति हमेशा अल्लाह के सम्पर्क में रहे, जिसका रूप अल्लाह ही जानता है।" डा० जाकिर हुसैन के व्यक्तित्व की जड़ें मुस्लिम सन्तों और कवियों के आध्यात्मिक तथा नैतिक सिद्धान्तों और साहित्य में हैं, विशेषतः जलालुद्दीन रूमी के ज्ञान के सौरभ में। परन्तु वे नियम से प्रतिदिन कुरान भी पढ़ते हैं, जोकि आजकल शिक्षित मुसलमानों में बहुत ही कम करते हैं। यदि ऐसा व्यक्ति दूसरे के पैर छूता है तो इसके द्वारा कौन सम्मानित होता है?

डा० जाकिर हुसैन का राष्ट्रवाद, जहाँ तक मैं समझ सका हूँ, गांधी जी के राष्ट्रवाद के समान है, जो कि सर्वोच्च नैतिक मूल्यों के प्रति उनकी निष्ठा का प्रतिबिम्ब है। वे सांस्कृतिक मूल्य उनके व्यक्तित्व में एकाकार हो गये हैं। उनका राष्ट्रवाद उधार लिये हुए सिद्धान्तों पर आधारित नहीं है और उसकी प्रेरणा जनता की प्रशंसा से नहीं मिलती। उनके राष्ट्रवाद में तात्कालिक स्वार्थ सिद्धि के लिए लक्ष्य को संकुचित करने की कोई गुंजाइश नहीं है, बल्कि व्यक्ति के मानसिक धरातल को इतना ऊँचा उठाने की मांग है कि वह अन्तिम लक्ष्य को समझ सके। मूलतः नैतिक तथा सांस्कृतिक मूल्यों की अभिव्यक्ति होने के कारण उनका राष्ट्रवाद व्यक्ति के लिए उस स्वतंत्रता की माँग करता है, जो लोकतंत्र का सार है। उसका राष्ट्रवाद उस अनुशासन की मांग करता है, जो लोकतंत्रीय नागरिकता का आधार है, तथा समाज-हित के साथ उस अभिन्नता की अनुभूति की मांग करता है जो व्यक्ति के जीवन को सार्थकता प्रदान करता है। और यदि यह राष्ट्रवाद डा० जाकिर हुसैन के माधुर्य, व्यवहारकुशलता, यथार्थवाद तथा गम्भीर मानववाद के रूप में साकार हो उठा है, तो भारत की जनता उससे क्या आशाएँ नहीं कर सकती? ●

> देर न कीजिए "खुदा के लिए इस मुल्क की सियासत को सुधारिए और जल्द से जल्द सियासत की बुनियाद डालिए, जिसमें कौम कौम पर भरोसा कर सके, कमजोर को जोरावर का डर न हो, गरीब अमीर से बचा रहे, जहाँ हर एक वह बन सके, जिसके बनने की उसमें योग्यता है। मैं जानता हूँ कि इन बातों का कह देना सरल है और करना किसी एक आदमी के बस की बात नहीं। ———हमारी यह मुश्किल दूर कीजिए अब भी बहुत देर हो चुकी है। और देर न जाने क्या दिन दिखाये।
>
> —१९४१ में दूसरी बुनियादी तालीमी कान्फ्रेंस में दिये गये भाषण से

एक आदरांजलि

श्री अन्ना साहब शिन्दे
राज्य मन्त्री, खाद्य व कृषि, भारत

डा० जाकिर हुसैन देश की उन अन्यतम विभूतियों में से हैं, जिन्होंने देश के गौरव को बढ़ाया है। राष्ट्र ने उन्हें उच्चतम पद देकर उनके महान् व्यक्तित्व और राष्ट्रभक्ति की भावना को मान्यता दी है।

विद्यार्थी जीवन में बड़ी कठिनाइयों के बावजूद उन्होंने अलीगढ़ विश्वविद्यालय से स्नातक तथा बर्लिन विश्वविद्यालय से पी०-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की। विद्यार्थी जीवन से ही उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की झलक मिलने लगी थी।

१९२० में गांधी जी के असहयोग आंदोलन के प्रारम्भ के साथ ही वे गांधी जी के सम्पर्क में आए। वे गांधी जी के जीवन से बड़े प्रभावित हुए। वास्तव में डा० जाकिर-हुसैन उन लोगों में से हैं जो आज भी गांधी जी के सांचे में ढले हैं और उनके आदर्शों को राष्ट्रीय जीवन में उतारना चाहते हैं। वे वैयक्तिक व सामाजिक जिन्दगी में सादगी और महान् उद्देश्यों की पूर्ति में पवित्र साधनों के उपयोग में विश्वास रखते हैं। समाज के कमजोर और पिछड़े वर्गों के प्रति वे सक्रिय और सच्ची सहानुभूति रखते हैं। उनमें देश के विभिन्न वर्गों के लोगों के बीच एका पैदा करने की भी उत्कट भावना है।

वे उन कुछ देशभक्त भारतीयों में हैं, जिन्होंने राष्ट्र की सेवा में शिक्षा के क्षेत्र में जीवन अर्पित किया है। डा० जाकिर हुसैन ने ही १९२० में महात्मा गांधी को दिल्ली में जामिया मिलिया स्थापित करने के लिए प्रेरित किया। उनका विचार था कि राज-नीति के संकीर्ण माध्यम से राष्ट्र का पुनरुत्थान संभव नहीं है। उनके विचार में राष्ट्र का

उत्थान शिक्षा और संस्कृति में नया दृष्टिकोण अपनाने और राष्ट्रीय चेतना को नया स्वरूप देने से ही संभव है।

डा० जाकिर हुसैन का लक्ष्य था कि जामिया मिलिया के माध्यम से एक ऐसी शिक्षा प्रणाली का विकास किया जाए, जो राष्ट्रीय संस्कृति के अनुरूप हो। स्वतंत्रता से पहले स्वतंत्रता के बाद भी डा० जाकिर हुसैन ऐसी शिक्षा प्रणाली तैयार करने के लिये काम करते रहें, जो राष्ट्र के विकास में सहायक हो।

धार्मिक सहिष्णुता और प्रजातंत्र में डा० जाकिर हुसैन का अटूट विश्वास है। सरल, सौम्य, डा० जाकिर हुसैन का कला-प्रेम तो सोने में सुहागे की तरह है। ●

धक्के खाने से अक्ल आयेगी !

जब जात-पांत, मज़हब, ज़ुबानों के फर्क से हमारा देश टुकड़े-टुकड़े नज़र आता है। जिस मुल्क में स्टेशनों पर मुसलमान पानी और हिन्दू दूध मिलता है, जहां एक का सच दूसरे का झूठ है——इस मुल्क में नौजवानों से ऐसे मिलकर काम करने की आस जरा मुश्किल है, मगर दिल यही गवाही देता है कि थोड़े दिन और धक्के खाने के बाद इस मुल्क के नौजवान मुल्क की सेवा के लिए एक-दिल हो जाएंगे।

—काशी विद्यापीठ में दिये गये भाषण से।

हमारे जाकिर साहब

अब्दुल लतीफ आज़िमी

डा० जाकिर हुसैन साहब भारतवर्ष के राष्ट्रपति चुन लिये गये—इस शानदार कामयाबी में जाकिर साहब के प्यारे व्यक्तित्व और उनकी सेवाओं का हाथ है। मगर इस जीत में सिर्फ उनकी या कांग्रेस की ही जीत नहीं है, बल्कि हिन्दुस्तानी राष्ट्रीयता की जीत है, धर्मनिरपेक्षवाद की जीत है, इससे ज्यादा शराफ़त और भलमनसाहत की जीत है। जाकिर साहब ने अपने सार्वजानिक जीवन में बहुत से हैरान कर देने वाले काम किये हैं, उदाहरण के लिए १९४६ में कांग्रेस और मुस्लिम लीग के नेताओं को, जब कि उनमें सख्त खींचातानी थी, एक दूसरे की शक्ल देखना भी गवारा नहीं था, जाकिर साहब के प्यारे व्यक्तित्व ने उन्हें जामे के प्लेटफार्म पर इक्ट्ठा कर दिया। इसी प्रकार बल्कि इससे भी ज्यादा आज जब कि बहुसंख्यकों तक के कांग्रेस उम्मीदवारों की कामयाबी निश्चित नहीं समझी जाती एक अल्पसंख्यक वर्ग के व्यक्ति की मुल्क के सबसे बड़े ओहदे के लिए कामयाबी यकीनन हैरान कर देने वाली है! इसे जाकिर साहब के व्यक्तित्व का जादू भी कह सकते हैं, या फिर इनके इरादों और लक्ष्यों की लगन जो अपना असर दिखाये बगैर नहीं रहती।

नेक और शरीफ लोग राजनीति से दूर भागते हैं और आजकल तो इसकी गन्दगी बर्दाश्त की हद से बाहर निकल गयी है। पं० जवाहरलाल नेहरू जैसे भारी-भरकम व्यक्तित्व और उन जैसे प्यारे नेता के उठ जाने के बाद हिन्दुस्तान की राजनीति, खासतौर पर चौथे आम चुनाव के बाद, बहुत ही खराब हो गयी है, लेकिन इतमीनान और खुशी की बात है कि मुल्क के बहुमत ने जाकिर साहब की

सेवाओं को माना, उनकी शराफत और राजनीतिक सूझ बूझ की सराहना की और उनकी हिमायत में सैकड़ों बल्कि हजारों पत्र छपे।

जाकिर साहब के व्यक्तित्व और सेवाओं को सामने रखते हुए यह सब कुछ होना ही चाहिए था। न होता तो हैरानी और अफसोस होता। मगर दो कारणों से मेरे नजदीक इनका बड़ा महत्व है। पहला, इस कारण कि जाकिर साहब सक्रिय राजनीति से हमेशा अलग रहे। इनकी राष्ट्र-सेवाएं शिक्षा-जगत् तक ही सीमित थीं, जिनके महत्व को खास-खास लोग ही समझ सकते हैं और कद्र कर सकते हैं। दूसरे, आजकल देश की राजनीतिक परिस्थिति में इतना बड़ा परिवर्तन आ गया है कि कांग्रेस पहले की तरह मजबूत नहीं रही, लेकिन इसके बावजूद जाकिर साहब की जो एक अल्प संख्यक वर्ग से ताल्लुक रखते हैं, इस जोश-खरोश के साथ हिमायत करना और इतने भारी बहुमत से मुल्क के सब से बड़े ओहदे के लिए चुनना कोई मामूली बात नहीं। मैं विश्वास करता हूं कि धर्मनिरपेक्ष हिन्दुस्तान के इतिहास में यह स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा।

जाकिर साहब राजनीतिक जोड़-तोड़ के आदमी नहीं हैं। उन्होंने उम्र का बड़ा और बेहतरीन हिस्सा तालीम की खिदमत में खपाया। उन्हें अपनी शराफ़त, नेकी और दिल मोह लेने वाले ढंग से विरोधियों को वश में करने, दुश्मनों को दोस्त बनाने और दोस्तों की दोस्ती को बनाए रखने का गुर खूब आता है।

हिन्दुस्तान का राष्ट्रपति यद्यपि सिर्फ संवैधानिक अध्यक्ष होता है, असल ताकत संसद् को हासिल है, मगर जाकिर साहब की सूझ-बूझ और उनके प्यारे व्यक्तित्व की बिना पर यकीन है कि मौजूदा हालत में, जब कि हकूमत के अन्दर कोई बुजुर्ग और प्रभावशाली व्यक्तित्व नहीं रहा, और केन्द्र तथा राज्यों के बीच खींचातानी का डर है, इनका राष्ट्रपति चुना जाना वाकई एक अच्छा शगून है।

जाकिर साहब का व्यक्तित्व राष्ट्रीय समस्याओं के हल करने में जितना सहायक हो सकता है, उतना ही इससे अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध बनाने में मदद मिल सकती है। उन्होंने अपने उपराष्ट्रपतित्व-काल में बड़े लाभदायक काम किये हैं। राष्ट्रपति की हैसियत से वे पहले से भी ज्यादा लाभदायक सेवाएं कर सकते हैं। हमारे बाज पड़ौसी देश दिन रात इस कोशिश में लगे रहते हैं कि दूसरे मुल्कों से खास तौर पर मुसलमान मुल्कों से हमारे मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बाकी न रहें। इसका बेहतरीन जवाब जाकिर साहब की यह शानदार कामयाबी है।

अब वे खुद राष्ट्र के अध्यक्ष हैं। इस समय भी देश की हालत १९४१ से अधिक भिन्न नहीं। इसलिए सही तौर पर उनसे उम्मीद की जा सकती है कि वे अपने प्रभाव का देश के साम्प्रदायिक वातावरण के सुधार में प्रयोग करेंगे। लेकिन इसके साथ-साथ हम यह भी महसूस करते हैं कि उनके हाथ में कोई जादू की छड़ी नहीं है कि मुल्क और कौम की तमाम खराबियों को, जिनको जड़ें बड़ी गहरी और मजबूत हैं, अपने थोड़े से कार्यकाल में दूर कर देंगे। फिर यह कि वे इनसान हैं, फरिश्ता नहीं। उनमें कमजोरियां भी हैं। उनकी सब से बड़ी कमजोरी मुरव्वत है। एक दर्दमन्द दिल रखते हैं, जो समाज की खराबियों और बेइन्साफियों पर बहुत जल्द भर आता है। मगर वह जिस बड़े ओहदे पर हैं, इसके

र्द-गिर्द परम्पराओं तथा नियमों का कैसा मजबूत किला है, जिसे नजरन्दाज नहीं करना चाहिए। इनसे उम्मीदें बांधते वक्त इस बात को खास तौर पर सामने रखने की जरूरत है।

बहरहाल जाकिर साहब का राष्ट्रपति चुन लिया जाना अपने आप में बहुत बड़ी घटना है। हम इस चुनाव पर कौम को मुबारकबाद देते हैं और उम्मीद रखते हैं कि जिस तरह इसने चुनाव के वक्त अपने फैसले को पक्षपात से खराब नहीं होने दिया, इसी तरह अपना सहयोग देकर इन्हें कौम, मुल्क की सेवा का मौका देंगे।

हम जाकिर साहब को भी मुबारकबाद देते हैं, जिनको मुल्क के सब से बड़े ओहदे पर चुन कर कौम ने उन पर कोई अहसान नहीं किया है। मुल्क के सम्मान को दुनिया की नजरों में ऊंचा करके खुद अपने ऊपर अहसान किया है। हमें पूर्ण विश्वास है कि कौम ने जाकिर साहब पर जिस भरोसे और विश्वास का सबूत दिया है, इसमें उसे कभी मायूसी नहीं होगी।

हिन्दुस्तान ने एक मुसलमान को राष्ट्रपति चुनकर अपने धर्मनिरपेक्ष होने की लाज रख ली। इस पर मुबारकबाद के हकदार खुद राष्ट्रपति नहीं, उनके चुनने वाले हैं।

हमारे जाकिर साहब के चरित्र का सारांश यदि एक शब्द में रख देना चाहें तो वह एक शब्द "शराफत" होगा। अपनी शराफत के नमूने यों तो वे जिन्दगी भर पेश करते रहे, लेकिन इसका सबसे बड़ा और असर करने वाला नमूना तो ऐन इसी आम चुनाव के सिलसिले में देखने में आया। विरोधी दलों में से बाज तो कमीनगी की जिस घटिया सतह पर उतर आये थे, उस पर हर आंख हैरान और हर कान दंग था। इन सब बातों को बर्दाश्त करना और इन हमलों का जवाब इस शानदार खामोशी से देना बस इन्हीं का हिस्सा था। शायर ने कहा है :—

वो तेरी गली की कयामतें, कि लिहद से मुर्दे निकल पड़े।
ये मेरी जबीने नियाज थी कि जहां धरी थी, धरी रही।

●

सौम्यता व सज्जनता के आदर्श

रंगनाथ रामचन्द्र दिवाकर
(भूतपूर्व राज्यपाल, बिहार)

स्वतन्त्रता के पश्चात् पिछले २० वर्षों में भारत के सौभाग्य से उसे योग्य राष्ट्रपति प्राप्त हुए हैं। यद्यपि संविधान निर्माण से पूर्व यह पद गवर्नर जनरल के रूप में प्रसिद्ध था परन्तु उसे भी राष्ट्रपति ही समझना चाहिए।

इन सभी राष्ट्रपतियों ने इस पद की मान मर्यादा को बढ़ाया है क्योंकि वे लोग पहले ही प्रख्यात व्यक्ति थे। श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, डा० राजेन्द्र प्रसाद, डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् तथा डा० जाकिर हुसैन। सभी भारत की सर्वोच्च विभूतियां हैं जिन्होंने इसके सार्वजनिक जीवन व इतिहास में पर्याप्त योगदान किया है। केन्द्र तथा राज्यों के विधायकों को यह श्रेय जाता है कि उन्होंने भारत के प्रथम नागरिक तथा विश्व के सबसे बड़े जनतंत्र के अध्यक्ष का चुनाव करने में विवेकशीलता से काम लिया। उन्होंने धर्मनिरपेक्षता के महत्व को स्वीकार किया और विश्व के समक्ष उसकी स्वीकृति प्रस्तुत की।

यद्यपि राज्यों में राजनैतिक संतुलन बदल जाने के कारण दुर्भाग्य से पिछली मई में राष्ट्रपति का चुनाव दलगत राजनीति का विषय बन गया पर सौभाग्य से परिणाम उचित ही निकला। फलस्वरूप डा० जाकिर हुसैन हमारे राष्ट्रपति बने। यह कहा जा सकता है कि भारत के इस सर्वोच्च पद पर उन्हें चुन कर हमने अपनी गौरवशाली परम्पराओं का पुनः परिचय दिया है। यह सही है कि उनके पूर्ववर्ती राजनीतिक व सांस्कृतिक देन के नाते उनसे अधिक प्रसिद्ध रहे हैं पर इसका कारण यही है कि जाकिर हुसैन कुछ ऐसे संगठनात्मक कार्यों में लगे रहे कि अन्य क्षेत्रों

में उन्होंने अपने को जाने से बरबस रोका। पर भारत की स्वाधीनता प्राप्ति के बाद उनकी परिपक्व, प्रतिभा व सेवाओं का राष्ट्र ने भरपूर उपभोग किया। वे गत दशक में बिहार के समान बड़े राज्य के राज्यपाल के रूप में तथा राज्य सभा के अध्यक्ष व उप–राष्ट्रपति के रूप में अपनी योग्यता व विद्वत्ता का परिचय दे चुके हैं। इस तरह यद्यपि शिक्षा व साहित्य के क्षेत्र में उनकी उपलब्धियां बहुत अधिक हैं किन्तु प्रशासन में भी उन्होंने सुविचारिता, सौजन्य, सहृदयता एवं उच्च व्यक्तित्व की छाप छोड़ी है। उन्होंने कभी भी आत्म प्रचार की ओर ध्यान नहीं दिया। चूंकि शिक्षा के क्षेत्र में उनका जीवन प्रचार व विज्ञापन से दूर ही रहा। अतः इसके फलस्वरूप उनके विचारों में अधिक परिपक्वता व गहनता आ गई है। वे सादगी पसन्द, अध्ययन प्रिय और सौम्य व्यक्तित्व का आदर्श प्रस्तुत करते हैं।

भारतीय विश्वविद्यालयों से सर्वोच्च शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् उन्होंने जर्मन विश्वविद्यालय से शिक्षा प्राप्त की। तत्पश्चात् उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र को ही अपने लिए चुना। राष्ट्रीय विचारों से ओत-प्रोत होने के कारण उन्होंने अनुभव कर लिया कि हमारी शिक्षा पद्धति में राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली के मूल तत्वों का अभाव है इसी कारण उन्होंने शिक्षा विभाग का एक अधिकारी बनने की अपेक्षा जामिया मिलिया में साधारण शिक्षक रहना अधिक पसन्द किया। उनके पास कई प्रस्ताव आये जिन्हें स्वीकार कर वे सुखी जीवन व्यतीत कर सकते थे पर उन्होंने सिद्धान्तों का बलिदान करने की अपेक्षा समृद्ध व ऊंची आय के पद का बलिदान कर दिया। यह उनके चरित्र की दृढ़ता व आत्मशक्ति की परीक्षा थी। जब वे जामिया मिलिया में उप कुलपति बने तो उन्होंने एक वास्तविक श्रेष्ठ व राष्ट्रीय शिक्षा पर विशेष जोर दिया जिसे प्राप्त कर वे भारत को आधुनिक राष्ट्र बना सकें। शिक्षा के क्षेत्र में उन्होंने एक संतुलनात्मक पद्धति का समर्थन किया है। वे चाहते हैं कि अपनी शिक्षा के माध्यम से हम पूर्व को पहले समझें और उसके बाद पश्चिम को। उन्होंने अपनी पुस्तकों व भाषणों में इस दृष्टि बिन्दु को विशेष रूप से सामने रखा है।

जब महात्मा गांधी ने डा० जाकिर हुसैन को बुनियादी शिक्षा का संदेश दिया तो उन्होंने उस प्रणाली को अपना लिया। बुनियादी शिक्षा पद्धति को रूप व आकार देने में उन्होंने प्रमुख भाग लिया। उन्होंने इसका सांगोपांग अध्ययन किया व कार्यान्वित हेतु इसे प्रस्तुत किया। पर दुर्भाग्यवश सभी लोगों द्वारा इसकी सराहना करने के बावजूद बुनियादी शिक्षा हमारी शिक्षा पद्धति का आवश्यक अंग नहीं बन सकी। डा० जाकिर हुसैन को इसका बड़ा खेद है परन्तु डा० जाकिर हुसैन या बुनियादी शिक्षा के समर्थकों का इसमें कोई दोष नहीं है। हमारी शिक्षा पद्धति का निष्प्राण ढांचा ही इस नवीन पद्धति को ग्रहण करने में असमर्थ रहा।

बुनियादी शिक्षा के अलावा भी शिक्षा की वैज्ञानिक पद्धति के विकास में डा० जाकिर हुसैन ने जीवन का दीर्घ समय दिया है। जामिया मिलिया इसका एक आदर्श उदाहरण है जिसमें उन्होंने अपने अनुभवों और अध्ययनों को साकार रूप प्रदान किया है। यह उनके जीवन की एक लंबी साधना का प्रमाण है।

डा० जाकिर हुसैन अंग्रेजी तथा उर्दू भाषा के प्रकाण्ड विद्वान हैं। दोनों भाषाओं में वे विशुद्ध व मधुर शब्दों का उपयोग कर सकते हैं। वे जर्मन भाषा के भी ज्ञाता हैं परन्तु मुझे ज्ञात नहीं है कि उसमें उन्होंने कोई पुस्तक लिखी अथवा नहीं। वे भाषण बहुत कम देते हैं। वे बिना गूढ़ पर्यवेक्षण व अनुभव के कभी कोई विचार प्रकट नहीं करते। चाहे वे सामान्य वेतन पाने वाले अध्यापक रहे अथवा भारत के राष्ट्रपति, वे सदा मानव की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा, चरित्र की सत्यता, सज्जनता व प्रेम से ही मनुष्यों से व्यवहार करते हैं। अपने इन सभी गुणों सहित वे राष्ट्रपति के सर्वोच्च पद पर विराजमान हैं और इस पद को स्वीकार कर उन्होंने इसकी मान मर्यादा को बढ़ाया है। ●

गधे से मुलाकात !

यह उन दिनों की बात है जब जाकिर साहब जर्मनी में पढ़ते थे। इस देश में किसी अजनबी, अन्जान से जान-पहचान या पहली मुलाकात का ढंग यह है कि अपना नाम बताकर हाथ बढ़ा दिया जाता है। एक दिन महाविद्यालय में कोई उत्सव था। जाकिर साहब जल्दी-जल्दी उसी ओर जा रहे थे। सामने से एक प्राध्यापक चले आ रहे थे। वे बहुत घमण्डी थे। यकायक दोनों टकरा गये। प्रोफेसर साहब के मुँह से क्रोध में सहसा निकला—"गधा!" 'जाकिर हुसैन!" यह कहते हुए जाकिर साहब ने हाथ मिलाने के लिए हाथ आगे बढ़ा दिया। प्राध्यापक महोदय एक भारतीय विद्यार्थी की होशियारी और तीव्र बुद्धि पर मुस्करा दिये और उस दिन से जाकिर साहब की गिनती अति प्रिय विद्यार्थियों में होने लगी।

विचारक एवं शिक्षाविद् जाकिर हुसैन

के० जी० सैयदेन

[भारत सरकार के भूतपूर्व शिक्षा सचिव श्री सैयदेन ने डा० जाकिर हुसैन को बहुत निकट से देखा है। वे स्वयं उल्लेखनीय शिक्षा-शास्त्री माने जाते हैं एवं संप्रति एशियाई इन्स्टीट्यूट, शिक्षा आयोग व प्रशासन के अध्यक्ष हैं। उन्होंने यहां डा० हुसैन की शैक्षणिक, सामाजिक व सार्वजनिक उपलब्धियों का आंकलन प्रस्तुत किया है।]

शैक्षणिक चिन्तन एवं अनुशीलन के क्षेत्र में उच्च नेता व प्रवर्त्तक डा० जाकिर हुसैन अपनी सेवाओं के लिए सुपरिचित उस अफगान परिवार से संबद्ध हैं जो उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद जिले के एक छोटे से कस्बे कायमगंज में बस गया था। पर स्वयं उनका जन्म आंध्र में हैदराबाद में ७० वर्ष पूर्व हुआ जहां उनके पिता एक प्रख्यात वकील थे।

यहां यह भी उल्लेखनीय है कि उनका परिवार सात पीढ़ियों से सेना में एक प्रमुख स्थान प्राप्त करता आ रहा था। पर उनके पिता ने यह परम्परा भंग कर दी और स्वयं जाकिर हुसैन व उनके भाइयों ने पिता से भी पृथक शिक्षा के क्षेत्र को अंगीकार किया।

उनकी प्रारंभिक शिक्षा इटावा में हुई जहां के अत्यन्त योग्य हैडमास्टर सैयद अल्ताफ हुसैन ने उन पर गहरा प्रभाव डाला। बाद में कालेज शिक्षा के लिये वे अलीगढ़ के एम० ए० ओ० कालेज चले आये जो कि बाद में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में परिवर्तित हुआ। उन्हीं दिनों देश में गांधी जी के नेतृत्व में असहयोग आन्दोलन छिड़ गया जिसने राजनीतिक कार्यकर्त्ताओं व जनता के साथ ही छात्रों व शिक्षण संस्थाओं को भी आकर्षित

कर लिया। युवा हुसैन व उनके साथी भी गांधी जी से प्रभावित हुए और उन्होंने शिक्षा के माध्यम से राष्ट्रीय सेवा में अपने को समर्पित कर दिया।

डा० हुसैन का विचार था कि केवल राजनीति के संकुचित द्वार से एक सच्चा व पूर्ण राष्ट्रीय नवजागरण प्राप्त नहीं किया जा सकता, इसकी जड़ें नवजाग्रत शिक्षा व संस्कृति में होनी चाहिये। अंग्रेजी शिक्षा का प्रस्थापित पैटर्न आत्माहीन था, इसके आदर्श सीमित थे, इसको प्रणालियां ढली-ढलाई थीं। राष्ट्रीय जीवन की धाराओं से इसका संपर्क परे था। इन्हीं सब दृष्टियों से उन्होंने अलीगढ़ में एक राष्ट्रीय शिक्षण संस्था स्थापित करने में मदद की और बाद में जिसे दिल्ली ले आया गया। "जामिया मिलिया" नाम से प्रख्यात यह शिक्षण संस्था शिक्षा के क्षेत्र में एक नया प्रयोग था। इसका उद्देश्य शिक्षण का ऐसा पैटर्न विकसित करना था जो राष्ट्रीय संस्कृति से अविच्छिन्न हो।

जामिया में कुछ वर्ष कार्य करने के बाद वे अर्थशास्त्र में डाक्टरेट करने बर्लिन चले गये। पूर्वानुसार इसे विशिष्ट योग्यता के साथ प्राप्त करके उन्होंने पुनः इस शिक्षण संस्था के विकास का कार्य हाथ में लिया। वे ३० वर्ष तक इस कार्य में लगे रहे। उन्होंने इस संस्था के उपकुलपति के रूप में तो कार्य किया ही, प्रारम्भ में वे स्वयं अपने क्लर्क, सचिव, अकाउन्टेन्ट व कोषाध्यक्ष भी रहे। कठोर परिश्रम, प्रतिभा, योजना सभी कुछ उन्होंने इस शिक्षण संस्थान के गठन मे दाव पर लगा दिये।

इस दीर्घ समय उन्होंने और उनके साथियों ने अत्यल्प अर्थ पर जीवन निर्वाह किया जब कि उनमें से कुछ अपनी योग्यता की दृष्टि से अपनी इच्छानुसार कोई भी पद प्राप्त करने में समर्थ थे। अन्त में निष्ठा व उत्साह और व्यक्तित्व की विजय हुई और एक दिन जामिया मिलिया देश में ही नहीं विदेशों में भी उच्च सराहना की दृष्टि से देखा जाने लगा।

इस दौरान डा० हुसैन ने अपना अध्ययन व चिन्तन भी जारी रखा। वे जर्मनी, ब्रिटेन, अमरीका में कोर्चेन्स्टेनियर, स्पेन्सर, नन, डेवी आदि नवीन शिक्षा के प्रवर्त्तकों के निकट संपर्क में भी रहे और नव राष्ट्रीय शिक्षा की स्पष्ट धारणा का निर्माण करते रहे। इस तरह जब वे राष्ट्रीय शिक्षा की बात करते तो उसमें एक स्वस्थ तात्पर्य व दृष्टि निहित होती। १९३७ में गांधीजी ने देश के सम्मुख बुनियादी शिक्षा की अपनी योजना रखी जिसका उद्देश्य शिक्षा को किताबी शिक्षा के स्थान पर काम दिलाने वाली शिक्षा बनाना था। उन्होंने इसे नयी योजना के बारे में एक प्रारूप तैयार करने के लिए राष्ट्रीय समिति बनाई जिसके अध्यक्ष डा० हुसैन बनाये गये। उसके बाद से बुनियादी शिक्षा आन्दोलन का नेतृत्व अनेक वर्षों तक उनके ही हाथ मे रहा और अपनी बुद्धिमत्तापूर्ण व संतुलित व्याख्या से उन्होंने परम्परावादियों व कट्टर समर्थकों दोनों से इसे बचाया। १९४० में शिक्षा के सम्बन्ध में व्यक्त उनके कुछ उद्‌गारों को यहां प्रस्तुत करने का लोभ मैं संवरण नहीं कर पा रहा हूँ। उनके शब्द थे :--

सभी कार्य शिक्षात्मक नहीं होते। जो वस्तु मानसिक प्रयत्नों से प्रस्तुत की जाती है वही शिक्षात्मक हो सकती है। पहले आपको अपने मस्तिष्क में उस कार्य की योजना बनानी होगी, फिर उसके करने की प्रणाली व मार्गों पर विचार करना होगा, इसके बाद उसे वास्तव में पूरा करने का कार्य आता है और अन्त में इसके परिणामों के आंकलन व मार्गदर्शन योजना के साथ उसकी तुलना का कार्य आता है। लेकिन इन चारों कदमों के पूरा होने के बावजूद यह नहीं कहा जा सकता कि वह कार्य

शिक्षात्मक सिद्ध होगा। निस्सन्देह इसमें मानसिक या शारीरिक कौशल होगा पर कौशल मात्र शिक्षा नहीं है.........शिक्षात्मक वही चीज हो सकती है जिसने अपने स्वार्थ से उच्चतर कुछ मूल्यों की सेवा की हो। मूल्यों की सेवा में मनुष्य अपनी बात नहीं सोचता अपितु अपने कार्य में पूर्णता प्राप्ति का यत्न करता है, अपना चरित्र उन्नत करने का और सच्चा मानव प्राणी बनने का प्रयत्न करता है..... यह शिक्षात्मक गुण हाथ के या मानसिक दोनों कार्यों में पाया जा सकता है और दोनों ही इससे वंचित भी हो सकते हैं।

१९४८ में डा० हुसैन अलीगढ़ विश्वविद्यालय के उपकुलपति पद के लिये आमंत्रित किये गये। उन्होंने जिस समय यह दायित्व ग्रहण किया, देश विभाजन के गंभीर परिणामों से गुजर रहा था। पर उनके मस्तिष्क व व्यक्तित्व का प्रभाव विश्वविद्यालय के हर अंग ने महसूस किया। छात्रों के अनुशासन, विभागों के विकास व विस्तार, शिक्षण व शोध, सामाजिक, सांस्कृतिक व अन्य स्वस्थ गतिविधियों के प्रोत्साहन सभी में उन्होंने नया जीवन प्रवाहित किया।

वे यूनेस्को के कार्यक्रम से भी संबद्ध रहे और १९५५ में इसके कार्यकारी मंडल के सदस्य चुने गये। उनकी गतिविधियां भारत तक ही सीमित नहीं रहीं अपितु विश्व के सभी भागों से भी उन्होंने शैक्षणिक विचारों व कार्यों के माध्यम से अपना संपर्क रखा।

डा० हुसैन एक सुवक्ता और प्रख्यात लेखक भी हैं। उनके लेखन की एक विशिष्ट शैली है जो विद्वता से पूर्ण व सुपाच्य है। यद्यपि उनके कठिन जीवन ने उन्हें लिखने के लिए अधिक समय प्रदान नहीं किया है, फिर भी उन्होंने स्फुट लेखन व दीक्षान्त भाषणों के संग्रहों के अलावा प्लेटो के "रिपब्लिक" का अनुवाद भी किया है। इसके अतिरिक्त बच्चों के लिये उपनाम से अत्यन्त सुन्दर पुस्तकें भी लिखी हैं।

उनकी शैक्षणिक, सांस्कृतिक व सार्वजनिक उपलब्धियों को एक बारगी आंकना कठिन कार्य है। वे मौलिक चिन्तन से युक्त एक शैक्षणिक विचारक हैं जिन्होंने भारतीय शिक्षा का नवीकरण किया है। उन्होंने प्राथमिक, माध्यमिक व विश्वविद्यालयी सभी स्तरों पर शिक्षण पद्धतियों के विकास में योगदान किया। उन्होंने लोकप्रिय व प्रभावपूर्ण शिक्षक के रूप में शिक्षण व्यवसाय को प्रतिष्ठा बढ़ाई है। सादगी, सच्चाई, गौरव व मूल मानवीय गुणों से युक्त होने के नाते वे महानों की श्रेणी में रखे जा सकते हैं। ●

निराले शौक

यह शौक का मामला भी बड़ा अजीब है, बहुत दिलचस्प है। लोगों के अजीब अजीब और अनोखे शौक हुआ करते हैं। कुछ लोग डाक के टिकट जमा करते हैं, तरह तरह के सिक्के इकट्ठे करते हैं किसी को घूमने–फिरने, शिकार करने में दिलचस्पी है। कोई पहाड़ पर चढ़ने का शौकीन है। किसी को तसवीर बनाने का शौक है, किसी को फोटो खींचने का, किसी को कविता का शौक है तो किसी को लेख को लिखने का। कोई गुब्बारे में दिलचस्पी लेता है तो कोई तैराकी में। गरज हर आदमी का कोई न कोई अपना शौक अवश्य होता है। इस शौक को आज की जबान में हॉबी कहते हैं। हमारे राष्ट्रपति भी शौक से न बच सके। जाकिर साहब के शौक भी अनोखे हैं।

पढ़ाने का :--आप सब जानते हैं कि जाकिर साहब ने अपनी सारी उमर बच्चों को पढ़ाने में गुजार दी। मैने इन्हें साधारण मदरसे के बच्चों को पढ़ाते देखा है और कालेज के विद्यार्थियों को पढ़ाते हुए भी। उन्होंने अध्यापक का पेशा इस लिए नहीं अपनाया कि वे दुनिया में और कोई काम करने के योग्य नहीं थे। इन्होंने अध्यापक के पेशे को इस लिए चुना कि उन्होंने अनुभव किया कि इस पेशे से उनको शौक है। जिन विद्यार्थियों ने इनसे विद्या पढ़ी है उनका कहना है कि जाकिर साहब बहुत अच्छे अध्यापक हैं। बच्चों को इस तरह पढ़ाते हैं कि बच्चे बड़े शौक से दूसरे दर्जे से दौड़ कर आते हैं और सारे घण्टे बड़ी दिलचस्पी से पढ़ते हैं। उनका जी नहीं चाहता कि उनका घण्टा कभी खत्म हो। पढ़ाते समय वे हर बच्चे का ख्याल रखते हैं। इनके दर्जे में कोई बच्चा ऐसा दर्जे से

निकल कर नहीं जाता जिसकी समझ में कोई बात न आई हो। हर विद्यार्थी को अपने स्थान पर सन्तोष होता है।

एक बार जामिया में एक सभा में जाकिर साहब लड़के और लड़कियों से कह रहे थे, "मैं चाहता हूँ कि जामिया से जो शिक्षा प्राप्त करके जाये वह अध्यापक बने। सब से पहले उसकी कोशिश यह हो कि वह अध्यापक बने और कामयाब अध्यापक बने और इस प्रकार देश की सच्ची सेवा करे। यदि वह बेकार हो और अध्यापक न बन सके तो फिर उसका जो दिल चाहे बने। चाहे किसी सूबे का गवर्नर बन जाये या उपराष्ट्रपति बन जाये"। जाकिर साहब जब यह भाषण दे रहे थे उन दिनों वे हमारे देश के उपराष्ट्रपति थे। इससे पहले वे बिहार में गवर्नर भी रह चुके थे। इन वाक्यों का उनका असली अर्थ यही था कि मैं जाकिर हुसैन अब जब कि बेकार हो गया हूँ तो गवर्नर और उपराष्ट्रपति के कार्य को कर रहा हूँ, वरना अगर वातावरण अपने शौक के अनुसार काम करने की आज्ञा देता तो मैं अध्यापक के पेशे को अधिक अच्छा समझता। अब तो आपको मालूम हो गया होगा कि हमारे राष्ट्रपति को पढ़ाई से कितनी दिलचस्पी है।

बागबानी का :—बागबानी के शौक से लोगों को अकसर दिलचस्पी होती है। बाग लगाते हैं फूलों और फलों के पौधे लगाते हैं। हैज लगाते हैं। पेड़ भी लगाते हैं। अगर सिर्फ यही बात माननीय जाकिर साहब भी करते तो शायद कोई बात नहीं थी। लोग अकसर ऐसा किया करते हैं। मैं जिस बात की ओर ध्यान दिलाना चाहता हूँ वह दूसरी है। वह है बागवानी से शौक रखना। विद्या की खोज में वे बागबानी से सम्बन्धित जो भी काम करते हैं इस तरीके से करते हैं जैसे कोई अनुसंधान करता हो। उन्हें हिन्दुस्तान के पुराने पौधों, पेड़ों, फूलों के बारे में अच्छा ज्ञान है। जब कभी वे किसी जानकार चतुर माली से बातें करते हैं तो बात-चीत के समय वे यह समझते हैं कि जाकिर साहब को इन सब बातो का ज्ञान न होगा उल्टी सीधी बातें करने लगते हैं। लेकिन जब बातों में यह पता चलता है कि वे ऐसे आदमी से बातें कर रहे हैं जो इस मामले में माहिर है तो बहुत लज्जा उठानी पड़ती है।

बात यह है कि जाकिर साहब किसी पौधे, फूल और झाड़ी को देखते हैं तो इसके बारे में पूरी जानकारी प्राप्त करने की कोशिश करते हैं। वे यह जानकारी इस विषय के विशेषज्ञ से प्राप्त करते हैं, किताबों और अखबारों से प्राप्त करते हैं, बॉटेनिकल गार्डेन्स में जाकर वहां इन चीजों को देख कर ज्ञान प्राप्त करते हैं।

सम्भव है आपको जानकारी न हो, पिछले कई वर्षों से जाकिर साहब इस कोशिश में लगे हैं कि हिन्दुस्तान में अच्छे से अच्छे सुन्दर रंग वाले अधिक से अधिक खिले रहने वाले गुलाब लगाये जा सकें। इनके शौक से प्रभावित होकर हिन्दुस्तान के चतुर मालियों ने एक नये गुलाब के फूल का नाम जो बहुत सुन्दर है "जाकिर हुसैन" रखा है।

जामिया में जब आप "शेख उलजामिया" थे तो अपने आपनी कोशिशों से गुलाब के ऐसे सुन्दर पौधे लगाये थे जिनके फूलों की राजा-महाराजा, नवाब और अंगरेज तारीफ किया करते थे और बड़ी ललचाई हुई नजरों से फूलों की तरफ देखते थे। जाकिर साहब की बागवानी की निपुणता देखनी हो तो अलीगढ़ विश्व विद्यालय को देखिये! जंगल में मंगल कर दिया है।

जब जाकिर साहब राष्ट्रपति बने तो एक साहब मालूम करने लगे "भाई अब जब जाकिर साहब राष्ट्रपति बने हैं तो बताइये इनके समय में क्या क्या परिवर्तन होने वाले होंगे ?" प्रश्न बड़ा अर्थ रखता था। पेचीदा था। मैंने कहा, "आप पहले यह बताइये डॉ० राधाकृष्णन् के समय में क्या-क्या परिवर्तन हुए ?" चुप रह गये जवाब न दे सके। खुद ही बाद में कहने लगे "राष्ट्रपति तो केवल प्रधान (हैड) होता है। परिवर्तन तो राजनीतिक दल जो शक्ति में होता है किया करता है।" मैंने कहा "बिलकुल सच है, लेकिन एक बात है, जाकिर साहब अपने समय में एक परिवर्तन जरूर करेंगे।" वे चौंक पड़े; पूछा "कैसे" ? मैने अर्ज किया कि "राष्ट्रपति भवन का मुगल गार्डन सही अर्थ में मुगल गार्डन अब बनेगा।" बोले "जी हाँ, यह दुरुस्त है।"

नागफनी :—जाकिर साहब को नागफनी की विभिन्न किस्मों को जमा करने और पहाड़ियाँ बना कर उनमें नागफनी के पौधे लगाने का बहुत शौक है। उन्होंने जामिया नगर में अपने मकान के बगीचे के एक कोने में एक नागफनी की बहुत सुन्दर पहाड़ी बनाई है। इस पहाड़ी में कई तरह की नागफनियां लगाई गई हैं।

नागफनी लगाने का शौक अब बहुत साधारण होता जा रहा है लेकिन जिस खूब सूरती और ढंग से जाकिर साहब ने अपनी पहाड़ी को बनाया है वैसी पहाड़ी देखने को बहुत कम मिलेगी। कारण यह है कि आपको सजावट के काम में कमाल हासिल है। नागफनी के पौधों को इनकी शक्ल व रंगत, इनके कद, इनकी लम्बाई–चौड़ाई और फासले को ध्यान में रखते हुए लगाया गया है। इस बात का भी ख्याल रखा गया है कि हर नागफनी के पौधे की जमीन ऐसे सुन्दर और अनोखे पत्थरों से बनाई जाय कि पौधा अपनी जगह निखर जाये।

सुन्दर सुन्दर कृतियाँ :—सन् १९४१ में जब पहली बार मैं जामिया नगर आया तो मेरे अचम्भे की सीमा न रही जब मैंने यह देखा कि जामिया की प्राथमिक और माध्यमिक पाठशालाओं की दीवारों पर संसार के प्रसिद्ध चित्रकारों की कृतियां सजाई गयी हैं। सोचने लगा, कला की रूचि का जामिया में यह स्तर है तो अपना गुजर तो होने से रहा इसलिए कि जिन चित्रकारों के चित्र दीवार पर लटक रहे हैं उन चित्रकारों के नाम तो मैंने सुने थे मगर उनके चित्र देखने को नहीं मिले थे। जानकारी करने पर मालूम हुआ कि जाकिर साहब को उत्कृष्टतम कलाकृतियां जमा करने का बहुत शौक है और वे यूरोप से कृतियों के प्रिन्ट लाये हैं जो मदरसे की दीवारों पर लगाये गये हैं। जिन-जिन चित्रकारों के ये शाहकार थे उनके नाम उर्दू भाषा में तसवीरों के कोनों पर लिख दिये गये थे, ताकि बच्चे उनके नाम से व कृतियों से परिचित हो सकें। धीरे-धीरे जब जाकिर साहब से मुलाकात के अवसर प्राप्त हुए तो मालूम हुआ कि इनके पास अनगिनित कला कृतियों के प्रिण्ट मौजूद है, जाकिर साहब की वजह से ही विद्यार्थियों और जामिया के अन्य लोगों को कला के प्रति वास्तविक लगाव होने लगा।

पत्थर :—जाकिर साहब को पत्थर जमा करने का भी बहुत शौक है। उन्होंने पिछले कई वर्षों में अजीब अजीब किस्म के पत्थर जमा किए हैं। आप देखें तो देख कर दंग रह जायेंगे। इनके रंग रूप, इनका कटाव इनकी लम्बाई चौड़ाई सब आश्चर्य में डाल देती है। किसी पत्थर में कोई धातु नजर आती है तो किसी पत्थर के देखने से ऐसा मालूम देता है कि यह पत्थर नहीं किसी दरख्त के तने की

लकड़ी है । कोई खुरदरा है तो कोई चिकना, कोई भारी है तो कोई हल्का । जाकिर साहब ने इनके बारे में खूब पढ़ा भी है और वे इन पत्थरों के बारे में दफ्तर के दफ्तर खोल कर रख सकते हैं । जब वे उपराष्ट्रपति थे तो उन्होंने यह पत्थर अपने ड्राइंग रूम में सजा रखे थे । राष्ट्रपति होने के बाद भी उनके इस अमूल्य खजाने को कोई अच्छा स्थान मिला होगा ।

सुना है किसी मन चले दोस्त ने एक बार इनसे हँसी-हँसी में कहीं यह कह दिया कि "भई खूब ! ड्राइंग रूम में रखने के लिए क्या आपको कोई और चीज नहीं मिली कि आपने इन पत्थरों को यहां जमा कर दिया है ?" कहने को तो वह साहब बगैर समझे बूझे कह गये, लेकिन जाकिर साहब ने उनकी वो खबर ली कि भौंचक्के हो गये । जाकिर साहब ने क्या जवाब दिया ? यह सुनिये । उन्होंने कहा "जी हाँ ! इन पत्थरों से बेहतर दुनिया में और क्या चीज मिल सकती है, ये न किसी को धोका देते हैं, न किसी की चुगली करते हैं, न किसी से दुश्मनी करते हैं, न किसी का हक मारते हैं, न अपनी असलियत को छिपाते हैं, न किसी का परदा फाश करते हैं और न किसी से नफरत । फरमाइये अब भी आपको मेरे इन पत्थरों से नफरत है ?"

इल्म :—इल्म हासिल करने का शौक बहुत साधारण है । संसार के रहने वाले सभी लोग किसी न किसी तरह इल्म हासिल करने की कोशिश करते हैं । कुछ लोग पाठशाला जाकर शिक्षा ग्रहण करते हैं और कुछ लोग घर पर रह कर । ये सब लोग शिक्षा प्राप्त करते हैं । परन्तु किसी उद्देश्य से । कोई नौकरी हासिल करने, कोई रुपया कमाने के लिए, कोई नाम कमाने व दौलत जमा करने के उद्देश्य से । दुनियां में कितने लोग ऐसे हैं जो शिक्षा के लिए शिक्षा प्राप्त करते हैं । भाई हमें तो ऐसे लोग बहुत कम देखने को मिले हैं ? जो लोग शिक्षा के लिए शिक्षा प्राप्त करते हैं उनमें से एक हैं जाकिर हुसैन साहब ।

एक बार जामिया नगर में जाकिर साहब के मकान के बाग में जहाँ उन्होंने नागफनी की पहाड़ी बना रखी है एक नाग आ गया और पहाड़ी के बिल में रहने लगा । नाग की वजह से घर वाले सब परेशान व भयभीत रहने लगे ।

एक दिन मेरी मुलाकात जाकिर साहब से हो गई । उन्होंने नाग का जिक्र किया और मालूम किया कि नाग पहाड़ी में क्यों रहता है ? मैंने बगैर सोचे-समझे एक बात सामने रखदी—नाग पहाड़ी में इसलिए बिल बनाते हैं कि पहाड़ी साधारण जमीन की सतह से ऊँची होती है । बारिश का पानी पहाड़ तक नहीं पहुँच सकता । इसलिए सांप वहां बारिश के जमाने में आराम से रह सकता है । मेरी बात उन्होंने गौर से सुनी और फरमाया "खैर मौके से किसी दिन इसे अपनी बन्दूक से मार दीजिये ताकि कोई गम्भीर घटना न हो और लोगों का भय निकल जाये ।" मैंने हां करली । बात आई गई हुई ।

छः मास बाद जब दूसरी बार मुलाकात हुई तो उन्होंने मुझे अपने पास बुलाया और फरमाने लगे "हजरत आपसे जब पिछली बार मैंने मालूम किया था कि सांप पहाड़ी में क्यों रहता है तो आपने क्या जवाब दिया था ?" मैंने बगैर सोचे-समझे अपनी वही पुरानी बात दोहरा दी । फिर क्या था, उन्होंने मेरी खूब खबर ली । फरमाने लगे, "आपके जवाब के बाद इन छः महीनों में सांपों पर कई किताबें पढ़ी हैं और इस दौरान में मुझे कलकत्ता और लखनऊ के चिड़िया खाने देखने और वहाँ के लोगों से विचार

विमर्ष करने का अवसर भी मिला है। मुझे मालूम हुआ कि सांप कोई बिल नहीं बनाता वह तो चूहों के बनाये हुए बिलों में रहता है, इसलिए रहता है कि वह चूहों का शिकार कर सके। आप चूहों को भगा दीजिये, सांप खुद ब खुद वहां से रफू चक्कर हो जायेगा। और सुनिये, सांपों के कान नहीं होते। वह तो हवा की लहरों को अपने शरीर की सहायता से अनुभव करता है। लोग समझते हैं कि सपेरे की बीन सुन कर सांप खुश होता है। यह बात सही नहीं है। सपेरे के बीन बजाने से हवा में लहरें पैदा होती हैं। ये सांप के शरीर से टकराती हैं। लहरों के शरीर से टकराने से वह खुश होकर झूमने लगता है। समझे आप? अध्यापकों को सुनी सुनाई बातों पर यकीन नहीं करना चाहिये। अध्यापक को चाहिये वह जो भी बात करें उसकी ठोस बुनियाद हो।"

बातों का :—जाकिर साहब को बातें करने व बातें सुनने का बहुत शौक है। उनका मानना है कि महफिल में छोटे-बड़े को समान समझा जाये, महफिल में जो बातें की जायें ऊँचे दर्जे की हों, संस्कृति और सभ्यता में सीमित हों। एक दफा जाकिर साहब के एक किसी साथी ने उन्हें खाने पर बुलाया। जो लोग इस दावत में शामिल हुए उनमें से अधिकतर जामिया मिलिया के लोग थे। कुछ ऐसे भी थे जो शहर देहली से तशरीफ लाये थे। मजाक हो रहा था, कहकहे लग रहे थे। लतीफे कहे जा रहे थे। जाकिर साहब भी जिन्दादिली से हिस्सा ले रहे थे। और खुश हो रहे थे। होते-होते एक साहब बोले—"जाकिर साहब जाकिर साहब, अब मुझसे भी एक बात सुन लीजिये। शायद आप इससे भी खुश हों।" फरमाया "अवश्य", तो वह साहब फरमाने लगे "हजरत कुछ वर्षों पहले जब मैं इस्लामी देशों के दौरे पर हिन्दुस्तान से बाहर गया तो मैंने दिल में निश्चय किया था कि इस बार मुझे इन इस्लामी देशों के बढ़िया से बढ़िया खाने अवश्य खाने हैं ताकि दिल में यह अरमान न रह जाये कि कोई चीज बाकी रह गई। मैंने हर मुल्क में यह कोशिश की कि कीमती से कीमती खाने खाये जायें और पेट भर के खाये जायें। खाने खाने का यह सिल सिला जारी रहा और मैं अपने इरादे में कामयाब होता रहा। होते- होते मैं एक ऐसे मुल्क में पहुँच गया जहाँ 'मीनू' ऐसी भाषा में लिखा हुआ था जिसे मैं पढ़ नहीं सकता था। लेकिन खानों की कीमतें रोमन अङ्कों में थीं। वे मैंने पढ़ लीं। मीनू की कीमतें पढ़ता चला गया एक जगह पर बहुत बड़ी रकम लिखी हुई नजर आई। बस मैंने समझा इस मीनू में यही सबसे कीमती खाना है। क्यों न इसे खाया जाय। फिर क्या था, मैंने फौरन बैरे को वह चीज उँगली से दिखा दी जो मीनू में लिखी थी और हुक्म दिया कि पेश करे। बैरे के चले जाने के बाद मैं बड़े इत्मिनान से खाने का इन्तजार करने लगा क्योंकि पेट में चूहे दौड़ रहे थे। थोड़ी देर में क्या देखता हूँ कि वह बैरा एक बड़े थाल में एक ऊँची सी चीज ढके चला आ रहा है। मैं समझा कोई बड़ा रोस्ट किया हुआ मुर्ग होगा। मैंने इत्मिनान का सांस लिया। बैरे ने वह थाल मेरी मेज पर रखा और ढक्कन उठाया तो मेरे होश उड़ गये। वह मुर्ग तो निकला नहीं, वह तो एक हुक्का था!" इस बात पर इस जोर से कहकहा लगा कि सारा कमरा गूँज गया। ●

सूरज की किरणें

सलाम बिन रज्जाक

बड़ा व्यक्तित्व सूरज की तरह प्रकाशमय और तेजस्वी होता है। जिस तरह सूरज की किरणें दुनियां में कोने-खण्डहरों तक को रौशन कर देती हैं उसी तरह बड़े लोगों की छोटी से छोटी बात भी हमारी जिन्दगी में उजाला बिखेर देती है। इनका हर काम एक सबक और इनकी हर बात एक सीख होती है। यहां हिन्दुस्तान के सबसे बड़े व्यक्तित्व के जीवन की कुछ झलकियां प्रस्तुत हैं।

डा० जाकिर हुसैन उस जमाने में जामिया मिलिया के वाइस चान्सलर थे। एक आदमी प्राथमिक शाला के एक पुराने अध्यापक की शिकायत लेकर पहुँचा। इस व्यक्ति ने बढ़ चढ़ कर शिकायतें शुरू कीं। जाकिर साहब ने बीच में ही इसे टोक दिया। बोले "चुप हो जाइये। क्या आप जानते हैं, किस व्यक्ति की आप शिकायत कर रहे हैं? आपको मालूम होना चाहिये कि आपने सभ्यता की विशाल इमारत को ठेस पहुँचाई है। अगर मैं इस अध्यापक की जूतियां अपने सर पर रखूं तो निश्चय मेरा सम्मान बढ़ेगा। अगर आप इनकी जूतियां अपने सर पर रख लें तो आपका सम्मान बढ़ेगा।" शिकायत करने वाले सज्जन अत्यधिक लज्जित होकर लौट गये।

डाक्टर साहब के एक नौकर को देर से जागने की आदत थी। सारा घर उसकी इस आदत से परेशान था। नौकर पुराना था। उसे कोई कुछ कहकर उसका दिल भी दुखाना नहीं चाहता था। अन्त में जाकिर साहब ने उसे सुधारने का बीड़ा उठाया। दूसरे दिन जब नौकर की आंख खुली तब उसने देखा, उसके सिरहाने जाकिर साहब मुंह धोने के लिये पानी साबुन, तौलियां लिये खड़े हैं। और कह रहे हैं, "लीजिये हुजूर-मुंह धो

लीजिये। अभी नाश्ता हाजिर करता हूँ" इतना कहकर आप दौड़ कर उसके लिए चाय ले आये। "लीजिये, अब चाय पीजिये।" नौकर शर्म से पानी–पानी हो गया। उसकी आंखों से आंसू बहने लगे। उस दिन से न सिर्फ वह तड़के उठने लगा, बल्कि दूसरों को भी सुबह-सवेरे उठाने की जिम्मेदारी उसने अपने ऊपर ले ली।

उन दिनों जाकिर साहब अलीगढ़ विश्वविद्यालय के उपकुलपति थे। एक दिन माली ने आ कर कहा "हुजूर--बाग के लॉन में बेर का एक सूखा पेड़ है, जो बहुत भद्दा लगता है। हुकूम हो तो इसे कटवा दूं ?" उन्होंने माली से पूछा, "भाई--क्या पेड़ को खूबसूरत नहीं बनाया जा सकता ?" फिर उन्होंने उसे बताया कि पेड़ के चारों तरफ फूलों की बेल लगाओ जिससे पेड़ की बदसूरती छिप जाये। बहुत सी अच्छाइयां हों तो थोड़ा सा ऐब भी छिप जाता है।

एक दफा इनके एक पुराने शिष्य एक विद्यार्थी को साथ ले आये जो दो साल से फेल हो रहा था और अब तीसरे साल भी फेल हो चुका था। इनका शिष्य चाहता था कि जाकिर साहब अपने विशेष अधिकारों से उसे पास कर दें। जब जाकिर साहब से इस सम्बन्ध में प्रार्थना की गई तो उन्होंने थोड़ी देर तक सोचने के बाद कहा "अच्छा तो आप चाहते हैं कि मैं अपने विशेष अधिकारों का प्रयोग करूं। कोई बात नहीं। आप दफ्तर से बी. ए. का फार्म ले आइये। मैं इन्हें बी. ए. में दाखिल कर लेता हूँ, क्योंकि मेरे अधिकार में यह भी तो है। अनुचित काम कराना है तो कोई बड़ा सा अनुचित कराइये।" उनका शिष्य भी बहुत शर्मिन्दा हुआ और उनसे माफी मांग कर चला आया।

जाकिर साहब के परिवार में एक सूफी सन्त आया करते थे, जिन्हें पुरानी किताबें पढ़ने और उनको जमा करने का बड़ा शौक था। अगर किसी किताब का खरीदना सम्भव न होता तो वे उसकी नकल कर लेते या किसी से नकल करवा लेते। एक बार उन्होंने जाकिर साहब के सामने किसी किताब की नकल करवाने के लिए कहा। जाकिर साहब ने खुद इस किताब की नकल करने का वादा कर लिया, हालांकि इस जमाने में जामिया में बिजली भी नहीं थी। और वादे के मुताबिक जाकिर साहब ने लालटेन की रोशनी में पूरी किताब की नकल कर के दे दी। ●

इम्तहान

मोहम्मद हफीज उद्दीन

बड़े आदमी की एक पहचान है—किसी बड़ी से बड़ी और अचानक विपदा के समय वह अपने होशोहवास कायम रखता है। दिल पर चाहे जो कुछ बीत जाये, चेहरे पर इसको जाहिर नहीं होने देता। कुदरत की तरफ से यह बड़ी परीक्षा है। बहुत बड़ा इम्तहान है। लेकिन भगवान् के अच्छे और सच्चे बन्दे इस परीक्षा में पूरे उतरते हैं।

आइये, आज आपको एक अच्छे इन्सान, एक अच्छे अध्यापक की आँखों देखी दास्तन सुनाएँ। यह बात उन दिनों की है जब जामिया इस्लामिया करौल बाग दिल्ली में थी। संसार का दूसरा महायुद्ध अभी प्रारम्भ नहीं हुआ था। भारत में स्वतन्त्रता का युद्ध छिड़ा हुआ था। इस समय में कुछ सिरफिरे जामिया बनाने के काम में लगे हुए थे। ये लोग मुल्क की लड़ाई से भी पूरी दिलचस्पी रखते थे, मगर जामिया के काम को और भी आवश्यक राष्ट्रीय सेवा समझते थे। इस वक्त इनके कामों की कदर करने वाले कम थे शाबासी कम मिलती थी। साहस बढ़ाने के स्थान पर बुरा भला अधिक सुनने को मिलता था। यह काम मर-मर के जीये जाने और किये जाने का था। जामिया पर बड़ा आड़ा वक्त था। चार-चार पाँच-पाँच महीनों का वेतन नहीं मिल पाता था। लेकिन जामिया के अनुचरों की पेशानियों पर बल न पड़ते। कठिन-से-कठिन अवसरों पर भी सब हँसी-खुशी अपने कामों में मग्न रहते। हर एक को यह धुन लगी रहती कि उसका काम अच्छा से अच्छा हो।

इस जमाने में भी जामिया में प्रारम्भ से लेकर कॉलिज तक शिक्षा का प्रबन्ध था। मगर जोर ज्यादा प्राथमिक शिक्षा पर था। बच्चा सब का केन्द्र था। उसे माँ-बाप और

अध्यापक के हाथ में ईश्वर की पवित्र अमानत समझा जाता था। बच्चों को शारीरिक दण्ड देना जामिया में बड़ा भारी गुनाह समझा जाता था। इनको खुश रखना, इनकी छिपी हुई प्रवृतियां को उभारना, इनमें जोश, उमंग और काम करने की लगन पैदा करना, इनकी शिक्षा और स्वास्थ्य का ख्याल रखना, यह सब जामिया वालों की दृष्टि में रहता था। यह वह समय था जबकि देश के ग्राम विद्यालयों में उस्ताद के डण्डों को शिक्षा और दीक्षा का सबसे बड़ा माध्यम समझा जाता था। इसलिए जामिया की शिक्षा और दीक्षा का यह ढंग अनोखा था।

प्राथमिक कक्षाओं में इम्तहान होते थे। इस प्रकार अगली कक्षा में छात्र को भेजा जाता था। परीक्षाफल भी सुनाये जाते थे। परन्तु ढंग सबसे अलग था। यह विचार रहता था कि बच्चों के कोमल हृदयों को सफलता और असफलता के अनुभव से ठेस न लगे। जामियाँ की प्राथमिक शिक्षा के बाबा आदम अब्दुल गफ्फार मधौली साहब ने इसके लिए निराला ढंग निकाला था। परीक्षाफल सुनाने के लिए वार्षिक उत्सव होता। अध्यापक और विद्यार्थी एकत्रित होते। उपकुलपति स्वयं अध्यक्षता करते। एक छोटा और मीठा भाषण बहुत सरल भाषा में करते, जिसे हर छोटा बच्चा समझता। बच्चे इनकी बातें बड़े ध्यान से सुनते। अपनी और अपने मदरसे की तारीफ उपकुलपति की जुबानी सुन कर कभी-कभी ताली भी बजाने लगते। आसपास बैठे हुये उस्ताद टोकते कि भई अपने को ताली बजाकर शाबासी देना अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनना है। कुछ समझदार बच्चे झेंप कर चुप हो जाते। कुछ अनजानपन के कारण समझ भी नहीं पाते और ताली बजाने का क्रम जारी रखते।

परीक्षाफल सुनाने में एक नयापन और बरता जाता। जो बच्चा जितने विषयों में पास होता उसे उतने ही रंग-बिरंगे चांदी की तश्तरी के बराबर बताशे दिये जाते। जिसे यह बताशे निर्धारित संख्या से कम मिलते वह मानलो पास न होता। परन्तु ऐसा बहुत कम होता। यह परम्परा कई वर्षों तक जारी रही।

जिस वर्ष यह घटना घटित हुई उस वर्ष उत्सव सदा की भाँति पूरी शान शौकत के साथ शिक्षा केन्द्र के हॉल में हो रहा था। बताशे बँट रहे थे। नन्हे-नन्हे बच्चों का बारी-बारी उठना, साफ-सुथरे कपड़ों में सभ्यता से अपना-अपना भाग लेकर लौटना, बीच-बीच में तालियों का गूँजना एक अद्‌भुत समां था। सब लोग इस भोले-भाले और दिलचस्प दृश्य में खोये हुये थे।

इतने में किसी ने आकर चुपके से अध्यक्ष के कान में कोई बात कही। अध्यक्ष ने मुड़कर मिस फिलिप्स वारेन की तरफ देखा। वे तुरन्त उठ खड़ी हुईं और खबर लाने वाले के साथ कुछ बेचैनी के साथ चली गईं। अध्यक्ष के चेहरे पर अब भी मुस्कराहट खेल रही थी। लेकिन अनुभवी लोगों ने ताड़ लिया कि खबर कुछ अच्छी नहीं। जलसा जारी रहा। कुछ ही देर बाद मिस फिलिप्स वारेन का आदमी फिर आया। अबके कोई और अप्रिय सन्देश ले कर आया था। बस एक बार अध्यक्ष के चेहरे पर जरा सी उदासी छाई पर जल्द सम्भल गये। यह कमाल उन्हें सदा से रहा है। अच्छे-अच्छे इनके दिल की चोट को अनुभव नहीं कर सकते।

जलसा जारी रहा। भोले बच्चे अपनी परीक्षा का पारितोषिक बताशों के रूप में लेते रहे। जब सब बच्चे अपना पारितोषिक पा चुके तो उपकुलपति के भाषण की बारी आयी। इस बार उन्होंने कुछ

शब्द कहकर सभा विसर्जन किया। बच्चे परम्परा के विरुद्ध इस संक्षिप्तता को समझ भी न सके। हम बड़ी हैरानी में थे। उपकुलपति हॉल से उठ कर सीधे द्वार की तरफ चले। घर पास ही था, मिनटों में पहुँच गये। वहाँ डा० अंसारी और बहुत से लोग इकट्ठे थे। कुछ लोग प्रबन्ध में लगे थे। मालूम हुआ कि उपकुलपति की बच्ची (रिहाना) लोटा लेकर चौक में जा रही थी। ठोकर लगी, गिर पड़ी, बेहोश हो गई। यह प्रथम सूचना थी जो सभा में उपकुलपति के कानों तक पहुँची। फिर फिलिप्स वारेन ने जाकर इत्तिला भेजी कि यह सामयिक बेहोशी नहीं है। बच्ची हमेशा के लिए बेहोश हो चुकी है। अब बाप की मीठी और प्यारी आवाज भी इस नींद से उसे उठा न सकेगी। रिहाना बड़ी खूबसूरत, बड़ी प्यारी बच्ची थी बुलबुल हजार दास्ताँ थी। बात करती थी तो मुँह से फूल झड़ते थे। यह बुलबुल हजार दास्ताँ अब हमेशा के लिए खामोश हो चुकी थी।

उपकुलपति घर से वह दुःख भरा दृश्य देखकर निकले जो ईश्वर किसी पिता को न दिखाये। इनके नूरानी चेहरे और पलकों पर चन्द मोती ढुलकते तो नजर आये, मगर मुँह से उफ तक न की। यह दुःख किसी साधारण बाप का गम न था। यह उस बाप का गम था जो राह चलते गन्दे और खाक धूल में सने बच्चों को रोते न देख सकता था और अपने दूध जैसे उजले कपड़ों में भी गोद में उठा लेता और उसे हँसा कर ही छोड़ता।

दूसरों के आराम और खुशी के लिए अपना दुःख आप उठाना और उसकी आँच की तपन भी दूसरों तक न पहुँचने देना, यह इनके चरित्र का एक विशेष गुण है। इस समय वे उम्र की सात दहाइयाँ पूरी कर चुके हैं। अब वे आठवीं दहाई में चल रहे हैं। इन सात दहाइयों में न जाने ऐसी कितनी घटनाएँ सोई पड़ी हैं। दुनिया को इनकी खबर तक नहीं।

अक्सर पढ़ने वाले समझ गये होंगे कि यह उपकुलपति कौन हैं? जी हाँ, जामिया मिलिया के उपकुलपति और फिर अलीगढ़ विश्वविद्यालय के उपकुलपति फिर बिहार के गवर्नर, आजाद भारत के राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन साहब हैं! ●

डा० जाकिर हुसैन

प्रो० रशीद अहमद

किसी व्यक्ति को कठिनाई से ही इस बात का विश्वास होगा कि जब जाकिर साहब बीमार होते हैं, तो उस समय वे अधिक लिखते–पढ़ते और खाने–पीने का ध्यान रखते हैं। मिलने जाइए तो आपका वास्ता दोनों से होगा, यानी उन्होंने क्या पढ़ा है और आपको क्या खाना है। यहां तक तो गनीमत है । कठिनाई उस समय होती है, जब वे खाने के दौरान यह भी पूछ लेते हैं कि आपने क्या पढ़ा है । जाकिर साहब को धोका दिया जाय ऐसा करने में मुश्किल यह है कि वे धोके में आते नहीं, परन्तु आप इस धोके में रहते हैं कि वह आ गये । आप इनसे जो काम लेना चाहें, वह धोका दिये बिना अधिक आसानी से ले सकते हैं । अतएव वह व्यक्ति कोई पागल ही होगा, जो जाकिर साहब को धोका देने की कोशिश करेगा ।

खाने और बातचीत से निवृत्त होकर आप चलते हैं तो कभी कभी कुछ इस तरह का अहसास साथ ले जाते हैं कि खाना–पीना तो ठीक रहा, बात-चीत ठीक न रही । अतः ऐसे लोग जो अपने काम में कम ध्यान देते हैं या दिल नहीं लगाते, जाकिर साहब से मिलने का इरादा भी कम ही करते हैं ।

जाकिर साहब को किन बातों से दिलचस्पी है, इसका पता लगाना आसान है, क्योंकि उन्हें हर चीज से दिलचस्पी है। चीजों और घटनाओं में बच्चों का सा शौक और छानबीन का दिमाग रखते हैं। यह बात या इस तरह की बातें किसी मामूली आदमी के हिस्से में आ जाएं तो वह कहीं का न रहे । लेकिन, जाकिर साहब की तो बात ही और है । उन्हें जीवन भर मुश्किलों से ही काम लेना पड़ा । अच्छे और बड़े काम की कठिनाइयां उठाने और उठाते रहने से इन्सान की

अनेक अज्ञात योग्यताएं सामने आ जाती हैं। मैं समझता हूँ कि जाकिर साहब को जाकिर साहब बनाने में इन कठिनाइयों का बड़ा हाथ है, जिनमें उन्होंने अब तक काम किया है। जाकिर साहब में प्रकृति की ओर से आशा और साहस की शक्ति असाधारण लोगों से भी कुछ अधिक रही है। दूसरों को आशा और उत्साह दिलाना होता है तो उनमें यह योग्यता और भी बढ़ जाती है।

जाकिर साहब जिस युग में मुस्लिम यूनिवर्सिटी में वाइस चांसलर हो कर आये, उन दिनों देश के बटवारे के कारण अजीब सी हालत थी। जाकिर साहब के आते ही एक प्रातः ऐसा मालूम हुआ जैसे सारा वातावरण साफ, प्रकाशमय तथा मनोहर हो गया हो।

जाकिर साहब हिन्दुस्तानी पक्के गाने और पेंटिंग के बड़े कद्रदान हैं। जाकिर साहब की एक विशेषता जो इनकी श्रेणी के अन्य लोगों से इनको ऊंचा करती है यह है कि हर अवसर के लिए अपना भाषण वह खुद लिखेंगे। लेकिन खुद लिखने का यह उसूल या आदत जाकिर साहब के लिए मुसीबत से कम नहीं, क्योंकि इस तरह के अवसर जब कभी उपस्थित होते हैं, और प्रायः आते रहते हैं, तो वे इतने परेशान होते हैं कि आसपास के लोग आसानी से समझ जाते हैं कि उन्हें तकलीफ क्या है। अलीगढ़ वालों के बारे में यह बात कही जाती है कि जिस काम को वह सर्व श्रेष्ठ ढंग से करना चाहते हैं उसको आमतौर पर ग्यारहवें घंटे में शुरू करते हैं और बारहवें पर खत्म कर देते हैं। जहां तक भाषण लिखने का सम्बन्ध है, जाकिर साहब ने इस रिकार्ड को बेहतर बनाने की ओर कोशिश इस तरह की है कि काम बारहवें घंटे में शुरू किया जाय और इससे कुछ पहले पूर्ण कर दिया जाया।

दूसरी विशेषता यह है कि वे ऐसे विषय पर भी ऐसी जंची-तुली और खूबसूरत बात कहते हैं जिसको उन्होंने कभी पढ़ा भी न हो। इसका कारण यह है कि जाकिर साहब को हर बात से दिलचस्पी है।

जब जाकिर साहब यहां आये, तो यूनिवर्सिटी का बजट १३ लाख के लगभग था, और जब वे बिदा हुए तो शायद ५४ लाख तक पहुँच चुका था। इसमें वे व्यक्तिगत चन्दे शामिल नहीं है जो जाकिर साहब के दिनों में उनके असर के कारण मिले। ख्याल है कि यह रकम २० लाख तक पहुँचती है। उनका यह काम खास तौर पर इसलिए उल्लेखनीय है क्योंकि यह ऐसा समय था, जब लोगलाग चन्दे देते ही नही थे।

जाकिर साहब आमतौर पर हर योजना पर बड़े पैमाने पर सोचते हैं और उसको पूर्ण करने के लिए किसी विशेषज्ञ से परामर्श करते हैं। उनका कहना है कि बड़े पैमाने पर सोचने और विशेषज्ञों से परामर्श लेने में कंजूसी नहीं करनी चाहिए परन्तु योजना को पूर्ण करने में इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि हमारे साधन किस सीमा तक हमारा साथ दे सकेंगे।

जाकिर साहब का अध्ययन बड़ा व्यापक है। जब कभी जाकिर साहब से मुलाकात होती है तो यही मालूम हुआ कि वह पुस्तक या पत्रिका जो केवल एक रात पहले हम दोनों को मिली थी, जाकिर साहब की नजर से पूरी तरह गुजर चुकी थी और मैं उसे हाथ तक नहीं लगा पाया था। जाकिर साहब

एक मुद्दत से अपनी पसन्द के फारसी शेर एक कापी में दर्ज करते आ रहे हैं, जिनकी संख्या कई हजार तक पहुँच चुकी है। यह कापी हर लम्बे सफर में उनके साथ रहती है।

जाकिर साहब से मिलने और उनके साथ अधिक से अधिक समय व्यतीत करने का हर उस व्यक्ति का दिल चाहेगा जो उनसे आत्मीयता के साथ कभी मिल चुका हो। इसका कारण यह है कि वे मिलने वाले से इतने स्नेह से मिलते है और उसका इतना सम्मान करते हैं कि उसे यह अहसास हो जाता है कि उसका भी महत्व है। इसका कारण वही है जिसका जिक्र कर चुका हूँ, यानी जाकिर साहब का हर शख्स और चीज से दिलचस्पी लेने का शौक और उसको बेहतर बनाने का हौसला।

वे काफी समय यहां के वाइस चांसलर रहे लेकिन मेरे लिए वे वही जाकिर साहब रहे जो कभी कच्ची बैरक में थे या करौल बाग और जामेनगर में। उनके और भी ऐसे साथी होंगे जिन्होंने जाकिर साहब को शुरू से आखिर तक जाकिर साहब ही पाया। अपनी हैसियत बनाने या मनवाने में जाकिर साहब कभी किसी ओहदे या प्रचार के मोहताज नहीं थे और मुझे यकीन है कि वाइस चांसलर रहने पर भी भरोसा वे अपने जाकिर हुसैन होने पर ही करते रहे।

जाकिर साहब हर मौका और हर हाल में बड़े अच्छे साथी है। तबीयत और प्रशिक्षण की दृष्टि से अध्यापक हैं और रहना भी यही चाहते हैं। अध्यापक का सबसे ऊंचा दर्जा पैगम्बर है, लेकिन पैगम्बरों में प्रशासक कम ही रहे। खुदा ने इनसान को अच्छाई की तरफ लाने और बुलाने का काम पैगम्बरों के सुपुर्द किया है और बदी से बचाने के काम पर दूसरी तरह के लोगों को लगाया है।

जाकिर साहब नस्ल की दृष्टि से खरे पठान हैं, परन्तु पेशा अख्तियार किया अध्यापक का। नियति के इस व्यग्य का परिणाम क्या होगा, स्पष्ट है। इनकी कौम के एक शख्स के बारे में कहा जाता है कि गरीबी से तंग आकर वह घर की चारदीवारी में कैद हो गये और वहां से बीवी के ताने और रोज-रोज के फाकों से तंग आ कर भीख मांगने निकले। थोड़ी दूर गये थे, कुछ याद आया, वापस लौटे। बीवी ने पूछा "क्या हुआ?" खूंटी पर तलवार लटकी है उसे ला दो।" नेकबख्त ने कहा, "निकले तो ही भीख मांगने। तलवार का क्या करोगे?" फर्माया, "अगर कहीं झगड़ा हो गया, तो क्या तलवार लेने घर आऊंगा?" ●

कुछ स्मृतियां

प्रो० हबीब-उल रहमान

जाकिर साहब को मैं १९१३ से जानता हूं जब कि वे और मैं दोनों इस्लामिया हाई स्कूल इटावा में पढ़ते थे। जाकिर साहब को उनके पुराने कालेज के साथी उनको अपना गुरु भी कहते हैं और समझते भी हैं पर जाकिर साहब स्कूल के जमाने में भी अपने स्कूल के साथियों के गुरु थे। हर छात्र उनकी इज्जत करता था और उनके अनुसरण में गर्व महसूस करता था। जिस जमाने में जाकिर साहब और इस्लामिया स्कूल इटावा में पढ़ते थे, तुर्की और इटली में युद्ध चल रहा था। जाकिर साहब के कहने पर हम लोगों ने गोश्त खाना बन्द कर दिया ताकि जो रुपया बचे वह तुर्की की मदद को भेजा जा सके। उन्हें इस जमाने में भी अंग्रेजी अखबार पढ़ने का शौक था। पायनियर स्टैन्डर्ड पत्र समझा जाता था। इन्हें जल्द से जल्द समाचार जानने का इतना शौक रहता था कि पायनियर रोजाना खरीदने के लिए इटावा स्टेशन जाते। आगे वे होते, पीछे मैं, स्टेशन पर अखबार उतरते ही जाकिर साहब इसे हासिल करते और फिर वे और मैं भागे-भागे स्कूल के बोर्डिङ्ग हाउस में वापस आते। वहां छात्र हमारे इन्तजार में होते। हमारे वापस आते ही वे हमारे चारों तरफ घेरा बना लेते। जाकिर साहब इन्हें न केवल खबरों का अनुवाद करके सुनाते बल्कि उनकी टीका करते जाते।

हमारे हैडमास्टर अल्ताफ हुसैन प्रतिभाशाली छात्रों पर विशेष ध्यान रखते थे। इनमें जाकिर साहब सबसे ऊपर थे और ये छात्र अपना काफी समय हैडमास्टर साहब के मकान पर खर्च करते। मास्टर इस दिलचस्प अन्दाज से बातचीत करते कि इन समस्याओं के बारे में वे छात्र अच्छी तरह परिचित हो

जाते । इसका नतीजा यह भी हुआ कि इनमें अन्तर्राष्ट्रीय व राष्ट्रीय मुद्दों पर सही व उचित भावनाएं बन गईं । हिन्दुस्तान के बाहर दूसरे मुस्लिम देशों के प्रति गहरी हमदर्दी भी इससे प्राप्त हुई ।

इस हमदर्दी का प्रदर्शन विभिन्न रूपों में होता था । गोश्त छोड़ना और छात्रों को भी इसके लिए तैयार करना इसकी एक मामूली मिसाल है । शुक्र की नमाज के बाद जाकिर साहब नमाजियों से पीड़ित तुर्कों के लिए चन्दा वसूल करते । एक बार इटावा में एक मस्जिद में जाकिर साहब ने एक भाषण किया । इसके बाद उन्होंने अपनी बिना फुन्देन की तुर्की टोपी में चन्दा जमा करना शुरू किया । चन्दा वसूल करते वक्त उन्होंने कहा, लाइये हजरत, जो तांबे के पैसे इस तुर्की टोपी में डालेंगे, वे शीशे की गोली में बदल कर दुश्मन के सीने के पार होंगे । सफेद दाढ़ी वाले एक बुजुर्ग पर इस कथन का यह प्रभाव हुआ कि वे चीख-चीख कर रोने लगे और अपना पूरा बटुआ जाकिर साहब की टोपी में उलट दिया । हर बार अच्छी खासी रकम जमा होती । फिर जाकिर साहब डाकखाने जा कर उस रकम को मनीआर्डर से तुर्की को भेज देते ।

जाकिर साहब के व्यक्तित्व का मुझ पर इतना प्रभाव हुआ था कि शाम की नमाज के बाद दुआ करता कि मैं भी उन जैसा हो जाऊं । चन्द साल हुए मैंने इनसे एक दिन कहा कि जाकिर साहब, मैं इटावा इस्लामिया हाईस्कूल के शिक्षाकाल में यह प्रार्थना किया करता था कि मेरा दिमाग आप जैसा हो जाये । लेकिन प्रर्थना मंजूर नहीं हुई । वे फौरन हँस कर बोले, वाह, प्रर्थना तो मंजूर हो गई । खुदा ने आपको मुझ से भी अच्छा दिमाग दे दिया ।

जाकिर साहब स्कूल में मुझ से एक दर्जा ऊपर थे । मैं नवीं में, वे दसवीं में । इन्टर में उन्होंने भी साइन्स ली, मैंने भी । लेकिन बीमारी के कारण उन्होंने इन्टर पास करने के बाद एक साल के लिए पढ़ाई छोड़ दी । फिर बी० ए० में मैं और वे दोनों एक ही कक्षा में आ गये । हमारे विषय भी एक ही थे यानी अंग्रेजी साहित्य, दर्शन व अर्थशास्त्र । मैं इन तीन के अलावा अन्य कोई विषय न पढ़ता । परीक्षा में सफलता ही मेरा लक्ष्य था पर जाकिर साहब कोर्स की इन किताबों को कोई प्रमुखता न देते । लेकिन इनके अलावा विभिन्न विषयों पर खूब पढ़ते । परीक्षा मे कुछ दिन पहले मुझसे कहते कि मैंने पाठ्यक्रम की किताबों से जो कुछ नोट्स तयार किये हैं, वे उनको दे दूं । किसी और छात्र को मैं ये नोट्स हरगिज न देता था । जाकिर साहब को खुशी-खुशी दे देता । वे हफ्ते, दो हफ्ते में महत्वपूर्ण मुद्दे याद कर लेते और उनके दिमाग में पाठ्यक्रम का एक स्पष्ट स्वरूप रहता । तीसरे साल में उन्हें मेरे नोट्स पढ़ने का एक हफ्ता मिला । इस लिए इस साल की सालाना परीक्षा तो मैं उनसे ८ नम्बर ज्यादा पाकर प्रथम रहा जब कि वे दूसरी श्रेणी में रहे । पर चौथे साल में अर्थात् फाइनल में १५ दिन नोट्स पढ़ कर ही वे उन प्रमुख पांच छात्रों में आ गये जिन्हें इलाहाबाद यूनिवर्सिटी की स्कालरशिप मिली । मुझे भी यह गौरव मिला पर वे मुझ से ऊपर थे । उन्हें यूनिवर्सिटी का इकबाल मैडल भी मिला । मैं यह देखता रह गया ।

शिक्षा काल के बीसियों प्रसंग ऐसे हैं जिनसे उनके व्यक्तित्व की महानता व गहराई पर प्रकाश पड़ता है । असहयोग आन्दोलन के दौरान उन्होंने एम० ए० ओ० कालेज छोड़ दिया व जामिया मिलिया इस्लामिया में आ गये । फिर कुछ अर्से बाद वे जर्मनी चले गये ।

मुस्लिम यूनिवर्सिटी के वाइस चान्सलर होने पर जब मैं उन्हें मुबारकबाद देने गया तो बोले— आप लोगों ने वाइस चान्सलरी की बड़ी बड़ी जिम्मेदारियां मुझ पर छोड़ दी हैं, पर मेरी कामयाबी आप लोगों के सहयोग पर ही निर्भर है।

जाकिर साहब वाइस चान्सलरी के जमाने में चन्द सिद्धान्तों पर कठोरता से डटे रहे। प्रथम, जहां तक हो छात्र व शिक्षकों का सहयोग हासिल किया जाय। दूसरे, अन्य लोगों के दृष्टि विन्दु को समझने का यत्न किया जाये। तीसरे, जिनमें कोई दोष है उनके बारे में निराश न हुआ जाये बल्कि दोस्ती और मुहब्बत से उन्हें ठीक किया जाये। चौथे अपने साथियों व मातहतों का विश्वास किया जाये। पांचवें, जहां तक हो किसी को मानसिक रूप से पीड़ित न किया जाये।

इन सिद्धान्तों पर अमल की मुझे बहुत सी मिसालें मिली। एक दिन उनके साथ मैं उनके बाग में टहल रहा था कि मेरी नजर गुलाब के चन्द पौधों पर पड़ी जो अच्छे न थे। मैंने कहा, जाकिर साहब, इन गुलाबों को खुदवा कर फेंक दीजिये और बढ़िया किस्म के गुलाब लगवाइये। हँस कर बोले, भाई, मुझसे यहां के स्टाफ के बारे में भी लोग यही कहते हैं। मैं उनसे कहता हूँ कि जो लोग मौजूद हैं वे तो रहेंगे, इनसे अच्छे जो मिलेंगे उन्हें भी यूनिवर्सिटी में जगह मिलेगी।

कई मौकों पर मैंने कुछ लोगों के बारे में उनसे निराशा व अफसोस प्रकट किया। पर शुरू में मुझे उस समय बहुत धक्का लगता जब देखता कि जाकिर साहब पर मेरी शिकायत का कोई प्रभाव नही पड़ा है। पर कुछ समय बाद मैंने महसूस किया कि वे मानव प्रकृति में सुधार में मुझसे ज्यादा विश्वास रखते हैं। एक बार मुझ से कहने लगे, यदि आपको मेरे बारे में रिपोर्ट लिखने का मौका पड़े तो आप बहुत सख्त रिपोर्ट लिखेंगे।

उनके इस वाक्य पर कई दिन तक गौर करता रहा। जाकिर साहब और मेरे मध्य कुछ अवसरों पर मतवैभिन्य भी रहा जो क्षणिक दुख का भी कारण बना। पर उनके दिल की गहराइयो मे उनके पुराने साथियों के लिए हमेशा मुहब्बत व हमदर्दी का जज्बा रहा है। न सिर्फ उनके पुराने साथियों को बल्कि उन तमाम लोगों को जिन्हें उनके साथ काम करने का मौका मिला, हमेशा यह भरोसा रहा है कि अगर हमसे गलती होगी तो जाकिर साहब हमसे इतनी सख्ती से हिसाब नहीं मांगेंगे कि हमारी जिन्दगी दूभर हो जाये। ●

जब मैंने पुस्तक भेंट की

रामाशंकर मिश्र

महान् शिक्षा-शास्त्री तथा हमारे राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन का स्नेह पात्र बनने का शुभ्रअवसर मुझे २४ सितम्बर १९६४ को उस समय मिला जब मैंने उन्हें दिल्ली के प्रमुख साहित्यकारों, कवियों, लेखकों तथा प्रकाशकों की उपस्थिति में अपनी पुस्तक "नागरिक सुरक्षा" भेंट की।

चीनी आक्रमण के समय सम्पूर्ण राष्ट्र आतंकित था। ऐसी विषम स्थिति में मैंने नागरिकों की सुरक्षा से संबंधित कुछ साहित्य लिखने की योजना बनायी। मेरे मित्र श्री जयप्रकाश भारती तथा अन्य मित्रों की प्रेरणा से पुस्तक कुछ ही महीनों में तैयार हो गयी। पुस्तक चूंकि भावी आशंकाओं को ध्यान में रख कर लिखी गयी थी अतएव कई प्रकाशकों ने प्रकाशित करनी चाही। एक दिन यों ही मेरे मन में विचार उठा कि क्यों न इस पुस्तक की भूमिका के लिए शिक्षा जगत के मर्मज्ञ डा० जाकिर हुसैन से अनुरोध करूं।

अतः मैंने भूमिका हेतु एक पत्र प्रेषित कर दिया। मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब आदरणीय डा० साहब ने भूमिका लिखना स्वीकार कर लिया, पर साथ ही पुस्तक की पाण्डुलिपि भी देखनी चाही। पाण्डुलिपि भेजी गयी। कई बार मैंने पुस्तक के कुछ अंश पढ़ कर सुनाये। पाण्डुलिपि का अध्ययन उन्होंने अपनी रेल यात्रा तक में किया। लगभग दो महीने पश्चात् पुस्तक की भूमिका मुझे प्राप्त हो गयी। भूमिका पढ़ कर मेरा मन उल्लास से भर उठा। उल्लास का कारण मात्र पुस्तक की भूमिका ही नहीं थी, बल्कि यह भूमिका मेरे लिए प्रमाण-पत्र जैसी लगती है। भूमिका में डा० साहब ने लिखा है: "नागरिक सुरक्षा" नामक पुस्तक का मैंने अध्ययन किया। श्री मिश्र जी ने इस प्रकार की

पुस्तक लिख कर देश की सुरक्षा में हाथ बटाया है, जिसके लिए वह धन्यवाद के पात्र हैं।' ऐसी भूमिका पाकर मेरी पुस्तक में तो चार-चांद लग ही गये, मैं भी धन्य हो गया।

कुछ मित्रों ने सुझाव दिया कि पुस्तक महामहिम डा० जाकिर हुसैन को भेंट की जाये। मैं समझता था कि उन जैसे महान् व्यक्ति को मुझ अकिंचन के लिए समय देना कठिन होगा। वे अत्यधिक व्यस्त रहते हैं। फिर भी मैंने अपनी योजना पत्र में लिख भेजी। असम्भव सम्भव लगने लगा जब मुझे कुछ ही दिनों में उनके सचिव का पत्र मिला कि मुझे २४ सितम्बर ६४ को सायं ५ बजे से ५-१५ बजे तक का समय मिला है।

२४ सितम्बर भी आ गया। अपने कुछ मित्रों के साथ मैं मौलाना आजाद रोड, नयी दिल्ली स्थित उपराष्ट्रपति भवन में पहुँच गया। सचिव को अपने आने की सूचना दी। अभी मैं कार्यालय में बैठा ही था कि श्री क्षेमचन्द सुमन श्री भारती के साथ आते दिखायी दिये। भारती जी से ही ज्ञात हुआ कि समारोह की अध्यक्षता श्री सुमन ही करेंगे। धीरे-धीरे कई लेखक और कवि भी आ गए।

ठीक पांच बजे हम सबको एक विशाल कक्ष में ले जाया गया। निश्चित समय पर डा० साहब का आगमन हुआ। हम सब लोगों ने उठकर उनका स्वागत किया। सुमन जी ने सब का परिचय कराया। समारोह प्रारम्भ हुआ। संक्षेप में श्री क्षेमचन्द्र सुमन ने पुस्तक की उपयोगिता तथा लेखक की योजना बतायी। इसके उपरान्त मुझ से पुस्तक भेंट करने के लिए कहा गया। मेरे जीवन में ऐसा स्वर्णिम अवसर पहली बार ही आया था, सो कुछ क्षणों के लिए मैं किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर अपने प्रिय नेता को ही देखता रहा। पर तुरंत ही होश आया कि अरे, मुझे तो पुस्तक भेंट करनी है। और इस तरह "नागरिक सुरक्षा" की प्रति उठाकर उनके कर कमलों में समर्पित कर दी। उन्होंने पुस्तक पलट कर देखी और अचानक मुस्कराकर मेरी पीठ थपथपाने लगे। मैं पुनः भावविह्वल हो उठा। कारण, मेरे जीवन का यह स्मरणीय क्षण था जिसे मैं जीवन भर नहीं भुला सकूंगा। जब मेरी चेतना कुछ क्षणों पश्चात् लौटी तो मैंने सुना, डा० साहब मुझसे कह रहे थे, यह काम अच्छा किया। मुल्क जब मुसीबत के दौर में गुजर रहा है, ऐसी किताब की जरूरत थी। इसी तरह और किताबें लिखना।

हम सब पुन: कुर्सियों पर बैठ गये। श्री सुमन ने इस अवसर पर डा० साहब से दो शब्द बोलने का अनुरोध किया। डा० साहब मुस्कराते हुए उठे और अपना भाषण प्रारभ किया और लगभग १६ मिनट तक महत्वपूर्ण विषयों पर बोलते रहे। उनका संक्षिप्त भाषण इस प्रकार है:

आज सब से अधिक आवश्यकता इस बात की है कि देश का प्रत्येक नागरिक अपने को राष्ट्र का सच्चा प्रतिनिधि समझे। हर नागरिक को देश से एकात्मकता स्थापित कर लेनी चाहिए जिससे वह देश के दुख-सुख को ही अपना दुख-सुख समझने लगे। ऐसा करने से ही हमारी समस्याएं हल हो सकती हैं।"

समारोह इतना आकर्षक रहा कि स्वयं डा० साहब को भी समय का ध्यान न रहा। मुझे केवल १५ मिनट मिले थे परन्तु पूरे ४५ मिनट लग गये।

आज भी जब महामहिम डा० जाकिर हुसैन के बारे में बात करता हूँ तो उनकी सहृदयता और वात्सल्यपूर्ण व्यवहार की याद ताजा हो जाती है। ईश्वर करे वे चिरायु हों। ●

विज्ञान प्रेमी डा० जाकिर हुसैन

वेद मित्र

दो वर्ष पूर्व मलयेशिया विश्वविद्यालय ने डा० जाकिर हुसैन को सम्मानित उपाधि से अलंकृत करते हुए जो प्रशस्ति-पत्र भेंट किया था उसमें लिखा था—'आप के पुष्प चयन और विभिन्न किस्मों एवं विभिन्न रंगों में फूलों को एक दूसरे के साथ सजाने में, हम एक ऐसे मानव का दर्शन करते हैं, जो मनुष्य के जीवन और प्रकृति की गहराई से चिन्ता करता है और जिसके लिए जीवन सुन्दर और रोग तथा दुःख दैन्य से मुक्त होना चाहिए।'

पुष्पों की किस्मों, उनकी सुगन्धों और, रंगों आदि से लेकर विभिन्न पौधों की जातियों-प्रजातियों और बागवानी तक के बारे में उन्हें इतनी विस्तृत जानकारी है कि यदि कोई यह समझ ले कि वे राजनीति में आने से पूर्व एक वनस्पति शास्त्री रहे होंगे, तो कोई आश्चर्य नहीं। उन्हें कीमती पत्थरों को चाव से जमाते देख कर यह भ्रम होने लगता है कि वे एक भू-गर्भ शास्त्री हैं और पुरानी प्रस्तर प्रतिमाओं के प्रति उनका अनुराग उनके पुरातत्व वेत्ता होने का सन्देह उत्पन्न कर देता है। जिस व्यक्ति को इस देश के लोग एक बड़े शिक्षा शास्त्री के रूप में जानते हैं, वह अपने दैनिक व्यवहार में एक वनस्पति शास्त्री और पुरातत्व और भू-गर्भ शास्त्री का बड़ा सुन्दर सम्मिश्रण है।

यह सही है कि डा० जाकिर हुसैन एक वैज्ञानिक नहीं हैं और न ही उन्होंने किसी विश्वविद्यालय से विज्ञान की कोई उपाधि ली है, लेकिन उन्होंने अपने आप को इतना विज्ञानमय कर लिया है कि देख कर आश्चर्य होता है। शिक्षक के रूप में अपना जीवन प्रारम्भ करते समय उनका यह विश्वास था कि मानव मन का संस्कार सृजनात्मक शिक्षा

द्वारा ही संभव है। उनकी शिक्षा योजना में व्यक्ति को केन्द्रीय स्थान प्राप्त है। इसी कारण जब १९३७ में गांधी जी ने बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया तो उन्होंने उसकी बागडोर डा० जाकिर हुसैन को सौंपी। डाक्टर साहब ने कर्म-केन्द्रित शिक्षा के विचार को फैलाने के कार्य में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

बुनियादी शिक्षा और विज्ञान की शिक्षा का तरीका मूलभूत रूप से एक ही आधार पर खड़े हैं। जहाँ बुनियादी शिक्षा कर्म केन्द्रित है, वहाँ विज्ञान की शिक्षा प्रयोगों और व्यावहारिक प्रदर्शन द्वारा दी जाती है। डा० जाकिर हुसैन ने जामिया की शिक्षा प्रणाली तय करते समय इसी वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाया कि विद्यार्थी पुस्तकों के माध्यम से जितना ज्ञान हासिल करें, उससे अधिक वे प्रयोगों द्वारा सीखें। विज्ञान इतर विषयों को प्रयोगों और व्यावहारिक प्रदर्शनों द्वारा पढ़ाए जाने की परिपाटी डाल कर उन्होंने विज्ञान के व्यावहारिक पक्ष का शिक्षा के क्षेत्र में समावेश कर दिखाया। उनका यह प्रयोग इतना सफल रहा कि जब भी शिक्षा का स्तर सुधारने तथा विद्यार्थियों में स्वावलम्बन की भावना भरने की बात उठती है, तो शिक्षा शास्त्रियों का ध्यान डा० जाकिर हुसैन के तरीके पर अवश्य जाता है।

विज्ञान और धर्म के बीच की खाई

प्रायः धर्म को विज्ञान विरोधी माना जाता है और कहा जाता है कि इन दोनों में तालमेल नहीं बैठ सकता। डाक्टर साहब इस मान्यता के विरुद्ध हैं। उनका कहना है कि धर्म और विज्ञान के उद्देश्यों के अन्तर को समन्वय का सूत्र निकालने पर समाप्त किया जा सकता है। उन्होंने गांधी शताब्दी समारोह के सिलसिले में हुई एक अन्तर्राष्ट्रीय गोष्ठी में कहा 'अखण्ड विश्व-समाज के लक्ष्य तक पहुँचने के लिए रूढ़ि, धार्मिक विधानों और रस्मी पूजा के दायरे से आगे देखना चाहिए।' उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि विज्ञान में धर्म का और धर्म में विज्ञान का पुट दिया जाना जरूरी है। उन्होंने कहा—'यदि विज्ञान और धर्म के बीच की खाई को नहीं पाटा गया तो विज्ञान थोथा साबित होगा और धर्म में विज्ञान की भावना का समावेश हुए बिना धर्म अंधविश्वास बन कर रह जायगा।'

विज्ञान को धर्म की भावना से अनुप्राणित करना इसलिए भी जरूरी है कि विज्ञान के द्वारा प्राप्त शक्ति को मानव संहार और लोक द्वेष के साधन के रूप में प्रयोग किया जाने लगा है। आज जब कि संसार में करोड़ों लोगों को भूख के भयानक पंजे से छुड़ाने, रोगों से लड़ने की शक्ति देने और अज्ञान को भगाने का काम पूरा नहीं हो सका है, अनेक देशों में चोटी के वैज्ञानिक राजनीतिज्ञों के इशारों पर नर संहारक अस्त्रों के निर्माण में लगे हुए हैं। डा० जाकिर हुसैन का विचार है कि यदि विज्ञान पर नैतिक भावना और धर्म का कुछ अंकुश हो, तो शस्त्रों की होड़ और हविस रुक सकती है।

लेकिन कोरी नैतिकता से भी समस्याएं नहीं सुलझाई जा सकतीं। रायल सोसाइटी के अध्यक्ष डा० पी० एम० एस० ब्लैकेट ने पिछली बार नेहरू स्मृति भाषणमाला के दौरान कहा था—'वर्तमान गरीबी इतनी अधिक है और तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या की समस्याएं सुलझाने का काम इतना जटिल है कि आर्थिक प्रगति ही अपने आप में सब कुछ नहीं है, लेकिन भारत की वर्तमान स्थिति में तो यही सबसे महत्वपूर्ण है।'

जब तक जान सस्ती है

ऐसी स्थिति में सबसे बड़ा प्रश्न यह उठता है कि आर्थिक प्रगति की कैसे जाए? डा० जाकिर हुसैन का दृढ़ विश्वास है कि हम विज्ञान को अपना कर ही देश की प्रगति कर सकते हैं। गुजरात

विद्यापीठ, अहमदाबाद में दीक्षान्त भाषण करते हुए उन्होंने कहा—'जब तक हमारे देश में करोड़ों लोगों को पेट भर खाना नहीं मिलता, दुख-दर्द में दवा नसीब नहीं होती, जब तक लोगों की जान मक्खियों और भुनगों जैसी सस्ती है और करोड़ों लोग अनपढ़ हैं और करोडों बच्चों को शिक्षा नहीं मिल पाती है, तब तक अंग्रेजी साम्राज्य से मुक्ति पा जाना काफी नहीं है। हमें इस देश के पहाड़ काटने हैं, समुद्र पाटने हैं और खानें खोदनी हैं, नदिया मोड़नी हैं, रेगिस्तानों को गुलजार बनाना है, जहालत को भगाना है, गांधी जी की आकांक्षाओं का देश बनाना है, और यह सब विज्ञान के द्वारा ही होगा।'

इंजीनियरों और वैज्ञानिकों के लिए चुनौती

यह तो ठीक है कि आर्थिक विकास के लिए विज्ञान का सहारा लिया जाए, लेकिन उसका स्वरूप क्या हो ? यह एक बड़ा प्रश्न है। केवल मूलभूत अनुसंधानों के बल पर आर्थिक प्रगति नहीं की जा सकती। आर्थिक उन्नति के लिए प्राविधिक ज्ञान और शिल्प के विकास की जरूरत है। ऐसा विज्ञान जो हमारे उद्योगों को ठोस आधार पर खड़ा कर सके, कृषि जन्य पदार्थों का उत्पादन बढ़ा सके और देश में कम मूल्य पर तथा यथासम्भव देशी साधनों से बढ़िया माल बनाना संभव हो, वही देश को आगे बढ़ाने में सहायक होगा। इसी कारण अब इंजीनियरी, शिल्प और उद्योगों पर बहुत बल दिया जा रहा है।

डा० जाकिर हुसैन मानते हैं कि तकनीकी जानकारों के सहयोग से देश का ढांचा नहीं बदला जा सकता। यह तभी सम्भव है जब देश के वैज्ञानिक और इन्जीनियर अपने को समाज से अलग विशिष्ट वर्ग का न मानकर सेवा भाव अपनाएं। उन्होंने अपने ये विचार इंजीनियरों की संस्था के कलकत्ता स्थिति मुख्यालय में भाषण के दौरान प्रकट किए। उन्होंने कहा—'अपनी गरीबी और पिछड़ेपन के बावजूद हमारी जनता अपनी स्थिति से असंतुष्ट है। इस असंतोष का रचनात्मक ढंग से उपयोग होना चाहिए। भारतीय इंजीनियरों और वैज्ञानिकों के लिए यह एक चुनौती है और साथ ही एक अवसर भी। इंजीनियर लोग आर्थिक स्वतंत्रता तथा सामाजिक न्याय के अग्रदूत हैं। उन्हें न केवल अपने व्यवसाय में दक्ष होना चाहिए बल्कि उनमें जनगण की सेवा का दृढ़ संकल्प होना चाहिए।

डा० जाकिर हुसैन का यह मत है कि विज्ञान युग की समस्याओं का हल ढूंढने के लिए होना चाहिए। पिछले कुछ वर्षों से देश में अन्न की कमी अनुभव की जा रही है। इस कमी को पूरा करने के लिए कृषि के क्षेत्र में बहुत सी खोजें की गईं और खाद्योत्पादन बढ़ाने के प्रयत्न किए गए हैं। लेकिन फिर भी अनेक क्षेत्रों में कृषि सम्बन्धी समस्याओं के प्रति उदासीनता बरती गई। अपने उपराष्ट्रपति पद के काल में एक बार उन्हें दिल्ली में इंजीनियरों की एक सभा में आमंत्रित किया गया। उन्होंने इंजीनियरों का ध्यान इस तथ्य की ओर आकृष्ट किया कि उन के संस्थान में कृषि इंजीनियरी विभाग नहीं है। उनके सुझाव पर जल्द ही कृषि इंजीनियर अनुभाग की रचना की गई और बहुत से इंजीनियरी कालेजों में कृषि इंजीनियरी पढ़ाने की व्यवस्था भी की गई। इस घटना से प्रकट है कि वे युग की गति के प्रति कितने सचेष्ट हैं और एक वैज्ञानिक न होते हुए भी वैज्ञानिक समस्याओं के लिए उनकी पकड़ कितनी गहरी है।

इस समय देश के विकास के लिए रूढ़िवादिता के स्थान पर विज्ञान और शिल्प के लिए अनुकूल वातावरण स्थापित करने की बहुत आवश्यकता है। डा० जाकिर हुसैन जैसे विज्ञान प्रेमी के राष्ट्रपति होते हुए देश में विज्ञान की जड़ें मजबूत होंगी और देश प्रगति के पथ पर आगे बढ़ेगा। देश में सभी वैज्ञानिक और शिल्पज्ञ उनका अभिनन्दन करते हैं। ●

जाकिर साहब

आसिफा मजीब

बड़े लोगों में प्रारम्भ में ही ऐसी बातें होती हैं जो साधारण मनुष्यों में नहीं होती हैं। यह प्रसिद्ध कहावत मशहूर है "बच्चे के पाँव पालने में ही पहचाने जाते हैं या होनहार बिरवा के चिकने-चिकने पात" लेनिक हम आप इनसे बहुत कुछ सीख कर इनके पद चिन्हों पर चलकर अपनी आदतें और अपने व्यवहार को सुन्दर बना सकते हैं। डा० जाकिर हुसैन को ईश्वर ने तमाम अच्छी बातों से मालामाल किया है। विद्यार्थी काल में ही इनकी योग्यता प्रकट होने लगी थी। वे बड़े तीव्र बुद्धि थे। भाषण अच्छा देते थे। मजे की और मन लुभावनी बातें करते थे। परिश्रम से काम करने का चाव और लगन भी थी।

उन्हें मित्र भी बड़े अच्छे मिले थे। इन सबके दिलों में जाकिर साहब का मान था। जाकिर साहब ने सबके दिल मोह लिए थे। तमाम स्थितियों और घटनाओं के साथ एक कली से फूल बनने तक इनकी अच्छाइयों और चरित्र का रंग रूप निखरता रहा, जिसकी खुशबू और महक अब पूरे देश में फैली हुई है।

उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में बड़ा हिस्सा लिया है। इसमें जान डाली, इसमें प्राण फूंके। हर क्षेत्र में जहां कदम रखा बड़े-बड़े काम अच्छाई से पूरे किये। राष्ट्रीय सेवा में तन मन से लगे रहे और अब राष्ट्र ने उन्हें राष्ट्रपति चुना तो यह अच्छाई और उच्च गुणों की परख का ज्वलन्त प्रमाण है।

बहुत से लोगों ने जिन्हें इनके साथ रहने, काम करने और मिलने का सम्मान प्राप्त हुआ है, उनसे चरित्र की और काम की अच्छी अच्छी बातें सीखी और बरतीं।

जामिया मिलिया इनके चरित्र और व्यक्तित्व का एक उदाहरण कही जा सकती है

जहाँ उन्होंने जीवन का एक बहुत बड़ा भाग व्यतीत किया है। यहाँ उनके पद चिन्ह स्थान-स्थान पर मिलते हैं। उनके बहुत से साथियों और साथ मिलकर काम करने वालों के रंग-ढंग और कामों में भी इसकी झलक मिलती है।

शौक और परिश्रम से मन लगा कर काम करने को वे बहुत पसंन्द करते थे। साहस और उत्साह बढ़ाते। पाषाण को भी मोम बना देते। वे कहते, काम सभी अच्छे होते हैं। जो काम अच्छी तरह से किया जाय और जो काम अच्छे हाथों द्वारा किया जाय वह फलता-फूलता है और खराब हाथों में जाकर बिगड़ जाता है तथा बुरा कहलाता है।

जामिया में उन्होंने बहुत कठिन जीवन व्यतीत किया। वह कठिन दौर था। पैसा दिखता नहीं था। साधारणतया सोचा जाता है कि पैसे के बिना कुछ नहीं हो सकता है। लेकिन बिना पैसे के जीवन में सुन्दरता और आनन्द पैदा करने का उदाहरण ऐसा कहीं नहीं मिलेगा जैसा उन्होंने उपस्थित किया।

अनगिनत कार्यों और व्यस्तता के कारण वे अपने घर की ओर बहुत कम ध्यान दे पाते। मगर उनके घर की हर चीज में उनकी आदत और उनकी सभ्यता का रंग झलकता था। पुस्तकों चित्रों और साधारण बरतने की चीजों में कोई न कोई अच्छाई होती। हर चीज साफ सुथरी और चन्दन-सी, रसोई घर शीशमहल लगता कि देखकर जी प्रसन्न हो जाये।

वे घर वालों का इस ओर विशेष ध्यान दिलाते। उनकी बेगम साहिबा को जानवर पालने का बड़ा शौक था। उन्होंने एक बकरी पाली जिसका नाम मटरिया था। एक दिन वह चरने गई तो वापस नहीं आई। बेगम साहिबा ने इसके दुःख में भोजन नहीं किया। रात हो गई। आदमी लालटेन लेकर तलाश करने निकले। मटरिया एक गड्ढे में मिली। जाकिर साहब कहते—मेरी स्त्री और बकरी में सुबह बहुत बातें होती हैं। वह उधर से बोलती है। यह इधर से जवाब देती हैं। इनका चाव देखकर जाकिर साहब ने एक बहुत सुन्दर-सी बकरी मंगवा दी। सफेद रंग और लाल ठप्पे। बड़ा सुन्दर चित्रण था। उस समय में आप इनके घर जाते तो वह अच्छा खासा चिड़िया घर का एक नमूना मालूम होता। एक ओर पिंजड़े में पहाड़ी तोता टांय-टांय करता और सबकी बोलियां की नकलें उतारता। कहीं सुन्दर बिल्लियाँ इठलाती होतीं। मुर्गियां सब एक रंग, एक वंश की, सफेद सफेद; परदे पर मुर्गे की तस्वीर बनी हुई।

भैंस के भाग्य भी यहां आकर जाग गये। उसका दालान ऐसा साफ, प्रकाशमय कि आदमी देखकर दंग रह जाये और फिर हर जगह सफाई, हर चीज उजली। दीवार पर अच्छे रंगदार फूलों की बेलें बनी हुई। गमलों में फूल—पौधे बहार दे रहे हैं।

एक दिन बकरी तसले में दाना खा रही थी। कुछ घास और पत्तियां सामने पड़ी थीं। जाकिर साहब ने बेगम साहिबा से फरमाया, "आप बकरी को किस प्रकार से खाना देती हैं? घास जमीन पर पड़ी है। यह ढंग ठीक नहीं है। एक अच्छी सी चटाई बिछा कर इसे बिठाइये। फिर लोटे में पानी ले कर इसका हाथ-मुंह धोइये, तौलिये से पौंछिये और फिर खाना सजा कर इसके सामने रखिये। एक बर्तन में दाना हो, एक में घास और बड़े प्याले में साफ पानी। इस प्रकार भोजन कराना चाहिये। सब

28707

हँसने लगे। यह बात लतीफे के तौर पर हंसी में उड़ा दी गई। मगर आप सोचें तो इसमें गहराई है। इसकी तह में आप को एक पाठ मिलता है : हर काम छोटा हो या बड़ा, अच्छी तरह, ढंग से करने का।

जहां तक उनके स्वयं का सम्बन्ध है, वे सदा बेपरवाह रहे। हर नियम का पालन करने से आजाद, न भोजन का समय ठीक, न सोने का। समय का कोई हिसाब नहीं। काम में लगे रहे तो घण्टों लगे रहे। दिन को दिन न समझा और न रात को रात। खाना-पीना, आराम सब त्याग दिया। यदि एक ओर व्यस्तता में सारे दिन खाने का ध्यान न आता तो दूसरी ओर लिहाज में एक समय में दो जगह दावत स्वीकार कर लेते और दूसरों की खुशी पूरी हो जाती। आवश्यकता होती तो जून में चिलचिलाती धूप में तांगे पर चले जाते। अक्सर बड़े आदमी समझते हैं कि अपने से नीची श्रेणी के लोगों और गरीबों से मिलने और बात करने से शान घट जायेगी, अतः वे ऐसे लोगों से बहुत दूर रहते हैं। मगर जाकिर साहब का ढंग दूसरा है। वे गरीबों से भी झुक कर मिलते हैं। उनके दुःख-सुख में शामिल होते हैं। छोटे-बड़े, अमीर-गरीब सब से इस तरह पेश आते हैं कि दिलों में घर कर लेते हैं।

जामिया में इनके एक नवयुवक अनुचर को इकबाल और गालिब के शेरों को पढ़ने का चाव हुआ। जब जाकिर साहब रात को थक कर सोने के लिए लेटते तो वह शेरों का अर्थ पूछता। लेकिन जाकिर साहब उसे निराश नहीं करते।

वे जब अलीगढ़ महाविद्यालय के वाइस चान्सलर थे तो वहां से कभी दिल्ली अपने घर आने पर मेरे यहां की एक वृद्धा स्त्री उनके आने की खबर सुनते ही तड़प उठती। "जाकिर भइया आये हैं, देख आऊं।" वह लठिया टेकती हुई उनके यहां पहुँच जाती। मैंने एक बार, जब उसकी साँस फूल रही थी, कहा, "तुम्हारे ऊपर कितना प्रेम का भूत सवार है। चाहे चला न जाये, जाओगी जरूर।" मौहब्बत की गहराई से आवाज आई, "बहुत दिनन (दिनों से) देख्यो (देखा), तनक (जरा) देख लूं। ना जाने मरूं कि जीऊं।"

एक बार वह बीमार पड़ी थी। जाकिर साहब खुद उसे देखने पधारे और उसकी कोठरी में उसके पास बैठे बातें करते रहे। सारा हाल पूछा।

ऐसी ही कितनी बातें हैं जो अनगिनत तारों की तरह एक झुरमुट में झिलमिलाती है। इनका जीवन एक बड़ी चौड़ी नदी की भांति नजर आता है। लहरें मारती हुई नदी। इन लहरों में नरमी है, बहाव है, तड़फ है। कभी सन्तोष, जब्त और आडिगता का ठहराव, कभी तूफान के थपेड़े, कभी मुस्कराहटें। ●

हमारे राष्ट्रपति

सलमा सिद्दीकी

डा० जाकिर हुसैन के व्यक्तित्व पर लेखनी उठाते हुए कुछ विचित्र सा लग रहा है। वे हर प्रकार से इतने बड़े हैं कि उनके विषय में कुछ लिखने में बड़ी झिझक-सी अनुभव हो रही है। लेकिन यह बात भी तो हमें हमारे राष्ट्रपति ने ही बताई है कि "सच्ची और खरी बात कहने में डरना नहीं चाहिए।" इन शब्दों से साहस बढ़ा तो मैंने भी उनके महान् और आकर्षक व्यक्तित्व पर कलम उठाने का विचार कर ही लिया है।

जाकिर साहब के शैक्षणिक और सामाजिक जीवन के विषय में तो मैं नाम मात्र को कुछ लिख सकूँगी। एक नेता और एक शिक्षा विशेषज्ञ के रूप में इनको जानने वाले तो पग-पग पर मिलेंगे। मैं तो इनके विषय में इतना ही बताऊँगी जितना मैं जानती हूँ।

मैंने शायद अच्छी तरह से होश भी नहीं सम्भाला था जब से मैं जाकिर साहब को देखती आई हूँ। हमारे कुटुम्ब में इनका जिक्र सदा कुटुम्ब के प्रिय और सम्मानित व्यक्ति की तरह होता रहा है और मैं सत्यता पूर्वक कह सकती हूँ कि जाकिर साहब के स्नेह और मान की भावनाएं मेरी घुट्टी में शामिल हैं। जिस प्रेम और सम्मान का बीज मेरे जन्म से पूर्व ही मेरे घर के आँगन में बोया जा चुका हो, उस शक्तिशाली घने और छायादार पेड़ की छाया तो मेरी यादों के घरौंदों में अवश्य झिलमिलायेगी। इस वक्त यादों की ही चन्द झलकियाँ उपस्थित करूंगी। ये झलकियाँ और यादें निजी और घरेलू होने के अतिरिक्त अपना अलग महत्व रखती हैं। लेकिन इन्हीं रोजमर्रा की छोटी-छोटी बातों से मानवता के बड़े-बड़े दीपक प्रकाश देते हैं।

जाकिर साहब तबीयत से बहुत सफाई पसन्द हैं। चाहे घर की या शरीर की सफाई

हो, चाहे दिल की, वे तन और मन दोनों की सफाई को मानते हैं। मुझे वह समय याद है जब जामिया करौल बाग में थी और जाकिर साहब करौल बाग के एक छोटे से मकान में निवास करते थे। उस घर और वातावरण में जो अतिथि सत्कार और सहृदयता की छटा छा रही थी वह आज इतना समय व्यतीत हो जाने के पश्चात् भी अच्छी तरह याद है। जाकिर साहब तीव्र बुद्धि और हृदय की सफाई के साथ दृष्टि की सुन्दरता भी चाहते हैं। कहते हैं, मुगल सम्राटों को बगीचे से बड़ी दिलचस्पी थी और वे जहाँ-भी जाते थे बाग लगवाते थे। इसी सम्बन्ध में अलीगढ़ महाविद्यालय में जाकिर साहब का वायसचांसलरी का समय जहाँगीर का काल कहलाता है। उन्होंने महाविद्यालय के क्षेत्र की ऊँचो-नीची ऊबड़-खाबड़ सड़कों को बराबर करवाया, ट्यूब वैल लगवाये, हरे भरे मैदान बनवाये। बोगन बेलिया की हरी-भरी और रंगीन बेलों से, गुलाब के सुन्दर फूलों से और विभिन्न प्रकार के अन्य रंग-बिरंगें फूल-पौधों से इस छोटी-सी शैक्षणिक बस्ती को एक बगीचा बना दिया।

जाकिर साहब को बच्चों से अत्यधिक प्रेम है। छोटे बच्चों से इनका प्रेम असीमित है। बच्चे, चाहे वे इनकी प्रिय पुत्रियों सईदा और सफिया के होशियार और खूबसूरत बच्चे पवियाँ, टीपू, राबिया और नीलोफर हों, चाहे वे बच्चे हों जिनके माँ-बाप मर गये हों, इनका प्रेम और दया तो सब पर समान और अत्यधिक होगी। सद्दीक और बशोरी के जितने और जैसे लाड़ चचो (बेगम साहिबा) और जाकिर साहब ने किये हैं प्राय: लोग उतना अपनी संतान का भी नहीं करते।

स्कूल के जमाने में मैं और मेरी छोटी बहन अजरा अक्सर ग्रीष्म अवकाश में दिल्ली आते रहते थे और छुट्टी का बड़ा हिस्सा जाकिर साहब के घर पर इनकी बेटियों, सईदा और सफिया, के साथ गुजारते थे। सईदा से मेरी मित्रता इतनी पुरानी है कि याद भी नहीं आता है कि इसका प्रारम्भ कब और कैसे हुआ था। सईदा अक्सर जाकिर साहब के साथ अलीगढ़ आती थी। और वह जमाना हम लोगों के लिए मानो ईद और शब्बेरात की तरह होता। अक्सर देहली से सईदा के साथ या किसी दूसरे काम से आका जान (स्व० फिलिप्स बोरन) भी अलीगढ़ आती थीं। बचपन की यादों में इन नेक दिल महिला का चेहरा भी अक्सर याद आता है। वे एक नेक जर्मन महिला थीं और जाकिर साहब ने इनको जामिया में बच्चों की देख भाल और शिक्षा के लिए नियुक्त किया था। वे महिला अपने कार्य में कुछ इस प्रकार रुचि लेती थीं कि जामिया के बच्चों के अतिरिक्त भी जहां कहीं भी उनको बच्चे नजर आ जाते, वे तुरन्त उनकी देखभाल में लग जाती थीं। जिन दिनों वे अलीगढ़ आ जातीं वह हम लोगों के लिए बड़ी पाबन्दी का होता था। हमें तो उस समय में वे खेल रुचिकर थे जिनका बच्चों की नई शिक्षा-दीक्षा में कहीं प्रवेश नहीं था। हमें तो मिट्टी में खेलना पसन्द था, आम और जामुन के पेड़ों के नीचे पड़े हुए कच्चे-कच्चे फल खाना अच्छा लगता था, और रंग-बिरंगे वस्त्रों को पहनने का चाव था। आका जान हमारी इस प्रकार की रुचि का खुल्लम-खुल्ला विरोध तो नहीं करती थीं, लेकिन वे हमारी रुचि को मोड़ देना चाहती थीं। वे हमारे लिए जामिया मिलिया की चुनी हुई पुस्तकें लातीं और पढ़ने का अनुरोध करतीं। उसी समय में मैने पहली बार छोटी-छोटी पुस्तकें पढ़ीं, जिनमें से अबो खाँ को बकरी, मुर्गी अजमेर चली और पूरी जो कढ़ाई से निकल भागी मुझे अब तक याद हैं।

आका जान ने तयामे तालीम के नियमानुसार पढ़ने पर जोर दिया और अलीगढ़ में बच्चों के लिए शुरूआत की। उन्हें सईदा और सफिया से बड़ा प्रेम था लेकिन उनकी इच्छा थी कि

सईदा और सफिया रेशमी कपड़े पहनना बिल्कुल छोड़ द । अक्सर वे उन्हें देहली में खादी पहनने को उत्साहित किया करतीं । खुद जाकिर साहब भी अपने घर वालों को खादी पहने हुए देखना चाहते थे। मुझे वर्षों पुरानी वह ईद याद है जब जाकिर साहब ने सईदा के रेशमी वस्त्रों को जला दिया था ताकि वह ईद के दिन खादी के कपड़े पहन सके ।

मैंने इस जमाने में भी जाकिर साहब को चैन और शान्ति के साथ घर पर रहते नहीं देखा। कहीं से थके हारे आते और कहीं न कहीं जाने को तैयार रहते। साफ-सुथरे खादी के कपड़े पहने जब वे घर में दाखिल होते तो मालूम होता कि साफ-सुथरी हवा के झोंके का घर में प्रवेश हुआ है। इनके आते ही दोनों बच्चियां खिल उठतीं और उनके आस-पास मँडराने लगतीं जैसे फूल के गिर्द तितलियाँ मँडराती हैं ।

जाकिर साहब को अच्छे और स्वादिष्ट भोजन का बड़ा शौक है। चिल्ले के जाड़ों में इनके घर पर प्रातः के नाश्ते में खिचड़ी और उम्दा घी खाने का एक जमाने में दस्तूर था । वह खिचड़ी चची अपनी खास निगरानी में पकवाती थीं और वह बड़े प्रबन्ध से खाई जाती थी। उस खिचड़ी का आनन्द अब तक याद है। उस समय से जाकिर साहब को डाक्टरों की राय के अनुसार भोजन करना पड़ता, इसलिए वे अपनी रुचि के तरह-तरह के भोजन नहीं कर पाते । लेकिन डाक्टरों और घर वालों की जरा सी भी पलक झपकती, तो वे बदपरहेजी पर तुरन्त उतारू हो जाते । एक जमाने में इनको खाने पीने की चीजें डाक्टरों की सलाह के अनुसार नाप-तोल कर दी जाती थीं। वह जमाना डा० साहब ने बड़े कष्ट के साथ व्यतीत किया। वे परहेज से बड़े लाचार रहते थे। एक बार जब इसी तरह की बीमारी और परहेज के दौरान में सईदा इनकी मिजाज पुर्सी के लिए गईं और उन्होंने पूछा कि आपकी तबीयत कैसी है ? तो जाकिर साहब कुछ दुःखी और मुरझाये से बोले "अरे भई, तबीयत तो ठीक है। मुझ बुढ़िया को पेट की मार है।"

इसी शाम का जिक्र है, कुछ लोग इनकी तबीयत पूछने आये। चची ने मेहमानों के लिए दूसरे सामान के साथ कुछ मिर्च-मसाले वाले पकौडे का भी इन्तजाम कर दिया । मेहमानों को चाय में और चची को आव–भगत में व्यस्त देखकर जाकिर साहब ने चची के हाथ मे एक पकौड़ा झपट कर अपने मुंह में रख लिया। मेहमान और घर वाले बहुत हैरान और परेशान थे, कि अब क्या होगा। अंग्रेज नर्स ने यह दृश्य देखकर एक सुरीली चीख मारी और झपट कर डा० साहब के मुंह में अपनी अँगुलियाँ डाल कर घायल पकौड़े को बाहर निकाल दिया।

इस बीमारी से स्वस्थ होने के पश्चात् वे एक आवश्यक मीटिंग में शामिल होने के लिए दिल्ली गये। वहाँ जामिया नगर में सईदा ने उनके लिए डाक्टर को अनुमति के अनुसार खाना तैयार किया था। खा–पीकर और काम खत्म करके जाकिर साहब अलीगढ़ के लिये रवाना हुए। मोटर इनका ड्राइवर बाबू खाँ चला रहा था। आगे की कहानी इसी की जबानी सुनने को मिली है।

गाड़ी ओखले से चली और नई दिल्ली से गुजरती हुई जब दरियागंज पहुँची तो जाकिर साहब ने पहलू बदला और ड्राइवर से बोले, "भई बाबू खां, अब तो घर चल रहे हैं न हम लोग ?" "जी साहब।" "बच्चों का घर है—हमें खाली हाथ नहीं जाना चाहिये, बाबू खां।" "साहब रात हो गई, अब तो दूकानें

भी बन्द हो गई हैं।" "मगर खाने पीने को तो दूकानें खुली होंगी ?" "जी हाँ साहब, खाने पीने की दूकानें तो देर तक खुली रहती हैं।" "सुनते हैं—यहां दरियागंज में कोई रेस्टोरेन्ट है, वहां तली हुई मुर्गी और मछली मिलती है।" "वह तो बिल्कुल सामने ही है, साहब।" "जरा वहां गाड़ी रोक दो, बाबू खाँ"

गाड़ी रोक दी गई। जाकिर साहब ने बाबू खाँ से कहा—"वहां जा कर जरा एक तला हुआ मुर्ग और एक तली मछली पैक करा लो। बच्चों के लिए ये चीजें साथ जायेंगी।" बाबू खाँ ने सम्भाल कर पैकट तैयार करवाया, आगे की सीट पर रखा और गाड़ी स्टार्ट की। दो तीन मिनट के बाद जाकिर साहब बोले "भई बाबू खाँ, आगे जगह न हो तो ये सब चीजें पीछे रख दो।" "अरे नहीं साहब, यहां तो जगह ही जगह है।" "फिर भी यहाँ देखरेख अच्छी हो जायेगी न। पीछे रख दोगे तो तो मैं देखता रहूँगा।" बाबू खां ने गाड़ी रोक कर खाने की चीजें पीछे रख दीं। जाकिर साहब ने बगैर किसी हिच–किचाहट के खाने की तरफ देखा और फिर ड्राइवर से बोले "मेरी तरफ क्या देख रहे हो ? क्या कुछ सन्देह है तुम्हें ?" "नहीं साहब, तोबा !" गाड़ी चली तो पीछे से बाबू खां को कागज की खड़खड़ाहट सुनाई दी। उसने कहा "साहब ?"—जाकिर साहब बोले, "भई, जरा चख रहा हूँ कैसी चीज है। बच्चों के लिए ऐसी–वैसी चीज नहीं ले जाना चाहिये।" "मगर साहब" "अरे भई कुछ नहीं, जरा सा मसाला चखा है। अच्छा बनाते हैं ये लोग।" आधा रास्ता समाप्त होते-होते जाकिर साहब ने मुर्ग और मछली का मसाला और स्वाद चख कर सब कुछ खत्म कर दिया। अलीगढ़ उतरते समय बाबू खां से कहा, "अच्छा था—इसका भी अपना एक स्वाद होता है।"

उस वक्त तो बाबू खाँ चुप रहा, लेकिन अगली दफा महाविद्यालय के मेडिकल ऑफिसर अफजुल रहमान ने जाकिर साहब का निरीक्षण किया तो वह समझ गये बदपरहेजी की जड़ें खासी गहरी हैं और जब वे कारण पूछ ही बैठे तो मजबूरन बाबू खाँ को आगे बढ़कर पिछली सारी बातें सुनानी पड़ीं। जाकिर साहब ने बाबू खाँ के बयान के समय में किसी प्रकार से नहीं टोका और बैठे मुस्कराते रहे।

जाकिर साहब के बेशुमार मित्र और विश्वासपात्र हैं। जाकिर साहब के चरित्र की एक विशेषता यह भी है कि वे अपने मित्रों और सच्चे भला चाहने वालों के मुकाबले में सदा अपने विरोधियों और बुरा चाहने वालों का भला चाहते हैं और बुरा चाहने वालों को बड़े विशाल हृदय से न केवल क्षमा कर देते हैं, बल्कि उनको फलने–फूलने का अवसर भी देते हैं।

जाकिर साहब के किसी खराब से खराब विरोधी को इनसे कभी काम पड़ जाय तो ये सहायता करते हैं और उसकी तरफ से कोई शिकायत अपने दिल में नहीं रखते। उन लोगों का जाकिर साहब काम तो कर देते हैं लेकिन ऐसे लोग इनकी दृष्टि से गिर अवश्य जाते हैं। बस, ऐसे हैं हमारे राष्ट्रपति। ●

शिक्षक राष्ट्रपति

श्रीमती नन्दिनी शतपथी
(सूचना उप-मंत्री, भारत)

डा० जाकिर हुसैन जब उप-राष्ट्रपति चुने गये तो उस अवसर पर आयोजित एक पार्टी में उनसे समीप से मिलने का मुझे पहली बार मौका मिला। उस समय उन्होंने मुझ से जो पहला प्रश्न किया था वह था उड़ीसा में शिक्षा के बारे में। स्कूलों और कालिजों के विद्यार्थियों में हड़ताल और तोड़-फोड़ की प्रवृत्ति के बारे में उन्होंने विशेष चिन्ता प्रकट की और कहा कि जब तक शिक्षा ठीक ढंग से नहीं चलेगी तब तक हम देश की बड़ी-बड़ी समस्याओं का उचित हल नहीं कर पायेंगे। राष्ट्र के हित के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि इन समस्याओं पर शान्ति और गम्भीरता से चिंतन किया जाये, परन्तु यह तभी सम्भव हो सकता है जबकि नव-युवकों का मानसिक विकास पूर्ण रूप से किया जाये और उनमें सामाजिक दायित्व की भावना पैदा की जाये। उन्होंने मुझे शिक्षा के विकास और प्रसार में अधिक से अधिक रुचि लेने की सलाह दी।

डा० जाकिर हुसैन आधुनिक भारत के प्रमुख निर्माताओं में से हैं। वे एक शिक्षक, महान् शैक्षणिक विचारक और भारतीय समाज के सांस्कृतिक आदर्शों के प्रतीक हैं। यह भारत का सौभाग्य है कि उसे तीनों महान् साहित्यक और शैक्षणिक प्रतिभा वाले राष्ट्रपति मिले हैं। डा० राजेन्द्रप्रसाद और डा० राधाकृष्णन् ने अपने विशिष्ट गुणों से राष्ट्रपति के महान् पद पर अमिट छाप छोड़ी। डा० जाकिर हुसैन ने भी राष्ट्रपति के पद को विशिष्टता प्रदान की है।

डा० जाकिर हुसैन शिक्षा के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक क्षेत्र में प्रवर्त्तक रहे हैं। जब उन्होंने राष्ट्रीय शिक्षा के व्यापक क्षेत्र में क़दम रखा, तब तक वे अपने ठोस कार्य

के आधार पर बहुत ख्याति अर्जित कर चुके थे। १९३७ में गांधीजी ने देश के समक्ष बुनियादी शिक्षा की योजना रखी। यह एक क्रान्तिकारी योजना थी, जिसमें पढ़ाई के साथ-साथ काम भी सिखाया जाता था। इस योजना में ज्ञान और जीवन का समन्वय था। महात्मा गांधी ने डा० जाकिर हुसैन को बुनियादी शिक्षा की राष्ट्रीय समिति की अध्यक्षता के लिए चुना। डा० हुसैन ने गांधीजी के बुनियादी शिक्षा के विचारों को मूर्त रूप दिया। डा० जाकिर हुसैन ने शिक्षा सम्बन्धी अपने विचार एक बार इस प्रकार प्रकट किये थे "सभी काम शिक्षाप्रद नहीं है। केवल वही काम वास्तव में शिक्षाप्रद है जो उन मान्यताओं की पुष्टि करता है जो हमारे तुच्छ स्वार्थों से ऊपर हों और जिनके प्रति हम निष्ठावान हों। जो व्यक्ति केवल अपने हित के लिए काम करता है, वह दक्ष हो सकता है, किन्तु शिक्षक नहीं। आदर्शों की पूर्ति में मनुष्य सुख-प्राप्ति के लिए नहीं, बल्कि अपने काम में पूर्णता लाने, अपने चरित्र का विकास करने और वास्तविक मानव बनने के लिए काम करता है। यह शिक्षाप्रद गुण शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार के काम में पाया जा सकता है और इन दोनों का ही उपयोग शिक्षण के लिए किया जा सकता है।"

डा० जाकिर हुसैन एक महान शिक्षा-प्रशासक भी हैं। उन्होंने अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के उप-कुलपति पद पर जो कार्य किया, उसका विश्वविद्यालय के सभी विभागों पर स्थायी प्रभाव पड़ा। उन्होंने अपनी दूरदर्शिता, कल्पना शक्ति और ज्ञान से अलीगढ़ विश्वविद्यालय को शिक्षा का नमूना बना दिया। विश्वविद्यालय-स्तर की शिक्षा के बारे में उनके विचार रूढ़िवादी नहीं हैं। वे यूरोप, अमरीका और अन्य देशों का व्यापक भ्रमण कर चुके हैं, इसलिए शिक्षा-सम्बन्धी उनके विचारों में आधुनिकता और सार्वभौमिकता का पुट देखने को मिलता है।

विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा के बारे में वे अभी भी बहुत सोचते-समझते हैं। मूलतः वे एक शिक्षाविद् हैं। मदुरई विश्वविद्यालय का शिलान्यास करते समय अपने भाषण में उन्होंने भारतीय विश्वविद्यालयों के समक्ष इस समय उपस्थित चुनौतियों की चर्चा की।

उन्होंने कहा, "इनमें से कुछ बड़ी चुनौतियां अतीत की विरासत है। विश्वविद्यालयों के समक्ष एक कठिन काम यह है कि उन्हें शुरू से चली आ रही उन परम्पराओं को समाप्त करना होगा जिनसे बाहरी और भीतरी परीक्षाओं को अनुचित महत्व मिलता है। सामान्य छात्रों में महज परीक्षा उतीर्ण करने की इच्छा के स्थान पर उनमें सत्य और पूर्णता की खोज के प्रति वास्तविक जिज्ञासा और आस्था जाग्रत करने के लिए प्रयास करना होगा। विश्वविद्यालयों को सक्रिय रूप से राष्ट्रीय विकास के काम में भाग लेना चाहिए। इसके लिए उन्हें अपने छात्रों के लिए राष्ट्रीय सेवा संगठित करनी चाहिए, ताकि उनमें सामाजिक दायित्व की भावना पैदा हो और वे राष्ट्र-निर्माण के काम में भागीदार बनें। लोगों की भाषाओं के विकास की भी उनकी मुख्य जिम्मेदारी है।

अगर विश्वविद्यालय यह काम नहीं उठाएंगे, तो इसे कौन करेगा? उन्हें केवल यही कह कर सन्तोष नहीं कर लेना चाहिए कि स्कूलों से हमारे पास जो छात्र आते हैं, उन्हीं का स्तर गिरा होता है। उन्हें स्कूलों की शिक्षा के सुधार के लिए स्वयं कोई ठोस कार्यक्रम चलाना चाहिए।"

देश इस समय जिन विषम परिस्थितियों में से गुजर रहा है, उनके कारण एक और तरह की भी चुनौतियां हमारे सामने आई हैं।

प्राचीन मूल्य और संस्थाएं, जिन्होंने समाज के बांध रखा था, नष्ट हो गयी हैं और उनकी जगह आधुनिक आश्यकताओं के अनूकूल नए सामाजिक दायित्व की भावना को पैदा करने के लिए अभी तक कोई प्रभावशाली कार्यक्रम नहीं बनाया गया है। इसके कारण सर्वत्र सामाजिक विघटन के अनेकानेक लक्षण दिखाई दे रहे हैं। इनमें शामिल हैं : हड़ताल, हिंसा, कानून का उल्लंघन, सार्वजनिक सम्पत्ति की क्षति, साम्प्रदायिक तनाव और स्थानीय, क्षेत्रीय, भाषायी और राज्य सम्बन्धी वफादारी का उदय, जिसके कारण लोगों में पूरे "भारत" को आंखों से ओझल करने की प्रवृत्ति पैदा हो गयी है।

डा० जाकिर हुसैन के व्यक्तित्व में एक फूल की सी दमक और महक है। फूलों से उन्हें जो अनुराग है और बागबानी में उनकी रुचि है, इसका प्रभाव भी उनके व्यक्तित्व पर पड़ा है। बच्चों के प्रति उनका विशेष अनुराग है। बच्चों से मिलते समय उनसे इस प्रकार घुल-मिल कर बातें करने लगते हैं मानों स्वयं भी बच्चे ही हैं। उनका जीवन इस्लामी संस्कृति और प्राचीन भारतीय संस्कृति के सर्वोत्तम तत्वों का मिश्रण है। जीवन के प्रति उनमें एक प्रकार का आध्यात्मिक विराग है, परन्तु साथ ही मानव की भौतिक उन्नति में उनकी अगाध निष्ठा है। उनमें एक विद्वान् की विनम्रता, जिज्ञासा और तर्कशक्ति है और अपने विचार स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त करने का उनका अपना ढंग है। उनके बारे में यह ठीक कहा गया है कि उनका जीवन सर्वोत्कृष्टता की खोज का प्रयास है। ●

अच्छा अध्यापक

अच्छा अध्यापक किसे माना जाए ? डॉ० जाकिर हुसैन के शब्दों में उसकी यह पहचान होनी चाहिए : अच्छे अध्यापक के लिए आवश्यक है कि वह दूसरों से प्रेम रखता हो; उसके मन में मनुष्य के रूप में मनुष्यों से प्रेम हो। आप सच्चे पण्डितों और अच्छे-अच्छे अध्यापकों पर नजर डालिये तो इनमें से बहुत से कट्टर धार्मिक व्यक्ति नजर आयेंगे। सुन्दरता और आकर्षण के प्रेमी भी इनकी कतार में मिलेंगे। परन्तु यह गुण उनकी मानसिक बनावट में बेल-बूंटे के समान हैं; ताना-बाना तो वही सेवा की रुचि और मानव जाति के प्रति प्रेम है।

गांधीजी के अनुयायी

अक्षयकुमार जैन

बात छोटी-सी है, किन्तु उसका मतलब बहुत बड़ा और गंभीर निकलता है। एक बार की बात है कि डा० जाकिर हुसैन ने गांधीजी के सम्बन्ध में एक संस्मरण सुनाते हुए कहा कि "मेरे परिवार की किसी बच्ची ने बापू से आटोग्राफ मांगा तो उन्होंने उर्दू में दस्तखत किये। तभी से मैंने भी निश्चय कर लिया कि हिन्दी भाषियों को अपने हस्ताक्षर हिन्दी में ही दिया करूंगा।"

एक दूसरे की भाषा का इतना ख्याल रखना निश्चय ही देश की भाषा समस्या को हल करना है। इसका यह अर्थ नहीं कि डाक्टर साहब मात्र हस्ताक्षर के लिए ही हिन्दी का ज्ञान रखते हैं। राष्ट्रपति पद की शपथ लेते समय उन्होंने जो प्रथम भाषण किया था उसे सुनने वालों को यह भ्रान्ति नहीं हो सकती कि वे सुसंस्कृत हिन्दी नहीं जानते।

डाक्टर साहब का जन्म चाहे हैदराबाद में हुआ हो और चाहे उनका घर फर्रुखाबाद में हो, किन्तु उन्हीं के शब्दों में "भारत मेरा घर है। सभी भारतवासी मेरे भाई हैं।" घर के मुखिया (राष्ट्रपति) पद पर आसीन होने के समय उन्होंने उपर्युक्त शब्द कहे थे और सचमुच वे ऐसा मानते हैं और उस पर अमल भी करते हैं।

१९४६ के दिनों में जब साम्प्रदायिक उन्माद हमारे देश में छाया था, कुछ ऐसे ही व्यक्तियों ने उन्हें भी घेर लिया था। यदि ऐन वक्त पर उनके एक परिचित व्यक्ति न आ जाते तो डाक्टर जाकिर हुसैन की गर्दन कट गयी होती। उस अग्निकुण्ड में से निकल कर डाक्टर साहब शुद्ध सोना बन गये हैं और आज सारे भारतवासी उन्हें अपना बड़ा मान सकते हैं।

चौथे आम चुनाव हो चुके थे और राष्ट्रपति पद के लिए नामों की चर्चाएं चल रही थीं। डा० साहब उस समय उप राष्ट्रपति थे। एक काम के सिलसिले में उनके दर्शन करने गया तो देखा कि घर का सामान बांधा जा रहा है और जामिया मिलिया में जाकर रहने की तैयारी हो रही है।

उस समय स्थिति कुछ विचित्र सी थी। कई राज्यों में कांग्रेस दल बहुमत खो चुका था और कांग्रेसी नेता भौंचक्के रह गये थे। कोशिश यह की जा रही थी कि राष्ट्रपति और उप राष्ट्रपति का चुनाव सर्वसम्मति से हो जाय। जब मैंने डाक्टर साहब से इन पदों के लिए कुछ विकल्पों की चर्चा की, तो उन्होंने उस समय जो कुछ कहा उसे मैं कभी भूल नहीं सकता।

वे बोले, "शिक्षा मेरा विषय रहा है। उसे छोड़कर राजनीति में कदम रखना कुछ बहुत अक्लमंदी की बात नहीं हुई। जिन्दगी के आखिरी साल मुझे शांति के साथ गुजारने चाहिये थे। आप मेरे तयीं स्नेह रखते हैं, इसलिए इस प्रकार की चर्चा कर रहा हूँ। अगर मेरे लिए आपके मन से इज्जत है तो आपको यही दुआ करनी चाहिये कि मैं अब सिर्फ अपनी भलाई के लिए ज्यादा काम करूं? ऊंचे पदों पर पहुँच कर आदमी को आध्यात्म की तरफ सोचने का मौका भी कहां मिलता है।"

उस समय तो मैंने केवल इतना ही कहा था कि आपकी योग्यता और हुस्ने-अख्लाक का फायदा अगर देश को मिलता है तो इससे अच्छी और क्या बात हो सकती है? देश में तो आप भी आते हैं। यदि देश का उत्कर्ष होता है तो निश्चय ही उसमें आपका भी उत्कर्ष होगा। आपने ही एक बार कहा था कि व्यक्ति से समाज और समाज से भी देश बड़ा होता है। अब आप अपनी ही बात से कैसे इनकारी हो जायेंगे।"

डाक्टर साहब तब सिर्फ मुस्करा दिये: बोले कुछ भी नहीं। ११ अप्रैल, ६७ को राष्ट्रपति भवन में डाक्टर साहब ने मुस्कराते हुए मुझे पद्म भूषण प्राप्त होने पर मुबारकबाद दी। कांग्रेस की ओर से उस समय तक राष्ट्रपति पद के लिए उनके नाम की घोषणा हो चुकी थी। मैं याद दिलाऊं कि उन्होंने खुद फरमाया--"आपकी बात सच निकली?"

डाक्टर साहब ७२वें वर्ष में प्रवेश कर रहे है, किन्तु देश के सिर-मौर होने के कारण वे सौ वर्ष की आयु वालों के भी बुजुर्ग हैं, इसलिए यदि इन्हें किसी सूबे के साथ नहीं बांधा जा सकता तो आयु के साथ बांधना भी मुनासिब नही होगा।

गांधीजी को बेसिक तालीम की प्रेरणा डा० जाकिर हुसैन से ही प्राप्त हुई थी। शिक्षा के सम्बन्ध में आज तक भारतीय दृष्टिकोण में सुधार नहीं हो पाया है। सौभाग्य से राष्ट्रपति पद पर एक उच्चशिक्षाविद् हैं। आशा की जाती है कि उनका इस सम्बन्ध में मार्गदर्शन देश को प्राप्त होगा।

डाक्टर साहब जोश की बात नही करते, होश को बात समझाते हैं। इस समय देश को ऐसे ही राष्ट्रपति की आवश्यकता है जो विवेक के साथ देश को आगे बढ़ा सके और बिखराव की जो प्रवृत्ति बल पकड़ रही है उसे दिशा देकर देश को एकता की ओर ले जा सके। डाक्टर साहब का गांधीजी में अनन्य विश्वास है। उनका मत है कि देश गांधीजी के बताये हुए रास्ते पर चल कर ही तरक्की कर सकता है।

हमारे राष्ट्रपति

डा० सैय्यद आबिद हुसैन

व्यक्तित्व क्या है, इस पर पूरी बहस करने का अवसर नहीं है। बस यों समझ लीजिए कि व्यक्तित्व उन शारीरिक तथा नैतिक मूल्यों का एक समन्वित रूप है, जिसकी बदौलत कोई व्यक्ति आम लोगों से ऊपर उठ जाता और उन पर छा जाता है। कभी-कभी हम व्यक्तित्व के स्वामी यानी उस इनसान को भी व्यक्तित्व कह देते हैं, जो असाधारण शारीरिक तथा नैतिक खूबियां रखता हो।

यह बात तो व्यक्तित्व की प्रशंसा में ही दाखिल है कि वह अपने वातावरण में छा जाता है, लेकिन इस में बहुत कुछ मतभेद है कि इसके असर की क्या सीमा है ? अकबर ने कहा है—मर्द वो जो जमाने को बदल देते हैं।

और इकबाल ने तो व्यक्तित्व को खुदाई की सीमा के करीब पहुँचा दिया है, मगर ऐसे लोग भी हैं जो व्यक्तित्व को बिलकुल अपने काल या वातावरण की पैदावार समझते हैं।

मैंने अपने काल यानी बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में जिन मुसलमानों को इतिहास के पन्नों में उभरते देखा है, उनमें खरे लोग भी थे, और वे भी जिन पर मुलम्मा चढ़ा था। जाकिर साहब उन खरे व्यक्तियों में से हैं, जो प्रारम्भ में इतने लोकप्रिय नहीं हुए, परन्तु आगे चलकर मुलम्मे की अस्थायी चमक मन्द पड़ने लगी और खरे सोने की असलियत मौजूद रही।

किसी के दिल को साथ में लेना, इसे वह सबसे बड़ा हज समझते हैं और किसी के दिल को तोड़ना सबसे बड़ा गुनाह। वह परले दर्जे के खुदापरस्त हैं। उनकी दीनदारी दुनियादारी के पर्दे में से यों भी थोड़ी बहुत झलकती रहती

लेकिन अच्छी तरह चमकती उस वक्त है, जब आसपास के वातावरण में मायूसी का अंधेरा छा जाता है। इनके ईमान का कट्टरपन उस समय प्रकट होता है, जब अच्छे अच्छों के ईमान डांवाडोल हो जाते हैं।

संगीत और चित्रकला में जाकिर साहब काफी दिलचस्पी रखते हैं। उर्दू, फ़ारसी, अंग्रेजी और जर्मन काव्य से उन्हें प्रेम है, परन्तु सबसे अधिक रस उन्हें इकबाल के फारसी काव्य में आता है।

किताबें पढ़ने का उन्हें बड़ा शौक है, यहां तक कि बीमारी की हालत में भी वह पढ़ते रहते हैं। जाकिर साहब उर्दू अंग्रेजी वक्ता और लेखन पर पूर्ण अधिकार रखते हैं।

लोगों को मुश्किल से यकीन आएगा कि बीसवीं सदी की दूसरी चौथाई में हिन्दुस्तान में जीवन व्यतीत करने और जामे मिल्लिया और मुस्लिम यूनिवर्सिटी जैसी शिक्षण संस्थाओं के वाइस चांसलर रहने के बाद जाकिर साहब का राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं रहा, यद्यपि राजनीतिक नेता बनने के लिए जिन खूबियों की आवश्यकता है, उनमें से बहुत सी जाकिर साहब में बडे-बड़े नेताओं से अधिक मौजूद है।

सबसे ज्यादा हैरानी की बात यह है कि अर्थशास्त्र के विद्वान होने के बावजूद अर्थशास्त्र ही जाकिर साहब कमजोर पहलू है। जाकिर साहब की मैत्री की मिसाल ढूंढे नहीं मिलती। वह इनसान को व्यक्ति की दृष्टि से देखते हैं, उसकी आत्मा से मोहब्बत करते हैं और उसे शिक्षा के द्वारा संवारना चाहते हैं। वह कहा करते हैं, अच्छे हिन्दुस्तानी बनाओ, अच्छा हिन्दुस्तान बन जायगा। ●

एक जरूरी बात

डा० जाकिर हुसैन शिक्षा में सांस्कृतिक उपकरणों को आवश्यक मानते हैं। उनका कहना है; कला, संगीत, नृत्य का विद्यालय में अवश्य स्थान होना चाहिए। क्योंकि ये संस्कृति के कुछ प्रमुख उपकरण हैं, जो व्यक्ति के मस्तिष्क को परिष्कृत करते हैं। संस्कृति के इन तत्वों को बच्चों पर प्रकट करने की आवश्यकता है। अनुकूल सांस्कृतिक उपकरणों द्वारा ही मस्तिष्क की वास्तविक शिक्षा हो सकती है।

गांधी युग का एक और मोती

शक्ति त्रिवेदी

१४ मई को देश भर में एक आवाज गूंजी। सारा हिन्दुस्तान मेरा घर है, इसमें रहने वाले मेरे परिवार के लोग हैं। यह एक ऐसे आदमी की आवाज़ थी जो सदैव पद-लिप्सा और राजनीति से दूर रहा। आश्चर्य है कि कोई आदमी राजनीति से जितनी दूर रहा, उसे समय और परिस्थिति उतनी ही सख्ती के साथ राजनीति की ओर खींच लाई। हमारे राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन भी ऐसे ही व्यक्तियों में हैं, जो शुरू से राष्ट्रीय और समाज सेवी होते हुए भी हमेशा राजनीति के उलझाव से दूर रहे, किन्तु देश की स्थिति ने और देश के तत्कालीन राजनेताओं ने उन्हें जबरन राजनीति की सूली पर लाकर चढ़ा दिया। शिक्षा और दर्शन की साधना में लीन होकर जीने वाले व्यक्तियों के लिए राजनीति सचमुच कांटों का ताज और सूली ही है। अगर राजनीति के दायरे से हटकर चलने वाला व्यक्ति देश का राष्ट्रपति बन जाए तो वह उस दायित्व को सम्भालने में असफल रहेगा या झिझकेगा। यह बात व्यक्ति व्यक्ति पर निर्भर करती है।

एक सच्चा इन्सान राजेन्द्र बाबू जैसा संतमना व्यक्ति दो अवधियों तक राष्ट्रपति रहा। राष्ट्रपतियों की कड़ी में एक साधु और दूसरे दार्शनिक के बाद एक सीधा-सादा खुश-मिजाज शिक्षाविद् और आ जुड़ा। सफेद रशियन कट दाढ़ी, श्वेत केश, काली टोपी, सफेद चूड़ीदार पायजामा, काली शेरवानी में सजा-धजा गुलाबी रंग का व्यक्ति आज हमारे देश का सब से बड़ा शासक है। अफगान घर में पैदा हुआ, हिन्दू और हिन्दी के माहौल में पला, यूरोप में पढ़ा हुआ आदमी जब भारत का राष्ट्रपति बना तो सारे देश में तरह-तरह

के विचार जन्मे। एक महान् देश जिसमें हर तबके, हर विचार और हर तरह के आदमी बसते हैं, जहां मुसलमान जाति अल्प संख्यकों में है, वहां एक ऐसे व्यक्ति का राष्ट्रपति होना जो जाति से मुसलमान है, वास्तव में विदेशों में एक आश्चर्य समझा गया। यूरोप के कुछ पत्रकारों ने इस बात पर अचंभा प्रकट किया कि भारत का राष्ट्रपति एक मुसलमान कैसे बन गया। क्या पाकिस्तान में कभी कोई राष्ट्रपति हिन्दू बन सकता है ? यह वास्तव में बड़ा हास्यास्पद और दुखद 'रिमार्क' था, क्योंकि विदेशों में भारत की तस्वीर अलग-अलग रंगों में पोत कर रखी गई है।

यह एक सत्य है कि महान् आत्माओं पर धर्म, जाति, देश और संकीर्णताओं का पहरा नहीं होता। उनके प्राण, उनका मन और तन तड़फती हुई मानवता की सेवा के लिए आकुल रहते हैं। वे हिन्दू, मुसलमान और बौद्ध सभी को मानवता का चश्मा पहिन कर देखते हैं। ऐसे ही महान् व्यक्ति हैं हमारे राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन जो गांधी युग के ऐसे विरले मोती हैं जिन्होंने आज से ४७ वर्ष पहले गाँधी जी की आवाज पर स्वतन्त्रता संग्राम में कूद कर अपनी राष्ट्रीयता की भावना और देश प्रेम के दृढ़ संकल्प का परिचय दिया था।

गांधी जी के अनुयायी

१९२३ की बात है, जब जाकिर हुसैन अलीगढ़ के मुहम्मदिया एंग्लो ओरियंटल कालेज में पढ़ा करते थे। इसी साल महात्मा गांधी इस कालेज में भाषण देने पधारे। सारा देश ब्रिटेन के हुक्काम और उनके दलालों के हाथों में जकड़ा हुआ था। यह कालेज भी उनके स्वार्थी तत्वों के हाथों में था। वे लोग अंग्रेजों के गुलाम थे और देश में अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार करते थे। १२ अक्टूबर १९२३ को जब गांधी जी की आवाज इस कालेज के छात्रों में गूंजी तो इन छात्रों में कुछ ऐसे साहसी भी निकले जिनकी राष्ट्रीय भावना गांधी की वाणी को सुनकर भड़क उठी और वे कालेज छोड़कर गांधी के अनुयायी हो गए।

गांधी जी ने बुलन्द आवाज में बताया कि 'हम भारतीयों को ब्रिटिश सरकार के अधीन चलाने वाले विद्यालयों का बहिष्कार करना चाहिये। हमें अपनी स्वयं की राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति का विकास करना चाहिये जो हमारे देश के चरित्र को बुनियादी रूप से उँचा उठाए।

इस समय डा० हुसैन २३ साल के नवयुवक थे। जवानी का जोश कुछ और ही था। डा० हुसैन ने कुछ और साथी तैयार किए और १९ अक्टूबर १९२३ को एक ऐसी टोली बना ली जो कालेज का बहिष्कार करके बाहर आ गई।

एक महान् शिक्षा विद्

इन छात्रों ने अलीगढ़ में इस कालेज के समानान्तर राष्ट्रीय विचारों की एक शिक्षण संस्था स्थापित की जो बाद में अलीगढ़ से हट कर दिल्ली आ गई। बाद में इस संस्था के उपकुलपति पद पर डा० जाकिर हुसैन २० वर्षों तक रहे और अपना खून पसीना लगा कर इस राष्ट्रीय विचारों की शिक्षा-संस्था को जीवित रखा। एक बार जब वे जर्मनी में पढ़ते थे तो खबर मिली कि आर्थिक अभाव में घुट कर यह संस्था खत्म होना चाहती है। उन्होंने वापस केब्लिग्राम देकर खबर दी कि मैं और मेरे कुछ साथी इस

संस्था को जीवित रखने के लिए जीवन दान कर देंगे हैं, लेकिन इसे तब तक हम भारत न पहुँचें किसी तरह खत्म होने से बचा लिया जाए।

जब जर्मनी से पीएच० डी० करके जाकिर हुसैन भारत लौटे तो उन्होंने स्वयं सचिव और अध्यापक से लेकर उपकुलपति तक का काम संभाल लिया। अन्य जीवन-दानियों ने भी भरण पोषण मात्र के लिये १०० रुपया वेतन स्वीकार करके इस संस्था की सेवायें कीं। यह था गांधी जी के त्याग और तपश्चर्या का प्रभाव जो डा० हुसैन पर पड़े बिना न रह सका। १९२३ में भारत आने के बाद डा० हुसैन रात दिन कड़ी मेहनत करके गांधी जी द्वारा चलाई गई सर्वोदयी बुनियादी तालीम को बढ़ाने में जुट गए। यह संस्था आज भी ओखला के पास जामिया मिलिया इस्लामिया के नाम से राष्ट्रीय बुनियादी शिक्षा की एक उच्च स्तर की संस्था मानी जाती है। आज उसी संस्था का नींव का पत्थर और पुजारी देश का राष्ट्रपति है। इस संस्था के अध्यापक और छात्रों के लिए इससे बढ़ कर और क्या गर्व की बात हो सकती है।

अनेक साम्प्रदायिक तत्वों ने ऐसा जहरीला प्रचार किया कि यह संस्था केवल मुसलमानों के लिए है। डा० हुसैन ने उसी समय गांधी जी के छोटे पुत्र स्वर्गीय देवदास गांधी को जामिया मिलिया में छात्र अध्यापक के रूप में प्रवेश देकर इस भ्रम को दूर कर दिया। आज भी हजारों छात्र विभिन्न जाति और धर्मों के होते हुए भी इस संस्थान में पढ़ रहे हैं।

शिक्षक से राष्ट्रपति

डा० हुसैन के जीवन के बारे में लोग बहुत कम जानते हैं। कारण स्पष्ट है कि वे सदैव प्रचार-प्रसार और ढोंगबाजियों से पर रहे। लगभग दो सौ साल पहले एक अफगान परिवार यू० पी० के फर्रुखाबाद कस्बे में रहा करता था। इसी परिवार की आठवीं पीढ़ी में डा० हुसैन पैदा हुए। इनके पिता वकालत करने के लिए उत्तरप्रदेश छोड़कर हैदराबाद में बस गए और वहीं डा० हुसैन ने सन् १८९७ में जन्म लिया।

मौलवियों से लेकर इस्लामियां हाईस्कूल, इटावा और बर्लिन विश्वविद्यालय पढ़ने के बाद डा० हुसैन का दृष्टिकोण जीवन और संसार के प्रति बहुत व्यापक हो गया। वर्षों बाद अलीगढ़ का पुराना मुस्लिम एंग्लो ओरियंटल कालेज अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय बना और डा० हुसैन इस विश्वविद्यालय के उपकुलपति भी बने। शिक्षा के क्षेत्र से उनका इतना मोह था कि वे मुस्लिम विद्यालय को राजनीति का अखाड़ा होते हुए भी न छोड़ सके। जहां तक संभव हुआ उन्होंने अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय को ऊंचा उठाने और साम्प्रदायिक संकीर्णताओं से निकालने की कोशिशें की। उनका राष्ट्रीय शिक्षा को उन्नत करने का संकल्प और गांधीजी का आदेश पूरा हुआ।

आज भी राष्ट्रपति पद पर पहुँचने के बाद उन्होंने गांधी के आदर्शों को दोहराया और गांधी युग के एक अनमोल मोती होने का परिचय दिया "मैंने जनसेवा का जीवन गांधी के कदमों में रह कर शुरू किया था। गांधी जी आज तक मेरे जीवन की प्रेरणा के स्रोत हैं। साधन और साध्य की पवित्रता में विश्वास रखने वाले—गांधी जी के बताए हुए मार्ग पर चल कर मैं जनता की सेवा कर सकूं और

जनता को उनका मार्ग सुझा सकूं इसी में मेरा जीवन धन्य होगा और यही मेरी कामना है । दलित और पिछड़े हुए लोगों के प्रति गांधी जी की सहानुभूति थी और वे विभिन्न जाति, धर्म और सम्प्रदायों के भारतवासियों के बीच एकता लाना चाहते थे । आज मेरा भी वही रास्ता है, वही मंजिल है ।

शौक और दिलचस्पियां

जाकिर साहब की पसन्द और शौक भी बड़े लाजबाब हैं । उन्हें सुन्दर लिखावट से बड़ी मुहब्बत है । हाथ के लिखे हुए खूबसूरत खत को वे टाइप और छपे हुए मजमून से बेहतर समझते हैं । गालिब की गजलों और नज्मों को उन्होंने स्वयं खुशखत में लिखकर पेश करदा संस्करण में प्रकाशित किया । उनकी लिखावट बहुत ही सुन्दर है । साथ ही उन्हें उर्दू की लिपि और काव्य से भी उतना ही लगाव है । दोस्तों को चिट्ठियां भी वे हाथ से लिखकर भेजना पसंद करते हैं । उर्दू के अलावा हिन्दी से भी उनका उतना ही प्रेम है । स्वयं एक अच्छे हिन्दी दां हैं । वे हिन्दी और उर्दू को भारतीय जनमानस की गंगा जमुना मानते हैं । उनका नक्काशियों के नमूनों को संग्रह करने का शौक भी जबरदस्त है । पत्थर और लकड़ी पर नक्काशी का काम उन्हें लुभाए बिना नहीं रहता । संगीत में भी उनकी उतनी रुचि है जितनी कि काव्य और साहित्य में । हम यह कह सकते हैं कि वे साहित्य, संगीत और कला के सच्चे प्रेमी, पारखी और कद्रदां हैं । किसी देश का राष्ट्रपति इतना कलाप्रेमी हो, फिर उस देश में कला, साहित्य और जीवन की अनेक सुन्दर विधाओं का विकास हुए बिना कैसे रह सकता है ।

उनके जीवन के कुछ रचनात्मक पहलू भी हैं । बागबानी का शौक भी ऐसा ही दिलचस्प शौक है । अब भी जाकिर साहब का मन करता है कि वे स्वयं फावड़ा उठाकर बगीचे में बागबानी का काम करें । बाग में जब फूल खिलते हैं और कलियां मुस्कराती हैं तो उन्हें लगता है कि इन फूलों में खुदा की कुदरत और बागवां की मेहनत मुस्करा रही है । उनका एक ऐसा ही रचनात्मक शौक साहित्य सृजन का भी है । शिक्षाविद् होने के नाते वे आरम्भ से ही पुस्तकों के हमजोली रहे हैं । उन्होंने स्वयं अनेक विषयों पर किताबें लिखीं और उच्च कोटि के साहित्य की रचना की । उन्होंने अनेक कृतियों का उर्दू में तर्जुमा भी किया जिसके कारण श्रमजीवी लेखक जगत में उनका नामक रौशन हुआ । राजेन्द्र बाबू, डा० राधा-कृष्णन, नेहरू जी और गांधी की परम्परा में हमारा मौजूदा राष्ट्रपति भी एक योग्य विचारक और लेखक है, इसे हम नहीं भूल सकते ।

प्लेटो के 'रिपब्लिक' का तर्जुमा 'शाहकार' नाम से तथा राजनीति और दर्शन की कई किताबों को उन्होंने अंग्रेजी से उर्दू में अनुवाद किया है । कई किताबें अंग्रेजी में भी लिखी हैं । उनका गृहस्थ जीवन बेगम शाहजहां और दो पुत्रियों के साथ बड़े सुख में बीता है । मैं उनकी सफाई पसंदगी की भी दाद दिये बिना नहीं रह सकता । एक बार उन्होंने किसी लड़के को गन्दी टोपी लगाये देखा तो वे उसे घर ले आये । घर आते ही उन्होंने खुद साबुन से उसकी टोपी धोई और उस पर प्रेस कर दी । फिर उससे कहा, यह लो अब यह साफ हो गई, इसे पहन लो । यह देख कर लड़का शर्म से गड़ गया । वह उनके घर से सफाई का एक ऐसा सबक लेकर गया जिसे वह जिन्दगी भर कभी नहीं भुला सका ।

नेहरू जी की नजर

सभी मानते हैं कि नेहरू जी की नजर बड़ी पैनी थी। गांधीयुग का यह अनमोल मोती उनकी नजरों से कब तक छिपा रह सकता था। तत्कालीन शिक्षा मन्त्री मौलाना आजाद के जमाने में जब डा० हुसैन अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी के उपकुलपति बने तो उन्हें राज्य सभा का सदस्य बना लिया गया। ५५ वर्ष की उम्र में वे राजनीति में फिर आ गये। यह तो सिर्फ आगाज था। नेहरू जी के जहन के मुताबिक तो उन्हें अभी बहुत कुछ बनना था। कुछ समय बिहार के राज्यपाल रहने के बाद एक स्पष्ट विचारक और अल्पसंख्कों के प्रतिनिधि के नाते उन्हें डाक्टर राधाकृष्णन् की जगह भारत का उप-राष्ट्रपति बना दिया गया।

डा० हुसैन को नेहरू जी एक सच्चा गांधीवादी, राष्ट्रभक्त और विचारक मानते रहे। पहली बार जब डा० हुसैन गांधी जी की अध्यक्षता में भाषण दे रहे थे तभी जवाहर लाल नेहरू और जिन्ना ने उनकी आवाज में एक हमदर्दी और दर्द महसूस किया। उन्होंने अपने भाषण में देश द्रोही और साम्प्रदायिक तत्वों को करारी फटकार लगायी। "आपसी द्वेष और वैमनस्य हमें घेरे हुए है। इसने हमारी संस्कृति की प्रगति की धारा को रोक रखा है। ऐसी हालत में शांति और अहिंसा की बात पागलों के अट्टहास जैसी लगती है। मुझे लगता है कि फूट और घृणा की आग यदि इसी तरह जलती रही तो एक दिन मानवता को खाक में मिलाकर रहेगी।" नेहरू जिन्ना दोनों उनकी अपील को सुन कर एक बार सिहर उठे।

आज भी उनके स्वर में ऐसा दर्द है, सत्य और अहिंसा की गहराई है। लेकिन अब गांधी युग के अनमोल मोती नहीं मिलते। काल का विकराल सागर गांधी युग के सच्चे मोतियों को निगल गया। कुछ भूले-भटके मोतियों में हमें डाक्टर हुसैन दीख पड़ते हैं। राष्ट्रपति के पद पर उन्हें देखकर उनके पिछले जीवन की सादगी भरी तस्वीर दिमाग में घूम जाती है जब वे एक शिक्षक की हैसियत से देश की हर नयी पीढ़ी को संवारा करते थे। आज सारा देश उनका घर और परिवार है जिसे संवारने का दायित्व उन पर आ पड़ा है। डा० हुसैन हमारी लोक तांत्रिक पद्धति और धर्म निरपेक्षता के सच्चे आदर्श हैं। ईश्वर इन्हें चिरायु करें। ●

कार्यकी की महत्ता

कार्यमूलक शिक्षा के विषय में डा० जाकिर हुसैन का यह कथन विचारणीय है: कार्य शिक्षा का एक मात्र यंत्र न सही, एक अत्यन्त आवश्यक यंत्र जरूर है। हमारे देश के अधिक से अधिक लोगों के भाग्य में कठिन और दुरूहशारिक परिश्रम का काम बदा है फिर भी दुर्भाग्यवश कोई भी नहीं कह सकता कि उनको अच्छी शिक्षा दी गई है, यह और बात है कि उनमें से कई लोग बिना साक्षरता की छायात्रापूर्ण कुशलता प्राप्त किये ही अनेक शिक्षित कहलाने वालों से कहीं अच्छे हैं।

अच्छे साथी

सयैद अहमद अली

यह एक वास्तविकता है कि जाकिर साहब ने मेरे जैसे कितने ही आदमियों को काम का आदमी बना दिया। वरना आदमी में कितना भी जोश हो, उत्साह हो, काम करने की उमंग हो, अच्छा पथ प्रदर्शन न मिले तो यह सारा उत्साह ठन्डा पड़ जाता है और काम करके भी साधारणतया निराशा से ही पाला पड़ता है।

जामिया मीलिया इस्लामिया के प्राथमिक काल में इसके काम को बढ़ाने में, लोगों में इसे प्रिय बनाने के लिए सच्चे दिल से काम करने वालों की जरूरत थी। जाकिर साहब ने ऐसे सच्चे और लगन से काम करने वालों का दल इकट्ठा कर लिया था। इन काम करने वालों में मुमकिन है कुछ खामियाँ हों, कुछ ऊंच-नीच हो। वे सब काम को जामिया का काम समझ कर करते थे और लगन से करते थे। उनका विरोध और उनकी आपस में लड़ाई काम को अच्छे ढंग से करने के लिए होती थी। यह विरोध और लड़ाई जाकिर साहब के परामर्श से खत्म हो जाती थी। जाकिर साहब अपने परामर्श से सबको सन्तुष्ट कर देते थे और काम को बिगड़ने नहीं देते थे।

जाकिर साहब आदमियों की प्रकृति को समझते थे, काम लेना जानते थे और अपने पथ प्रदर्शन से साधारण योग्यता के मनुष्य से उसकी योग्यता से अधिक काम ले लेते थे। काम सुपुर्द करके बेखबर नहीं हो जाते थे। काम करने वाले का काम देखते रहते थे, और साहस बढ़ाते रहते थे। अगर काम उचित ढंग से नहीं होता तो टोकते थे। सही परामर्श देते थे, काम करने वाले को सही रास्ते पर डालने की कोशिश करते थे। उनके

:सी पथ प्रदर्शन से कितने ही आदमी काम के वन गये। और जामिया का काम बढ़ गया।

वे बच्चों को दण्ड देने के घोर विरोधी थे। पर आप जानें, इन्सान तो फिर इन्सान है। एक बार पाठशाला के किसी बच्चे को उन्होंने बेंत की सजा दी। लेकिन बाद में उनको पछतावा आया। लज्जा आई। और इतनी लज्जा कि अपने हाथ से क्षमायाचन पत्र लिख कर श्याम–पट्ट पर लटकवाया।

जाकिर साहब का कहना था कि काम को भगवान् की प्रार्थना समझ कर करो। अर्थात् जो काम आरम्भ करो उसमें पूरी तरह लग जाओ तभी काम का हक अदा होगा। लोग इस पर अमल करते थे और दिन रात काम में लगे रहते थे। मैंने देखा है कि पहली और दूसरी कक्षाओं के बालक अपने काम में ऐसे लगे रहते थे और ऐसा अच्छा काम करते थे कि अक्सर देखने वालों को शक होता था। वे हैरान होकर पूछते थे कि भला पहली और दूसरी कक्षा के बालक भी ऐसा काम कर सकते हैं? हम सब उस्तादों को विश्वास होने लगा था कि पहली और दूसरी कक्षाओं में भी अच्छे स्तर का काम कराया जा सकता है।

जाकिर साहब सिर्फ कहते ही नहीं थे, जो कहते थे उस पर अमल भी करते थे। कई वर्ष तक : प्रारम्भिक अंग्रेजी की क्लास लेते रहे और व्यस्तता के होते हुए भी इसकी सारी जिम्मेदारियों को निभाते रहे। वे अंग्रेजी की कक्षा उस प्राथमिक पाठशाला पढ़ाते थे में जहां अब्दुल गफ्फार साहब प्रधानाध्यापक थे। गफ्फार साहब एक-एक सेकिण्ड का हिसाब करते थे। जाकिर साहब की वक्त की पावन्दी से वे भी सन्तुष्ट थे।

जाकिर साहव ने प्रारम्भिक पाठशाला में काम करके प्राथमिक कक्षाओं के अध्यापकों के दिल से यह बात निकाल दी कि "मैं क्या मेरी औकात क्या, मैं तो प्रारम्भिक कक्षा का एक अध्यापक हूँ।" हममें से किसी के मन में छोटे पने का विचार नहीं रहा। बल्कि हम प्राथमिक पाठशाला में काम करना गौरव की बात समझने लगे।●

स्कूल कैसे हों

केवल किताबी शिक्षा वाले स्कूल हमारे बहुसंख्यक छात्र-छात्राओं के जीवन में सहायक होने वाले स्कूल नहीं हैं। उनके लिए तो वह स्कूल होना चाहिए जहाँ शैक्षिक क्रिया का मुख्य साधन हस्तशिल्प है।

—डा० जाकिर हुसैन

साहित्यकार डा० हुसैन

प्रो० मोहम्मद सरूर

डा० जाकिर हुसैन को एक जमाने से देश के लोग जामिया मिलिया इस्लामिया देहली के शेख-उलजामे यानी प्रिंसिपल की हैसियत से जानते आए हैं। इधर दो-तीन वर्ष से वर्धा शिक्षा योजना या सही मानों में बुनियादी शिक्षा योजना के बनाने वालों के अध्यक्ष रूप में भी डा० जाकिर की बहुत चर्चा हुई है। योजना के समर्थकों ने उन्हें भारतवर्ष का सबसे बड़ा शिक्षाविद् माना और इसके विरोधियों ने इन्हें जो उनके जी में आया, कहा। विरोधी सबके सब मुसलमान थे और शायद डा० जाकिर के व्यक्तित्व से उनको बड़ा प्यार भी था और वे इनकी खूबियों और बलिदानों को भी मानते थे, लेकिन प्रश्न था इनके नजदीक तमाम मुसलमान कौम का और विरोधियो का कहना यह था कि बुनियादी शिक्षा योजना से मुसलमानों की कौमी जिन्दगी को सख्त नुकसान पहुंचने का खतरा है। बहरहाल यह समस्या एक हद तक शिक्षा सम्बन्धी है और बहुत हद तक राजनीतिक। दोनों पक्ष बड़ी ईमानदारी से अपने आपको सही मार्ग पर समझते हैं। हम यहां डा० जाकिर की सिर्फ उस हैसियत पर बहस करना चाहते हैं जिस पर किसी को कोई मतभेद नहीं हो सकता और वह है डा० जाकिर साहब एक साहित्यकार के रूप में।

उन्हे शेख-उलजामे और बुनियादी शिक्षा योजना के अध्यक्ष के नाम से तो शायद ही कोई पढ़ा-लिखा हो जो न जानता हो, परन्तु यह कि डा० जाकिर हुसैन एक अनुपम वक्ता और अद्वितीय साहित्यकार भी हैं, बहुत ही कम लोगों को मालूम होगा। स्वभाव की दृष्टि से वे अकेले रहना पसन्द करते हैं। वे खिलाफत आन्दोलन के दौर की उपज हैं और

इसी बात ने इनके मन में हंगामों से घृणा तथा इश्तहार बाजी से नफरत पैदा कर दी है। वे जलसों में नहीं बोलते और न प्रसिद्धि के लिए लिखते हैं। इससे यह न समझा जाय कि वे गुमनाम रहना चाहते हैं या उन्हें अपने बड़प्पन का अहसास नहीं। बात यह है कि आजकल शोहरत की दुनियां में खोटी-खरी चीजें बाह्य सज-धज से दृष्टि को चकाचौंध कर रही हैं। उन्हें इस राह से लोगों के सामने आना पसन्द नहीं। वे बदलते हुए मूल्यों के कायल नहीं। वे स्थायी मूल्यों को मानते हैं और उन्हीं पर अपनी कीर्ति की बुनियाद रख रहे हैं। डा० जाकिर के व्यक्तित्व के ये जौहर आपको इनकी वक्तृताओं तथा लेखों में मिलेंगे और इसलिए जरूरत है कि हम इन को एक साहित्यकार के रूप में जानें और समझें।

यहां हम डा० जाकिर के साहित्यिक व्यक्तित्व का विश्लेषण नहीं करेंगे। यह बहस हम किसी अन्य समय के लिए उठा रखते हैं। वे क्या हैं, यह हम इस वक्त नहीं बना सकते। हां, वे क्या कहते हैं, यह हम यहां बताना चाहते हैं। डा० जाकिर उर्दू में लिखते हैं और उर्दू ही बोलते हैं। और अंग्रेजी बोलते या लिखते हैं, तो जरूरत के वक्त। उनका खास विषय, जिसमें उन्होंने बर्लिन यूनिवर्सिटी से पी-एच०डी० की डिग्री ली, अर्थशास्त्र है। परन्तु उनका अध्ययन बहुत व्यापक है। यही कारण है उनकी वक्तृता में सिर्फ किताबी बातें ही नहीं होतीं, परन्तु जीवन के उतार-चढ़ाव भी होते हैं। डा० जाकिर अत्यन्त संवेदनशील हैं और उनकी विचार-शक्ति बड़ी प्रौढ है। इसकी उड़ान आसमान से भी बहुत दूर परे तक जाती है। इस तबियत का आदमी अक्सर तथ्यों के मुकाबले में अपनी कल्पनाओं की दुनिया बना लेता है। उलझनों और गुत्थियों को वह नहीं समझता। डा० जाकिर इस बात से वाकिफ थे। उन्होंने जबरदस्ती तथ्यों की दुनिया में अपनी जगह बनायी और कई साल तक, साहित्यजगत में विचरण किया या दूसरे ठोस जीवन को अपनी सक्रियता का केन्द्र बनाया। बरसों वे जामिया मिलिया इस्लामिया के प्रिंसिपल रहे। प्रिंसिपल के मानी ये नहीं कि वे सिर्फ शिक्षा की देखभाल करते थे, बल्कि उनकी हैसियत एक ऐसे माली की थी, जो खुद ही जमीन तैयार करता है, पानी का भी इन्तजाम करता है, बीज का चुनाव भी उसी के जिम्मे है और बाग की हिफाजत और निगरानी भी उसी का काम है। जाहिर है, जो माली यह करेगा उसकी नजर कितनी यथार्थवादी और व्यवहारिक होगी।

डा० जाकिर का अधिकांश समय जामिया के इन्तजाम और जामिया के बाहर के शिक्षा संबंधी मामलों को सुलझाने में व्यय होता था, जिसके कारण पढ़ने के लिए बहुत कम समय मिलता है और लिखने के लिए इससे भी कम।

इनकी वक्तृताएं अधिकतर जामिया की मजलिसों या जलसों में होतीं। कोई इनको लिखता नहीं। हां, इनकी रचनाएं पत्रिकाओं में या पुस्तकों में प्रकाशित हो जाती थीं। एक मुद्दत तक वे रिसाला जामे में "रफ्तारे जमाना" के शीर्षक से कुछ न कुछ लिखते थे। यूरोप और अन्य देशों की राजनीति पर इससे बेहतर उर्दू में शायद ही लिखा गया हो। ये विषय यद्यपि सामयिक होते, लेकिन जिस ढंग से इन पर वे लिखते थे, उसके कारण ये सामयिक विषय स्थायी बन जाते थे। बच्चों के लिए आपने छोटी-छोटी कहानियां भी लिखी हैं। भाषा बिल्कुल बच्चों की है और विषय भी बच्चों की पसन्द का। लेकिन बात इतनी गहरी कह जाते है कि बड़े भी पढ़कर सोचने लग जाते हैं। एक कहानी "मां" है। मां की ममता की तस्वीर शायद ही दुनियां के किसी साहित्य में इतनी प्रभावशाली खींची गई हो। मुर्गी अजमेर चली,

उकाब, छिद्र, इत्यादि कहानियां मकतबा द्वारा प्रकाशित हो चुकी हैं। अर्थशास्त्र पर भी उनकी एक पुस्तक है। उन्होंने यह निबन्ध वास्तव में हिन्दुस्तानी अकादमी इलाहाबाद के किसी जलसे में पढ़ा था। पुस्तक के नाम से यह न समझ लिया जाय कि यह अर्थशास्त्र की कोई पाठ्य पुस्तक है। काले मार्क्स के भौतिकवादी दर्शन से यह विश्वास आम हो चला है कि तर्क ही एक ऐसी कसौटी है जो इन्सान की जिन्दगी के सारे स्तरों की मालिक है। विश्वास और संवेग जिनकी बुनियाद खालिस तर्क पर न हो, वे ध्यान देने योग्य नहीं। लेखक ने इस पुस्तक में विस्तृत विचार किया है। लेकिन डा० जाकिर का असली कारनामा जो उनके साहित्यिक जीवन को अमर बनाएगा, वह उनका अनुवाद है प्लेटो की प्रसिद्ध पुस्तक "स्टेट" का। प्लेटो और अरस्तू हजारों वर्ष से दुनियां के विभिन्न राष्ट्रों के दिलों और दिमागों पर हकूमत करते चले आ रहे हैं। मुसलमान दार्शनिक तथा सूफी दोनों इनसे प्रभावित हुए। डा० जाकिर स्वभाव की दृष्टि से अफलातूनी हैं। "स्टेट" की भूमिका पढ़िए तो मालूम होता है कि प्लेटो खुद बोल रहा है। और पुस्तक पढ़ें तो अनुवाद नहीं प्रतीत होता। लेखक और अनुवादक में अन्तर करना मुश्किल है और अफलातून की "स्टेट" डा० जाकिर हुसैन की "स्टेट" बन गयी है। अनुवाद की खूबी यह है कि वे विचार डा० जाकिर के खुद अपने मालूम होते हैं यानी इनकी अपनी बात है, जो वे अपने मित्रों और शिष्यों से कह रहे हैं, वही बात है, कहने का वही ढंग है। अगर हम आवागमन को मानते तो जरूर कहते कि अफलातून की आत्मा ने दुबारा "स्टेट" के उर्दू अनुवादक के रूप में जन्म लिया है। ●

स्कूलों के तीन लक्ष्य

डा० जाकिर हुसैन ने कल्याणकारी राज्य की उद्देश्य पूर्ति के लिए अनिवार्य सार्वजनिक स्कूलों के ३ लक्ष्य बताये हैं।

१. नागरिक को किसी उपयोगी काम की शिक्षा देना ताकि सामर्थ्य और सम्मान के अनुकूल वह समाज में अपना निश्चित कर्त्तव्य निभा सके, २. व्यावसायिक शिक्षा को एक नैतिक अनुभव का रूप देना और विद्यार्थी को यह समझाना कि कोई व्यवसाय केवल जीविकोपार्जन का साधन नहीं, बल्कि संगठित, सहयोगी समुदाय में जन सेवा का कर्त्तव्य है तथा ३. समाज के विकसित होते हुए सदस्य (विद्यार्थी) में यह इच्छा जगाना और इसके लिए उसमें शक्ति बढ़ाना कि वह अपने निजी नैतिक व्यक्तित्व को तैयार करने वाली लम्बी तथा सुन्दर यात्रा शुरू करे और इस व्यक्तित्व को अपने समाज की नैतिक संपूर्णताओं के लिए लागू करे।

जामिया और जाकिर साहब

सईद अन्सारी

सन् १६२१ या २२ का जमाना था। मैं जामिया में दाखिल होने अलीगढ़ आया। मेरा प्रवेश विशेष कक्षा में हुआ। यह विशेष कक्षा उन लोगों के लिए थी जो किसी दूसरे मदरसे से हाई स्कूल पास करके आते थे। उन्हें अरबी और इस्लाम की शिक्षा के लिए विशेष कक्षा में प्रवेश लेना पड़ता था। जाकिर साहब इस वक्त एम० ए० के विद्यार्थी थे, मगर जामिया के स्टाफ में शामिल थे। इतना होते हुए भी उनका मिजाज सादा और रहन सहन बनावटी नहीं था। अध्यापक और विद्यार्थी में कोई अन्तर या भेद नजर नहीं आता था। हम सब एक ही बोर्डिंग में रहते थे जो इस समय बंगाली कोठी के नाम से प्रसिद्ध था। जामिया के इस प्रारम्भिक समय में मुस्लिम विश्वविद्यालय से एक खींचतान सी चला करती थी। जामिया वालों को हर समय चौकन्ना रहना पड़ता था।

जाकिर साहब दिन रात इस कोशिश में लगे रहते थे कि इस नये शिक्षा केन्द्र को किसी प्रकार की हानि या नुकसान न पहुँचे। वे दोनों शिक्षा केन्द्रों में समान प्रिय और विश्वसनीय थे इसलिए इधर से उधर आने जाने पर पावन्दी या रोक टोक न थी।

रहन-सहन और खान-पान में भी वे बोर्डिंग की पाबन्दियों से बिल्कुल स्वतंत्र थे। कभी-कभी तो रात के १ या २ बजे तक आते थे और आते ही सो जाते थे। खाना यूं ही रखा रह जाता था। कभी सबेरे तड़के बिना नाश्ता किये निकल जाते और चाय इनके इन्तजार में पड़े-पड़े ठण्डी हो जाती थी ये सब कुछ कोशिशें केन्द्र को मजबूत बनाने के लिए की जा रही थीं और कोई उद्देश्य न था।

जाकिर साहब जहाँ बाहर के मामलों में हरवक्त भाग-दौड़ करते रहते थे वहाँ जामिया के भीतरी जीवन में भी वे उसके प्राणों से कम न थे। शिक्षा सभाओं, उत्सवों या विद्यार्थियों के कार्य में वे एक सी रुची लेते थे।

इस समय विद्यार्थियों का एक 'पर्चा' निकलता था। इसका नाम शायद रशीद अहमद सिद्दीकी की वजह से 'उल रशीद' था जो बाद में मौलाना मौहम्मद अली 'जौहर' के नाम पर "जौहर" हो गया था। जाकिर साहब के छोटे भाई मौहम्मद हुसैन खां (इस समय स्कूल में पढ़ते थे) इस पर्चे के सम्पादक थे लेकिन असल काम विद्यार्थी करते थे। मैं उस वक्त सुन्दर लेखक माना जाता था। इसलिए मेरा सम्बन्ध इस पर्चे से दुहेरा था। अर्थात् लेख भी लिखता था और पर्चे के लिए संग्रह भी करता था।

यह पर्चा विषय और ढंग के लिहाज से कैसा भी रहा हो, इसे अगर जाकिर साहब का आशीर्वाद प्राप्त न होता तो उसका प्रिय होना तो बड़ी बात थी, जिन्दा रहना भी मुश्किल था और जामिया के इतिहास में वह जगह हासिल न होती जो आज है।

इस पर्चे ने डा० साहब की दिलचस्पी के अनुसार भिन्न-भिन्न शक्लें लीं। सालाना इम्तहान के नतीजे जब शिक्षा सभा से स्वीकार हो जाते तो रजिस्ट्रार का दफ्तर इसके पूर्व कि पट्ट पर लगाये इसकी एक कॉपी जाकिर साहब चुपके से लाकर पर्चे के सम्पादक को देते और रजिस्ट्रार साहब के परीक्षाफल घोषित करने से पूर्व लड़के अपने नतीजे इस पर्चे में देख लेते। विद्यार्थी अपने नतीजे का इन्तजार जिस बेचैनी से करते हैं इसका अन्दाज वही कर सकता है जिसने अखबारों के दफ्तरों के सामने लड़कों की भीड़ देखी है।

जाकिर साहब "जौहर" निकलते ही बड़े शौक और दिलचस्पी से पढ़ते। प्रारम्भ से अन्त तक पढ़ते। पर्चे में विद्यार्थियों की कुछ शिकायतें लिखी होतीं और जामिया के प्रबन्ध की भलाई के लिए प्रस्ताव होते, वे उन्हें बहुत होशियारी के साथ जामिया के प्रबन्धकों के सामने लाते, उन्हें मनवाने की पूरी कोशिशें करते। इस प्रकार इस पर्चे को विद्यार्थियों का प्रतिनिधि बनाने में इनका बड़ा हाथ था।

जाकिर साहब जामिया को अपने ढंग का असाधारण, अनोखा शिक्षा केन्द्र बनाने के लिए ऐसे शिक्षा सम्बन्धी और शैक्षनिक कार्यों को बढ़ावा देना चाहते थे जो दूसरे शिक्षा केन्द्रों में नहीं होते। इसकी एक छोटी सी मिसाल 'जौहर' है। जिसकी जाकिर साहब इतनी मदद और हिमायत करते थे यह पत्र कलमी था। पत्र के पाठक पढ़कर इसे पुस्तकालय में रख देते थे। जाकिर साहब की इच्छा थी कि पत्र छपने भी लगे।

सन् १९२३ ई० में इण्डियन नेशनल कांग्रेस का जलसा गया में हुआ था। इस समय में जामिया के विद्यार्थी इन कौमी जलसों में बड़ी से बड़ी तादाद में सम्मिलित होते थे। जाकिर साहब ने फरमाया कि अगर आप लोग पर्चे के खरीददारों की एक अच्छी संख्या इकट्ठी कर दें तो मैं शिक्षा सभा से एक छपे पत्र की स्वीकृत प्राप्त कर लूंगा।

जाकिर साहब का इतना इशारा काफी था, जौहर' के कार्य कर्ताओं की सभा इस काम में जुट गई। उसने 'जौहर' के पुराने अंकों के अच्छे-अच्छे विषयों को चुना और इनका नाम मजामी ने

जौहर' और 'नकीवे जामिया' रखा। इसे अपनी कोशिशों से छपवाया और गया कांग्रेस के जल्से में ले गये। वहां इसे बेचा और एक अच्छी संख्या में खरीददार मय पेशगी चन्दे के बना लाये।

जाकिर साहब जामिया में एक अच्छा प्रेस कायम करने और उसे तरक्की देने में भी बड़ी दिलचस्पी रखते थे। जामिया में एक बुरा-भला छापाखाना था लेकिन जाकिर साहब ने अपनी कोशिशों से इसमें चार चांद लगा दिये। इसमें सबसे पहले तो मुल्क के एक अच्छे लेखक स्व० अली मौहम्मद खां को लगाया। वे केवल बड़े अच्छे लेखक ही न थे बल्कि लीथो की छपाई के माहिर भी थे।

जाकिर साहब की एक तजबीज यह भी थी कि विद्यार्थी कोर्स की तालीम के अलावा कोई दस्तकारी भी सीखें। प्रेस और छापाखाने का काम भी इस सिलसिले में आता था और विद्यार्थियों का एक दल इसे सीखता था। संयोग से इन दिनों पत्र 'जौहर' के ज्यादातर प्रबन्धक इस दल में सम्मिलित थे। उन्होंने जौहर के लिए विषय मजबून लिखने, पत्र का सम्पादन करने या क्रमानुसार करने का काम ही नहीं किया वे उसे खुद ही छापते भी और सम्बन्धित काम भी खुद ही करते थे।

अगर आपको 'मजाविन जौहर' या 'नकीवे जामिया' की कोई पुरानी-धुरानी प्रति कहीं किसी पुस्तकालय में मिल जाय तो आप विद्यार्थियों के इस दल के शौक और हुनर मन्दी की प्रशंसा करेंगे। जिन्होंने इसका टाइटिल दो रंगों में लीथो प्रेस में खुद अपने हाथ से छापा। छपाई के काम में सूज बूझ रखने वाले तो इन विद्यार्थियों की बुद्धि और कारीगरी की प्रशंसा किये वगैर नहीं रह सकते।

बात में से बात निकलती है। जाकिर साहब की अच्छी सुन्दर रुचि का सबूत इस जमाने में भी मिलता है। स्वर्गीय मुन्शी अली मौहम्मद खां साहब से उन्होंने बहुत से पते और नज्में लिखवाईं। इन पतों और नज्मों को अपने प्रेस में खुश नुमा छपवाकर लोगों में बटवा दिया करते थे।

इस समय में डा० इकबाल की एक मशहूर नज्म की बहुत चर्चा थी। हर आदमी इससे प्रभावित नजर आता था। और झूम-झूमकर पढ़ता था। जाकिर साहब ने इसका एक बन्द इन्हीं स्वर्गीय अली मौहम्मद खां से लिखवाया। जामिया के प्रेस में छपवाया। और विद्यार्थियों में मुफ्त बटवा दिया। बंटवाने का ढंग भी बहुत अजीब और गरीब था। इस साल की ईद आई और सदा की भांति हर विद्यार्थी और अध्यापक इसकी तैयारियों में व्यस्त हो गया। सुबह हुई और हर एक कपड़े बदलने, नहाने धोने में लग गया। नहा धोकर और कपड़े बदल कर अपने कमरे में आता है तो क्या देखता है कि उसके बिस्तर पर 'तयामे अमल' के नाम से एक निहायत खुश नुमा ईद का तोहफा रखा है। यह डा० इकबाल की नज्म ही थी।

अच्छा अब अन्त में जामिया के प्रारम्भिक दौर की एक और घटना सुनिये। सन् १६१६ की बात है। जाकिर साहब जर्मनी में अपनी तालीम से निवृत होकर जामिया में काम करने और इसे नये सिरे से बनाने आये थे। यों पढ़ाई-लिखाई के तरीकों में जो भी दुरुस्ती की हो। जामिया की शैक्षनिक जीवन को आगे बढ़ाने और उन्नति देने के लिए उन्होंने एक बड़ा काम किया। उर्दू एकेडेमी की बुनियाद डाली। इस एकेडमी को कायम करने का उदेश्य यह था कि दूसरी जबानों की विभिन्न पुस्तकों का

अनुवाद उर्दू में छापा जाये। आवश्यकता हो तो हाशिये पर और नीचे नोट भी अपनी तरफ से दिये जायें।

इस केन्द्र में दो दोस्त मुकर्रर हुए। सईद अन्सारी दूसरे डा० अब्दुल अलीम अहरारी। लेखक को जान स्टूअर्ट मिल की मशहूर पुस्तक 'लिबर्टी' के अनुवाद का काम सौंपा गया। अली अहरारी साहब को 'मौहम्मद' और 'मौहम्मद आजम' के अनुवाद का काम दिया गया। यह मजमून 'एन साइकलो पीडिया' की नयी जिल्द में छपा हुआ था। और इसमें बहुत त्रुटियाँ थी। अलीम अहरारी साहब का काम इस मजमून का केवल अनुवाद करना न था। बल्कि उन त्रुटियों का उचित संशोधन भी था। इसके अतिरिक्त इस पर एक भूमिका भी लिखी थी। करीब दो साल तक हम दोनों इस काम में लगे रहे। इस समय में जाकिर साहब जिस प्रकार से हमारे काम की देखभाल तथा पथ प्रदर्शन करते रहे वह बेमिसाल था। वह वक्त बेवक्त प्रायः हमारे कार्यालय में आ जाया करते थे। कभी नाश्ते में शरीक हो जाते तो कभी खाने में। उस वक्त वे काम की गति और कठिनाइयों पर बातचीत करते और हम लोग कार्य के लिए नया उत्साह और उमंग का कोष प्राप्त करते।●

निरंतर निर्माण

राष्ट्रीय जीवन की इमारत कभी पूरी नहीं होती। वह हमेशा बनती ही चलती है। उसका विकास और विस्तार होता रहता है। उसके बनावट के नक्शे की तफसील में हमेशा विस्तार की मांग होती है। उसके अगणित तत्वों का पारस्परिक सन्तुलन आवश्यक होता है, क्योंकि उनमे से प्रत्येक एक दूसरे को प्रभावित करता है। प्रशासनिक इकाइयों के एकीकरण के साथ ही एकीकरण की पद्धति समाप्त नहीं हो जाती।……… यही निरन्तर पद्धति हमारे राष्ट्रीय अस्तित्व का मूलाधार है।

डाक्टर जाकिर हुसैन

हमारे जाकिर साहब

कर्तारसिंह दुग्गल

हमारे जाकिर साहब—जब भी उनका जिक्र होता है, मेरी पत्नी और मैं, कुछ इस तरह उन्हें याद करते हैं। इस अकथनीय अपनत्व की कहानी—यूं लगता है मानों युग युग पुरानी है, पर यह इतनी पुरानी नहीं।

उन दिनों हम रांची में थे। जाकिर साहब बिहार के राज्यपाल थे। हमें रांची आए हुए अभी बहुत दिन नहीं हुए थे कि पता चला बिहार के राज्यपाल रांची में गर्मियां बिताएंगे। गवर्नमेन्ट हाउस रांची रेडियो स्टेशन से चार कदमों की दूरी पर है।

रेडियो स्टेशन का निदेशक होने के नाते मुझे वैसे भी राज्यपाल को सलाम करने के लिए हाजिर होना था। मैं खुश था कि गर्मियों में मुझे पटना नहीं जाना होगा। अभी हमें कोई ढंग का घर नहीं मिला था। नये स्थान, नये कार्यालय की और भी कई समस्याएं थीं।

राज्यपाल से मेरी भेंट पहले से ही निश्चित कर दी गई। उनके रांची पहुँचने के दो एक दिन बाद ही मुझे बुलवाया गया। बिहार के राज्यपाल का सचिव उन दिनों एक फौजी अफसर था। बड़े तपाक से मिला। जितनी देर तक पहला मुलाकाती अन्दर था, वह मुझसे इधर-उधर की बातें करता रहा "कोठी के लिए आपकी चिट्ठी आई हुई थी। अन्दर डाक्टर साहब से जिक्र कीजिएगा, मैं हार्डासह मिनिस्टर को भिजवा दूंगा।" मकान की हमें सचमुच बहुत तकलीफ थी। रेडियो स्टेशन के पास दो कमरों का एक फ्लैट मिला था। जिसमें गुजारा करना सम्भव प्रतीत नहीं होता था। "पिछले साल जब हम रांची आए थे तो मुझे भी रेडियो

पर बोलने" के लिए बुलाया गया था। एक रेडियो पर बोलने का मजा दूसरे पैसे। "मैंने कहा—अब भी आप जब चाहें तशरीफ लाएं, रेडियो स्टेशन आपका अपना है।" "अच्छा यह बताइये, रेडियो के डायरेक्टर को तनख्वाह कितनी मिलती है? नौकरी तो बड़े मजे की है।" तनख्वाह की सुन कर मेरे हाथ पांव फूल गए। "रेडियो का काम बड़ा मनोरंजक है मगर तनख्वाह इस महकमे में कोई ज्यादा नहीं...।" "बस इतनी ही! स्टेशन डायरेक्टर की तनख्वाह बस इतनी ही।" जैसे उसका मुंह खुला रह गया। तभी टेलीफोन की घंटी बज उठी। वह टेलीफोन सुनने लगा। टेलीफोन की बात लम्बी होती गई। टेलीफोन का चोंगा रख कर वह सामने पड़ी डाक देखने लगा। फिर कोई और मुलाकाती आ गया। आदमी ने एक विजिटिंग कार्ड उसके सामने ला रखा। कार्ड देखते ही उसने अरदली से कहा, "उनको अन्दर भेज दो और सरदार साहब को वेटिंग रूम में बिठा दो। जब लाट-साहब फारिग हों तो मुलाकात करवा देना।"

जाकिर साहब से मेरी बात-चीत देर तक चलती रही। हम रेडियो की बातें करते रहे फिर शरणार्थियों की बातें शुरू हो गईं। फिर बंटवारे के दिनों में फसादों की बातें।..... ......जाकिर साहब ने बताया कि कैसे वे कश्मीर से लौटते हुए फसादियों के हत्थे लगने लगे थे और जालंधर के स्टेशन पर उन्हें उतार लिया गया। कैसे वे संस्कृत के पंडित डाक्टर सूर्यकान्त के यहां टिके रहे और फिर जब हालात बेहतर हुए, वे जालंधर से निकल पाए। डाक-तार की व्यवस्था उन दिनों माकूल नहीं थी, उनके घर वालों की जान इतने दिन अज़ाब में रही।

हम बातें कर रहे थे कि जाकिर साहब का सचिव एक फाइल उठाए अन्दर आया। उसे देख कर जाकिर साहब ने सामने घड़ी की ओर निगाह डाली और फिर उठ कर मेरे से हाथ मिलाया और मुझे विदा किया।

कुछ दिनों बाद आकाशवाणी रांची की ओर से एक संगीत सभा का आयोजन किया जा रहा था। यह कार्यक्रम शहर के वैलफेयर हॉल में आमंत्रित संगीत प्रेमियों के सामने प्रस्तुत होने जा रहा था। शहर के सब कला प्रेमियों के साथ मैंने गवर्नमेन्ट हाउस में भी निमंत्रण पत्र भेजे। क्योंकि जाकिर साहब राज्यपाल थे, मैने विशेष रूप से उनके सचिव को टेलीफोन किया। "लाट साहब के पास उन बातों के लिए कहां फुरसत है।" कुछ इस तरह का जबाव मुझे मिला। मैंने कहा, "फिर भी आप उनसे जिक्र कर दें कि उस्ताद अली अकबर खां तशरीफ ला रहे हैं।"

उसी शाम मेरे घर टेलीफोन आया—"लाट साहब आपकी संगीत सभा में शामिल होंगे। उनके साथ उनके परिवार के कुछ लोग भी आएंगे। जाकिर साहब संगीत सभा में पधारे। उनके साथ उनकी बेटी थी। कार्यक्रम के बाद अली अकबर से मिले। फोटोग्राफर उनकी तसवीरें खींचते रहे। अगले महीने की संगीत सभा में बेगम अख्तर शामिल हो रही थीं। डाक्टर साहब फिर आये। उससे अगले महीने मुशायरा हो रहा था। "भई, हर महीने यह कैसे मुमकिन होगा? जब मैंने गवर्नमेन्ट हाउस टेलीफोन किया तो राज्यपाल के सचिव का बोलने का अन्दाज कुछ इस तरह था। मैंने कहा, "फिर भी आप जाकिर साहब से इसका जिक्र कर दें।" टेलीफोन किए हुए अभी कोई आध घन्टा बीता होगा कि गवर्नमेन्ट हाउस से सन्देश आया कि राज्यपाल मुशायरे में शामिल होने वाले शायरों को खाने पर बुलाना

चाहते हैं और उन्हें खुशी होगी यदि मैं भी उनके साथ आ सकूं। औपचारिक निमंत्रण डाक द्वारा भेजे जा रहे हैं।

वह साल, उससे अगला साल, गर्मियों में जाकिर साहब रांची तशरीफ लाते और हमारे हर मास के विशेष आयोजन में जहां तक सम्भव होता, जरूर भाग लेते।

हम रांची ही थे कि हमारी मित्र बेगम कुदसिया जैदी तशरीफ लाईं। वे ठहरीं तो राज्य भवन में लेकिन दिन भर हमारे साथ ही रहतीं। बेगम जैदी का रांची में कई बार आना हुआ। जब वे रांची में होतीं, आइशा को राज भवन बेगम जाकिर हुसैन से मिलाने ले जातीं। बच्चों को राज भवन बुलवा भेजतीं। हम सबको राज भवन की बनी ताजा जलेबियां बहुत पसन्द थीं। राज्यपाल के सचिव की यह मुसीबत थी, कि एक सरकारी अफसर और उसके परिवार की राज्य भवन में इस आवा-जावी का बार-बार राज्य भवन सर्कूलर में जिक्र कैसे करे। अजीब मुसीबत थी बेचारे की।

फिर जाकिर साहब उप राष्ट्रपति बन कर दिल्ली आ गए। मैं एक बार दिल्ली दौरे पर आया। मैंने टेलीफोन किया। उन्होंने उसी शाम मुलाकात के लिए बुला लिया। फिर हमारा भी दिल्ली का तबादला हो गया। हम दोनों जाकिर साहब को सलाम करने के लिए उनके यहां हाजिर हुए। हर बार चाय-कॉफी का तकल्लुफ वे जरूर करते। कितनी देर तक बैठे हम रांची के फूलों का, जंगलों का, आदिवासियों का, लोक गीतों का जिक्र करते रहे।

फिर पिछले आम चुनाव में देश को नया राष्ट्रपति चुनना था। जब मैं कहता कि जाकिर साहब को राष्ट्रपति बनना चाहिए और कि वही राष्ट्रपति बनेंगे, मेरे कई तरक्की पसन्द मुसलमान दोस्त भी मेरी बात सुन हँस देते। "बेशक लोकराज है लेकिन हिन्दू बहुमत वाले देश में राष्ट्रपति मुसलमान कभी नहीं बन सकता, प्राधन मंत्री चाहे बन जाए।"

मैं झुंझलाकर पूछता—"आखिर क्यों ?" इस 'क्यों' का कोई जबाव नहीं। "और फिर वह दिन आया जब मेरे वे सब दोस्त गलत साबित हुए।" मैंने कहा—हमारे देश का दिल अभी स्वस्थ है। अभी कुछ नहीं बिगड़ा। और उस शाम मैंने जाकिर साहब को लिखा—'हिन्दुस्तान के इतिहास में कुछ एक ऐसे अवसर आए हैं, जिन पर कोई भी नाज कर सकता है। आज का दिन उन अवसरों में से एक है।'

दूसरे राष्ट्रीय पुस्तक मेले के उद्घाटन के लिए मेरा जी चाहता था कि जाकिर साहब आएं। उनसे प्रार्थना की गई। उन्होंने खुशी-खुशी स्वीकार कर ली। शर्त केवल एक थी कि उद्घाटन जैसी कोई चीज नहीं करेंगे। मेले के वे बस सबसे पहले दर्शक होंगे। हमें हर बात मंजूर थी। और फिर वे पुस्तक मेले को आरम्भ करने के लिए पधारे। किताबों के लिए किया गया इतना तकल्लुफ देख कर वे बहुत खुश हुए। भारतीय भाषाओं में पिछले कुछ वर्षों में प्रकाशित दस हजार पुस्तकों की नुमाइश उन्होंने देखी। बार-बार रुक जाते। किताबों को उलट पलट कर देखते। हिन्दी, अंग्रेजी, असमिया, बंगला और भारत की अन्य कई भाषाओं की पुस्तकें......... ।

नुमायश देख चुकने के बाद, किताबों के स्टालों की ओर निकल गए। दो सौ स्टाल थे। हमारा इरादा था कि उन्हें दो चार स्टाल दिखा कर विदा कर दें। लेकिन वे तो एक के बाद एक स्टाल देख कर गद्-गद् हो रहे थे। बांई ओर के स्टाल देख कर दाई ओर चल दिए। जाकिर साहब का ए०डी०सी० बार-बार मेरे कानों में कहता—"डाक्टर साहब की तबीयत ठीक नहीं। अब उन्हें चलना चाहिए।" लेकिन वे तो रंग बिरंगे स्टाल, रंग बिरंगी पुस्तकें देखते हुए आगे ही आगे बढ़ते चले जा रहे थे। ए०डी० सी० परेशान था। फिर अचानक मेरे मुंह से निकला—"डाक्टर साहब! मेले में मकतबा जामिया का भी स्टाल है।" "वह कहां?" डाक्टर साहब इधर-उधर देखने लगे। मकतबा जामिया का स्टाल जरा आगे को था। ए० डी० सी० बार-बार मुझसे कहता कि वे थक गए हैं, लेकिन जाकिर साहब मकतबा जामिया का स्टाल देखे बिना कैसे रह सकते थे। और वे चलते-चलते वहां पहुँच गए। स्टाल के सामने खड़े होकर, स्टाल के स्टाफ से मिल कर जैसे वे खिल गए हों। उनके अपने हाथों लगाई बेल में जैसे फूल आ रहे हों। जितनी देर तक वे स्टाल के कर्मचारियों से बातें करते रहे, जितनी देर फोटोग्राफर उनकी तसवीरें खींचते रहें, उतनी देर उनका ए० डी० सी० मेरी ओर कनखियों से देखता रहा। बेचारा ए० डी० सी० ! ●

शिक्षा का काम

डा. जाकिर हुसैन का कहना है कि भारत में शिक्षा के पुनर्निमाण के लिए सबसे पहल हमें इस आम धारणा को दूर करना चाहिए कि शिक्षा का काम इन्सान के खाली दिमाग में सूचनाएं भरना है। न ही शिक्षा का अर्थ प्रसाधन करना तथा न ही इसका अर्थ किसी साफ-सुथरे स्लेट पर लकीरें खींचना है। इसका अर्थ यह भी नहीं कि किसी ऐसी प्रशिक्षण या प्रसाधन व्यवस्था को थोपा जाय, जो किसी औद्योगिक अथवा आर्थिक सर्वेक्षण या किसी विशेष राजनीतिक विचारधारा को सामने रख कर स्वेच्छाचारी ढंग से निश्चित की गई हो। लोकतन्त्र में शिक्षा का मूल सिद्धान्त बच्चे के व्यक्तित्व के प्रति सम्मान की भावना रखना है। लोकतंत्र का भविष्य ही बच्चे के पूर्ण विकास पर निर्भर करता है।

इल्म की तलाश

मौलाना मेहर मोहम्मद हुसैन

आप जामिया मिलिया और काशी विद्यापीठ स्वतंत्रता-संग्राम की यादगार हैं। अलीगढ़ महाविद्यालय के विद्यार्थी महाविद्यालय से निकल आये तो उन्होंने इस समय के नेताओं से कहा हमने आपकी आवाज पर काम किया ? पर हमारी शिक्षा तो अधूरी रही जाती है। हमारे पढ़ने लिखने का प्रबन्ध कीजिये। और यों जामिया मिलिया की नीव पड़ी।

अलीगढ़ महाविद्यालय छोड़ने वालों में हमारे जाकिर साहब भी थे। और एक रूप से अपने साथियों में अगुआ जाकिर साहब ही थे। इस समय जामिया में जाकिर साहब अध्यापक थे, मगर खुद की शिक्षा सम्बन्धी प्यास नहीं बुझी थी। वे और पढ़ना चाहते थे। इसी सोच विचार में थे कि बाहर से बाहर जाकर अपनी शिक्षा पूरी करलें उनको एक अवसर मिल गया।

आप जानते हैं किसी बदनाम से बदनाम जाति में भी सभी आदमी बुरे नहीं होते। अच्छे बुरे सभी प्रकार के लोग होते हैं। इस तूफानी काल में भी जब अंग्रेजों और हिन्दुस्तानियों में इतनी तना बनी थी, एक अंग्रेज अफसर था जिसका सम्बन्ध माल के विभाग से था। वह हिन्दुस्तानी विद्यार्थियों को अपनी जेब से छात्र वृत्ति देता था। एक बार इसी प्रकार के एक विद्यार्थी से उसकी बात चीत हो रही थी। बातों-बातों में उसने कहा-'हिन्दुस्तानी विद्यार्थी पढ़नेसे घबराते हैं। जरासा बहाना मिलने पर पाठशाला से भाग निकलते हैं।' विद्यार्थी ने तुरन्त उत्तर दिया। ऐसा नहीं है। नियम को भंग करने वालों और महाविद्यालय छोड़ने वाले विद्यार्थियों में ऐसे छात्र मिल जायेंगे जो शिक्षा की अच्छी खोज में हैं।"

अंग्रेज ने कहा—"ऐसे किसी एक विद्यार्थी से मुझे मिलाओ जिसे सचमुच पढ़ने का चाव हो ।" दूसरे दिन वह विद्यार्थी जाकिर साहब को अपने साथ ले गया । अंग्रेज अफसर ने जाकिर साहब को सर से पैर तक देखा और दो एक बातें कीं । कुछ बातों ही में उसने जाकिर साहब की तीव्र बुद्धि और शिक्षा के प्रति रुचि का अनुमान लगा लिया । उसने जाकिर साहब से पूछा "आगे पढ़ना चाहते हो ?"

जाकिर साहब ने उत्तर दिया, "अवश्य परन्तु कहां ।"

अंग्रेज अफसर ने कहा,—"यूरोप में"

जाकिर साहब ने कहा, "मगर वहां कौन जाने देगा ?" सबसे पहले तो रुकावट पासपोर्ट की होगी ।"

अंग्रेज अफसर बोला, "तुम पहले यूरोप जाने की हामी भरो, पास पोर्ट का प्रश्न मुझ पर छोड़ो ।"

जाकिर साहब ने तुरन्त हामी भर ली ।

अंग्रेज अफसर ने अलीगढ़ के कलैक्टर को लिखा-अमुक विद्यार्थी के लिए यूरोप का पासपोर्ट बना दो । कलैक्टर ने पासपोर्ट तो बना दिया मगर केवल इंगलिस्तान का, पूरे यूरोप का नहीं ।

जाकिर साहब ने इसी को बहुत समझा और यात्रा पर रवाना हो गये । ज्यों ही इटली का बन्दरगाह आया, जहाज से उत्तर पड़े और जर्मनी की ओर रुख किया ।

परन्तु पासपोर्ट तो केवल इंगलिस्तान का था, जर्मनी में कैसे प्रवेश पा सकते थे ? अब क्या हो ?

इस पासपोर्ट के साथ जर्मनी में १५ दिन रहने की आज्ञा मिल सकती थी, वह उन्होंने ले ली । जर्मनी में पहुँचते ही जर्मन भाषा सिखाने वाली एक पाठशाला में प्रवेश पा लिया और पन्द्रह-पन्द्रह दिन करके तीन माह में इतनी जर्मन भाषा सीख ली कि महाविद्यालय में प्रवेश ले सकें । वह भी किसी प्रकार मिल गया ।

शायद आपके दिल में यह प्रश्न उठे कि आखिर जाकिर साहब ने इंगलिस्तान को छोड़ कर जर्मनी क्यों अच्छा समझा ? साधारणतया इसके दो कारण मालूम होते हैं । एक तो यह कि जर्मनी में शिक्षा का स्तर बहुत ऊँचा था, दूसरे जाकिर साहब के पास रुपया बस ठीक-ठाक ही था । इंगलिस्तान में तो अशर्फियों वाली बात चलती थी । जर्मनी में यह बात नहीं थी । लड़ाई में हारने की वजह से इसके सिक्के का मूल्य गिर गया था । यहां यह थोड़ा सा रुपया इनके लिए बहुत काफी था । इसलिए उन्होंने यहां बड़े विश्वास से अपनी शिक्षा जारी रखी ।

होते-होते तीन वर्ष इसी प्रकार गुजर गए । इन तीन वर्षों में जाकिर साहब पी एच० डी० की डिगरी प्राप्त करने के लिए प्रबन्ध लिखते रहे । इस पुस्तक को पूरा करने के लिए कुछ और जानकारी की जरूरत थी । यह जानकारी ब्रिटिश म्यूजियम लंदन में प्राप्त हो सकती थी । लाचारी थी, जाना पड़ा ।

वही तीन साल पहले का पास पोर्ट लेकर लदन पहुँचे। वहां सवाल हुआ, तीन साल कहां रहे ? जाकिर साहब ने सीधा उत्तर दिया-जर्मनी में सवाल हुआ, क्यों ? उन्होंने-कहा शिक्षा की खोज में। इससे अधिक पूछ-ताछ की नौबत नहीं आई। सी० आई० डी० की गुप्त रिपोर्ट में लिखा था कि इस तीन वर्ष की अवधि में विद्यार्थी केवल लिखता-पढ़ता रहा है। राजनीतिक बातों से सम्बन्ध नहीं रखता है। सारा मामला समाप्त हो गया। लंदन में ठहरने की आज्ञा मिल गई।

जाकिर साहब ने ब्रिटिश म्यूजियम से आवश्यक जानकारी प्राप्त की। जर्मनी जाकर अपनी पुस्तक समाप्त की और विश्व विद्यालय में पेश की। विश्व विद्यालय ने बड़े सम्मान के साथ पी एच० डी० की डिग्री दी और वे घर लौटे।

और घर ? घर वही जामिया मिलिया, जिसे छोड़ कर शिक्षा की खोज में वे जर्मनी गये थे। और फिर उन्होंने हिम्मत, साहस, सचाई और लगन के साथ अपने इस प्यारे घर को सजाया। ●

पत्थर बेहतर !

शायर ने 'गुलों से खार अच्छे हैं, जो दामन थाम लेते हैं' कह कर फूलों से कांटों को अच्छा बताया है, डाक्टर जाकिर हुसैन पत्थरों को बेहतर मानते हैं। उनका कहना है : फूल मुझे पसन्द हैं, लेकिन पत्थर और भी ज्यादा अच्छे लगते हैं। ये न किसी की बुराई करते हैं, न बदलते हैं, न धोखा देते हैं और वक्त पर मारने के काम भी आ जाते हैं !

राष्ट्रपति जी

डा० महेश नारायण

१८ जनवरी १९६० को राज भवन, पटना का एक सरकारी लिफाफा मुझे मिला। उसमें राज्यपाल के सैन्य सचिव लेफ्टिनेंट कर्नल शांतिस्वरूप भटनागर ने यह सूचित किया था कि राज्यपाल जी ने २० जनवरी को साढ़े दस बजे दिन में आपसे मिलने की स्वीकृति प्रदान की है। कृपया कार्यक्रम की पुष्टि की सूचना शीघ्र दें। पढ़ कर आनन्द से पुलकित हो उठा। हस्ताक्षर (ओटोग्राफ) लेने के सिलसिले में देश विदेश के अनेक महान् व्यक्तियों के निकट जाने का सुअवसर तो प्राप्त हुआ था, पर यह पहला अवसर था जब मैं एक राज्यपाल से उनके राजभवन में मिलूंगा। अनेक प्रश्न मन में उठे। किस वेषभूषा में वहाँ जाना उपयुक्त होगा? कौन-कौन से प्रश्न उनसे पूछना उचित होगा? पहले वे पूछेंगे उसका ही उत्तर दूंगा या मुझे ही बातचीत आरम्भ करनी पड़ेगी? कितने समय में अपना काम वहाँ खत्म करना चाहिये? इन अनेक प्रश्नों का समाधान मुझे ही करना था। निश्चित तिथि पर राजभवन पहुँचा। संतरी को अपना पत्र दिखा भीतर जाने की अनुमति पाई। सूचना मिलते ही उनके सचिव आये। मुझे एक आराम देह कमरे में बैठाकर राज्यपाल को मेरे आने की सूचना दे आये। तुरंत बुलावा आया। एक बंद कमरे का दरवाजा खोल कर जब उन्होंने मुझे भीतर आने का अनुरोध किया तो मैंने देखा वहाँ राज्यपाल के अतिरिक्त और कोई नहीं है। मुझे भीतर कर दरवाजा बंद हो गया। राज्यपाल एक बड़े टेबल के सामने बैठकर लिख रहे थे। नजर मिलते ही मैंने दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया। हाथ जोड़कर ही उन्होंने अभिवादन का उत्तर दिया एवं संकेत किया अपनी दाहिनी ओर कुर्सी पर बैठ जाने

का। मेरी उनकी दूरी कोई एक हाथ से भी कम ही की रही होगी। प्रश्नों की एक सूची मैं अपने साथ लेता गया था। पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित अपने लेखों की कटिंग भी, जिनमें अधिकांश संस्मरण ही थे। अनुमति पाकर एक-एक प्रश्न अपनी तालिका से पूछता गया और वे विनम्र, शांत भाव से सबों का संतोष जनक संक्षेप में उत्तर देते गये। एक प्रश्न मेरा यह था कि सरकारी नौकरों के खिलाफ झूठ-मूठ भी बहुत से आरोप लगते रहते हैं जिससे उन्हें बहुत परेशानी और कभी-कभी मानहानि का भी सामना करना पड़ता है। अफसर अगर गलती पर है तो उसको बदली, बरखास्तगी और मुअत्तिल या अन्य कोई दंड दिया जा सकता है। पर अगर अभियोग गलत हुए तो कोई दंड क्यों? वे कुछ सेकिण्ड मौन रहे, जैसे इस पर कुछ विचार कर रहे हों फिर बोले, पहले से अब यह बहुत कम हो गया है और कम होता जायगा। मेरा दूसरा प्रश्न था, जनता कहती है कि राज्यपालजी खलीफा हारूरशीद के समान भेष बदलकर उनकी तकलीफों को खुद देखें और उनका निवारण करें। इस पर वे तुरन्त बोले, जैसे इस पर उत्तर उनके पास पहले ही से तैयार हो,—खलीफा हारूरशीद की बादशाहत चलती थी। पर यहां विधान के अनुसार मुख्य मंत्री और मंत्रि मंडल ही सारी चीजों के लिये जिम्मेवार होते हैं। राज्यपाल की आवश्यकता तो वहीं पड़ती है जहां मंत्रिमंडल में कुछ हिच हो या गड़बड़ी पैदा हो जाये। मेरे पास जो भी आवेदन आते हैं मैं संबंधित मंत्री के पास ही भेज देता हूँ। ऐसा कह वे चुप हो गये। भारतीय शासन विधान में राज्यपाल की कैसी दयनीय स्थिति है। सब कुछ देखते और जानते हुए भी वह कुछ कर नहीं सकता। स्थिति देख मैंने कुछ और प्रश्न करना उचित नहीं समझा। अंतिम काम था अपनी हस्ताक्षर पुस्तिका में उनके हस्ताक्षर करा लेना या कुछ आदर्श वचन लिखा लेना। उसमें महात्मा जी, जवाहरलाल जी, राजेन्द्र बाबू, सुभाष बाबू, डा० राधाकृष्णन्, मालवीय जी, जयप्रकाश नारायण, विजय लक्ष्मी पंडित, कमला नेहरू, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, राजा जी, एम० एन० राय, आचार्य कृपलानी, भूलाभाई देसाई, सरोजनी नायडू, राहुल सांकृत्यायन, मैथिलीशरण गुप्त, दिनकर जी, बच्चन जी, पंत जी प्रभृति नेताओं और साहित्यकारों के हस्ताक्षर संग्रहित हो चुके थे। इसी उद्देश्य से अपनी वह कॉपी उनकी ओर बढ़ा दी। पर ऐसा करना उन्होंने स्वीकार नहीं किया। बोले, मै तो ऐसा नहीं करता। बड़ी निराशा हुई। मैंने प्रधान मंत्री जवाहरलाल जी के हस्ताक्षर की ओर संकेत किया। वे मुस्कराये और बोले, वे प्रधान मंत्री हैं। उनकी बात कुछ और है। सारे प्रयत्न मेरे विफल हुए। सहसा मुझे एक घटना याद आ गयी। कुछ दिन पूर्व पटना मेडिकल एसोसियेशन हाल में स्वास्थ्य सप्ताह के अवसर पर एक स्वागत गान गाने वाली लड़की को उन्होंने अपना हस्ताक्षर दिया था। मैं उसकी बगल में ही खड़ा था। अतः अंतिम बाण के रूप में मैंने उन्हें उस घटना की याद दिलायी क्योंकि मैंने सोचा अब शायद हस्ताक्षर मिल जायें। ऐसे संकोची जीव बोले—वह लड़की थी, इसलिए उसकी बात रख दी थी। मैंने कहा खाली लड़कियों का ही ख्याल किया जायगा, हम लड़कों का नहीं? ऐसा कह विनम्र भाव से उनके चेहरे की ओर देखा। उन्होंने मुस्कराते हुए सिर हिलाया। उनके भाव बता रहे थे कि इसके लिए मुझे माफ किया जाये। मैंने और जिद्द नहीं की। साढ़े दस बजे मैं आया था। सामने घड़ी ग्यारह बजा रही थी। बातचीत में आधा घंटा हो गया और कुछ पता नहीं चला। बीच में बराबर मैं सशंकित था कि कहीं सचिव आकर मुझे यह नहीं कहें कि आपका समय हो गया। खैर, तो मै उठा। राज्यपाल जी के निकट जा झुककर दोनों हाथ जोड़ प्रणाम किया। कहा, आपका समय बहुत ही मूल्यवान है और बातें इतनी हैं कि एक दिन में खत्म होने की नहीं अतः आज इतनी ही। हाथ जोड़ कर उन्होंने भी उत्तर दिया। खड़े हुए। मैंने समझा, अब खाने पीने का समय हो गया है। शायद भीतर जायें। किन्तु वे साथ दरवाजे

तक आये । दरवाजे को अपने हाथों खोला । मैंने कृतज्ञता स्वरूप उनकी ओर देखा । फिर प्रणाम किया और बाहर आया । ये महान व्यक्ति डा० जाकिरहुसैन थे जो उन दिनों बिहार के राज्यपाल थे । हितोपदेश में एक श्लोक है: फलोद्गमैः वृक्षेः—फल से लदे हुए वृक्ष नीचे की ओर झुक जाते हैं । वैसे ही, महान व्यक्ति, बड़प्पन को प्राप्त कर नम्र हो जाते हैं । डा० जाकिर हुसैन इसके सजीव उदाहरण हैं । यह महानता मैंने उनमें पाई । राज्यपाल के मुकाबले मेरे जैसे एक अदने सरकारी डाक्टर की क्या बिसात है । और वे उठकर दरवाजे तक आये ही नहीं, उसे अपने हाथों खोला और अतिथि को विदा किया ! मुझे याद आ गया पंडित इन्द्र विद्यावाचस्पिति का एक लेख । उसमें उन्होंने लिखा है कि जब कभी मैं मौलाना आजाद से मिलने जाता, प्रवेश करते ही वे उठ खड़े होते । खाने के समय भी यही बात । बातों के प्रसंग में मैंने यह अनुभव ही नहीं किया कि मैं एक राज्यपाल से उनके राजभवन में बातें कर रहा हूँ । मुझे ऐसा लगा कि मैं अपने घर में दादा से ही बतिया रहा हूँ ।

जबसे आप राजभवन पटना में आये, उसकी रौनक बदल गई । गेट के विशाल दोनों फाटकों का रंग काले से लाल कर दिया गया । गुलाबों के तो इतने रंग इस करीने से सजाये गये कि देख कर मन लहलहा उठे । छज्जों पर काठ के बक्सों को रंगकर फूलपत्तियाँ सज गईं । बातों के प्रसंग में मैंने कहा कि कुछ दिन पूर्व आपने कहा था कि पैरिस के लोग मकान के प्रत्येक छज्जे और खिड़की के बाहर खूबसूरत काठ के बक्सों में मिट्टी डालकर उसमें रंग-बिरंगे फूल खिलाये रहते हैं कि उसे देखने पर पता चले कि वह मकान नहीं, कोई फूल का उद्यान ही सर उठाये खड़ा है । वैसा ही आपने इस राजभवन को कर दिया । आप मुस्काये और बोले, आप कहाँ से मेरी सब चीजों को पढ़ और नोट कर लिया करते हैं । फूल पत्ती ही नहीं, चित्रकला और संगीत के भी आप प्रेमी हैं । रहन-सहन में कलात्मक प्रवृत्ति । यों तो राज्यपाल जैसे प्रतिष्ठित पद पर रहकर सुव्यवस्थित ढंग से रहना अनिवार्य-सा हो जाता है । पर आप में यह प्रवृत्ति तभी से है जब आप जर्मनी से डाक्टरेट की डिग्री लेकर आये और जामिया दिल्ली को पुनः अपना कार्यक्षेत्र चुना । इस शिक्षण संस्था के कुलपति रहते हुए आप अकसर लापरवाही से गिरे कागजों को स्वयं उठाते, खिड़कियों के शब्बों को कपड़ों से साफ करते तथा अपने पास आये विद्यार्थियों के बटनों को लगा देते ।

गांधी जी आगा खाँ महल की नजरबंदी से १९४४ में ही छूटे तथा कांग्रेसी कार्यसमिति के अन्य सभी सदस्य १९४५ के मध्य तक अहमदनगर किले में नजरबंद रहे । इस एक वर्ष की अवधि का उपयोग बापू ने भारत को एक नई शिक्षा पद्धति देने में किया । यह वर्धा स्कीम या बुनियादी तालीम के नाम से प्रसिद्ध हुई । इसमें डाक्टर जाकिर हुसैन का पूर्ण सहयोग गांधी जी को प्राप्त हुआ । जर्मनी से लौट कर आप दिल्ली के जामिया मिलिया को शिक्षा की दिशा में नया मोड़ देने लगे थे । अतः यदि यह कहा जाय कि वर्धा शिक्षा योजना गांधी जी के मन की उपज है और इसका व्यावहारिक रूप डा० जाकिर हुसैन साहब का दिया हुआ है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी । कुछ दिनों तक आपका सारा श्रम और समय इस योजना को लागू करने में व्यतीत हुआ । इस हेतु आपको प्रांतों के दौरे भी करने पड़ते थे । फिर भारत स्वाधीन हुआ । आप अलीगढ़ विश्वविद्यालय के उप-कुलपति नियुक्त हुए । वहां की कार्य प्रणाली को नया मोड़ देने लगे । लेकिन यह विश्वविद्यालय बहुत से कट्टरपंथियों का अखाड़ा रहा है । वहां आपकी अधिक न चली, यद्यपि आप यहां के भूतपूर्व विद्यार्थी रहे थे । विद्यार्थियों

के एक दल ने बहुत उपद्रव किया। स्थिति भयानक हो चली जिसका रोकना आपके बस की बात नहीं थी। आपने वायस चांसलरी के पद से इस्तीफा दे दिया। इस्तीफा देते समय जो वक्तव्य आपने दिया था वह बहुत ही मर्मस्पर्शी था। स्मरणीय था। आपने कहा, विश्वविद्यालय एक शैक्षणिक संस्था है। यहां ऐसे कार्य नहीं होने चाहियें जिसने ८० प्रतिशत हिन्दुओं की भावनाओं पर चोट पहुँचे। कुछ दिनों तक आपने प्रेस कमीशन के सदस्य और माध्यमिक शिक्षा आयोग के अध्यक्ष के रूप में भी काम किया। फिर प्रतिनिधि मंडल में विदेश गये, बिहार के राज्यपाल हुए। उपराष्ट्रपति पद पर प्रतिष्ठित हुए और अब राष्ट्रपति पद पर सुशोभित हैं।

आपका अधिकांश समय शिक्षण कार्य में ही व्यतीत हुआ है। बड़े ही विद्वान व्यक्ति हैं। इसका अंदाज किसी सभा–सोसायटी में दिये गये आपके व्याख्यान को सुन कर किया जा सकता है। शब्द नपे तुले, गूढ़तम भावों से ओतप्रोत। भाषा पर अद्भुत अधिकार। २६ जनवरी को राज्यपाल के रूप में पटने के गांधी मैदान में परेड एवं झंडोत्तोलन के पश्चात् आपका जो भाषण हुआ करता था उसके सुनने का अवसर मुझे प्राप्त हुआ है। हिन्दी में वैसा सुललित भाषण कम सुनने में आया। छोटे-छोटे वाक्य और शब्द। पूर्णविराम और अर्ध–विरामों का भी उचित ख्याल। हिन्दू संस्कृतमय, सरल। मेडिकल एसोसियेशन में आपका अंग्रेजी भाषण भी सुना। उसमें लड्डू-पेड़े जैसे शब्दों के प्रयोग से आपने भारतीय रंग चढ़ा दिया था। एक बार संसद में जब डाक्टर लोहिया ने जोर दिया कि राष्ट्रपति का अंग्रेजी में भाषण देना अवैधानिक है तो संसद का उद्घाटन राष्ट्रपति को जगह आपने ही हिन्दी में भाषण देकर किया था। राज भवन में भेंट करते समय मैंने जब पूछा कि हिन्दी में पूर्णतः सरकारी काम कब से होने लगेगा तो आपने बिना किसी हिचकिचाहट के कहा था—धीरे-धीरे सब हो जायेगा।

राज्यपाल रहते हुए आप एक बार प्रसिद्ध तीर्थ वैद्यनाथधाम गये। वहीं रामकृष्ण आश्रम में स्वामी विवेकानन्द और उनके जीवन दर्शन का इतना सुन्दर विवेचन किया कि श्रोता दंग रह गये। उसमें वेद, उपनिषद्, अवतार और अध्यात्म कोई विषय भी छूटा नहीं था। अध्यात्म पर एक ऐसा ही सुन्दर विवेचन स्व० आसफ अली ने जगन्नाथपुरी के पंडों के समक्ष किया था जब वे उड़ीसा के राज्यपाल थे। दोनों बातों की जब मैंने याद दिलाई तो आप मुस्कुरा उठे।

पाकिस्तान प्रारंभ से ही हिन्दुस्तान के खिलाफ बराबर विष-वमन और प्रचार में लगा रहा है। उसके प्रचार का मुँह तोड़ जबाब देने हेतु कई बार आप सद्भावना यात्रा पर मध्यपूर्व के इस्लामी देशों में गये, जहां आपका यथोचित स्वागत-सत्कार हुआ।

छः फीट लंबा कद्दावर शरीर, अलीगढ़ी पैंजामा, शेरवानी, गांधी टोपी, खूबसूरती से कटी दाढ़ी, हरा चश्मा, गोरा भभूका मुखमंडल, मुगलकालीन शासकों की सी आकृति। विनय और शालीनता तो जैसे आपके जीवन का अंग सा बन गया है। अक्सर अपनी जयन्तियों के अवसर पर कोठी से खिसक अन्यत्र चले जाते हैं। सभा–सोसायटी और उद्घाटन–भाषणों से आप अपने को सदा दूर रखने की चेष्टा करते हैं।

डा० राधाकृष्णन् की बीमारियों की अवधि में एकाध बार स्थानापन्न राष्ट्रपति भी रहे हैं स्पष्ट वक्ता ऐसे कि अपनी सरकार के ढीले कामों की आलोचना से नहीं हिचकते। पटने की खुदाबख्श लाइब्रेरी

मुगलकालीन हस्तलिपियों के अपूर्व संग्रह के कारण एशिया में प्रसिद्ध है। एक बार प्रधान मंत्री पं० जवाहरलाल जी ने इसके आधुनिकी करण की ओर प्रान्तीय सरकार का ध्यान आकृष्ट किया। तब डा० जाकिर हुसैन बिहार के राज्यपाल थे। पांच वर्ष व्यतीत हो गये। पर यह काम न हो सका। १९६२ में उप-राष्ट्रपति पद के लिए प्रस्थान करते समय आपने विदाई भाषण में इसकी चर्चा की। कहा, प्रधान मंत्री और राज्यपाल के संकेत पर भी यह काम नहीं हो सका, सरकारी कामों की कैसी मंथर गति है!

प्रथम राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद बिहार विद्यापीठ के कुलपति रहे। डा० राधाकृष्णन ने हिन्दू विश्वविद्यालय की शोभा बढ़ाई। आप अलीगढ़ विश्वविद्यालय और जामिया से संबन्धित रहे। पिछले साल राष्ट्रपति पद पर प्रतिष्ठित होने के पश्चात कृतज्ञता ज्ञापन करते हुए आपने हिन्दी में ही भाषण किया था। संसद और आकाशवाणी में आपका भाषण प्रथम हिन्दी और बाद में अंग्रेजी में होता है। हाथ जोड़े अभिवादनों का उत्तर देते समय आप भारतीय संस्कृति की मनोज्ञ मूर्ति बन जाते हैं।

सन् १८९९, फरवरी में हैदराबाद में आपका जन्म हुआ। यद्यपि आपके पूर्वज फर्रुखाबाद के कायमगंज कस्बे के रहने वाले थे। इस उम्र में भी आपका शरीर सबल और स्वस्थ है। सादगी और सुरुचि का ख्याल रखने वाला, प्रकांड पंडित और शिक्षाशास्त्री हमारा यह राष्ट्रपति अनेक वर्षों तक मातृभूमि की सेवा में रत रह सके भगवान से मेरी यही प्रार्थना है।●

शिक्षा का उद्देश्य

शिक्षाविद् डा० जाकिर हुसैन ने देश शैक्षणिक कार्यक्रमों को नए आधारों पर नियोजित करने के लिए शिक्षा शास्त्रियों का प्रबुद्ध मार्ग दर्शन किया है। उन्होंने इस बात पर विशेष बल दिया है कि शिक्षा का उद्देश्य मानवीय बुद्धि के सामाजिक और उद्देश्यात्मक पक्षों का सप्रयास विकास करना तथा व्यक्ति के चरित्र और उसके व्यक्तित्व को उस पूर्णता की प्राप्ति के लिए आकार देना होता है जो कि उसमें पहले से ही विद्यमान होती है।

सरलता के प्रतीक

डा० सत्यकाम वर्मा

भारत का प्रथम राष्ट्रपति १९५० में चुना गया था। तब से आज तक कुल चार बार राष्ट्रपति का चुनाव हुआ है। पर इस बीच केवल इस बार ऐसा हुआ है, जबकि इतने ऊँचे पद के लिए जमकर दो व्यक्तियों के बीच टक्कर हुई। डा० जाकिर हुसैन बहुमत से चुन लिए गए। परिणामतः आज वे ही राष्ट्रपति हैं। कुछ लोगों का विचार है कि यह टक्कर राजनीति के दो पक्षों के बीच थी, अतः डा० हुसैन की जीत-हार कांग्रेस की जीत-हार है। यदि श्री सुब्बाराव को कांग्रेस ने उम्मीदवार चुन लिया होता, तब वे ही राष्ट्रपति निर्वाचित हो जाते।

पर, यह बात दिन की तरह स्पष्ट है कि इस विजय के पीछे डा० जाकिर हुसैन के व्यक्तित्व का, उनके जीवन और विचारों का, बड़ा भारी हाथ है। उनकी जगह यदि कोई भी अन्य व्यक्ति कांग्रेस का उम्मीदवार होता, तब उसकी विजय इतने सहज रूप में न हुई होती।

सरलता : महान् गुण

भारतीय राजनीति को पिछली शताब्दी में दो प्रकार के नेता मिले हैं। एक ओर गांधीजी, डा० राजेन्द्र प्रसाद, राजाजी और डा० जाकिर हुसैन आदि के नाम गिने जा सकते हैं, जिनकी नस-नस में भारतीयता और सरलता की भावना कूट-कूट कर भरी हुई मिलती है और जो कठिन से कठिन उत्तर-दायित्व तथा यह महानतम गौरव प्राप्ति पर भी सरल और सीधे-सादे बने रहने में ही अपने जीवन की सफलता मानते रहे हैं। दूसरी ओर मोतीलाल नेहरू, डा० अम्बेडकर, जवाहर-लाल नेहरू, और डाक्टर राधाकृष्णन् आदि के नाम लिये जा सकते हैं, जो सर्वप्रिय होकर भी सामान्य जनजीवन से सदा अछूते रहे हैं,

और जिनके चिन्तन और रहन-सहन में जनजीवन से पर्याप्त अन्तर रहा है। यह आश्चर्य की ही बात है कि जवाहरलाल नेहरू सर्वप्रिय और सर्वाधिक लोकानुयायी थे और डा० राधाकृष्णन् भारतीय दर्शन के सबसे बड़े आधुनिक व्याख्याता माने गये हैं, इस पर भी उनका जीवन और उनके रहन-सहन का स्तर जनता के सामान्य स्तर से बहुत अधिक अन्तर पर कहा जा सकता है। दूसरी ओर गांधीजी का आरम्भिक सम्पर्क अधिकतर विदेशों और विदेशियों से रहा एवं डा० जाकिर हुसैन ने उच्च शिक्षा विदेशों में पाई और जन्म से वे मुस्लिम हैं, तब भी इन लोगों के जीवन की सादगी, सामान्य जन-जीवन के अनुरूप ही जीवन बिताने की भावना, त्यागमय वृत्ति, आदि तत्व इस बात को स्पष्ट घोषित करते हैं कि ये लोग जैसे भारतीय संस्कृति के ही साक्षात् प्रतीक हैं।

इसलिए जब जाकिर साहब का नाम सामने आता है, तब उनकी सबसे बड़ी विशेषता केवल 'सरलता' के रूप में सहसा याद आती है। नेहरूजी से मिलकर कोई भी उनके 'नेतृत्व' की छाप लिए बिना न लौटता था। डा० राधाकृष्णन् की विद्वत्ता के दबदबे के नीचे उनकी अन्य सब बातें ढक-सी जाती हैं। उनसे मिलने वाला कोई भी व्यक्ति उसी गरिमा से प्रभावित-सा लौटता है। किन्तु, गांधीजी से मिलने वाला कोई भी व्यक्ति उनकी सरलता और सीधेपन से कुछ इस तरह आविष्ट होकर लौटता था कि उसे उनके 'नेतृत्व की महत्ता' आदि बातें भूल जाती थीं। और कदाचित् जाकिर साहब से मिलने वाला व्यक्ति भी इसी प्रभाव को लेकर लौटता है कि वह अपने ही किसी सम्बन्धी से मिलकर लौटा है, जिसमें बुजुर्गी भी है, प्यार भी और साथ-साथ सरलता भी!

मुझे वह दिन नहीं भूलता, जब मैं जाकिर साहब के उपराष्ट्रपति रहते उन्हें अपनी पुस्तकें भेंट करने पहुँचा था, इस भावना के साथ कि मैं एक महान् अध्यापक और विद्वान से मिलने जा रहा हूँ, किन्तु जब लौटा, तो इस भावना के साथ कि जैसे अपने ही बुजुर्ग किसी के पास से बहुत आश्वस्त होकर आ रहा हूँ। न जाने कितना विश्वास वे साथ वाले के दिल में कर देते हैं, कि एक बार तो ऐसा लगता है कि जैसे मिलने वाले की बात को इतनी तसल्ली और इतमीनान से सुनने वाला जाकिर साहब से बढ़ कर कोई हो ही नहीं सकता। उसे लगता है कि इतनी बात पूरी तरह से जैसे वह किसी और के सामने आज तक कह ही न पाया हो!

और, तब मुलाकात सचमुच ही 'मुलाकात' हो जाती है, 'दर्शन' या 'भेंट' जैसी कोई बात नहीं। आनन्द और विश्वास की जो भावना जाकिर साहब जताते हैं, वह बनावटी हो ही नहीं सकती।

सच्चे ब्राह्मण

धर्म की दृष्टि से वे इस्लाम के अनुयायी हैं, और उन्हें उन उसूलों पर पूरी और गहरी श्रद्धा है। इस पर भी यदि धर्म-निरपेक्ष वैदिक संस्कृति के 'ब्राह्मण' का सही रूप खोजना हो, तो वह हमें जाकिर साहब में पूरा-पूरा घटता मिलेगा। विदेश में शिक्षोपार्जन के लिए गए थे। तब से उनका जीवन शिक्षा के लिए ही अर्पित होकर रह गया है। राजनीति में उनका दखल एक नेता के रूप में नहीं है, बल्कि एक 'दोस्त' के रूप में है। सत्य तो यह है कि आज की राजनीति उनके स्वभाव के अनुकूल नहीं है। गांधीजी से व्यक्तिगत रूप में प्रभावित होने के कारण वे शिक्षा के क्षेत्र में पूरी तरह उनके आदर्शों

के प्रति अर्पित हो गये थे। धर्म निरपेक्षता में उनका विश्वास लगता है, राजनीतिक आवश्यकता की उपज नहीं हैं, बल्कि सच्चे अध्यापक और 'ब्राह्मण' की उदार दृष्टि के कारण जागा है। धन का मोह उन्हें कभी अपने विश्वासों से डिगा नहीं पाया। उनका राजनीति और प्रशासन में प्रवेश विधान सभाओं के माध्यम से या प्रत्यक्ष चुनाव द्वारा नहीं हुआ। शिक्षा के क्षेत्र से सीधे ही उन्हें बिहार का राज्यपाल बना कर भेजा गया। वहीं से उपराष्ट्रपति बनकर दिल्ली आये थे। उनकी ये नियुक्तियां उन्हें अपरिचित रूप से प्राप्त हुई हैं। डा० राधाकृष्णन् और जाकिर साहब इस विषय में भारत के उन प्राचीन ब्राह्मण महामान्यों और आचार्यों के समकक्ष ठहरते हैं, जिन्हें अपनी योग्यता के कारण ससम्मान पद देकर राजा अपना ही गौरव अनुभव करता था। आज राजा का स्थान बहुमत दल ने ले लिया है। डा० राजेन्द्र प्रसाद और श्री वी० वी गिरि इन उच्च पदों पर कांग्रेस और राजनीति में क्रमशः बढ़ते हुए पहुँचे, किन्तु डा० राधाकृष्णन् और जाकिर हुसैन का कांग्रेस से न वैसा सम्बन्ध था, न वहां उन्हें उतना ऊँचा पद मिला था। यह उनकी व्यक्तिगत योग्यता और आकर्षण ही था, जिसके कारण उन्हें यह सम्मान मिला।

और, इन पदों पर रहकर भी ये दोनों अध्ययन रत रहे हैं। जाकिर साहब अब भी स्वाध्याय करते रहते हैं।

कट्टर धार्मिक : धर्म निरपेक्ष

जाकिर साहब के विरोध में यदा-कदा धार्मिक पक्षपात की बातें सुनने को मिल जाती हैं। राष्ट्रपति के चुनाव से पूर्व भी भारत के एक प्रमुख राजनीतिक दल ने सन् १९४७–४८ के हिन्दू-मुस्लिम दंगों से सम्बद्ध एक घटना को लेकर उन पर दोषारोपण किया। उस विषय में भौतिक तथ्य क्या हैं— हम नहीं जानते। किन्तु, उनसे मिलने वाला कोई भी व्यक्ति पहली ही बार में इस बात से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता कि जाकिर साहब के मानसिक विचार और बाह्य आचार में कोई अन्तर नहीं दिखाई देता। उनका प्रत्येक व्यवहार और आचरण इतना सीधा और सरल होता है कि उसे बनावटी किसी भी दशा में नहीं कहा जा सकता !

इसमें सन्देह नहीं कि वे कट्टर मुस्लिम हैं। जहां तक इस्लाम को और इस्लामी उसूलों को मानने का सवाल है, जाकिर साहब पूरी तरह 'धार्मिक' हैं। उन्हें 'कट्टर' कहने का अर्थ 'मतान्ध' कहना नहीं है। 'कट्टर' का अर्थ यहां है धर्माचरण में विशुद्धतावादी। उनमें औरों से जो इस बात में अन्तर है, वह यह कि अन्य मौलवियों और विद्वानों की भांति उनकी इस्लामी मान्यता केवल प्रचारात्मक नहीं है। इसीलिए वे दिखावटी भी नहीं है। वास्तव में तो उनके जीवन का हर व्यवहार इस्लाम के उसूलों पर इस तरह कायम है कि मानों इस्लाम की शिक्षा उन्हें पढ़ने या सुनने से नहीं मिली, वल्कि उसे उन्होंने माँ के दूध के रूप में ग्रहण किया है। वह उनकी प्रकृति से घुल-मिल कर एक हो गई है। ईश्वर–विश्वास, प्रेम, मानव मात्र की समानता, आदि वे तत्व हैं जिन्हें हम न केवल इस्लामी शिक्षा से सम्बद्ध कर सकते हैं, और न केवल सिखा कर ही किसी जीवन को प्रेरित कर सकते हैं। इनके लिए हृदय की प्रेरणा और सात्मीकरण आवश्यक और अनिवार्य है। परन्तु, ये ही तत्व भारतीय संस्कृति के भी 'मूल–तत्व' कहे जा सकते हैं। 'ईश्वर' का अर्थ हिन्दू, मुसलमान या ईसाई का 'ईश्वर' नहीं है।

बल्कि 'ईश्वर-विश्वास' उस भावना को इंगित करता है, जिसके कारण मनुष्य स्वयं को सब कुछ न समझ कर अपने से बड़ी किसी 'सत्ता' के अस्तित्व को स्वीकार करता है, और इस प्रकार स्वयं को स्वेच्छाचारी होने से बचा लेता है। यही बात 'प्रेम' और 'समानता' के बारे में है। जब हम इन तत्वों का अर्थ केवल मजहब की सीमा में न लेकर व्यापक रूप में लेते हैं, तव 'समानता' के सिद्धान्तों से इनका कहीं व्यापक अर्थ है।

डा० जाकिर हुसैन के साथ आप कुछ देर के लिए रहिए या उनके जीवन को दूर या पास से सालों समझने की कोशिश कीजिए, यह बात कतई स्पष्ट हो जाती है कि उनमें अपने से ऊपर किसी बड़ी सत्ता में विश्वास एवं तज्जन्य नम्रता, मानव मात्र के प्रति प्रेम और समानता की भावनाएं कूट-कूट कर और क्रियात्मक व्यवहार में समरूप हो कर भरी हुई हैं। ऐसा विश्वास उनके प्रथम दर्शन में ही हो जाता है कि वे 'खुदा हाफिज' का उच्चारण केवल सभ्यतावश ही नहीं करते, बल्कि ये शब्द जैसे उनके अन्तर्मन से निकलते हैं। लगता है कि वे सच ही ईश्वर को सदा सामने उपस्थित मान कर इन शब्दों का उच्चारण करते हैं। जैसे ये शब्द उनकी अगाध नम्रता के मूल रहस्य को उद्घाटित कर देते हैं।

जहाँ तक 'प्रेम' का सम्बन्ध है, पहले दोनों राष्ट्रपतियों से उनका एक अन्तर प्रथम दर्शन में ही स्पष्ट हो जाता है। वह यह कि उनसे मिलने वाला ऐसा अनुभव करता है, मानों वह किसी ऐसे हितैषी वयोवृद्ध या बुजुर्ग से बात कर रहा है, जिसमें मैत्री भावना इतनी कूट-कूट कर भरी है कि उस पर अविश्वास किया ही नहीं जा सकता। आत्मीयता और प्रेम की यह एकात्मता ही उन्हें सहज लोकप्रिय बना देती है।

'समानता' का सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि यदि समय और अवकाश हो, तो उनके दरबार में सब की पहुँच है। सरकारी बाधा न हो, तो वे एक ही सोफे पर साथ-साथ बैठना पसन्द करते हैं। यदि आप में उन्होंने कुछ भी पा लिया है, तो अपनी समरुचि और समवृत्ति को आप से जताने का यत्न करते हैं।

संक्षेप में ये ही हैं वे प्रभाव जो प्रथम दर्शन में मेरे मानस-पटल पर पड़े। मुलाकात का विषय दो मिनट से ऊपर का नहीं था, पर कदाचित् निकलते हुए आधा घण्टा हो गया था। उस दिन लगा था, "काश, सभी प्रशासक इसी धातु के होते!"

शिक्षा, संस्कृति और कला के उपासक

यशपाल जैन

संभवत: सन् १९४६ की बात है। दिल्ली में उन दिनों साम्प्रदायिक विद्वेष की आग बड़े जोरों से धधक रही थी। चारों ओर ऐसा पागलपन छाया था, जिस की स्वप्न में भी कल्पना नहीं की जा सकती थी। किसी की जान-माल का भरोसा नहीं था। मेरे कई मित्र जामिया मिलिया में पढ़ाते थे। एक दिन उनकी कुशल क्षेम पूछने के लिए मैं दरियागंज से ओखला के लिए रवाना हुआ। बस में भीड़ अधिक नहीं थी। पीछे की एक सीट पर बैठ गया। अचानक सामने निगाह गई तो देखता क्या हूँ, आगे की एक सीट पर खिड़की के सहारे एक जाने--पहचाने महानुभाव बैठे हैं। उनके बराबर की जगह खाली थी। मैं उठकर वहां चला गया और उनके पास बैठकर पूछा, "आप कहाँ से तशरीफ ला रहे हैं?"

मेरे इस प्रश्न पर उन्होंने एक बार मेरी ओर देखा और फिर मुंह फेर कर खिड़की से बाहर देखने लगे। उनके चेहरे पर परेशानी झलक रही थी। मैंने कहा, "क्यों, आपकी तबीयत कैसी है?"

बड़े धीरे से वे बोले, "इस वक्त आप मुझसे बात मत कीजिये। मैं बड़ी मुसीबत से निकल कर आ रहा हूँ। मेरा मन बहुत बेचैन है।"

इतना कहकर वे खामोश हो गये। मैंने भी कुछ नहीं कहा। कुछ देर हम लोग चुप-चाप बैठे रहे। आगे जामिया मिलिया का पड़ाव आया तो दोनों उतर गये।

मित्रों से मिलकर लौटा तो मेरे मन में तरह-तरह के विचार उठ रहे थे। उन सज्जन ने मेरे साथ ऐसा सलूक और तो कभी नहीं किया था। जब-जब उनसे मिला था, वे बड़ी आत्मीयता से पेश आये थे। आज आखिर

ऐसी क्या बात हो गई, जो उन्होंने ऐसा व्यवहार किया। बहुत सोचने पर भी कुछ समझ में नहीं आया।

अगले दिन अखबार में उन सज्जन के बारे में पढ़ा तो मेरे पैर के नीचे से धरती खिसक गई। समाचार था कि कुछ उन्माद-ग्रस्त लोगों ने उन्हें घेर लिया। वे उनकी गर्दन काटने वाले थे कि संयोग से ऐन मौके पर कोई परिचित व्यक्ति आ गये और उन्होंने उनके प्राण बचा लिये।

इस खबर से जहां मुझे भारी वेदना हुई, वहां उन सज्जन के प्रति मेरी श्रद्धा कई गुनी अधिक हो गई। इतनी भयंकर बात हो जाने पर भी उनमें आक्रोश नहीं था, न अपने साथ ऐसा जघन्य व्यवहार करने वालों के प्रति किसी प्रकार की कटुता ही थी।

ये सज्जन थे डा० जाकिर हुसैन, हमारे वर्तमान राष्ट्रपति। मैं मानता हूँ कि अपने जिन गुणों के कारण वे आज इतने बड़े पद पर प्रतिष्ठित हैं, उनमें सबसे बड़ा गुण उनकी सहिष्णुता और संयम है। उन्होंने कबीर की इस उक्ति को मानो अपने जीवन में चरितार्थ करके दिखाया है—"जो तोको काँटा बुवे ताहि बोई तू फूल।"

पद छोटा इन्सान बड़ा

जाकिर साहब को मैंने कई पदों पर देखा है। जामिया मिलिया और अलीगढ़ विश्वविद्यालय के उपकुलपति, हिन्दुस्तानी तालीमी संघ के अध्यक्ष, बिहार के राज्यपाल, भारत के उपराष्ट्रपति और अब राष्ट्रपति। इन सभी पदों का अपना विशेष महत्व है, लेकिन जाकिर साहब के लिए पद छोटा और इन्सान हमेशा बड़ा रहा है। यह भी कि पद के लिए वे कभी लालायित नहीं रहे।

इसमें कोई संदेह नहीं कि वे उच्च कोटि के शिक्षा-शास्त्री हैं। उनके जीवन का अधिकांश भाग शिक्षा के क्षेत्र में ही व्यतीत हुआ है। उनका अध्ययन बड़ा गहन है। बर्लिन विश्व विद्यालय में उन्होंने अनेक विषयों में दक्षता प्राप्त की है, लेकिन अपनी विद्वत्ता का उन्हें कभी अभिमान नहीं हुआ। उनके जीवन में ऐसी सरलता और सहजता है, जो ज्ञान को उनके लिए कभी बोझिल नहीं होने देती। वे जिससे मिलते हैं, उसे एक क्षण को भी यह आभास नहीं होने देते कि वह उन से छोटा है। यही कारण है कि जो भी उनके सम्पर्क में आता है, उन का हो जाता है।

रचनात्मक कार्यों में जाकिर साहब की गहरी दिलचस्पी रही है। जामिया मिलिया के विकास का श्रेय उन्हीं को है। गांधी जी की बुनियादी तालीम की कल्पना को साकार बनाने के लिए सब से अधिक परिश्रम जाकिर साहब ने ही किया था और आज उस शिक्षा पद्धति पर भले ही शासन का विश्वास न हो, उसकी राष्ट्रोपयोगिता को आज भी जाकिर साहब सब से अधिक स्वीकार करते हैं।

शिक्षा कैसी हो

उनकी मान्यता है कि शिक्षा ऐसी होनी चाहिये, जिससे आदमी की कथनी और करनी में फासला न रहे। वे बार-बार कहा करते हैं कि सच्चा इन्सान वही है, जो जैसा कहता है, वैसा ही करता है। वे यह भी कहते हैं कि मनुष्य को बोलना कम और करना अधिक चाहिए। यही कारण है

कि सभा सोसाइटियों में जाना और बड़े–बड़े भाषण देना उन्हें पसन्द नहीं। इच्छा न होते हुए भी उन्हें सभाओं में जाना तो पड़ता ही है और बोलने के लिए भी अक्सर वे लाचार होते हैं, लेकिन सच यह है कि भाषण देने से यथा संभव बचते हैं। अगर बोलना ही होता है तो अपनी बात नपे-तुले शब्दों में कहते हैं और जो शब्द उनके मुंह से निकलते हैं वे उन के दिल से उठकर आते हैं।

उन के बोलने की शैली निराली है। वे जोशीली बातें नहीं कहते और न लोगों की भावना को उभारने के लिए नाटकीयता का सहारा लेते हैं। उन्हें जो कहना होता है, सरल शब्दों में, बिना किसी आडम्बर के, कह देते हैं। उनके शब्दों का चयन बड़ा प्रभावशाली होता है।

उनका जीवन मुख्यत: रचनात्मक कार्यों में बीता है अत: यह स्वाभाविक है कि उन्होंने कम लिखा है। लेकिन जो कुछ लिखा है, चाहे वह उनकी मौलिक रचना हो अथवा अनुवाद, उसमें प्रमाणिकता है। लोकोपयोगी तो वह है ही।

उनकी रुचि वैसे बहुत व्यापक है, परन्तु उन को तीन विषय बड़े प्रिय हैं। शिक्षा, कला और संस्कृति। जब-जब अवसर आता है, वे इस त्रिवेणी में बड़े आनन्द से अवगाहन करते हैं। वे शिक्षा विशेषज्ञ है, विशेषकर बुनियादी तालीम के। उन्होंने हिन्दी में 'शिक्षा' नामक पुस्तक लिखी है। उर्दू में उनके इस विषय के बहुत से लेख भी हैं, जिन का सग्रह प्रकाशित हुआ है।

कला और संस्कृति

शिक्षा के साथ-साथ आर्थिक विषयों में भी उनकी विशेष गति है। पूंजीवाद, अर्थ-शास्त्र के मूल सिद्धान्त, अर्थ-शास्त्रीय पद्धति की संभावनाएं, आदि पर उन्होंने काफी लिखा है। बच्चों के लिए अनेक शिक्षाप्रद पुस्तकों की रचना की है।

कला भी उनके लिए शिक्षा के समान ही रुचिकर है। उन्होंने भारतीय कला का गहराई से अध्ययन किया है। अन्य देशों की कला को भी परखा है। उनके लिए आदमी की जिन्दगी को सुन्दर और दृष्टि को व्यापक बनाने के लिए कला अत्यन्त आवश्यक है। इसी से कला को पोषण देने वाली संस्थाओं और प्रवृतियों में वे हमेशा रस लेते हैं। राजधानी की कला-संवर्द्धिनी संस्था चित्र कला संगम के तो वे वर्षों से प्रमुख स्तंभ रहे हैं।

संस्कृति के प्रेम से उनका जीवन ओतप्रोत है। वे स्वयं बड़े ही सुसंस्कृत हैं। जब-जब सांस्कृतिक विषयों पर बोलते है, ऐसा लगता है मानो संस्कृति की धारा प्रवाहित हो रही है। प्रकृति के वे परम उपासक हैं। फूलों के लिए उनका प्रेम सर्व-विदित है। वे जहां कहीं रहे हैं, वहां फूलों की बहार देखते ही बनती है। राष्ट्रपति भवन इस की साक्षी देता है।

जाकिर साहब मूलत: धार्मिक व्यक्ति हैं। पर उनकी आस्था उस धर्म में है जिसे हम इंसानियत के नाम से जानते हैं। यह नहीं कि वे अपने मजहब को प्यार न करते हों, लेकिन चूंकी उनकी दृष्टि व्यापक है, इसलिए कोई भी धर्म उनके लिए पराया नहीं है। गांधी जी कहा करते थे कि "मैं अच्छा हिन्दू हूँ. इसलिए अच्छा मुसलमान और अच्छा ईसाई भी हूँ।" जाकिर साहब भी इसी मत के

है। मैंने देखा है कि वे भक्ति के गीत, भले ही वे किसी भी धर्म के हों, सुनते हैं तो उनका मन विव्हल हो उठता है। उनके लिए धर्म का अर्थ है वे उसूल और उन पर अमल करना, जो आदमी के मन को बुलन्द बनाते हैं।

वसुधैव कुटुम्बकम

उनकी तमन्ना है कि हिन्दुस्तान एक ऐसा बागीचा बने, जिसकी खुशबू अपने मुल्क में ही नहीं, सारी दुनियां में फैले। लेकिन उनकी दृष्टि में ऐसा तभी हो सकता है, जबकि यहां के सब लोग प्रेम से रहें, एक-दूसरे के सुख-दुख में काम आवें, अपने निजी स्वार्थ को छोड़ कर दूसरों का हित साधें और अपने कर्त्तव्य को पूरी लगन एवं मेहनत से अंजाम दें। वह मानते हैं कि हिन्दुस्तान की प्राचीन संस्कृति ने दुनियां को इसीलिए प्रभावित किया था कि उसकी बुनियाद 'वसुधैव 'कुटुम्बकम्' के सिद्धान्त पर थी।

हैदराबाद में जन्मे, इटावा में प्रारंभिक शिक्षा पाई, फिर अलीगढ़ आये और अब तक के कुल मिलाकर उनके तीस–बत्तीस वर्ष दिल्ली में बीते हैं। उनमें आज भी बड़ा हौसला है और उनकी काम करने लगन तो किसी नौजवान को भी लजा देने वाली है।

जाकिर साहब से जब-जब मिलना हुआ है, बड़ी सुखद स्मृति लेकर लौटा हूं। शब्दों में वे प्यार अभिव्यक्त नहीं करते, पर अपनी शिष्टता से जैसे निहाल कर देते हैं। दिल तो उनका बहुत ही कोमल है। गांधी जी, राजेन्द्र बाबू, नेहरू जी, लालबहादुर जी, आदि नेताओं के मानवीय पक्ष पर बोलते हुए मैंने अनेक बार उनका कण्ठ अवरुद्ध होते हुए पाया है। चित्र कला संगम की ओर से राजेन्द्र बाबू की कांस्य प्रतिमा राष्ट्रपति भवन में राष्ट्रपति को भेंट करते हुए वे विचलित हो उठे थे और उनका बोल रुक गया था।

उनका सबसे बड़ा गुण उनकी विनम्रता है। यह विनम्रता उन्होंने अपने पर आरोपित नहीं की, उन के रक्त में घुली-मिली है। वे अपने को राष्ट्र का नेता नहीं मानते, बल्कि सेवक कहने में गर्व अनुभव करते हैं। उनकी यह विनम्रता ही है, जिसने आज उन्हें सर्वोच्च पद पर बिठा दिया है।

८ फरवरी को वे अपने जीवन के इकहत्तर वर्ष पूरे कर के बहत्तरवें वर्ष में प्रवेश कर चुके हैं। इस मंगल अवसर पर हम कामना करते हैं कि वे दीर्घायु हों, स्वस्थ रहें और सेवा के मार्ग को सदा प्रशस्त करते रहें। ●

जाकिर साहब निकट से

मुहम्मद अब्दुल लतीफ आजमी

डा० जाकिर हुसैन के व्यक्तित्व की अनेक विशेषताएं हैं। जरूरत मन्दों की भरसक मदद भी इन विशेषताओं में से एक है। बचपन में तालीम प्राप्त करते समय डा० जाकिर हुसैन पर सूफी हसनशाह का जो गहरा प्रभाव पड़ा, यह उसी का परिणाम है।

उस समय जाकिर साहब इटावा में पढ़ते थे जहां अल्ताफ हुसैन साहब एक बहुत बड़े उस्ताद थे। घर पर जाकिर साहब को सूफी हसनशाह तालीम देते। हसन शाह इनके दूर के अजीज भी होते थे। माता-पिता के न रहने पर वे परिवार के बच्चों के पास आया-जाया करते थे। बच्चों ने इनसे बहुत कुछ सीखा।

हसनशाह को किताबें रखने का बड़ा शौक था। फकीर आदमी थे, हर किताब खरीद नहीं सकते थे, खुद नकल करते थे और जाकिर साहब से भी काम लेते थे। जाकिर साहब कहते हैं इन्होंने बीसो किताबें उन्हें नकल करके दी थीं। इस तरह इनकी लिखाई दिन ब दिन बेहतर होती गयी। दूसरे जानकारी होती गई और इनका शौक भी बढ़ता गया।

हसन शाह अक्सर जाकिर साहब को रुपये दिया करते थे और कहते थे इन्हे बांटो। इस तरह इनकी भी आदत मदद करने की हो गई। आज यह नेक आदत हमारी नजर के सामने है। वे किसी जरूरतमन्द को कभी मदद किये बगैर नहीं रह सकते। जाकिर साहब को बच्चों से बड़ी दिलचस्पी है, इस लिए बच्चे और भी भाग्यशाली हैं क्योंकि ये बच्चों की मामूली से मामूली ख्वाइश को भी पूरा करने की कोशिश करते हैं।

घरवालों के साथ इतमोनान से मिलकर घर में बैठने का मौका इन्हें ज्यादातर खाने के वक्त ही मिलता था। यह ऐसा वक्त होता जब ये हम से हर किस्म की बातचीत इतमीनान से कर सकते थे। ये खाना खाते जाते और लतीफे सुनाते जाते। इनके लिए कोई खास चीज पकी हो या परहेजी खाना हो, ये अपने हाथ से सबको बांट देते और खुद वही खाना जो सबके लिए पका हो खाते। आमों के दिनों में आम भी सबको खिलाते। आम इनको बहुत अच्छा लगता है। ये आमों के बारे में जब बातचीत करते हैं तो ऐसा मालूम होता है कि इन्होंने उम्र भर आमों का ही काम किया है।

खाने पर बातें करने में इन्हें बड़ा मजा आता है। अक्सर बातें करते-करते आराम करना भी भूल जाते हैं। अक्सर बच्चे छोटे-छोटे सवाल इनसे करते हैं और पूरा जवाब पाकर लौटते हैं। ये इन्हें सवाल भी बतलाते हैं और अंग्रेजी भी समझाते हैं और सालगिरह पर तोहफे देकर उन्हें अचम्भे में डाल देते हैं। इन्हें बड़ा लुत्फ आता है, बच्चे बहुत खुश होते हैं। खासतौर पर मेरी बड़ी लड़की को तो ये बहुत ही प्यार करते हैं। एक बार जब वह आठ-नौ साल की थी, कहने लगी कि अम्मी जब मैं सोचती हूं कि अल्ला कैसे होंगे तो मुझे लगता है वे बिलकुल मियां जैसे होंगे।

जाकिर साहब के बातचीत करने का तरीका बिलकुल सादा होता है। ये बड़ी आसानी से अपनी बात को समझा देते हैं और दूसरों को अपना बना लेते हैं। ये न ज्यादा जोर से हंसते हैं और न ज्यादा जोर से बोलते हैं। नौकरों से बड़ी नरमी से बात करते हैं और खासतौर पर नाम के साथ मियां और साहब जरूर लगाते हैं। अपने व्यवहार की बड़ी सख्त निगरानी रखते हैं लेकिन दूसरों की बड़ी से बड़ी गलती को भी माफ कर देते हैं। कई दफा तो ऐसा हुआ कि दूसरों की गलती माफ कर दी है और उस गलती को अपने ऊपर ले लिया है। यहां तक कि इनसे लोग नाराज हो गये हैं, लेकिन इन्होंने अपनी इस खूबी को नहीं छोड़ा।

हमने कभी इन्हें किसी मजहब या पार्टी को बुरा कहते नहीं सुना। अपने अजीज हसन शाह का एक किस्सा सुनाते हैं। हसनशाह पठान थे, एक रोज गुस्से में किसी हिन्दू की शान में कुछ कड़वे शब्द कह गये। उनके गुरु को मालूम हुआ तो उन्होंने कहा कि हसनशाह, सूफियों को ये अच्छा नहीं मालूम होता कि वे किसी हिन्दू की शान में कड़वे शब्द कहें। तुम्हारे दिल को भी साफ करने की जरूरत है। इसमें अभी मैल है और वो दूर इस तरह होगा कि सजा के तौर पर कश्मीर से लेकर नीचे तक पैदल सफर करो। इस हालत में कि सिर पर टोपी हो और माथे पर टीका, ताकि तुम्हें ज्यादा से ज्यादा लोग देख लें। हसनशाह ने वाकई अपने दिल को पाक करने के लिए ऐसा ही किया।

जाकिर साहब कला प्रेमी हैं। खूबसूरत चीजें जमा करते हैं। कीमती पत्थरों का एक बहुत बड़ा संग्रह इनके पास है। पत्थरों के सिलसिले में एक बार कहने लगे कि मुझे फूल बहुत अच्छे लगते हैं लेकिन पत्थर इनसे भी ज्यादा, क्योंकि अगर जरूरत पड़ जाय तो पत्थर मारने के काम भी आ जाते हैं!

लिबास के मामले में जाकिर साहब निहायत नफासत पसन्द हैं। तंगी के जमाने में भी हमेशा इन्होंने इसका ख्याल रखा। इनका लिबास हमेशा खद्दर का रहा, लेकिन साफ सुथरा। कभी ये न देखा गया कि अचकन में कहीं झोल हो या टोपी छोटी-बड़ी हो। खाने-पीने में भी सफाई का यही हाल है।

एक तरफ तो ये बुरे से बुरा खाना खा सकते हैं और दूसरी तरफ ये भी चाहते हैं कि खाना अच्छे से अच्छा पकाया जाय, सिर्फ अपने जायके के लिए नहीं। खुद अच्छा खाना खा कर इतने खुश नहीं होते जितना कि दूसरों को खिला कर खुश होते हैं।

बुरा खाना खाने के कई किस्से हैं। एक इटावे में पढ़ने के जमाने का है, जब स्कूल के मैनेजर साहब जनाब बशीरुद्दीन साहब ने मियां और उनके कुछ साथियों के खाने में एक-एक गिलास पानी मिला कर खाने को दिया। सब साथी एक-एक लुकमा लेकर उठ गये, लेकिन इन्होंने इतमीनान से पूरा किया और इस तरह उठे मानो बहुत स्वादिष्ट खाना खाया। बशीरुद्दीन साहब तमाशा देख रहे थे। बुला कर शाबाशी दी और कहा-मैंने सिर्फ तुम लोगों को आजमाने के लिए जानबूझ कर खाने में पानी मिलाया था और मैंने जो सोचा था वो सही निकला। मुझे इस बात की बड़ी खुशी है।

बिहार की गर्वनरी के जमाने में एक अजीब किस्सा हुआ। जाकिर साहब को बड़ी दावत में बुलाया गया। बहुत बड़ी दावत थी। सेक्रेटरी ने हिदायत कर दी थी कि परेहजियों के परहेज का ख्याल रखा जाय क्योंकि गर्वनर साहब भी मीठा नहीं खा सकते। चीनी की जगह सैकरीन काम में ली गई और मीठा बनवाया गया। खाना बनाने वाले ने मात्रा में सैकरीन भी शक्कर की तरह डाल दी जिससे चीजें कड़वी हो गयीं। खाने के बाद मीठा आया। मुंह में डाला तो निहायत कड़वा। बड़ी मुश्किल से किसी तरह खत्म किया। परोसने वालों ने कहा और लीजियेगा। उनको नाराज कैसे करते, और ले लिया। बड़े इतमीनान से खाया। बाद में घर पर यह किस्सा सुनाया। ●

कौमी तालीम

अगर दुनिया के समाज में हिन्दुस्तानी समाज को अपनी अलहदा हैसियत कायम रखनी है और वह इस काबिल है कि बाकी रहे और दुनिया की जिन्दगी मालामाल हो, तो हमारे समाज का फर्ज है कि अपनी तालीम में उन खास चीजों का ख्याल रखे जिन्हें वह खास अपना समझता है या अपने गुजरे हुए जमाने को अपनी आने वाली नस्लों तक पहुँचाने का इन्तजाम करे, इसलिए कि सिर्फ किताबों में लिखे रहने से हमारा इतिहास जिन्दा नहीं रह सकता। यही कौमी तालीम है और बाकी सब ढकोसले हैं।

—डा० जाकिर हुसैन

डा० हुसैन का मानवीय दृष्टिकोण

डा० कन्हैयालाल सहल

डा० जाकिर हुसैन मूलतः एक शिक्षक तथा शिक्षा-शास्त्री हैं। ऐसे महापुरुष का पद्मभूषण तथा भारत-रत्न की उपाधि से सम्मानित होना तथा भारत जैसे विशाल राष्ट्र के राष्ट्रपति पद पर पहुँचना शिक्षण-जगत् को भी गौरवान्वित करता है। जामिया मिलिया में उपकुलपति रहते हुए जो महत्त्वपूर्ण कार्य उन्होंने किया उससे सब परिचित हैं। समस्याओं को सुलझाने का उनका दृष्टिकोण बड़ा स्वस्थ, सहानुभूतिपूर्ण तथा प्रभावक है। वे संतुलित मस्तिष्क के ऐसे सहृदय व्यक्ति हैं जिनकी आत्मीयता, सद्भाव तथा मधुर वाणी, आदि मानवोचित गुण बरबस सब को अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं।

सन् १९३० में प्रान्तों में जब राष्ट्रीय सरकार बनी थी, उस समय गांधी जी ने नई तालीम के संबन्ध में जो समिति बनाई थी, उसके अध्यक्ष डा० जाकिर हुसैन ही थे।

सन् १९२६ से १९४७ तक जामिया मिलिया ने जो प्रगति की, उसके मूल में जाकिर साहब का त्याग तथा उनके सहयोगियों की समर्पण-भावना ही प्रमुख कही जायगी। जामिया के प्रारंभिक वर्षों में आप अपने कपड़े स्वयं धोते, सीते और उन पर इस्तरी किया करते थे। अपने जूतों पर स्वयं पालिश करना तथा कभी-कभी अध-भूखे पेट रह जाना उनके त्यागमय जीवन का अंग बन गया था। २१ वर्षों तक केवल ७५) मासिक पर वे काम करते रहे।

सफाई पर भाषण देने की अपेक्षा जामिया मिलिया में आपने सफाई का व्यावहारिक आदर्श प्रस्तुत किया। कहते हैं कि एक बार हाईस्कूल के एक छात्र को आपने मैली सफेद टोपी पहने देखा। आप उसे घर ले गए, स्वयं

उसकी टोपी धोई तथा इस्तरी कर फिर लड़के के सिर पर रखी । इसके बाद उक्त लड़के ने कभी गन्दे कपड़े नहीं पहने । किसी भी व्यक्ति का सुधार उपदेश देने से नहीं अपितु स्वकीय आचरण द्वारा होता है ।

उन्होंने शिक्षा, शासन-पद्धति तथा संस्कृति आदि के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है, उससे स्पष्ट है कि वे अपने ढंग के मौलिक विचारक हैं ।

मैसूर विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह में भाषण देते हुए आपने कहा था "राज्य के प्रति बिना शर्त वफादारी होनी चाहिए । सरकार के प्रति वफादारी इस बात पर निर्भर करती है कि सरकार न्योयाचित कार्य कर रही है तथा उसकी गति-विधि राज्य के हित में है । किसी भी गणतन्त्रात्मक शासन-पद्धति में सरकार के विरुद्ध विचार प्रकट किए जा सकते हैं किन्तु कानून और व्यवस्था की रक्षा करना राज्य के हितों से सम्बद्ध है ।..................हमें 'राज्य' और 'सरकार' के विभेद को भली भाँति समझना चाहिए और अपने व्यवहार में परिणामदर्शी चिंतन (Consequent thinking) की आदत डालनी चाहिए ।................इसका परिणाम यह होगा कि आत्माभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए अपने अधिकारों की माँग करते समय हम यह भी सोचने लगेंगे कि इसका अन्तिम परिणाम क्या होगा ।"

राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन के निम्नलिखित शब्द स्वर्णाक्षरों में अंकित करने योग्य हैं ।—

"सारा भारत मेरा घर है और उसके लोग मेरा परिवार । मैं सच्ची लगन से इस घर को मजबूत और सुन्दर बनाने की कोशिश करूँगा, ताकि वह मेरे महान् देशवासियों का उपयुक्त घर हो ।..................हम में से हर एक को इस देश के नव-जीवन के निर्माण-कार्य में निरन्तर अपने-अपने ढंग से भाग लेना होगा । स्थिति ऐसी है कि हम काम करें, अधिक काम करें, शांति से और सच्ची लगन से ।"

हमारे वर्तमान राष्ट्रपति का व्यक्तित्व बहुत ही विनम्र तथा सुसंस्कृत है और उनका मानवीय दृष्टिकोण व्यक्ति, समाज, राष्ट्र तथा समूची मानवता के लिए अत्यन्त हितकर है ।

भारत जैसे धर्म-निःसंग राज्य के लिए हमारे वर्तमान राष्ट्रपति वरदान-स्वरूप हैं जिनके दीर्घ जीवन की हम सब हृदय से कामना करते हैं । ●

समाज के दीप स्तम्भ

एक शिक्षक होने के नाते डा० जाकिर हुसैन को शिक्षकों की समस्याओं से सहानुभूति है । वे यह स्वीकारते हैं कि जब तक शिक्षकों की आर्थिक स्थिति नहीं सुधरेगी तब तक शिक्षा के स्तर में सुधार होना कठिन है । परन्तु शिक्षकों को उनके महान् दायित्व का बोध कराते हुए उन्होंने कहा है—शिक्षक कुम्हार की तरह जब तक इतने चिराग नहीं गढ़ देता कि वे अपने प्रकाश से देश का कोना-कोना रौशन कर दें तब तक वह अपनी अंधेरी कुटिया में प्रकाश की आशा नहीं कर सकता । उसे पकाश पाने के लिये दीप गढ़ने होंगे । अंधेरे में रहकर भी प्रकाश फैलाना होगा । शिक्षक समाज का दीप स्तम्भ होता है ।

धर्म निरपेक्षता के प्रतीक

योगेशचन्द्र

सन् १९३१ में द्वितीय गोलमेज सम्मेलन के समय महात्मा गांधी ने लन्दन में कहा था कि "साम्प्रदायिक संघर्ष भारत वर्ष में ब्रिटिश साम्राज्य के साथ आया है।" और इसी सत्य के आधार पर उन्होंने यह भी विश्वास व्यक्त किया था कि जब भारत स्वतन्त्र हो जायेगा और सभी भारतीय मिलजुल कर देश की प्रगति में थ बटायेंगे, तब साम्प्रदायिक संघर्ष जैसी कोई बात भारत में नहीं रहेगी। स्वतन्त्र भारत वर्ष ने महात्मा गाँधी के इस विश्वास को साकार रूप प्रदान किया और उसके प्रमाण हैं डॉक्टर जाकिर हुसैन, जो अल्प संख्यक सम्प्रदाय के सदस्य हैं। इस तरह अल्प संख्यक सम्प्रदाय के सदस्य को अपने देश के सर्वोच्च पद पर देखने की कल्पना आज के तथाकथित प्रगतिशील पश्चिमी देश भी सम्भवतः न कर पायें, किन्तु इस क्षेत्र में भारत सर्वदा आगे रहा है। भारत की उदारवादिता, सहिष्णुता और जाति-पांति के हल्के भेदभाव से ऊपर उठे रहने की भावना विश्वविदित है और भारत को उस पर गर्व है। राष्ट्रपति के सर्वोच्च पद पर डॉक्टर जाकिर हुसैन को निर्वाचित करके भारत ने अपनी युगों पुरानी उन परम्पराओं को आगे बढ़ाया है, जिसका पोषण हमारे ऋषि-मुनियों और महान् दर्शनवेत्ताओं ने किया। हमारे संविधान निर्माताओं की भी यही अभिलाषा थी कि भारत की राजनीति साम्प्रदायिकता की गन्दगी से दूर रहे और यहाँ पर किसी भी भारतीय का सम्मान उसके धर्म या जाति के आधार पर न होकर, उसकी योग्यता के आधार पर हो। यही कारण है कि उन्होंने संविधान के लगभग प्रत्येक उपबन्ध और प्रत्येक शब्द में धर्मनिरपेक्षता के भावों का गहराई के साथ समावेश कर दिया। स्वतन्त्र भारत ने अपनी संस्कृति का सम्मान करने के साथ ही

संविधान निर्माताओं की भावनाओं को भी राष्ट्रपति डॉक्टर जाकिर हुसैन के रूप में साकार कर दिया। डॉक्टर हुसैन का राष्ट्रपति के पद पर निर्वाचन उन लोगों के मुंह पर करारा चपत है, जो भारत को केवल हिन्दुओं का देश कहते हैं और उसी खोखले आधार पर हमारे देश के कुछ भागों पर अपना आधिपत्य जमाने का दिवा स्वप्न देखते हैं।

जिस समय मई १९६७ में भारत में राष्ट्रपति का चुनाव हुआ, तब डॉक्टर जाकिर हुसैन तथा श्री सुब्बाराव के अतिरिक्त १५ अन्य उम्मीदवार भी थे, किन्तु इनमें से अधिकांश को तो एक भी मत प्राप्त नहीं हुआ तथा कुछ को बहुत ही साधारण मत मिले। इस प्रकार इस चुनाव में सीधी टक्कर डॉक्टर हुसैन तथा सर्वोच्च न्यायालय के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश श्री सुब्बाराव के बीच थी। उस समय कतिपय क्षेत्रों में, विशेषतः भारत के बाहरी क्षेत्रों में आशा व्यक्त की जा रही थी कि जिस देश में ८५ प्रतिशत हिन्दू रहते हों तथा केवल ५ प्रतिशत मुसलमान हों, वहाँ पर निश्चित ही हिन्दू उम्मीदवार की विजय होगी और मुस्लिम उम्मीदवार की पराजय। किन्तु ९ मई को जब निर्वाचिन हुआ और परिणाम घोषित किया गया तो उन क्षेत्रों में यह जान कर घोर आश्चर्य हुआ कि डॉ० हुसैन १०,६६३ मतों से विजेता रहे।

डॉक्टर हुसैन को कुल ४,७१ २४४ मत प्राप्त हुए तथा उनके निकटतम प्रतिद्वन्द्वी श्री सुब्बाराव को ३,६३, ९७१ मत मिले। मतदाताओं की संख्या की दृष्टि से भी डॉक्टर हुसैन, श्री राव की तुलना में कहीं अधिक आगे थे। संसद सदस्यों में से ४४७ ने डॉक्टर हुसैन का समर्थन किया तथा २७८ ने श्री सुब्बाराव का। राज्य विधायकों में से २१६६ ने डॉक्टर हुसैन के पक्ष में मतदान किया तथा १८२९ ने श्री सुब्बाराव के पक्ष में। साधारणतः मतदान दल के आदेश पर ही होता है और इसलिए सम्भवतः यह शंका व्यक्त की जाये कि डॉक्टर हुसैन के समर्थन में बहुमत इसलिए आया कि कांग्रेसी मतदाताओं की संख्या तुलना में अधिक थी। किन्तु उल्लेखनीय है कि केवल कांग्रेसी राज्यों से ही नहीं अपितु अधिकतर गैर कांग्रेसी सरकार वाले राज्यों से भी डॉक्टर हुसैन को श्री राव की तुलना में अधिक मत मिले। उदाहरणार्थ हम पश्चिमी बंगाल, पंजाब तथा उत्तर प्रदेश को ले सकते हैं, जहाँ पर गैर कांग्रेसी सरकारें होते हुए भी डॉक्टर हुसैन ने श्री राव की तुलना में अधिक मत प्राप्त किये। इसके विपरीत आन्ध्र प्रदेश तथा राजस्थान में कांग्रेसी सरकारें होते हुए भी श्री राव को डॉक्टर हुसैन की तुलना में अधिक मत प्राप्त हुए। ये आंकड़े इस बात को सिद्ध करते हैं कि गत निर्वाचनों में राष्ट्रपति पद के लिए मतदाताओं ने साम्प्रदायिकता के आधार पर मतदान नहीं किया और अपने दल विशष के अंकुश ने भी उन्हें बहुत अधिक प्रभावित नहीं किया। एकमात्र विचार जो उनके सामने रहा, वह था जनतन्त्रीय भारत का धर्मनिरपेक्ष स्वरूप। भारत का जनतन्त्र और उसका धर्मनिरपेक्ष स्वरूप एक ही तस्वीर के दो पहलू हैं। हमारा जनतन्त्र हमारी धर्मनिरपेक्षता पर निर्भर है और धर्मनिरपेक्षता का अस्तित्व जनतन्त्र के साथ जुड़ा हुआ है। सम्भवतः इसी तथ्य को दृष्टि में रखते हुए डॉक्टर जाकिर हुसैन को उनकी विजय पर बधाई देते हुए श्री सुब्बाराव ने कहा था कि "इस चुनाव ने भारतीय जनतन्त्र की जड़ों को और अधिक मजबूत बना दिया है।"

जिस तरह भारतीय जनतन्त्र और धर्मनिरपेक्षता एक ही तस्वीर के दोपहलू हैं, उसी तरह से डॉक्टर हुसैन और धर्मनिरपेक्षता भी एक ही चीज के दो नाम हैं। यों तो डॉक्टर हुसैन को अपने बुजुर्गों से विरासत के रूप में धर्म में अटूट निष्ठा ही प्राप्त हुई थी और उसके बाद में भी आपने इस्ला-

मिया हाई स्कूल इटावा तथा अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय जैसी मुस्लिम संस्थाओं में शिक्षा प्राप्त की, किन्तु तब भी आपकी धर्मनिष्ठा कभी भी संकुचित दायरे में न बंध सकी। डॉक्टर हुसैन आज भी सभी धर्मों के गीतों को बड़ी रुचि के साथ सुनते हैं और उनमें तन्मय हो जाते हैं। उनका धर्म इन्सानियत का धर्म है, जिसके सिद्धान्त न कभी बदलते हैं और न कभी इन्सान को धोखा देते हैं। उनके लिए धर्म का अर्थ है--'वे उसूल और उनपर अमल करना, जो इन्सान के दिल को बुलन्दियों पर पहुँचाते हों।' इस सन्दर्भ में हमें महात्मा गांधी के वे शब्द अनायास ही याद आजाते हैं, जो वे अक्सर कहा करते थे—मैं अच्छा हिन्दू हूँ और इसीलिए मैं एक अच्छा मुसलमान और एक अच्छा ईसाई भी हूँ।' सचमुच ही अच्छा इन्सान हर कहीं अच्छा ही रहता है, चाहे वह किसी भी धर्म का अनुयायी क्यों न हो।

डॉक्टर जाकिर हुसैन प्रारम्भ से ही राष्ट्रवादी रहे हैं। वे महात्मा गाँधी के सर्वाधिक प्रिय और विश्वसनीय शिष्यों में से थे। जब मुस्लिम लीग अंग्रेजों के संरक्षण में रहकर कांग्रेस के विरुद्ध भयंकर रूप से साम्प्रदायिक विष का वमन कर रही थी और उसने अनेक काँग्रेसी मुसलमानों को संकुचित साम्प्रदायिकता में घसीटने में सफलता प्राप्त भी करली थी, उस समय भी डॉक्टर हुसैन अपने सिद्धान्तों पर अडिग थे और राष्ट्र के प्रति उनका प्रेम अटूट था। डॉक्टर हुसैन का अमर राष्ट्र प्रेम, उनके उस वक्तव्य से स्पष्ट झलकता है, जो उन्होंने १३ मई १९६८ को राष्ट्रपति पद का कार्यभार संभालने के बाद दिया था। उन्होंने देश के प्रति निष्ठावान रहने की शपथ लेते हुए कहा था--'मैं धर्म व भाषा के भेदभाव के बिना अपने देश के प्रति निष्ठा की शपथ लेता हूँ। मैं अपने देश को मजबूत और प्रगतिशील बनाने के लिए तथा जाति, रंग व जन्म के भेदभाव के बिना, जनकल्याण की शपथ लेता हूँ।" डॉक्टर हुसैन के इन शब्दों में उनके निश्छल प्रेम, तथा अटूट धर्मनिरपेक्षता की स्पष्ट प्रतिध्वनि है।

डॉक्टर हुसैन जीवन के हर क्षेत्र में स्पष्ट और निर्भीक वक्ता रहे हैं। धर्म के क्षेत्र में भी यदि कभी उन्हें कोई खलने वाली बात नजर आई तो वहाँ भी वे चूके नहीं। अपनी वही बेलाग और दो टूक बात का अन्दाज। राष्ट्रीय एकीकरण सम्मेलन के समय जब देश में एकता के प्रश्न पर गम्भीर विचार विनिमय हो रहा था तो उस समय उन्होंने निर्भीकता और स्पष्टता से, व्यवहारिक स्थिति पर सदस्यों का ध्यान आकर्षित करते हुए कहा कि "यह आश्चर्यजनक है कि स्वतन्त्र तथा धर्मनिरपेक्ष भारत में मौलाना आजाद जैसे स्तर के व्यक्तियों के लिए भी मुस्लिम बहुसंख्यक निर्वाचन क्षेत्र ढूंढने पड़ते हैं।" और डॉक्टर हुसैन की इस स्पष्टोक्ति ने सम्मेलन के सदस्यों को इस पर विचार करने के लिए बाध्य किया।

स्वर्गीय प्रधान मन्त्री पंडित जवाहरलाल नेहरू की अभिलाषा थी कि भारतीय राजनीति में मुख्यतः दो परम्परायें अवश्य स्थापित की जायें। प्रथम--उपराष्ट्रपति, आगामी निर्वाचन में राष्ट्रपति बनाया जाये तथा द्वितीय—देश के तीन मुख्य पदाधिकारियों:—राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति तथा प्रधान मन्त्री में कोई भी एक, किसी अल्प संख्यक समुदाय का हो तथा दूसरा दक्षिणी भारत का निवासी हो। भूतपूर्व उपराष्ट्रपति डॉक्टर जाकिर हुसैन का राष्ट्रपति के पद पर निर्वाचन, स्वर्गीय नेहरू जी के द्वारा स्थापित इन परम्पराओं की दिशा में ही अगला कदम है और आशा है, निकट भविष्य में ये दो परम्पराएँ हमारे संविधान का मुख्य अलिखित भाग हो जायेंगी। राष्ट्रीय एकता तथा देश में धर्मनिरपेक्षता को सुरक्षित रखने के लिए इस प्रकार की परम्पराओं को बनाये रखना अत्यन्त आवश्यक है।

डॉक्टर जाकिर हुसैन सदैव की भाँति आज भी धर्मनिरपेक्षता के अवतार, राष्ट्र प्रेम के प्रतीक, राष्ट्रीय एकता के मुख्य सूत्र तथा देश का गर्व हैं। अपनी विद्वता और सरल व्यक्तित्व का प्रभाव उन्होंने देश विदेश, सर्वत्र डाला है। डॉक्टर हुसैन केवल ध्वजमात्र राष्ट्रपति नहीं, बल्कि एक कुशल प्रशासक तथा कर्मठ नेता हैं। जहाँ भी देश या विदेश में कोई महत्वपूर्ण घटना होती है, हमें राष्ट्रपति की निष्पक्ष और प्रेममयी वाणी सुनाई देती है। उनके लिए धर्म और जाति की कोई सीमा नहीं। भारत में निवास करने वाली सभी जातियाँ और सभी धर्म उनके अपने हैं। इसीलिए वे हमें कभी हिन्दुओं के गुरु श्री शंकराचार्य के सम्मान में सिर झुकाते नजर आते हैं तो कभी सिखों के पवित्र हथियारों का स्वागत करते हुए। नमाज और रामलीला में वे एक ही श्रद्धा से सम्मिलित होते हैं। वे जितने मुसलमानों के अपने हैं, उतने ही हिन्दुओं के भी। वे पूरे राष्ट्र के हैं। राष्ट्र ने उन्हें इतना ऊँचा पद देकर उनकी योग्यता का सम्मान किया है और अब वे विश्व में राष्ट्र का नाम ऊँचा करके देश को उच्च सम्मान दिलाने में प्रयत्नशील हैं। ●

What we should do-

"For the sake of the future of our land, for the sake of our children..............., we should create in the life that surrounds the schools and each one of us do something to build up that climate of opinion, those habits of helpfulness, co-operation, objectivity of service and loyalty to the highest cause in which alone the true school, like true humanity can thrive. The reconstruction of our educational work and the moral regeneration of the people are inextricably interlinked"

-Dr. Zakir Hussain.

साहित्य सेवी

—सत्यपाल गुप्त

भारत के प्रथम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद भारतीय संस्कृति के अनन्य उपासक एवं हिन्दी के प्रबल समर्थकों में से थे। दूसरे राष्ट्रपति डा० एस० राधाकृष्णन् संसार प्रसिद्ध दार्शनिक थे, तो भारत के तीसरे राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन जहां विख्यात शिक्षा शास्त्री हैं वहां एक बहुत बड़े साहित्यकार भी हैं।

आप डा० राजेन्द्र प्रसाद के समान जहाँ देश की अनेक भाषाओं के विद्वान हैं, वहाँ अपने में साहित्यकार का कोमल हृदय रखते हैं। यह हर्ष का विषय है कि जहां देश रत्न डा० राजेन्द्र प्रसाद संस्कृत, हिन्दी और उर्दू के विद्वानों में से थे वहां डा० जाकिर हुसैन उर्दू, फ़ारसी तथा अरबी के चोटी के विद्वान एवम् लेखक हैं। एक सच्चे साहित्यकार के अनुरूप ही आप प्रचार से सदा दूर रहे तथा साहित्य साधना में आपने जीवन का बहुमूल्य समय लगाया। आपने साहित्य के क्षेत्र में स्थायी महत्व की रचनाएं तो दी ही हैं, आपकी एक विशेषता यह भी है कि आप भारत की सभी राष्ट्रीय भाषाओं के विकास के लिए शुभ कामनाएं रखते हैं।

डा० जाकिर हुसैन ने शिक्षा के क्षेत्र मे एक नया मोड़ दिया है। शिक्षा के क्षेत्र में आने वाली कठिनाइयों एवम् समस्याओं का आपने न केवल गम्भीर अध्ययन किया है बल्कि उनका समाधान भी प्रस्तुत किया है। आप जहाँ शिक्षा सम्बधी विषयों एवम् देश की आर्थिक समस्याओं सम्बन्धी सुलझे हुए विचार रखते हैं वहां देश में बुनियादी शिक्षा के प्रवर्तकों में अपना महत्वपूर्ण स्थान भी रखते हैं। आपने शिक्षा के क्षेत्र में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के विचारों को सही ढंग से न केवल

प्रस्तुत ही किया है बल्कि उन का अनुसरण करने के लिए मार्ग प्रशस्त किया है।

इस लेख में आपके द्वारा रचे गए साहित्य का संक्षिप्त परिचय देने का छोटा–सा प्रयास किया गया है। वैसे यदि आपकी सभी कृतियों की विशेषताओं का उल्लेख किया जाय तो यह एक बृहद् ग्रन्थ का विषय बन सकता है। आपके साहित्य को मुख्य रूप से हम पांच भागों में विभाजित कर सकते हैं। संसार की प्रसिद्ध पुस्तकों के अनुवाद, (२) विभिन्न विषयों पर मूल पुस्तकें, (३) अन्तर्राष्ट्रीय विषयों पर समालोचनाएं, (४) विभिन्न विश्वविद्यालयों में समय-समय पर दिए गए दीक्षान्त भाषण तथा (५) शिक्षा सम्मेलनों में दिये गए भाषण। आपकी इस साहित्य साधना का प्रारम्भ १९२२ से कहा जा सकता है।

अनुवाद के क्षेत्र में आपने एडविन कैन्नन की पुस्तक 'ऐलीमैन्ट्री पोलिटिकल एकोनामी' एवं प्लेटो की प्रसिद्ध पुस्तक 'रिपब्लिक' तथा फ्रेडरिक की जर्मन पुस्तक 'नेशनल एकोनामी' आदि का सफल अनुवाद योग्यतापूर्ण ढंग से किया है।

शिक्षा विषयों पर आपके भाषणों की पुस्तक 'तालीमी खुदबात' मार्च १९४३ में दूसरी पुस्तक 'एज्यूकेशनल रिकन्स्ट्रक्शन इन इण्डिया' १९५९ में तथा तीसरी पुस्तक 'दी डायनमिक यूनिवर्सिटी' १९६५ में प्रकाशित हुई, जो आपके शिक्षा संबंधी स्पष्ट विचारों एवं गहन अध्ययन का प्रमाण हैं।

राजनीति पर आपकी पुस्तक ईथिक्स एण्ड दे स्टेट है। इन महत्वपूर्ण पुस्तकों के अतिरिक्त आपने बच्चों के लिए भी साहित्य लिखा है। आपकी पुस्तक 'अबोखाँ की बकरी, 'चौदह और कहानियाँ' इस दिशा में एक सफल एवं महत्वपूर्ण देन है।

इन महत्वपूर्ण रचनाओं के अतिरिक्त आपने संसार के प्रसिद्ध विद्वानों एवं विचारकों के अनेक लेखों एवं भाषण का अनुवाद किया है जो आपके अंग्रेजी आदि विदेशी भाषाओं के गम्भीर अध्ययन एवं उन पर पूर्ण अधिकार का परिचायक है। आपके ये लेख विभिन्न पत्रिकाओं में समय-समय पर प्रकाशित होते रहे हैं। इन सफल अनुवादों के साथ-साथ आपने विभिन्न समस्याओं एवं देश विदेश मे घटित महत्वपूर्ण घटनाओं पर भी अपने अनुपम लेखों में विचार दिये हैं, जो साहित्य की स्थायी निधि हैं।

देश को अपने इस महान् शिक्षा शास्त्री, भाषाविद्, सुलझे हुए राजनीतिज्ञ एवं सफल तथा महान् विचारक साहित्यकार राष्ट्रपति पर अभिमान है। राष्ट्र ने आपको इस पद पर निर्वाचित करके जहां इस पद की शोभा बढ़ाई है वहां एक साहित्यकार को वास्तविक आदर भी प्रदान किया है। आपका इस पद को अलंकृत करना राष्ट्र एवं राष्ट्र के साहित्यकारों के लिए गौरव की बात है। ●

कहानी लेखक

अब्दुल वली बख्श कादरी

जाकिर साहब १९३६ में जब प्रिन्सिपल बने तो जामिया मिलिया ने अपनी शैक्षिणिक गतिविधियां नई दृढ़ता के साथ शुरू कीं। बच्चों की शिक्षा व इसकी समस्या की ओर ध्यान देने वाले उस समय बहुत कम थे। उर्दू साहित्य बच्चों के साहित्यकार नाम से अपरिचित ही था। बच्चों के लिये कवितायें तो लिखी जा रही थीं पर गद्य लगभग शून्य ही था। केवल मौलवी मुहम्मद इस्माइल मेरठी की स्कूली किताबें ही बच्चों की पुस्तकों की एकमात्र निधि थी। जाकिर साहब ने एक शिक्षक व विचार के रूप में बच्चों की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया और उर्दू में बच्चों के साहित्य को एक महत्त्वपूर्ण शैक्षणिक आवश्यकता बताया। तदनुसार एक पत्रिका 'पयामे तालीम' प्रारंभ हुई। कुछ ही समय बाद यह पत्रिका बच्चों का पयामे तालीम हो गयी।

जामिया शायद पहला स्कूल है, जिसने बच्चों के साहित्य की तरफ ध्यान दिया और शिक्षा व मनोविज्ञान के प्रकाश में ऐसी पुस्तकें तैयार करना शुरू किया जो हर दृष्टि से बच्चों के लिए ही हों। बच्चों के लिए किस्से-कहानियां लिखना आम तौर पर छोटा काम समझा जाता है। बड़े और प्रसिद्ध साहित्यकार इस पर कुछ लिखना अपनी शान के खिलाफ समझते हैं। और उस वक्त तो इसका रिवाज ही नहीं था। जामिया ने इस परम्परा के प्रति विद्रोह किया व बच्चों के साहित्य पर विशेष ध्यान दिया। पयामे तालीम ने अपने नाम व काम को एक कर दिखाया।

जाकिर साहब की बहुत सी कहानियां विभिन्न समयों में इसी पत्रिका के माध्यम

से सामने आईं। ये कहानियां उनकी एक लड़की रकिया रिहाना के नाम से जो कि अब मर चुकी हैं छपती थीं। इन कहानियों की संख्या यद्यपि कम है फिर भी बच्चों के साहित्य की एक बड़ी जरूरत उन्होंने पूरी की है।

जाकिर साहब ने आज से लगभग ४० वर्ष पहले जब बच्चों के लिये कहानी लिखना शुरू किया था, उस समय स्वाधीनता का आन्दोलन जोरों पर था। इसलिए उनके सामने अपने प्रिय देश के लिए जान पर खेल जाने वालों व सच्चे पुजारियों को पैदा करने का मुख्य काम था। जामिया का अस्तित्व ही स्वतंत्रता संग्राम की तड़प का नतीजा था। बच्चों की कहानियाँ लिखते वक्त वे कैसे इस उद्देश्य से लापरवाह रह सकते थे। उनकी कहानी "अब्बूखां की बकरी" आजादी की सच्ची लगन पैदा करती है और इससे बलिदान का सबक मिलता है। इसमें वे कहते हैं:—

'अलमोड़े में एक बड़े मियां रहते थे। उनका नाम अब्बूखां था। उन्हें बकरियां पालने का बहुत शौक था। अकेले आदमी थे, बस एक दो-बकरियां रखते···अब्बू खां बड़े गरीब थे और बदनसीब। उनकी सारी बकरियां भी कभी न कभी रस्सी तुड़ाकर भाग जाती थीं। वे भागकर पहाड़ पर चली जाती थी। वहां एक भेड़िया रहता जो उन्हें खा जाता। एक दिन वे एक बकरी मोल लाये थे। यह अभी बच्ची ही थी। अब्बू खां ने सोचा कि कम उम्र बकरी लूंगा तो शायद मेरे से हिल जाये। उन्होंने इसका नाम चांदनी रखा। लेकिन एक दिन चांदनी भी निकल भागी। पहाड़ पर पहुँची तो भेड़िये का सामना हो गया। चांदनी ने भेड़िये के आगे सिर नहीं झुकाया। वह खूब जानती थी कि बकरियां भेड़ियों से पार नही पा सकतीं। वह तो केवल यह चाहती थी कि अपनी क्षमता के मुताबिक मुकाबिला करे। जीत-हार पर अपना काबू नहीं। वह तो अल्लाह के हाथ है। मुकाबला जरूरी है। चांदनी रात भर भेड़िया का मुकाबला करती रही पर सुबह होते होते चांदनी बेदम हो जमीन पर गिर पड़ी। उसका सफेद बालों का लिबास खून से सुर्ख था। भेड़िया उसे दबोच कर खा गया।

पर कहानी अभी खत्म नहीं होती। उसका असली मकसद बाकी है। कहानी यूं खत्म होती है। ऊपर पेड़ पर चिड़ियां बैठी देख रही थीं। उनमें यह बहस चल रही थीं कि जीत किसकी हुई। सब कहती हैं कि भेड़िया जीता; पर एक बूढ़ी चिड़िया बोली नहीं, चांदनी जीती।

जाकिर साहब की एक और कहानी 'उकाब' भी स्वाधीनता की भावना को लेकर है। इसमें शुरू में पहाड़ पर घास के जमने का जिक्र इस तौर पर है कि वह दृढ़ता की भावना को सर्वोपरि सिद्ध करती है। आगे चलकर दिखाया गया है कि एक उकाब किसी भी लालच से कैद रहने पर राजी नहीं होता। वह लड़ता रहता है और अन्त में आजाद हो जाता है। तब वह कहता है—खुदा का शुक्र है फिर आ पहुँचा अपने वतन में। फिर पा लिया अपना देश।

आजकल राष्ट्रीय एकता के सिलसिले में खास प्रयत्न किये जा रहे है। लेकिन जाकिर साहब शिक्षा के इस पहलू को पहले से ही पहचानते थे। उनकी कहानी 'अन्धा घोड़ा' के ये चन्द उद्धरण देखिये अब सुनो, उसी शहर आदिलाबाद में एक बड़ी मस्जिद थी और एक बड़ा मन्दिर। उसमें नेक मुसलमान और हिन्दू आकर अपने-अपने तरीके से अल्लाह का नाम लेते व उसको याद करते थे।····घंटे के बजते ही शहर के अच्छे अच्छे मुसलमान व हिन्दू वहां आ जाते।

इसी तरह उनकी कहानी 'आओ घर-घर खेलें।' में कई बच्चे मिलकर खेलते हैं। उनमें हिन्दू और मुसलमान भी हैं। वे एक ही घर में खेलते हैं। एक ही खेल खेलते हैं क्योंकि उन सबकी घरेलू जिन्दगी एक जैसी है। ऐसे दृष्टान्त से उन्होंने बच्चों को पारस्परिक सद्भाव की शिक्षा दी है।

आजकल जबकि राष्ट्रीय एकता के लिये विभिन्न उपाय काम में लिये जा रहे हैं, बच्चों के साहित्य की ओर विशेष ध्यान देने की जरूरत है। बच्चों के अन्दर अलगाव का बीज ऐसी ही बातों से पड़ता है जो कि उन्हें घृणा करना सिखाती हैं।

बच्चों की जिन्दगी में स्वास्थ्य की ओर भी ध्यान देने की आवश्यकता है। 'सईदा की अम्मा' में खुली हवा का महत्व बड़ी खूबी से समझाया गया है। एक कहानी 'मुन्नी की बीमारी' में भी स्वास्थ्य की शिक्षा दी गई है। उसमें एक बच्चा डाक्टर बनता है और कहता है देखो मुन्नी के तौलिये से कोई मुंह न पोंछे अन्यथा उसकी आंखें भी दुखनी आ जायेंगी।

जरा बच्चा डाक्टर को देखिये-चुन्नू ने मुन्नी के कपड़े उतारे। डाक्टर साहब ने उंगली से इधर ठोंका, उधर ठोंका, मिट्टी का प्याला छाती पर रखा और—मुन्नी, कहो एक, दो तीन, हां एक दो तीन। इस तरह बच्चों की अपनी जिन्दगी को उन्होंने इस रंग में पेश किया कि उसमें वे सही जीवन की शिक्षा ले सकें।

जाकिर साहब की हर कहानी का हर विषय बच्चों के लिए विशेष महत्व रखता है। उदाहरणार्थ 'इसी से ठंडा उसी से गरम' में विज्ञान के बारे में बताया गया है। एक कहानी 'मुरगी का निराला बच्चा!' में हवा के रुख का ज्ञान कराया गया है। 'सच्ची मुहब्बत' में लालच की बुराइयां दर्शाई गयी हैं। 'जुलाहा और बनिया' में नेकी का फायदा व लालच का नुकसान दिखाया गया है। 'आखिरी कदम' में यह अनुभव कराया गया है कि नाम और प्रदर्शन से दूर रहकर काम करना चाहिये। 'मुर्गी अजमेर चली' में स्वार्थ की बुराइयां बताई गई हैं। 'छिद्दू' और पुर्गी' जो कढ़ाव से निकल भागी कहानियों में उन्होंने बच्चों में बहादुरी की भावनाएं भरने की कोशिश की है।

बच्चों के लिए नैतिक कहानियां लिखना बहुत कठिन है। प्रायः बाल साहित्य के नाम पर सलाह ही दी जाती है। अच्छा साहित्यकार उपदेश नहीं देता, वह अपने दृष्टान्त से ही यह लक्ष्य पूरा करता है। जाकिर साहब की कहानियों की भी यही प्रमुख खूबी है। वे एक अच्छे शिक्षक के रूप में बच्चे को उस स्थान पर पहुंचा देते हैं जहां से वह स्वयं सब कुछ समझ सकता है। उदाहरणार्थ सफाई के बारे में बताने के लिए वे इसकी महत्ता बताने के बजाय कहते हैं-हम गलीज आदमी को अन्दर नहीं आने देते या उनका घर बहुत साफ था।

अच्छी बातें सिखाने के लिए नसीहत की जरूरत नहीं होती बल्कि वे ये कहकर गुजर जाते हैं "ये हम लोगों से जरा अच्छे होते हैं।" ●

सारा भारत जिनका घर है

—श्रीमती कुन्तल गोयल

भारत की आजादी के इतिहास में जिन राष्ट्रप्रेमियों व देशरत्नों की गरिमा है उनमें एक नाम है ऐसे व्यक्तित्व का जो मुसलमान होते हुए भी पहले भारतीय हैं बाद में और कुछ। राष्ट्रपति के पद पर सुशोभित भारतीय संस्कृति का अनन्य प्रेमी यह व्यक्तित्व है डा० जाकिर हुसैन का जो जन्मसे धर्मनिष्ठ मुसलमान होते हुए भी राष्ट्रीयता के पोषक हैं। चारित्रिक सौष्ठव के द्वारा व्यक्तित्व के विकास एवं मानवीय उच्च आदर्शों के प्रतिष्ठापन में अपने को पूर्णतया समर्पित करने की उत्कट लालसा से पूर्ण निरन्तर उस ओर अग्रसर होने की तीव्रतम आकांक्षा के प्रतीक वे आज हम भारतीयों के लिए एक उदाहरण बन गए हैं। खादी की शुभ्र पोशाक में आवेष्ठित उन का सरल, उदार हृदय और ज्ञान गरिमा तथा भावपूर्ण आस्था की गहनता लिए उनकी आंखें जिन पर काला चश्मा उनके व्यक्तित्व को और भी आकर्षण प्रदान करता है जोवन की आस्था के प्रतीक है। अपने सिद्धांतों में अचल सेनानी की तरह वे सुदृढ़ भारत की तस्वीर को सुन्दर और भी सुन्दर बनाने के लिए कृत संकल्प हैं।

कट्टर मुस्लिम परिवार में जन्म लेकर भी वे कहीं भी रूढ़ि ग्रस्त नहीं हैं वरन् उनके विचारों की उदारता और सदाशयता पर गांधीवादी युग का प्रभाव देखा जा सकता है। गांधीजी के प्रभाव में उनके विचारों से ओतप्रोत होकर उन्होंने स्वयं ही अपना पथ निर्धारित किया। वे साम्प्रदायिकता से सदैव दूर रहे और मुस्लिम लीग से प्रभावित न होकर उन्होंने गांधी मार्ग का अनुसरण किया।

१६१० में गांधीजी की विचार धारा का स्वागत करते हुए उन्होंने राज्य द्वारा चलाये जाने वाले विश्वविद्यालयों का बहिष्कार कर

राष्ट्रीय कालेज जामिया मिलिया की स्थापना की। उनकी दृष्टि में राष्ट्र का उत्थान शिक्षा और संस्कृति में नया दृष्टिकोण अपनाने तथा राष्ट्रीय चेतना को नया स्वरूप देने से ही सम्भव हो सकता है। अंग्रेजी शिक्षा से व्यक्ति का विकास कदापि सम्भव नहीं है। जामिया मिलिया एक ऐसी शैक्षणिक संस्था है जो जीवनयापन तथा ज्ञानार्जन की दृष्टि से छात्रों को सुयोग्य नागरिक बनाने तथा उनमें कलात्मक अभिरुचि उत्पन्न करने के लिए विशेष प्रेरणा देती है। लगभग ३० वर्ष तक अत्यन्त अल्प वेतन पर इसके उपकुलपति के रूप में उन्होंने उत्साह एवं लगन के साथ अपने कार्य को आगे बढ़ाया। हिन्दुस्तानी तालीमी संघ, सेवाग्राम के अध्यक्ष के रूप में उन्होंने महत्वपूर्ण कार्य किया। पुस्तकीय ज्ञान और व्यवहारिक शिक्षा को सम्मिलित कर उन्होंने महात्मा गांधी की बुनियादी शिक्षा का प्रसार किया। संस्कृति और शिक्षा के क्षेत्र में उनकी सेवाओं के मूल्यांकन स्वरूप १६५४ में उन्हें पद्म विभूषण से भी अलंकृत किया गया।

देश के राष्ट्रपति निर्वाचित होने के उपरान्त भारतीय संस्कृति के प्रति उनकी आस्था एवं देश प्रेम उनके इन शब्दों से प्रकट होता है जो उन्होंने राष्ट्र के प्रति संकलिपत होते हुए कहे थे 'यह एक प्राचीन देश के लोगों का युवा राष्ट्र है, जिन्होंने हजारों सालों में और अनेक जातियों के सहयोग से देश काल से परे परम तत्वों को अपने जीवन में अपने ढंग से उतारने का प्रयास किया है। मैं उन तत्वों का अनुसरण करने की प्रतिज्ञा करता हूँ।........शिक्षा राष्ट्र के लक्ष्यों को प्राप्त करने का मुख्य साधन है। जैसी उसकी शिक्षा होती है, वैसा ही उसका स्वरूप भी हो जाता है। इसलिए मैं अपने अतीत की समग्र संस्कृति के प्रति चाहे वह जिस स्रोत से प्राप्त हुई हो, चाहे उसके निर्माण में जिस किसी ने भी योगदान किया हो, अपनी निष्ठा व्यक्त करता हूँ।.......सारा भारत मेरा घर है और उसके लोग मेरा परिवार हैं। मैं सच्ची लगन से इस घर को मजबूत और सुन्दर बनाने की कोशिश करूंगा ताकि वह मेरे महान् देशवासियों का उपयुक्त घर हो जो कि एक सुन्दर जीवन के निर्माण के प्रेरणापूर्ण कार्य में लगे हुए हैं।

गांधीजी ने उनके गुणों की परख करते हुए एक बार कहा था 'जाकिर हुसैन मेरे प्यारे दोस्त हैं।' राजनीति से दूर रह कर ही उन्होंने गांधीजी के आदर्शों के लिए ठोस काम किया है।

वे पूर्ण मानव है जिनके कोमल दिल में गरीबों के लिए आँसुओं का लबालब समुन्दर लहरा रहा है। दया, औदार्य और सद्भावना लिए हुए वे हर इन्सान के निकट हैं, चाहे वह उनका चपरासी हो या ड्राइवर या दूसरा कोई बेचारा छोटा व्यक्ति। जीवन की वेदना के शिकार पीड़ित मानव के प्रति उनके हृदय में अथाह करुणा है लेकिन ऐसी करुणा नहीं कि वह करुणा मन ही मन बिसूरती रहे बल्कि उनके लिए कुछ करने के लिए तत्पर। साहस, शक्ति और सूझबूझ के ऐसे धनी विरले ही मिलेंगे। जामिया के आर्थिक अभाव को अनुभव कर उन्होंने कार्यकारिणी के समक्ष जो पार्थना-पत्र प्रस्तुत किया था वह उनके व्यक्तित्व को स्पष्ट करता है। उन्होंने कहा था आप बकरी का खाना देकर मुझ से शेर का काम लीजिये। इस वक्त यही जरूरी है। और उन्होंने अपना वेतन घटाने की प्रार्थना की।

वे छात्रों में भारत का भविष्य देखते हैं। विद्यालय उनके लिए शिक्षा के पवित्र मन्दिर हैं। इसी लिए उन्होंने राजनीतिज्ञों से अनुरोध किया कि वे विश्वविद्यालयों को अपने संकीर्ण और अल्पकालिक उद्देश्यों की पूर्ति का साधन न बनायें। एक शिक्षक होने के नाते उन्हें शिक्षकों की स्थिति के प्रति गहरी

सहानुभूति है। उन्होंने कहा भी था—"जब तक शिक्षकों की आर्थिक स्थिति नहीं सुधरेगी तब तक शिक्षा के स्तर में सुधार होना कठिन है।" किन्तु शिक्षकों का दायित्व महान् है। शिक्षकों के लिए उनका संदेश है—शिक्षक कुम्हार की तरह जब तक इतने चिराग नहीं गढ़ देता कि वे अपने प्रकाश से देश का कोना-कोना रौशन कर दें तब तक वह अपनी अँधेरी कुटिया में प्रकाश की आशा नहीं कर सकता। उसे प्रकाश पाने के लिए दीप गढ़ने होंगे। अँधेरे में रह कर भी प्रकाश फैलाना होगा। शिक्षक समाज और सारे देश का दीप स्तम्भ है। अत: वह गिरने व बुझने भी न पाये—यह देखना समाज की जिम्मेदारी है।

उन्हें इतिहास से प्रेम है। विविध भाषाओं के प्रति उनकी रुचि है। इसीलिए विदेशों में वे वहां के संग्रहालयों व पुस्तकालयों को देखना कभी नहीं भूलते। उनका ज्ञान विशद् है। उनकी रुचियां उनकी परिष्कृत बौद्धिक एवं मानसिक दक्षता की द्योतक हैं।

राष्ट्रपति के महान् पद पर आसीन वे एक ऐसे व्यक्ति हैं जिनकी दृष्टि देश के कोने-कोने तक जाती है। देश की सर्वांगीण उन्नति में वे महिलाओं की उन्नति को एक आधार मानते हैं। घर उनके लिए किसी जन्नत से कम नहीं है, जहां जीवन फूलता-फलता है और व्यक्तित्व गढ़ा जाता है। एक बार उन्होंने महिलाओं से यह कहा भी था कि पढ़ लिखकर आप कोई भी व्यवसाय अपनायें, मगर मेरी इतनी प्रार्थना है कि घर को न भूलें। घर ही राष्ट्रीय जीवन की नींव है। घर ही संस्कृति के मन्दिर हैं। घर में ही मनुष्य में वे गुण पनपते हैं जो हमारे सुखद जीवन के मुख्य आधार हैं। उन्होंने देश की जटिल परिस्थितियों में शिक्षित नारी की भूमिका का उल्लेख करते हुए कहा है—'मैं चाहता हूँ कि आप सब यह संकल्प लें कि आपके प्रभाव क्षेत्र में किसी बच्चे से खेलने और हंसने का अधिकार नहीं छीना जायगा, किसी बच्चे की वृद्धि का विकास नहीं रुकने पायगा और किसी भी बच्चे को आत्मनिर्भर बनाने के लिए आवश्यक स्नेह और लाड़-प्यार से वंचित नहीं रखा जायगा।" नेहरूजी की तरह उन्हें भी बच्चों से अपार प्यार है। भोले बच्चों की भोली आंखों में उन्हें भारत की वही तस्वीर नजर आती है जो तस्वीर गांधी के सपनों की तस्वीर थी जिसमें राम राज्य की मनोरम कल्पना है। इसी तस्वीर के नयनाभिराम रंगों में वे इस कदर डूबे हुए हैं कि सारा भारत उन्हें एक घर नजर आता है—एक परिवार नजर आता है; एक ऐसा परिवार जहां का हर सदस्य एक सुन्दर जीवन के निर्माण के प्रेरणापूर्ण कार्य में लगा हुआ है—जिसमें इन्साफ और खुशहाली का अपना स्थान है, जहां रंग और जाति-धर्म का भेद नहीं है, जहां क्षेत्र और भाषा का भी कोई प्रश्न नहीं है, जहां निष्ठा, प्रेम, त्याग, सेवा और सच्चाई का प्रकाश है। यह तस्वीर डा० जाकिर हुसैन के राष्ट्र प्रेम के रंगों से रंगी हुई है और इसके लिए वे सतत प्रयत्नशील हैं।

चरित्र के गठन द्वारा व्यक्तित्व के विकास और महान् उद्देश्यों की पूर्ति में अपने को समर्पित करने की भावना से ऊंचा उठने की आकांक्षा के प्रतीक डा० जाकिर हुसैन अपने पथ पर अत्यन्त निष्ठा, विश्वास और सौमनस्य के साथ आगे बढ़े हैं। वे एक धर्मनिरपेक्ष देश के महान् राष्ट्रपति ही नहीं एक महान् शिक्षा शास्त्री भी हैं। राष्ट्रसेवा में संलग्न रहकर शिक्षा के क्षेत्र में उन्होंने जो योगदान दिया है, वह सदैव स्मरणीय रहेगा। अपने सफल छात्र जीवन के उपरान्त अपने व्यक्तित्व का विकास भी उन्होंने शैक्षणिक संस्था द्वारा ही किया और राष्ट्रप्रेम का ज्वलन्त उदाहरण सम्मुख रखा।

शिक्षा जगत में उन्होंने शिक्षा का एक नया स्वरूप लोगों के समक्ष रखा। उनकी दृष्टि में "राजनीति के संकीर्ण माध्यम से राष्ट्र का पुनरुत्थान संभव नहीं है। राष्ट्र का उत्थान शिक्षा और संस्कृति में नया दृष्टिकोण अपनाने तथा राष्ट्रीय चेतना को नया स्वरूप देने से ही संभव हो सकता है। अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली संकीर्ण और पुरानी है। उससे व्यक्ति का विकास कदापि संभव नहीं है।" जामिया मिलिया एक ऐसी शैक्षणिक संस्था है जो जीवनयापन तथा ज्ञानार्जन की दृष्टि से छात्रों को सुयोग्य नागरिक बनाने तथा उनमें कलात्मक अभिरुचि उत्पन्न करने की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान देती है।

स्वतंत्रता के पूर्व और पश्चात् वे एक ऐसी शिक्षा प्रणाली तैयार करने के लिए कार्यशील रहे जो राष्ट्रीय विकास में सहायक हो। वे "इण्डिया कमेटी", "अन्तर्राष्ट्रीय छात्र सेवा" और "अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय सेवा" जिनेवा के अध्यक्ष भी रहे हैं।

शिक्षा का महत्व उनके लिये जीवन में उच्च आदर्शों की प्रतिष्ठापन करना है—"शिक्षा का उद्देश्य राष्ट्रीय संस्कृति और राष्ट्रीय चरित्र का विकास करना है। मेरे विचार से शिक्षा का लक्ष्य बराबर नवीन जीवन देने में योग देना ही है।" राष्ट्रपति पद से देश के लिए संकल्पित होते हुए शिक्षा के संबंध में उन्होंने अपने विचार प्रकट करते हुए कहा था—"मेरी यह धारणा है कि शिक्षा राष्ट्र के लक्ष्यों को प्राप्त करने का मुख्य साधन है और जैसी उसकी शिक्षा होती है वैसा ही उसका स्वरूप भी हो जाता है। इसलिए मैं अपने अतीत की समग्र संस्कृति के प्रति चाहे वह जिस स्रोत से प्राप्त हुई हो, चाहे उसके निर्माण में जिस किसी ने भी योगदान किया हो—अपनी निष्ठा व्यक्त करता हूँ।"

मनुष्य के सम्मुख अपनी कोई राय होती है, अपने कुछ आदर्श होते हैं—उन्हें पाने के लिये प्रयत्न भी स्वयं का ही होना चाहिये। दूसरों पर निर्भर रहकर फल प्राप्ति की आशा करना व्यर्थ है। उन्हें कर्म पर अगाध निष्ठा है। उन्हें हर छात्र युवक में आजादी की खुशहाली की चमक दिखाई देती है। उनमें से हरेक में एक गांधी, एक टैगोर, एक अरविन्द, एक नेहरू और एक विनोबा नजर आता है। महान् विभूतियों से सम्पन्न एक सुन्दर, सर्वांगीण विकासमान देश की तस्वीर राष्ट्रपति की आँखों में है जिसे पूरा करने के लिए हर एक को आगे बढ़ाना है और बिना शिक्षा के यह कार्य कदापि संभव नहीं है।

डा० हुसैन की बौद्धिक और मानसिक प्रतिभा अभूतपूर्व है। उन्हें नई-नई भाषायें सीखने का बेहद शौक है। उन्हें अध्ययन का तथा सुन्दर कलात्मक वस्तुओं के संग्रह करने का भी चाव है। जब भी वे कभी अन्य देशों की यात्रा करते हैं वहां के संग्रहालयों तथा पुस्तकालयों को देखना कभी नहीं भूलते। ज्ञान-विज्ञान तथा इतिहास की पुस्तकों में वे कुछ इस तरह खो जाते हैं जैसे किसी को कोई मनचाही चीज मिल गई हो। इतिहास और विविध भाषाओं के प्रति उनका ज्ञान और उनकी लगन देखकर आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है। वे एक अच्छे लेखक भी हैं।

उन्होंने घर और परिवार को सम्पूर्ण जीवन की शिक्षा का आधार माना है। इसी शिक्षा पर व्यक्ति का व्यक्तित्व और देश का विकास निर्भर है। घर में रहकर ही सुरुचि पैदा और परिष्कृत होती है, चरित्र का गठन होता है और सच्चरित्रता प्राप्त की जाती है। घर ही एक ऐसी जगह है जहां सद्जीवन की शिक्षा दी जाती है और उसे अभ्यास में लाया जाता है। शिक्षा का इतना व्यापक और गहन अर्थ एक शिक्षा शास्त्री के लिए उपयुक्त ही है। और वह इसलिए भी कि उनका स्वयं का ज्ञान गहन गम्भीर है। एक वाक्य में यदि उनके अनुसार शिक्षा की परिभाषा दी जाये तो कहा जा सकता है—"तालीम आदमी के जहन की पूरी-पूरी परवरिश का नाम है। ●

ऋषि जाकिर हुसैन

योगराम थानी

भारत देवों की भूमि है : "जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" यहां जन्म लेने वाले देवों की यही कामना होती है कि वे बार-बार यहीं जन्म लें। अनेक मनीषी ऐसे भी हुए हैं जिन के लिए भारतवासियों की यह कामना रही है। इनमें हमारे तीनों विश्वविख्यात राष्ट्रपति गिनाये जा सकते हैं।

भारत का यह सौभाग्य है कि उसे स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सभी राष्ट्रपति ऐसे मिले हैं जिन पर कोई भी देश गर्व कर सकता है। डा० जाकिर हुसैन इस गौरवमय शृंखला की वर्तमान कड़ी हैं और उन्हें इस दृष्टि से विशिष्ट कड़ी कहा जा सकता है कि यों तो सभी राष्ट्रपति राष्ट्र और राष्ट्रीयता की कसौटी पर खरे रहे हैं, लेकिन डा० जाकिर हुसैन के साथ यह महत्वपूर्ण विशेषता और जुड़ी हुई है कि वे अल्प संख्यक सम्प्रदाय के हो कर भी आज बहुसंख्यकों के पूज्य हैं। वे सही मानों में भारतीय हैं, भारत की उच्चतम परम्पराओं के प्रतीक हैं।

अपने इस कथन को सिद्ध करने के लिए पहले हमें राष्ट्र और राष्ट्रीयता के उद्भव तथा विकास पर एक विहंगम दृष्टि डालनी होगी ताकि यह स्पष्ट हो सके कि इन दोनों के संदर्भ में राष्ट्रपति से क्या अपेक्षित है।

राष्ट्र शब्द बहुत प्राचीन है परन्तु समय और परिस्थितियों के अनुसार हर युग में उसका रूप-स्वरूप और उसके अर्थ बदलते रहे हैं। हमारे यहाँ 'राष्ट्र' शब्द 'देश' 'राजा' 'राज्य' 'भूमि' पृथ्वी' 'प्रजा' 'जनपद' आदि अनेक शब्दों का पर्याय माना जाता रहा। परन्तु जिस अर्थ में आज हम इसका प्रयोग करते हैं वैसा अर्थ प्राचीन युग में कभी नहीं रहा। आज हम 'राष्ट्र' शब्द को अंग्रेजी

शब्द 'नेशन' का पर्याय मानते हैं।

राष्ट्र शब्द की प्राचीनता सिद्ध करने के लिए यजुर्वेद और अथर्ववेद के कई उद्धरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं। यजुर्वेद में राष्ट्र शब्द की पुनरुक्ति हुई है। जैसे 'राष्ट्र मे देहि', राष्ट्र दा राष्ट्रम्मे दत्त और तेनास्मान् ब्रह्मणस्पतेऽमि राष्ट्रीय वर्धय और राष्ट्रीय महयम् बध्यताम्।

हमारे यहाँ राष्ट्र शब्द की व्याख्या कुछ इस प्रकार की जाती रही :-

'रासन्ते चारु शब्द कुर्वते जना: यास्मिन् प्रदेशविशेष तद् राष्ट्रम्' अर्थात् किसी एक प्रदेश के लोग जो एक विशिष्ट भाषा द्वारा अपने विचार-विनिमय करते हैं, वही स्थान विशेष राष्ट्र कहलाता है।

अथवा

'पशुधान्य हिरण्य संपद राजते शोभते इति राष्ट्र' 'अर्थात् पशु, धन-धान्य, आदि सम्पदाओं से जो सुशोभित भू--भाग है वही राष्ट्र है।' 'शतपथ ब्राह्मण में भी वैराष्ट्रम-समृद्धियुक्त ओजस्वी जनसमूह ही राष्ट्र है।

अथर्ववेद के भूमि सूक्त में भूमि या पृथ्वी की खूब चर्चा की गयी है और कहा गया है—'यह भूमि समुद्र से घिरी हुई है और कल-कल निनादिनी जलधाराएँ इसे उर्वर बना रही हैं : हरे-भरे पर्वत, हिम-मण्डित गिरिश्रृंग और जंगल उस देशवासियों के चिन्ताहीन, क्लेशहीन और अक्षत जीवन की रक्षा करते हैं......... इस देश में नाना भाषाओं वाले लोग हैं और नाना रूढ़ियां हैं पर वे सब सुशील दुधारू गाय की तरह धन-सम्पत्ति की हजारों धाराएं प्रवाहित कर रहे हैं। आदि आदि।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि संस्कृत साहित्य में राष्ट्र की चर्चा तो खूब की गयी है मगर राष्ट्रको कभी 'नेशन' का और राष्ट्रीयता को कभी 'नेशनेलिज्म' का पर्याय नहीं माना गया।

डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने भी यही बात कही 'सही हो चाहे गलत, पर हमारा ही देश' घोषित करने वाला सिद्धान्त पहले-पहल भारत में नहीं निकला। अपने ही देश को सदा ठीक समझने वाली मनोवृत्ति भी हमारे यहां नहीं उपजी। राष्ट्रवाद की प्रबल भावना पाश्चात्य प्रभाव का ही सीधा परिणाम है। जिन लोगों ने पश्चिमी जातियों के इतिहास को पढ़कर बरसों यही सीखा कि आजादी से बेहतर कुछ नहीं आजादी सिर्फ जरूरी ही नहीं, सबसे ज्यादा जरूरी है, मालूम पड़ता है। उन्होंने स्वतन्त्रता का यह पाठ भली-भांति पढ लिया है।

राष्ट्रीयता (नेशनेलिजम) का प्रादुर्भाव पश्चिमी यूरोप में अठारहवीं शताब्दी में हुआ। इसका प्रथम मूल रूप हम फ्रांस की राज्य क्रान्ति में देखते हैं जिसने राष्ट्रीयता के आन्दोलन को एक नवीन गतिशीलता प्रदान की। अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक कई यूरोपीय देशों में एक साथ राष्ट्रीय भावना का उदय हुआ। फ्रांस की क्रान्ति का राजनीति के क्षेत्र में सर्वोत्तम महत्व है। वह आधुनिक समाजवाद की जननी है। आधुनिक समाज की नींव उसी ने रखी है।

राष्ट्र या राष्ट्रीयता की इस नवीन विचारधारा का प्रचलन भारत में नहीं था और बाकी सब देशों में था, ऐसा नहीं है। प्राय: हर देश में धर्म, जाति और संस्कृति को ही सबसे अधिक महत्व

दिया जाता था और माना जाता था कि यही तत्व देश के लोगों को एकता के सूत्र में बांधते हैं। भारत में ही नहीं बल्कि दूसरे देशों में भी धर्म के नाम पर काफ़ी द्वन्द्व हुए। खैर धीरे-धीरे यूरोप के लोगों के मन में धर्म की कट्टरता कुछ कम हुई और वे इस बात का अनुभव करने लगे कि अब चर्च में लोगों को एकता के सूत्र में बांधने की शक्ति नहीं रही इस प्रकार धर्म गौण हो गया और राष्ट्र प्रमुख हो गया।

भारतीय सन्दर्भ में इस की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती हैं। कुछ समय पहले तक भारत में यही माना जाता था कि देश में धर्म का विकास हो रहा है तो देश उन्नति कर रहा है और यदि धर्म का ह्रास हो रहा है तो देश का भी ह्रास हो रहा है। यहां काफी समय तक यही माना जाता रहा कि राष्ट्र धर्म के लिए है न कि धर्म राष्ट्र के लिए। इसी बात को यों भी कहा जा सकता है कि यहां कुछ समय पहले देश के लिए धर्म का त्याग और बलिदान नहीं किया जा सकता था पर धर्म के लिए देश का बलिदान किया जा सकता था, यानी कभी धर्म प्रधान था और राष्ट्र गौण। तभी तो कभी धर्म राष्ट्र का रास्ता रोक कर 'बस खड़े रहो' की आज्ञा देता था और राष्ट्र उसी समय गर्दन झुका कर खड़ा हो जाता था। तभी तो कहा है—'अनीकयोः संहतयोर्यदीयाद् ब्राह्मणोन्तरा शान्ति मिच्छन्नुभयतो न योद्धव्यं तदाभवेत्, अर्थात् जब दो सेनायें लड़ रही होती थीं और एक वेदविद् ब्राह्मण बीच में आकर खड़ा हो जाता था और अपनी ब्रह्मतेजोमयी वाणी से हाथ उठाकर कहता था कि बस लड़ना बन्द कर दो और उसकी आज्ञा पाते ही दोनों सेनाएं पीछे हट जाती थीं और खून की प्यासी तलवारें चुपचाप म्यानों में घुस जाती थीं मानो उनमें गर्दन काटने की शक्ति ही न रही हो।

महाराजा दशरथ से महर्षि विश्वामित्र कहते हैं कि मुझे तपोवन की रक्षा के लिए अपने सुपुत्र दे दो। दशरथ इनकार करते हैं। ऋषि क्रुद्ध हो जाते हैं। महाराज डर जाते हैं और तपस्वी ब्राह्मण से भयभीत होकर कांपने लगते हैं। यह एक सम्राट का ऋषि से कांपना नहीं है अपितु राष्ट्र का धर्म से कांपना है। परन्तु आज संसार इस बात का समर्थक है कि राष्ट्र रूपी तेजस्वी सम्राट के सम्मुख धर्म रूपी भिक्षुक रास्ता रोक कर खड़ा नहीं हो सकता। आज राष्ट्र धर्म से कहता है-'हे धर्म, तुम्हें पूर्ण स्वतन्त्रता है। मैं तुम्हारी बातों में कोई हस्तक्षेप नहीं करूंगा, परन्तु इतनी शर्त है कि तुम भी मेरे कामों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करना, यदि तुम्हारा सिद्धान्त है कि भोग विलास में बह जाना हानिकारक है, तो जाओ, जो सामाजिक व्यक्ति भोग-विलास में बह रहे हैं उनको जा कर बचाओ। यदि तुम अपने स्वार्थ के लिए दूसरो को सताना, दूसरों का खून बहाना पाप समझते हो तो जो स्वार्थी दूसरों का गला घोंट रहे हैं और खून बहा रहे हैं उनके हाथों को इस पाप से रोको, यदि असत्य व्यवहार करना, दूसरों को बहका कर वंचना करना, दूसरों की चिताओं पर उत्सव मनाना तुम्हें घोर नृशंसता प्रतीत होती है तो जो यह क्रूरता कर रहे हैं उनको डराओ और इस पाप से बचाओ,……तुम्हें व्यक्तियों की समालोचना करने का, व्यक्तियों को समझाने का तुम्हारा पूर्ण अधिकार है परन्तु राष्ट्र की समालोचना और उसको समझाने का तुम्हारा कोई अधिकार नहीं है……बस इसी शर्त के साथ तुम स्वतन्त्र हो। तो इतनी बात स्पष्ट हो गयी कि प्राचीन राष्ट्रीयता और आधुनिक राष्ट्रीयता में जमीन आसमान का फ़र्क है। आज का युग राजनीतिक युग है। यानी प्रत्येक समाज का एक राजनीतिक संगठन होता है, इस संगठन में व्यक्ति की इच्छा या अनिच्छा का कोई प्रश्न नहीं होता, हर व्यक्ति को राजनीतिक

संगठन को सदस्यता अनिवार्य रूप से स्वीकार करनी पड़ती है और जिस सगठन का वह सदस्य होता है अर्थात् जिस राष्ट्र का वह नागरिक होता है उसी के प्रति उसकी निष्ठा या वफादारी होती है।

भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों ने राष्ट्र शब्द की व्याख्या करते हुए कहा है:—

'राष्ट्र उस जन-समूह को कहते हैं जिसमें राजनैतिक संगठन हो।'

(जे० होलेंड—नेशनैलिटी इन हिस्ट्री)

डा० गुलाबराय ने राष्ट्र शब्द की व्याख्या करते हुए कहा है—'राष्ट्र के लिए यह आवश्यक नहीं है कि उसके रहने वाले एक जाति व सम्प्रदाय के ही हों। राष्ट्र एक राजनीतिक इकाई है। उसके निवासियों के राजनीतिक हितों की एक ध्येयता और शासन की एक सूत्रता उसमें संगठन स्थित रखने के लिए आवश्यक है। सभी सम्प्रदाय और सभी प्रान्त राष्ट्र के अंग हैं। राष्ट्र का हित सब का सम्मिलित हित है। ऐसी चेतना ही राष्ट्रीयता का मूल है।

बर्गेस के मतानुसार—'ऐसा जनसमूह जिसकी एक भाषा और एक साहित्य हो, जिसके रीति-रिवाज और धार्मिक विश्वास एक हों, भौगोलिक एकता के क्षेत्र में रह कर सत्य-असत्य की समान चेतना हो, वही राष्ट्र कहलाता है।'

एक सुप्रसिद्ध विद्वान ए० ई० जिमर्न ने राष्ट्रीयता की व्याख्या करते हुए कहा है—'धर्म की भांति राष्ट्रीयता भी आत्मापरक है, मनोवैज्ञानिक है, मन की एक स्थिति है, एक आत्मिक सम्पत्ति है, एक भावना पद्धति है, विचार और जीवन है।...राष्ट्रीयता एक ऐसी शक्ति है जो राज्य के भीतर निरंकुश सत्ता के विरुद्ध मानवाधिकारों को स्थिर रखने के लिए तथा बाहरी शत्रु से उसकी स्वतन्त्रता की रक्षा के हेतु समाज को संगठित करती है।'

सुश्री महादेवी वर्मा ने कहा है—

'राष्ट्र भावना का देश-विशेष में वही स्थान रहता है जो भिन्न अवयव वाले शरीर में चेतना-केन्द्र का होता है। पांव के नीचे आ जाने वाले अंगारे की जलन या फूल का स्पर्श-पुलक दोनों की अनुभूतियां जैसे मस्तिष्क का चेतना केन्द्र सारे शरीर में पहुँचा देता है, एक अंग की पीड़ा या पुलक को सम्पूर्ण शरीर की बना देता है, उसी प्रकार राष्ट्रीयता प्रत्येक सुख—दु:खात्मक स्थिति को विशेष भूमिखण्ड की मानवसमष्टि में व्यापकता दे देती है।'

श्री वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दों में—'सब के सम्मिलित प्रयत्न से ही स्वराज्य की रक्षा और स्थिति सम्भव है। यह एक व्यक्ति का बोझा नहीं। यह तो सम्पूर्ण राष्ट्र का दायित्व है। यदि राष्ट्र जागता है तभी स्वराज्य की स्थिति दृढ़ होती है। 'राष्ट्रीय जागयाम वयम्, यह वैदिक उक्ति हृदय में टांक लेने योग्य है।'

फिलिमोर ने राष्ट्र की परिभाषा इस प्रकार की है: 'राष्ट्र वह जनसमूह है जो निश्चित क्षेत्र में स्थायी रूप से रहता हो, सामान्य नियमों, आदतों और रीति-रिवाजों का एक राजनैतिक संस्था के रूप में पालन करता हो, एक संगठित सरकार द्वारा स्वतन्त्र रूप से उस क्षेत्र में बसने वाले मनुष्यों, व

उस क्षेत्र में विद्यमान सभी पदार्थों पर पूरा-पूरा नियन्त्रण व अधिकार रखता हो और उसे संसार के किसी भी समुदाय से युद्ध या शान्ति स्थापित करने या अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध स्थापित करने का अधिकार हो।'

'हमारे राष्ट्र जीवन की परम्परा नामक' पुस्तक में उमाकान्त केशव आपटे ने लिखा है—'उस देश को अपना कहने वाले, उस पर परायों की ओर से आक्रमण होने पर, परम्परागत आदर्शों का अखण्ड परिपालन करने के हेतु अपनी सम्पूर्ण शक्ति को जुटा कर प्रयत्न करने वाले, अपनी संस्कृति एवं परम्परा का अभिमान रखने वाले, तथा इस प्रकार एकात्मता की प्रेम-रज्जु से आबद्ध होने के कारण एक-दूसरे के उत्कर्ष एवं सुख के हेतु सहकार्य की भावना से कार्य प्रवृत्त होने वाले लोगों का समुदाय ही तो राष्ट्र है।' विभिन्न विद्वानों की राष्ट्र सम्बन्धी व्याख्याओं के बाद में अन्त में इतना निवेदन अवश्य करना चाहूँगा कि हमारे पास 'राष्ट्र' शब्द पहले से ही था, अब तो केवल इसका रूप और स्वरूप बदला है। यानी हमारे पास राष्ट्र की नींव तो तैयार है परन्तु हमें उस पर एक शानदार भवन तैयार करना है। परन्तु इस भवन को तैयार करते समय हमें बहुत ही सावधानी, सजगता, और जागरूकता की जरूरत है। राष्ट्रीय भवन की दीवारें चुनते समय हमें हर ईंट देख-भाल कर रखनी होगी। भूल से भी यदि कहीं हमने धार्मिक या साम्प्रदायिकता की एक आध ईंट भी रख दी तो विश्वास कीजिए कि उस भवन से राष्ट्रीय संगठन की भावना उत्पन्न करने वाला प्रकाश धुंधला रह जायेगा और समाज को एक सूत्र में बांधने वाली ज्योति की शक्ति कम हो जायेगी।

इसी बात को मैं दूसरे शब्दों में इस प्रकार कहना चाहूँगा कि हमारे पास राष्ट्र-प्रेम की नौका तो है परन्तु वह अब तक भारत-भूमि रूपी नदी के एक तट के साथ ही बंधी पड़ी थी। आज हम उस नौका को वहीं पड़ी रहने नहीं दे सकते। बल्कि उसमें आधुनिक राष्ट्रीय-भावना की ध्वजा फहरा कर हम उस नौका को एक छोर से दूसरे छोर तक ले जाना चाहते हैं ताकि राष्ट्र-प्रेम का अमर सन्देश भारत के हर नागरिक तक पहुँच सके और वह इस बात का दृढ़ संकल्प कर ले कि वह पहले भारतीय है और बाद में कुछ और। यही आज की राष्ट्रीयता का मूल मन्त्र है।

भारत के राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन (मैं उन्हें ऋषि जाकिर हुसैन ही कहना ज्यादा पसन्द करूंगा) सही अर्थों में राष्ट्रभक्त हैं। वे पहले भारतीय हैं और बाद में कुछ और यानी वे पहले ऋषि हैं और बाद में जाकिर हुसैन।●

एक आदर्श भारतीय

डा० केवल धीर

संसार के सबसे बड़े जनतंत्र के सर्वप्रथम व्यक्ति राष्ट्रपति डाक्टर ज़ाकिर हुसैन से देश और देश से बहार के लोग भलीभांति परिचित होंगे, किंतु ऐसे लोग शायद बहुत ही कम हों जो उनके व्यक्तिगत जीवन के उन सभी पहलुओं के बारे में भी जानते हों जिनके कारण डाक्टर साहब के महान् व्यक्तित्व का निर्माण सम्भव हो सका है और सही अर्थों में वे एक आदर्श भारतीय बन सके हैं। यदि पीछे मुड़ कर उनके ७० वर्ष के जीवन पर नज़र डाली जाय तो एक आम आदमी अवश्य ही यह पता चलने पर हैरान रह जाता है कि कभी एक बार भी वे जेल नहीं गये, देश की आज़ादी की लड़ाई के दिनों में कभी उन्होंने किसी राजनीतिक मञ्च पर से भाषण नहीं किया, कभी किसी जलूस का नेतृत्व नहीं किया तथा कभी भी राजनीति में सक्रिय रूप से उन्होंने भाग नहीं लिया। इन सब के बावजूद आज वे संसार के सबसे बड़े लोकतंत्र के सब से बड़े व्यक्ति और भारत की पचास करोड़ जनता के प्रतिनिधि हैं। तो वे सब कौन सी ऐसी बातें हैं, जिनके कारण उन्हें राष्ट्रीय जीवन के शिखिर तक पहुँच पाने का अवसर मिला है? यहां इसी विषय पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

डा० ज़ाकिर हुसैन के जीवन की गहराई में उतरने से पहले उन परिस्थितियों पर एक नज़र डालें, जिनमें उनके जीवन का आरम्भ हुआ था। मैं समझता हूँ कि येही व परिस्थितियां थीं, जिनके कारण उनके जीवन में भावुकता एवं गम्भीर चिंतन का विकास हुआ है। आरम्भिक कठिनाइयों ने ही उन्हें निखार कर तपा हुआ सोना बना दिया।

डा० हुसैन उत्तर प्रदेश के जिला फ़र्रुखा-

बाद में तहसील क़ायमगंज से एक–डेढ़ मील के फ़ासले पर स्थित गांव 'पतौरा'[1] के रहने वाले हैं किंतु उन का जन्म हैदराबाद में हुआ था जहाँ उनके पिता वकालत करते थे। अभी वे केवल नौ वर्ष के थे कि पिता का देहांत हो गया। उस समय वे कुल सात भाई थे तथा इन सातों में स्वयं उनका तीसरा नम्बर था। पिता के स्वर्गवास के बाद उनकी माता सपरिवार 'कायमगंज' के निकट के अपने गांव में चली आईं।

डा० ज़ाकिर हुसैन ने प्रारम्भिक शिक्षा घर में ही प्राप्त की किंतु हैदराबाद से चले आने के बाद उन्हें उत्तर प्रदेश के इटावा नगर में पांचवीं कक्षा में दाखिल करवा दिया गया। वे सन् १९०७ में यहां के इसलामिया हाई स्कूल में दाखिल हुए थे तथा वहीं से दसवीं की परीक्षा पास की थी। इसी काल में एक और दुख का सामना उन्हें करना पड़ा— अर्थात उस समय वे केवल बारह वर्ष के ही थे जबकि उनकी माता जो भी उनका साथ छोड़ कर चली गईं उन दिनों गांव में उनकी माता, नानी, दो छोटे भाई और कुछ नौकर थे, और सभी भाई इटावा के स्कूल में पढ़ते थे। अचानक प्लेग की बीमारी विकरालरूप से फैल गई थी और गांव के गांव ही इसकी लपेट में आ गये थे। एक छोटे भाई के अतिरिक्त उनके परिवार के अन्य सभी लोग भी बीमारी का शिकार हो गये। अंत में जब उनकी मां पर बीमारी का भीषण आक्रमण हुआ तो लोगों ने कहा कि बच्चों को बुला लिया जाये किंतु मां ने इस कारण रोक दिया कि इस भयंकर बीमारी की आग में उन्हें झोंकना ठीक नहीं और फिर वे परेशान होंगे— परीक्षा निकट है।

अवकाश के दिनों में जब ज़ाकिर साहब अपने भाइयों सहित गांव लौटे तो दरवाजे पर ताला लटक रहा था। सभी तो खुदा को प्यारे हो चुके थे और इसकी उन्हें कोई खबर तक न थी। जो सबसे छोटा भाई जीवित था, उसे उनकी चाची अपने साथ ले गईं थीं। इस नन्हींसी उम्र में इतना बड़ा हादसा किस कदर अचानक पेश आया था! लेकिन इन बेसहारा बच्चों ने साहस नहीं छोड़ा और जी–जान से अपने भविष्य को संवारने में जुट गये।

ज़ाकिर साहब ने अब ज़िंदगी का एक नया सफ़र आरम्भ किया— ज़िंदगी, जो उस समय बे सहारा-सी होकर रह गई थी, लेकिन खुदा ने उन्हें स्वयं ही अपनी ज़िंदगी का सहारा बनने की शक्ति प्रदान की। इटावा के जिस स्कूल में वे शिक्षा प्राप्त कर रहे थे, वहां के हैडमास्टर जनाब अल्ताफ़ हुसैन ने उन्हें मार्गदर्शन कराया तथा उनके भावी जीवन के निर्माण एवं विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। दूर के एक सम्बंधी सूफ़ी हसन शाह ने भी उनके जीवन को दिशा दी थी।

इटावा से दसवीं की परीक्षा पास करने के बाद उन्होंने शिक्षा प्राप्त करने का सिलसिला जारी रखा और अलीगढ़ विश्वविद्यालय में दाखिला ले लिया। जहां से एफ० ए० पास करने के बाद वे लखनऊ चले आये ताकि मेडिकल कालेज में प्रवेश ले सकें। उनकी इच्छा डाक्टर बनने की थी किंतु ऐसा सम्भव नहीं हो सका क्योंकि वे बीमार पड़ गये। उन दिनों की अपनी शारीरिक एवं मानसिक अवस्था के बारे में स्वयं डाक्टर साहब ने कहा है— मैं केवल शारीरिक रूप से ही बीमार नहीं हुआ था, मानसिक रूप से भी मैं सदैव गम के बोझ तले दबा रहता था। इसी काल में मेरे दो भाई टी० बी० का शिकार होकर मर चुके थे। क्योंकि मेरा बुखार 'टाईफ़ायड' में तबदील हो चुका था, इसलिए मैं भी लगभग अपने जीवन से

मायूस ही हो चुका था। मुझे जैसे पूरा विश्वास हो गया था कि मैं मर जरूर जाऊंगा, लेकिन कुछ दिनों के बाद मेरा बुखार उतर गया।"

ज़ाकिर साहब लखनऊ से अपने गांव चले आये किंतु यहां आकर वे फिर से बीमार पड़ गये। उन पर फिर 'टाईफ़ायड' का आक्रमण हुआ था और साथ ही 'सरसाम' जैसा भयानक रोग भी हो गया था। लेकिन परमात्मा को अभी उन्हें जीवित रखना था—और वे मौत के मुंह से निकल आये, पर उनकी शिक्षा का क्रम बीच में ही टूट गया और वे लगातार छः वर्षों तक अपने गांव में ही पड़े रहे। इतने लम्बे समय तक बीमार और बेकार पड़े रहने के बाद भी उन्होंने साहस नहीं छोड़ा और फिर से अलीगढ़ विश्वविद्यालय में दाखिला लेकर बी० ए० की डिग्री प्राप्त की। इसके बाद उन्होंने एक साथ एम० ए० और 'ला' (कानून) में प्रवेश ले लिया, लेकिन उन्हीं दिनों महात्मा गांधी और मौलाना आजाद जैसे राष्ट्रीय नेताओं की प्रेरणा से १९२० में 'जामिया मिलिया' की स्थापना हुई तथा अनेक दूसरे छात्रों एवं अध्यापकों के साथ वे भी यहां चले आये। शिक्षा का क्रम एक बार फिर टूट गया। स्वयं उन्हीं के शब्दों में "यहां से मेरे जीवन को एक नई राह मिली।"

इस संस्था से सम्बद्ध होने के बाद ज़ाकिर साहब ने अपना तन, मन, धन इसे ही अर्पित कर दिया। यहां वे न केवल पढ़ाते ही थे, बल्कि स्वयं: पढ़ते भी थे। जिस मन्ज़िल तक वे पहुँचना चाहते थे, वहां तक पहुँच पाने के लिए अपने प्रयत्नों में कभी उन्होंने ढील नहीं आने दी और न ही संघर्ष एवं साहस को त्यागा। थोड़े ही समय के बाद उन्हें अध्ययन के लिये विदेश जाने का अवसर उपलब्ध हो गया और पी-एच० डी० करने के लिये वे जर्मनी चले गये। सन् १९२६ में विदेश से लौटने के बाद वे फिर से उसी संस्था में चले आये तथा सन् १९४८ में अलीगढ़ विश्वविद्यालय के 'वाइस-चान्सलर' बनने से पहले तक 'जामिया मिलिया' से सम्बद्ध रहे। इस संस्था की बुनियाद महान् आदर्शों को सामने रख कर डाली गई थी तथा उद्देश्य था शिक्षा! देश के आज़ाद होने से पहले किसी ऐसी संस्था की स्थापना अंग्रेज़ हकूमत की 'छाती पर सांप लोटने' जैसी बात थी। इसलिए इसे हकूमत की ओर से किसी प्रकार की आर्थिक सहायता उपलब्ध होने का सवाल ही पैदा नहीं होता था और भी कोई बड़े साधन उपलब्ध न थे। इस सब के बावजूद डा० ज़ाकिर हुसैन की देख-रेख एवं व्यवस्था ने न केवल इस संस्था को जीवित रखा बल्कि उन्हीं महान् आदर्शों को लेकर आगे बढ़ाया जिन पर कि इसकी स्थापना की गई थी।

सन् १९५४ में उनका स्वास्थ्य खराब हो गया तो अलीगढ़ विश्वविद्यालय के 'वाइस चान्सलर' के पद से त्यागपत्र दे कर वे चिकित्सा के उद्देश्य से 'स्विटजरलैण्ड' और फिर 'जर्मनी' गये। वहां से स्वस्थ होकर स्वदेश लौटने पर उन्हें बिहार प्रांत का राज्यपाल नियुक्त किया गया। सन् १९६२ में उन्होंने विशाल भारत के दूसरे सबसे बड़े व्यक्ति (उपराष्ट्रपति) का स्थान ग्रहण किया और आज वे हमारे राष्ट्रपति हैं।

डा० ज़ाकिर हुसैन किन परिस्थितियों में से गुजर कर कहां से कहां तक पहुँचे हैं, इससे हम उनके संघर्षमय एवं साहसी जीवन का सहज ही अंदाज़ा लगा सकते हैं। उनकी जिंदगी के इस पहलू में हिम्मत, मेहनत और लगन की जो झलक दिखलाई देती है, इस पर हम समस्त भारतवासियों को गर्व होना स्वाभाविक ही है।

हमारे राष्ट्रपति ने अपने जीवन का एक बड़ा भाग अध्यापक के रूप में अथवा विद्यार्थी–वर्ग के साथ व्यतीत किया है। एक बार यह पूछे जाने पर कि "अपने समय के विद्यार्थियों और आज के विद्यार्थियों के बीच आप क्या अन्तर अनुभव करते हैं ?" उन्होंने कहा था—सिर्फ इतना अंतर महसूस होता है कि अब उनमें नैतिकता की कमी हो गई है तथा उन्हें शरारत के अधिक अवसर उपलब्ध हो गये हैं।" इन थोड़े से शब्दों की गहराई में झांकने पर हम उस कटु सत्य का अनुभव कर सकते हैं जिसका सम्बंध हमारे आज के माहौल और युवक वर्ग से है। डाक्टर साहब के शब्दों में ही इसी विषय पर कुछ और आगे बढ़ें- "अब अध्यापक किराये के होते हैं इसलिए अब विद्यार्थियों एवं उनके बीच 'गुरु और शिष्य का सम्बंध समाप्त हो गया है। अब इन अध्यापकों से स्नेह की आशा रखना बेकार है। नैतिकशिक्षा भी समाप्त होती जा रही है।

भाग्य और श्रम के विषय में भाग्य से वे परिश्रम को अधिक मानते हैं। उनकी इस मान्यता पर यह मजेदार घटना प्रकाश डालती है। एक बार एक ज्योतिषि जी महाराज उनसे मिलने चले आये। वह दक्षिण के रहने वाले थे और एक मोटी सी फाईल लिये थे, जिसमें देश के अनेक 'बड़े-व्यक्तियों' के प्रमाण पत्र थे। वह साहब डाक्टर साहब को प्रभावित करने के उद्देश्य से बहुत बातें किये जा रहे थे और डाक्टर साहब मजे से सुन रहे थे। कुछ देर बात ज्योतिषी महोदय ने उनका हाथ देखने की इच्छा व्यक्त की तो उन्होंने मना कर दिया। साथ ही कुछ प्रश्न भी पूछ डाले। ज्योतिषी जी समझे थे कि वे काफी प्रभावित हो गये हैं, इसलिए वह बहस में पड़ गये किन्तु यह देखकर मुझे हैरानी हुई कि डाक्टर साहब का अध्ययन इतना व्यापक था कि शीघ्र ही ज्योतिषीजी महाराज ने हथियार डाल दिये। सबसे अधिक मजेदार बात तब हुई जब जाते समय उन्होंने डाक्टर साहब के साथ अपना फोटो खिंचवाने की इच्छा व्यक्त की और राष्ट्रपति जी ने उन्हें निराश नहीं किया किन्तु धीमे से मुसकराते हुए कहने लगे— "लेकिन इस फोटो को अपने प्रमाण पत्रों वाली इस फाइल में न रखियेगा।"

उन ज्योतिषी महोदय के जाने के बाद डाक्टर साहब कहने लगे—"मेरा विश्वास 'तकदीर' और 'तदबीर' दोनों में है लेकिन ज्योतिष में नहीं। तदबीर (श्रम) पर मुझे ज्यादा भरोसा है क्योंकि यह तो मेरे अपने अधिकार की चीज है लेकिन इस सब बात के बावजूद कुछ ऐसी अनदेखी-अनजानी शक्तियाँ भी अवश्य हैं जिन पर भरोसा करना पड़ता है। मेरे यह सोचने का यही कारण है कि 'तकदीर' के चक्कर पड़ कर सोचना या चिंतित होना बेकार की बात है। जो चीज हमारे अधिकार में नहीं उसके बारे में सोच कर समय और शक्ति नष्ट क्यों की जाये। हमारा तकदीर पर कोई वश नहीं है, जबकि तदबीर हमारे वश की चीज है।"

अन्त में मैं डाक्टर साहब के जीवन की दो-एक घटनाओं का उल्लेख करूँगा। यद्यपि ये साधारण सी घटनायें, हैं किन्तु इन साधारण प्रतीत होने वाली घटनाओं से न केवल डा० हुसैन के व्यक्तित्व पर प्रकाश पड़ता है बल्कि राष्ट्र के नाम—विशेषतः राष्ट्र के युवक वर्ग के नाम एक महान् संदेश भी है।

यह बहुत दिन पहले की बात है जबकि जाकिर साहब जामिया मिलिया के वाइस चान्सलर थे। देश आजाद हुए अभी एक-दो वर्ष व्यतीत हुए थे। छात्रावास के लिये कई सौ विद्यार्थियों के लिए भोजन आदि का प्रबन्ध करने में अनेक कठिनाइयों का सामना था लेकिन किसी तरह काम चल रहा था। उस

दिन रात के वक्त सब लोग 'डाइनिंग हाल' में खाना खा रहे थे। दाल के साथ बैंगन का भुर्ता बनाया गया था। लेकिन अधिकांश छात्रों को यह पसन्द नहीं था। उन्होंने इसे निकट पड़ी अपनी खाली प्लेटों में डाल दिया था। इतना ही नहीं, कई ने तो इसमें रोटी के जले किनारे एवं पानी भी मिलाकर परे सरका रखा था। साथ-साथ खूब शोर मचा था। और बैंगन के भुर्ते को लेकर कभी रसोइये और कभी मैस-इन्चार्ज पर फब्तियाँ कसी जा रही थीं। तभी हाल के बाहर जाकिर साहब को मौजूद पाकर सब लोग खामोश हो गये। जाकिर साहब लड़कों के जूतों की 'लाईन' को सलीके से संवार रहे थे। 'मानीटर' तुरन्त ही वहां पहुँचा किन्तु जाकिर साहब ने यह कह कर उसे लौटा दिया कि वह हाल में जाकर यह देखे कि किसी लड़के को किसी चीज की जरूरत तो नहीं है। बाद में वे स्वयं भी हाल में आ गये और एक चक्कर काटने के बाद लड़कों के साथ ही खाने पर बैठ गये। सप्ताह में दो-एक बार वे पहले भी लड़कों के साथ ही खाना खाते थे लेकिन आज बात और ही थी। जहाँ वे बैठे थे वहाँ एक ऐसी प्लेट पड़ी थी जिसमें भुर्ते के साथ पानी और रोटी के जले अध जले टुकड़े डाल दिये गये थे। सभी लड़के हैरान थे। जिन्होंने यह हरकत की थी, वे भयभीत हो उठे थे कि अब खूब डांट पड़ेगी। जाकिर साहब कुछ बोले नहीं और उस प्लेट को सामने रखकर जो कुछ भी इसमें था, उसी के साथ चपाती खाने लगे। सभी स्तब्ध हो उठे क्योंकि यह खाना तो क्या, देखने के योग्य भी नहीं रह गया था लेकिन वे बड़े मजे से खाते रहे। निकट बैठे जिन लड़कों ने यह हरकत की थी, लज्जित होते हुए उन्होंने कहा कि वे नई प्लेट मंगवा लें। जाकिर साहब ने उत्तर दिया था—"तुम लोगों को मालूम नहीं कि तुम्हारे देश में—बल्कि तुम्हारे इसी नगर में या तुम्हारे आस-पास की इस बस्ती ही में कितने लोग ऐसे हैं जिनको अगर यह भी खाने को मिल जाये जो तुमने फेंका है, तो आज रात वे भूखे नहीं सोयेंगे। तुम लोगों ने इस खाने को पानी और रोटी के टुकड़े मिला कर इस योग्य भी नहीं छोड़ा कि यह किसी को दिया जा सके। मैंने सोचा कि यदि मैं ही इसे खा लूँ तो कम से कम मेरा अपना खाना तो किसी भूखे को दिया जा सकता है। अन्न का अनादर सबसे बड़ा पाप है।"

एक और घटना स्वयं जाकिर साहब ही के शब्दों में—"उन दिनों मैं जर्मनी में अध्ययन के उद्देश्य से गया हुआ था। एक दिन वहाँ के एक गांव की सड़क पर से गुजर रहा था और यह देख कर हैरान हो रहा था कि छात्रों का कोई भी दल जब मेरे निकट से गुजरता तो मुझे 'सलाम' अवश्य कहता। मैं पहले तो समझा कि शायद किसी ग़लतफ़हमी में वे मुझे सलाम कर रहे हैं लेकिन जब यह सिलसिला बराबर जारी रहा तो मैंने एक स्थानीय अधिकारी से इसका कारण जानना चाहा। उसने उत्तर देते हुए कहा कि "हम अपने बच्चों को स्कूल में यह सिखलाते हैं कि प्रत्येक विदेशी को सलाम अवश्य करो। हम इन बच्चों को ज्यादा से ज्यादा सभ्य बना देना चाहते हैं। हमारा देश और इस देश के नागरिक यदि सभ्य नहीं होंगे तो विदेशी हमारे यहां आयेंगे ही क्यों।".......यह उत्तर सुनकर मैं बहुत प्रभावित हुआ और सोचने लगा कि किसी भी राष्ट्र को ऊँचा उठना हो तो उसे अपने बच्चों को—अपनी कौम को ऊँचा उठाना होगा।"

एक घटना और—डाक्टर साहब जब बिहार के राज्यपाल थे तो बाहर के छात्रों का एक दल उन से भेंट करने गया। वे चाय पर छात्रों से तरह-तरह के सवाल पूछते रहे। उनके बगल में जो लड़का बैठा था, उन्होंने उसका परिचय मांगा तो लड़के ने अपने उत्तर में कहा—"मेरा नाम असलम है,

आरम्भिक प्रणाली का छात्र हूँ और इस वर्ष अपने विद्यालय में 'बच्चों की हकूमत' में स्वास्थ्य एवं सफ़ाई-मंत्री की हैसियत से काम कर रहा हूँ।" डाक्टर साहब ने और प्रश्न किया—"आप मन्त्री की हैसियत से क्या काम करते हैं ?" उत्तर मिला—"मैं स्कूल की सभी क्लासों एवं मार्गों की जांच करता हूँ और जहां कहीं गन्दगी दिखाई देती है इसकी सफाई कराता हूँ। इसके अतिरिक्त मैं ऐसी सब बातों का ध्यान रखता हूँ कि कोई छात्र इधर-उधर गन्दगी नहीं फैलाये, दीवारों पर नहीं लिखे, अपने शरीर एवं वस्त्रों को साफ रखे–अर्थात् मैं हर उस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखता हूँ कि हमारे विद्यालय की सफ़ाई का स्तर ऊँचा रहे।" बहुत ध्यान से उसकी बातें सुनने के बाद जाकिर साहब ने पूछा—'ये सब बहुत अच्छी बातें हैं, लेकिन क्या आप स्वयं भी झाड़ू देना जानते हैं ?" लड़के ने हिचकिचाते हुए कहा, "जी नहीं !" इस पर उन्होंने कहा—" तब आपको कैसे अन्दाज हो सकता है कि सफ़ाई ठीक ढंग से हुई है या नहीं ?……देखो भाई ! जब तक कोई आदमी स्वयं काम नहीं जानता हो, वह भला कैसे उस काम की निगरानी कर सकता है ? मंत्री उसे बनना चाहिये जो सम्बन्धित काम की सही जानकारी रखता हो।" ●

सपनों का भारत

"हमें स्वतंत्र भारत के उस चित्र का ध्यान रखना है जिसमें सत्य का शासन होगा, जिसमें सबके साथ न्याय होगा, जहां गरीब अमीर का भेदभाव न होगा, बल्कि सबको अपनी कार्यक्षमताओं को पूर्णतया विकसित करने का अवसर मिलेगा। उसमें लोग एक दूसरे का भरोसा करेंगे और एक दूसरे की मदद करेंगे, जिसमें धर्म इस काम में न लाया जायगा कि झूठी बातें मनवाये और स्वार्थों की आड़ बने, बल्कि वह जीवन को सुधारने का साधन होगा।" यह है डा० जाकिर हुसैन के सपनों का भारत, उनका जीवन दर्शन, सीधा, सरल, किन्तु उच्च आदर्शों से परिवेष्ठित।

गाँधी जी के सच्चे शिष्य

लक्ष्मीनारायण श्रीवास्तव

संसार की उत्पत्ति से आज तक इस रंगा रंग विश्व से प्रभावित होकर अनेक दार्शनिक अपने-अपने दृष्टि कोण से इसकी परिभाषा अपने ढंग से करने का प्रयास करते चले आ रहे हैं। मुख्यत: किसी ने इस जगत् को असार और मिथ्या बताते हुए केवल एक स्वप्न के सदृष्य माना है, जब कि दूसरों ने इस को अति गम्भीर, महत्वपूर्ण और उपयोगी समझा है। इन दो मूल विचारधाराओं के वेग में साधारण मानव जीवन की गति-विधियाँ अनादि काल से बहती रही हैं।

कैसा विचित्र और कैसा अनोखा है यह संसार ! इसकी प्रत्येक वस्तु की रचना एक विकसित मानव मस्तिष्क में अद्भुत हलचल उत्पन्न किये बिना नहीं रहती। रचना ! एक उत्तेजनात्मक प्रेरणा का स्रोत, एक तीव्र लग्न का केन्द्र, एक प्रबल साहस और अटूट उत्साह का उद्गम और एक तीखी गहरी प्यास, उस पीयूष पान करने के लिए, जिस के पाने के पश्चात् कुछ जानने के लिए अथवा कुछ प्राप्त करने के लिये शेष नहीं रह जाता। सहसा इस सारे रंगमंच को सुसज्जित करने वाले की ओर ध्यान आकर्षित होता है जिस ने प्रत्येक वस्तु की रचना इतनी सुन्दर, इतनी शुद्ध और इतनी अमूल्य की है कि इसके विभिन्न पक्षों का अध्ययन करने के लिए अनन्त काल की आवश्यकता है। ऐसी दशा में आयु की सीमित अवधी में उस रचयिता की खोज के प्रयत्न, जीवन का कार्यक्रम और उसकी प्राप्ति जीवन का लक्ष्य स्वत: ही सिद्ध हो जाते हैं।

यह बात भी निर्विवाद सिद्ध है कि "मानव" उस रचयिता की श्रेष्ठतम कृति है, इसको वे शारीरिक और मानसिक वरदान

प्राप्त हैं जो अन्य को नहीं, अतः मानव जीवन ही केवल ऐसा जीवन है जिसमें सुबुद्धि युक्त सद् कर्मों द्वारा मानव इस संसार के सम्पूर्ण रहस्य जान सकता है तथा जीवन के लक्ष्य को सरलता से प्राप्त कर सकता है। सुबुद्धि युक्त सद्कर्मों के क्षेत्र में शुद्ध और स्वतंत्र वातावरण का प्रमुख स्थान है।

प्राचीन काल से जो जगत् गुरु भारत संसार के कोने-कोने में आध्यात्मवाद का नारा बुलन्द करता आया था और जिसने स्वतंत्रता, शान्ति, सहयोग और सुख का सन्देश व्यक्ति के द्वार तक पहुँचाया था, अभाग्य से दासता के चुंगल में फंस कर धीरे-धीरे सर्वांगीण पतन की ओर फिसलने लगा। परन्तु देश में कभी पूर्व में तो कभी पश्चिम में, कभी उत्तर में तो कभी दक्षिण में स्वतंत्रता की छिपी अग्नि भड़क उठती थी।

स्वर्गीय पूज्य महात्मा गांधी का युग आरम्भ हुआ। देश के एक छोर से दूसरे छोर तक फिरंगियों से स्वतंत्रता की मांग की लहर दौड़ गई। राष्ट्रीय एकता ने अपना चमत्कार दिखाया। प्रेम, त्याग, सत्य और अहिंसा ने देश को एक सूत्र में बांधा। देश के दीवाने पूज्य महात्मा गांधी के झण्डे के नीचे एकत्रित हो गये और देश के हितार्थ अपने जीवन को उनके हाथों में सौंप दिया।

हमारे वर्तमान राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन साहब भी उन्हीं देश के दीवानों में से हैं जिनके हृदय में अपने देश और देश वासियों के प्रति अपार प्रेम भरा है। ये स्व० महात्मा गांधी के उन कप्तानों में से हैं जिन पर उनको अटूट विश्वास था।

राष्ट्रीय प्रेम से ओतप्रोत डा० जाकिर हुसैन साहब का जन्म हैदराबाद में सन् १८९७ में हुआ था। आपके पूर्वज ग्राम पतोरा जिला फर्रुखाबाद के रहने वाले थे। आपके पिता स्वर्गीय फिदा हुसैन साहब हैदराबाद में वकालत करते थे। डा० जाकिर हुसैन साहब की प्राथमिक शिक्षा समाप्त होने के पूर्व ही श्री फिदा हुसैन साहब का स्वर्गवास हो गया।

डा० जाकिर हुसैन ने हाई स्कूल इटावा से, एम० ए० विश्वविद्यालय अलीगढ़ तथा पी-एच. डी. जर्मनी से पास किया। यह उल्लेखनीय बात है कि जब आप विश्वविद्यालय अलीगढ़ में एम. ए. के विद्यार्थी थे तब आप जामिया मिलिया, अलीगढ़ में अध्यापक भी थे और आपका सम्मान छात्रों और अध्यापकों में बराबर था। एक नई संस्था की समस्याओं के हल करने तथा इसमें नई-नई शैक्षणिक गतिविधियों को कार्यान्वित करने में आपका अधिकांश समय व्यतीत होता था।

जर्मनी से लौट आने के पश्चात् सन् १९२६ से १९४८ तक आप जामिया मिलिया के प्रिंसीपल रहे। शिक्षा मंत्री महोदय स्वर्गीय अबुलकलाम आजाद साहब ने आपसे विश्व विद्यालय अलीगढ़ का भार वहन करने के लिए कहा। पहले तो आप ने संकोच किया परन्तु मित्रों के आग्रह से सन् १९४८ में विश्वविद्यालय अलीगढ़ के वाइस चांसलर नियुक्त हो गये और १९५४ तक इस पद पर इस प्रकार कार्य किया कि विश्व विद्यालय में नये प्राण का संचार होना साफ प्रकट होता था।

कठिन परिश्रम के कारण आपका स्वास्थ्य खराब हो गया। वाइस चांसलर के पद को छोड़कर और कुछ दिनों जामिया नगर रहकर चिकित्सा के लिए आप स्विटरजलैंड और जर्मनी पधार

गये। इस ही बीच में आपको बिहार का गवर्नर बना दिया गया। आपका कार्य इस पद पर भी बड़ा सराहनीय रहा। इसके पश्चात् आप उपराष्ट्रपति और वर्तमान में राष्ट्रपति के पद को सुशोभित कर रहे हैं।

डा० जाकिर हुसैन महात्मा गांधी के कट्टर अनुयाइयों में से है। आपका भी मत यही है कि जीवन का लक्ष्य ईश्वर में अटूट विश्वास और उसकी प्राप्ति है। आप भी मानवता के पुजारी हैं और सदा मानव कल्याण के लिए प्रयत्न शील रहते हैं। आप देश में समाजवाद की स्थापना चाहते हैं। आपमें प्रेम, त्याग, सत्य और अहिंसा कूट-कूट कर भरे हैं। निर्धन, दुःखी और असहाय लोगों से आप को विशेष सहानुभूति रही है और आप उनके कष्ट दूर करने में भरसक तन, मन और धन से प्रयत्न करते आये हैं। आपने देश के हजारों नवयुवकों का पथ प्रदर्शन करके उनको सद् मार्ग पर लगाया है।

डा० जाकिर हुसैन साहब की श्रेष्ठतम ख्याति का कारण उनकी शिक्षा क्षेत्र की सेवाएँ हैं। पूज्य महात्मा गांधी के शिक्षा सम्बन्धी विचारों को एक सूत्र में बाँध कर बुनियादी शिक्षा का रूप देना वास्तव में आप का ही कार्य था। सन् १९३७ में गोरों के शासन में यह महान शिक्षा शास्त्री दो बार बुनियादी शिक्षा कमेटियों के अध्यक्ष चुने गये। इन्होंने बड़े धैर्य और वीरता के साथ भारत में लार्ड मेकाले द्वारा संचालित शिक्षा नीति का घोर विरोध किया। प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष भाषणों में, लेखों में उस समय की सरकार की शिक्षा नीति के अवगुणों और उनके देश पर पड़ने वाले कुप्रभावों को भारतीय जनता के समक्ष रखा। यही नहीं गोरों के विरुद्ध भारतीयों से भी जम कर वह लोहा लिया कि गोरों की पूरी शिक्षा नीति का भंडाफोड़ ही नहीं हुआ बल्कि उसके प्रति घृणा और उसका देश से उन्मूलन करने के भाव जन-जन में भड़क उठे। देश की शिक्षा नीति में परिवर्तन की अनुभूति कराने का श्रेय वास्तव में डा० जाकिर हुसैन साहब की विद्वता, दूरदर्शिता, अथक परिश्रम और चरित्र बल को ही है।

डा० जाकिर हुसैन साहब ने आकाशवाणी द्वारा अपने भाषणों में, महाविद्यालयों के प्रमाण पत्र वितरण समारोहों के भाषणों में बुनियादी शिक्षा के गुणों और उसके द्वारा सामाजिक पुनर्निर्माण के महत्व को समझाया। आपने बताया कि जीवन सम्बन्धित उद्योगों द्वारा अथवा सामाजिक अथवा सांस्कृतिक अथवा स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यों द्वारा बालक के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास इस प्रकार किया जाये कि भविष्य में वह नागरिक के रूप में समाज पर बोझ न बनकर समाज में अपना उचित स्थान प्राप्त कर सके तथा इसके विकास में योग देता हुआ अपने जीवन के लक्ष्य को प्राप्त कर सके, जो लोकतंत्र का अमूल्य प्रसाद है। आपने बालक के मन, हाथ, मस्तिष्क और स्वास्थ्य की शिक्षा को परम् आवश्यक बताते हुए उनकी विधियों और साधनों को बताकर देश की अमूल्य सेवाएँ की हैं। माता, पिता अथवा संरक्षण का बालक के प्रति उत्तरदायित्व, बाल ग्रंथियां, सरकार, समाज और घर और पाठशाला के पारस्परिक सम्बन्ध, अच्छी आदतों का बालकों में निर्माण, पाठशाला का वास्तविक रूप, आदर्श अध्यापक तथा व्यक्ति और समाज जैसे गूढ़ गहन विषयों पर अधिकारपूर्ण रूप से प्रभावशाली भाषा में अनेक भाषण देकर आप भारतीय समाज में उन्नति की एक नवीन उत्सुकता और चेतना पैदा करते हैं। आपके भाषण एक ओर पथ प्रदर्शन करते हैं तो दूसरी ओर उनमें समाज और राष्ट्र के प्रति मानसिक और हार्दिक कसक स्पष्ट रूप से झलकती है।

डा० जाकिर हुसैन साहब चारित्रिक सद्‌गुणों के कोष हैं। एक ओर आपके हृदय में राष्ट्र प्रेम और मानवता के प्रति श्रद्धा और आदर की लहरें हिलोरें दिखाई दृष्टि पड़ती हैं तो दूसरी ओर सृजनात्मक, कलात्मक और सौन्दर्यात्मक अनुभूतियों की प्रचुरता से छोटी-छोटी साधारण बातों में चार चाँद लगा देते हैं। प्रत्येक बात में आश्चर्यजनक नवीनता, सुन्दरता और आकर्षण पैदा कर देना आपकी साधारण कला है। आपकी तबीयत में सफाई को प्रकृति ने विशेष स्थान दिया है।

आप एक असाधारण लेखक, कहानीकार और प्रवक्ता तो हैं ही, आपका अध्ययन बहुत गहरा है और अब भी आप को पुस्तकें पढ़ने का बड़ा चाव है। बागबानी, नागफनी, संसार के विभिन्न कला तथा अन्य क्षेत्रों के महापुरुष आदि के चित्रों, विभिन्न प्रकार के पत्थरों को जमा करने का, कहानियों का भी आपको भारी चाव है। आप सदा से ललित कला के उपासक रहे हैं। संसार के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध कवियों के पद्य आप को जबानी याद हैं जिनका प्रयोग प्रायः आप अपने भाषणों और लेखों में भी किया करते हैं। आपके विचार स्पष्ट होते हैं और उनको जनसाधारण की भाषा में प्रभावपूर्ण ढंग से लिखकर अथवा वाणी द्वारा प्रकट करना आपका विशेष गुण है।

कटु सत्य तो यह है कि जिस मनुष्य को बालक और उसकी उचित शिक्षा में रुचि नहीं वह संसार में कुछ भी हो सकता है परन्तु राष्ट्र में किसी प्रकार समाज का नेता कहलाने का हकदार नहीं माना जा सकता। अतः डा० जाकिर हुसैन साहब का देश में राष्ट्रपति पद पर आरूढ़ किया जाना कोई बड़ा आश्चर्य नहीं। डा० जाकिर हुसैन साहब तो संसार के सर्वश्रेष्ठ शिक्षा शास्त्री हैं और आपकी रगरग में बच्चों का प्रति मान और स्नेह का समुद्र हिलोरें लेता है।

आपका राजनीतिक दृष्टिकोण पंचशील के सिद्धान्तों पर आधारित है। आप ससार के राष्टों में पारस्परिक सद्‌भावना और प्रेम का व्यवहार चाहते हैं। प्रत्येक राष्ट्र के कष्ट और आपत्तियों में सहयोग को भावना रखते हैं। संसार में सुख, शान्ति, न्याय, प्रेम और सहयोग की जड़ें सुदृढ़ हों और मानव कल्याण के साधनों को शक्तिशाली बनाया जाये, यह आपकी हार्दिक इच्छा है।●

असली शिक्षा

असली शिक्षा आदमी के अपने ही हाथों होती है। मेरी प्रार्थना आप सबसे, शिक्षकों से भी, स्नातकों से भी यही है कि इस काम को अपना काम बनाइये, ऐसा काम जिससे मन का विकास होता है। आप अच्छे आदमी बनें, आप से यह बात भला क्यों छिपी होगी कि आदमी का मस्तिष्क अपने किये को परख कर अच्छे—बुरे पर नजर करके ही उन्नति करता है।

—डा० जाकिर हुसैन

तीन दुर्लभ विशेषताएँ : एक व्यक्ति

—प्रोफेसर अल अहमद सरूर

प्लेटो के बारे में कहा गया है कि "उसके व्यक्तित्व के सैद्धान्तिक व व्यावहारिक दोनों पक्ष सौन्दर्य-भावना में मिल गये हैं। सुधारक व विचारक के मध्य विरोध कलाकार की श्रेणी में विलीन हो गया है।"

यह बात प्लेटो की विश्व प्रसिद्ध पुस्तक "स्टेट" से ली गई है और यह बात इस पुस्तक के अनुवादक डा० जाकिर हुसैन पर भी पूरी उतरती है। प्लेटो से रसेल तक विचारक और लेखकों के यहां या तो ज्ञान की गहराई है या एक पैगम्बराना शान या व्याख्या की विशेषता। ये तीनों बातें अलग-अलग भी इतनी महत्वपूर्ण हैं कि मुश्किल से एक व्यक्ति में एकत्रित हो सकती हैं। प्लेटो को इन सब का भरपूर हिस्सा मिला था और फिर जाकिर साहिब को भी।

डा० जाकिर हुसैन में एक विचारक की कल्पना है, एक शिक्षक की विशेषता है, एक प्रेमी का दर्द है, एक राजनीतिज्ञ का गौरव है, एक सूफी की शान है और एक महात्मा की निर्दोषिता है। उनके लिए शिक्षा सिर्फ ज्ञान-विज्ञान का संग्रह मात्र नहीं बल्कि मानवता के श्रेष्ठ मूल्यों की सेवा का साधन भी है। उन्होंने कई बार घर छोड़ा और लोगों को तालीम दी। उन्होंने किताबों में कभी अपने आप को बन्द नहीं किया। मगर जब भी कुछ लिखा तो अपने वाक्यों में वह बिजली भर दी जो साहित्य मे एक विशिष्ट प्रभाव और प्रकाश दे जाती है और जिससे मानव की जिन्दगी बदलती, संवरती और निखरती है। जाकिर साहिब की पहली किताब अफलातून की "स्टेट" का उर्दू अनुवाद है। इसके बारे में मौलाना इकबाल अहमद सुहेल ने कहा है कि प्लेटो को उर्दू

आती होती तो वह भी यही भाषा ग्रहण करता।

जर्मनी में जाकिर साहिब अर्थशास्त्र के प्रसिद्ध प्रोफेसर जुम्बार्ड के शिष्य थे। जब वे यूरोप से वापस आये तो जामिया वाले खस्ता हालत में थे। इसके नेता राजनीति की तंग घाटियों में भटक रहे थे। राष्ट्रीय शिक्षा का यह प्रयोग दम तोड़ रहा था। जाकिर साहिब ने कौमी व शिक्षायी बुनियादों पर शिक्षा का मार्ग दर्शन किया, अच्छे शिक्षकों का एक सिलसिला तैयार किया, छात्रों में शिक्षा की पिपासा, ज्ञान प्राप्ति की लगन व सेवा की भावना पैदा की और सितारों से आगे देखने वाली दृष्टि को एक शैक्षणिक बस्ती बसाने के कठिन, पर पवित्र काम में लगा दिया।

ज़ाकिर साहिब ने अपने भाषणों में अध्यापन का जो लक्ष्य प्रस्तुत किया है, वह इतना महत्त्वपूर्ण है कि उसे उद्धृत करने का लोभ संवरण करना कठिन है:—उस्ताद की जीवनी के पहले सफे पर इल्म नहीं लिखा होता। मुहब्बत की सुर्खी होती है। उसे इन्सानों से मुहब्बत होती है। समाज से मुहब्बत होती है। अच्छे उस्ताद की संवेदनापूर्ण जिन्दगी में व्यापकता होती है और उसकी गहराई भी उतनी ही अधिक होती है। उसकी आत्मा में सच्चाई होती है। नेकी व पवित्रता, न्याय व स्वतन्त्रता की जांच होती है, जिससे वह दूसरे दिलों को गरमाता है और उसमें तपा-तपा कर अपने शागिर्दों को निखारता है। शासक जुल्म करते हैं पर वह सब्र करता है। वे मजबूर करके एक ही राह पर चलाते हैं, पर वह उन्हें उनकी इच्छा से उचित राह पर चलाता है। एक के साधनों में हिंसा व बल है, जब कि दूसरे में मुहब्बत व सेवा। एक का कथन डर से माना जाता है दूसरे का इच्छा से। एक हुक्म देता है, दूसरा सलाह। एक गुलाम बनाता है, दूसरा दोस्त। जब सारी दुनिया निराश हो जाती है तो बस दो आदमी होते हैं, जिनके सीने में उम्मीद बाकी रहती है, एक उसकी मां, दूसरा अच्छा उस्ताद।

जाकिर साहिब बहुत कुछ हैं। मगर सब से पहले वे शिक्षक हैं। उन्हें नौजवानों और बच्चों से बहुत मुहब्बत है। उन्होंने न सिर्फ बच्चों को इन्सानियत सिखाई है बल्कि उनके लिए कहानियां, ड्रामे व मजमून सब कुछ लिखा है।……पूरी जो कढ़ाई से निकल भागी, मुर्गी जो अजमेर चली, उकाब, अब्बूखान की बकरी, आदि कहानियां भी युवा, वृद्ध सभी शौक से पढ़ते है। बच्चों के लिए ये सीधी-सादी दिलचस्प कहानियां हैं, जवानों व बूढ़ों के लिए इनमें आजादी, देशभक्ति व मानवता के अमर संदेश छिपे पड़े हैं। स्विफ्ट ने गुलीवर के सफर की जो कहानी लिखी हैं, उसे बच्चे मनोरंजन की खान समझते हैं। उसने किस्से कहानी के परदे से मानवीय प्रकृति पर ऐसे-ऐसे पर्यवेक्षण किये है कि समझने वाला तिलमिला कर रह जाता है। ज़ाकिर साहब ने भी पर्यवेक्षण किये हैं पर वे चोट नहीं लगाते। उनके पास तो एक शिक्षक की रहमदिली है। वे न इन्सानों से निराश होते हैं न बेजार। कहा जाता है कि खुदा इन्सानों से अभी तक बेजार नहीं हुआ है। खुदा की यह विशेषता खुदा के इस नेक बन्दे के व्यक्तित्व में भी झलकती है। एक जगह वे लिखते हैं :—

इसमें बड़ा मजा है कि आदमी आदमियों के बारे में अच्छे से अच्छे भाव रखे। वह चाहे रोज धोखा खाये, पर हर रोज नये सिरे से आदमी की नेक दिली पर विश्वास करे और अक्लमंदों को और बेवकूफों को माफ करे क्योंकि दोनों गुमराह होते हैं।

जान कर के धोखे खाने में जो मजा है, वह बड़ी से बड़ी अकलमन्दी में नहीं।

जाकिर साहब ने जामिया में उर्दू अकादमी की बुनियाद डाली। उन्हीं के नेतृत्व में जामिया ने दीवाने गालिब, रुबाइयाते उमर खय्याम और दीवाने शैदा के सुन्दर संस्करण टाइप में निकले। उन्हीं के नेतृत्व में "रिसाले जामिया" ने वर्षों उर्दू साहित्य की मौन पर ठोस सेवा की। उन्होंने ही अलीगढ़ में शिक्षा का वातावरण उत्पन्न करके अलीगढ़ की प्रतिष्ठा ऊंची की और उन्होंने ही अंजुमन तरक्किये उर्दू (हिन्द) के अध्यक्ष की हैसियत से आधुनिक भारत में उर्दू के दर्जे को उठाया व अलीगढ़ पर उर्दू का जो हक है, उसकी याद अलीगढ़ वालों को दिलाई। उन्होंने अपनी लेखनी व भाषण दोनों से साहित्य व शिक्षा के क्षेत्र में निरन्तर महत्त्वपूर्ण योगदान किया। उन्होंने साहित्य व शिक्षा के उद्देश्य पर भी नये रूप में प्रकाश डाला व साहित्य के जरिये से देश व कौम को व्यापकता व गहराई प्रदान की और जीवन की चमक-दमक, थरथराहट व दर्द से दोस्ती करने उसमें बुलन्दी उत्पन्न की। इस शिक्षक, विचारक, महात्मा, सूफी और साहित्यकार को देन कहां तक गिनाई जाये। ●

हमें बहुत कुछ करना है—

"जब तक हमारे देश में करोड़ों आदमियों को जीते जी पेट भर खाना नहीं मिलता है, जब तक करोड़ों आदमियों को दुख-दर्द में दवा नसीब नहीं होती, जब तक हमारे देश में आदमियों की जान मक्खियों और भुनगों जैसी सस्ती है, जब तक इस देश में करोड़ों आदमी अनपढ़ हैं और करोड़ों बच्चों को मदरसे जाना नसीब नहीं होता, उस वक्त तक अंग्रेजी साम्राज्य से निजात पा जाना काफी नहीं है। हमें इस देश के पहाड़ काटने हैं, समुन्दर पाटने हैं, खानें खोदनी हैं, नदियां मोड़नी हैं, इसके रेगिस्तान को गुलजार बनाना है, जहालत को खत्म करना है। गरीबी को मिटाना है, रोगों को भगाना है। यह सब विज्ञान के रास्ते से होगा।"

—डा० जाकिर हुसैन

एक राष्ट्रीय अध्यापक

—बी० पी० जोशी

"आप बड़े खुश नसीब हैं। राष्ट्रपति ने खुद अपने हाथों आपको इज्जत दी है। आपको उन्होंने राष्ट्रीय पुरस्कार दिया है। हमें तो ऐसा कोई इनाम मिला नहीं है। हमारे जमाने में ऐसे इनाम का कोई जिक्र या वास्ता ही नहीं था। अगर होता भी तो क्या पता हमको मिलता भी या नहीं।" इन शब्दों से डा० जाकिर हुसैन ने, जो उन दिनों उपराष्ट्रपति पद को सुशोभित कर रहे थे, दिनांक १६ नवम्बर ६४ की संध्या को अपने निवास स्थान पर आमंत्रित राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त अध्यापकों को सम्बोधित किया। बातचीत का सिलसिला चलता रहा। उन्होंने आगे शालीनता पूर्वक फरमाया, "देखिये, मैं तो बरसों अध्यापक रहा हूँ। घण्टों बोलने का अभ्यास तो वैसे ही है। अगर मैं बोलना शुरू करूं तो कम से कम पैंतालीस मिनट तो बोल ही लूंगा। ज्यादा अच्छा तो यह होगा कि आप ही कोई सवाल पूछें और मैं उसका जवाब दूं।"

उस वर्ष के चुने हुए, भारत भर से आये सभी पुरस्कृत अध्यापक कुर्सियों पर बैठ गये और प्रश्नोत्तर चलने लगे। हर एक जवाब से लगता था कि डा० जाकिर हुसैन का भारतीय शिक्षा के बारे में कितना स्पष्ट चिन्तन है और कितनी खूबी से वे सामने वाले को आश्वस्त कर पाते हैं। मैं भी पूछ बैठा "क्या आप भारतीय शिक्षा की किसी राष्ट्रीय नीति पर प्रकाश डालना पसन्द करेंगे?" जो जवाब सुनने को मिला वह आज भी उतना ही ताजा और उतनी ही सत्यता लिए हुए है जितना उस समय। "भारतीय शिक्षा की कोई भी राष्ट्रीय नीति बने उसमें निश्चय ही भारतीय संस्कृति के मूल तत्वों का समावेश होना चाहिये और साथ ही पाश्चात्य जगत की

वैज्ञानिक और तकनीकी उपलब्धियों का महत्वपूर्ण उल्लेख उसमें अपेक्षित होगा।"

उपस्थित समुदाय ने सगर्व अनुभव किया कि उन सब ने वह संध्या एक श्रेष्ठ राष्ट्रीय शिक्षक के साथ बिताई।

डा० जाकिर हुसैन को सुनने का एक और अवसर कुछ वर्षों पूर्व सुलभ हुआ था, जब वे विद्याभवन शिक्षक महाविद्यालय, उदयपुर के तत्वावधान में आयोजित भाषण माला के सिलसिले में उदयपुर पधारे थे। लम्बरदार उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के हॉल में शिक्षकों को सम्बोधित करते हुए भारतीय शिक्षा के मूल तत्वों पर उन्होंने सारगर्भित विचार व्यक्त किये।

मेरी विदेश यात्रा के समय अनेक अवसरों पर डा० जाकिर हुसैन की भारतीय शिक्षा को देन पर प्रश्न किये जाते रहे थे। इसका कारण मेरे फ़ोटो एलबम में उनके साथके कई फोटो होना था। अनेक शिक्षाप्रेमी भारत के राष्ट्रपति पद को श्रेष्ठ अध्यापक—राजनीतिज्ञ द्वारा सुशोभित करने को, प्रगति और स्वस्थ परम्परा का प्रतीक बता कर हर्ष का अनुभव करते पाये गये थे।

वस्तुत: डा० जाकिर हुसैन राष्ट्रपति होने के साथ-साथ एक राष्ट्रीय श्रेष्ठ अध्यापक हैं। यह तथ्य भारत के लाखों अध्यापकों को राहत की सांस देने के लिए पर्याप्त है। ●

अहिंसा, शान्ति और न्याय—

"जब तक देश में आदमी-आदमी पर जुल्म करता है, जब तक इस देश में बसने वाले एक दूसरे पर भरोसा नहीं करते, जब तक यहां के बसने वाले मिल, ईमानं अपने को भाई–भाई नहीं जानते और नहीं मानते, जब तक अमीर गरीब को, ताकतवर कमजोर को उभरने नहीं देते, जब तक यहां किसी की मेहनत मशक्कत से कोई दूसरा बेजा लाभ उठाता है, उस वक्त तक यह देश गांधी जी के विचारों का देश नहीं है।" यही है उनके शब्दों में अहिंसा, शान्ति और न्याय का रास्ता।

—डा० जाकिर हुसैन

अनोखा व्यक्तित्व

रामचन्द्र देवपुरा

१७ मई १९६५ की संध्या। चार हजार की जनसंख्या वाले राजस्थानी ग्राम गुलाबपुरा के गांधी विद्यालय प्रांगण में सहस्रों नर-नारी एवं बालक-बालिकाएँ रंग-बिरंगी पोशाकों में सजे अपने अतिथि का स्वागत करने को उत्सुक थे। महामहिम डा० जाकिर हुसैन पधार रहे थे। उनके स्वागतार्थ छोटे से ग्राम में चौड़ी सी सड़क बन गई। दोनों ओर फुटपाथ भी। उत्साह से लोगों ने बाजार को गुलाबी पुतवा कर गुलाबपुरा को गुलाबी नगरी बना दिया। स्थान-स्थान पर विभिन्न प्रकार के द्वार, बन्दनवार, रंग-विरंगी फरियां तथा सड़क के दोनों ओर अपार जनसमूह। छतों पर महिलाएँ, एक अदम्य उत्साह, उल्लास और आनन्द का ऐसा साम्राज्य जो यहां पहले कभी नहीं देखा गया।

लोग उपराष्ट्रपति के दर्शन की राह देख रहे थे, तो शिक्षाप्रेमी देश के एक महान् शिक्षाशास्त्री की वाणी सुनने को आतुर थे। ग्रामीण जन उपराष्ट्रपति के आगमन की बात से आत्मविभोर थे।

भारतीय जाकिर हुसैन पधारे। धवल पोशाक सत्य, शान्ति और अहिंसा की प्रतीक। साथ में राजस्थान के लोकप्रिय मुख्य मंत्री श्री सुखाड़िया थे। विद्यालय की छात्राओं ने राजस्थानी पद्धति के अनुसार कलश चन्दन से स्वागत किया। अतिथि ने कलश का सम्मान किया, अभिवादन से स्वागत का उत्तर दिया। रुचिपूर्वक स्काउट्स, कब्स और बालकों की विभिन्न प्रवृत्तियों का अवलोकन किया। अध्यापकों और विद्यालय कार्यकारिणी सभा के सभासदों के साथ वे फोटो ग्रुप में विराजे। प्रयोगशालाओं तथा

छात्रों के बन शाला शिविर तथा अन्य कार्यों का अवलोकन किया। विद्यालय का स्मृति चिन्ह भेंट स्वरूप स्वीकार कर विद्यालय के निर्माता स्वर्गीय श्री मोहनसिंह जी ढाबरिया तथा १५ वर्ष से अधिक समय से विद्यालय की सेवा में रत अध्यापकों एवं कर्मचारियों को दीर्घकालीन सेवा पदक तथा द्रव्य द्वारा पुरस्कृत किया और जो कुछ कहा उसका भाव था कि वे यहां पर आकर ऐसा अनुभव करते हैं मानों उनका अपना घर, उनकी अपनी पाठशाला और उनका अपना बचपन लौट आया है।

अच्छे बालक, अच्छे विद्यालय और अच्छे अध्यापक के गुण बताने के साथ ही उन्होंने अच्छे माता-पिता और अच्छे नागरिक के गुणों का भी स्पष्टीकरण किया। छोटे-छोटे और प्रारम्भिक विद्यालयों को उन्होंने इमारत की नींव बताया। उन्होंने कहा "एक सामान्य कॉलेज की अपेक्षा एक अच्छा विद्यालय चलाना उचित है और एक सामान्य विद्यालय की अपेक्षा एक बहुत अच्छी प्रारम्भिक शाला चलानी चाहिये।" सीधे-सादे शब्दों में इस महान् शिक्षा शास्त्री ने आधुनिक शिक्षा के दोष को बड़ी स्पष्टता के साथ समझा दिया। वस्तुतः आज हम पेड़ की जड़ में पानी न देकर उसके तने और पत्तों का शृंगार करने में व्यस्त हैं, प्राथमिक शिक्षा पर ध्यान न दे कर केवल उच्च शिक्षा पर ध्यान देते रहने से देश का निर्माण नहीं हो सकता। निर्माण के लिए तो सर्व साधारण को सुनागरिकता की प्राथमिक शिक्षा देने पर ही ध्यान केन्द्रित करना अनिवार्य है।

सब लोग उन्हें देख कर आनन्दित हो गये। उनकी वाणी सुन कर बच्चे, युवा, वृद्ध, स्त्री, पुरुष सब गद्गद् हो गये और घंटे भर के ही कार्यक्रम में उन्होंने भी अपने आपको आनन्दित पाया।

सचमुच में हमारे राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन का व्यक्तित्व अनोखा है। वे बालकों में बालक, अध्यापकों में अध्यापक, शिक्षा शास्त्रियों में महान् शिक्षा शास्त्री और राजनीतिज्ञों में कुशल राजनीतिज्ञ है। महात्मा गांधी की बुनियादी तालीम को बुनियादी शैक्षणिक रूप उन्होंने दिया है और जामिया मिलिया के रूप में उसका प्रयोग भी देश के सामने प्रस्तुत किया है। देश को उन पर गर्व है और इसलिए आज वे देश के सर्वोच्च गौरव पूर्ण पद पर आसीन हैं। ●

कभी न खत्म होने वाला काम—

अच्छे आदमी बनना और अच्छा समाज बनाना अच्छे आदमियों को अच्छे समाज की सेवा में लगना और अच्छे समाज को संसार की सेवा में लगाने के लिये तैयार करना—यह कोई एक या दो की जिन्दगी में पूरा होने वाला काम नहीं है। सच यह है कि यह कभी खत्म न होने वाला काम है जो हम सबको बराबर करते रहना है।

—डॉ० जाकिर हुसैन

डा० जाकिर हुसैन का राज-दर्शन

डा० सी० एम० जैन

डा० जाकिर हुसैन अपने जीवन काल में एक राजनीतिज्ञ के रूप में नहीं रहे, परन्तु उनका राज-दर्शन उच्च कोटि का रहा है। उनके दर्शन के अध्ययन के लिए प्रमुख स्रोत--उनके द्वारा अंग्रेजी से उर्दू में किये गये अनुवाद, अपने शैक्षणिक काल में लिखे गये अनेक लेख तथा अन्तर्राष्ट्रीय विषयों पर प्रकाशित टिप्पणियां एवं राष्ट्र के नाम दिये गये विभिन्न सन्देश आदि हैं। १८३२ में उन्होंने प्लेटो के 'रिपब्लिक' का उर्दू में 'रियासत' के नाम से अनुवाद किया। यह अनुवाद इतना सफल रहा कि कहीं भी रचना की मौलिकता का ह्रास नही हो पाया है। यह ग्रन्थ जाकिर साहब की बौद्धिक प्रवृत्ति का भी परिचायक है। उनका आदर्शवाद. परम्परा-विरोधी विचार तथा अध्ययन पद्धति ग्रीक राजनीतिक-दर्शन से ही काफी प्रभावित हुई है। जिन व्यक्तियों ने जाकिर-साहब के राजनीतिक-दर्शन को प्रभावित किया है, उनमें गांधी, रसल एवं कौटिल्य, आदि प्रमुख हैं।

राज्य कैसा हो

जाकिर साहिब के राज्य संबंधी विचार अंग्रेजी आदर्शवादी थॉमस हिल ग्रीन के बहुत कुछ अनुरूप ही हैं। आपके मत में राज्य एक मात्र शक्ति संस्था से कही अधिक एक नैतिक संस्था है। शक्ति का उद्देश्य नैतिकता की प्राप्ति होना चाहिए, अतः राज्य शक्ति का प्रयोग मानव कल्याण को सबल व कार्यान्वित करना है। उन के दृष्टिकोण से समाज का कल्याण तभी सम्भव है जब समाज का राजनैतिक जीवन शक्ति प्रयोग तथा भ्रष्टाचार से स्वतन्त्र हो। पश्चिमी आदर्शवादियों की भांति आपका मत है कि राज्य मानव के विकास में आने वाली कठिनाइयों को दूर करता है और इसलिए राज्य को कला, साहित्य. धर्म, ज्ञान आदि

क्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। संक्षिप्त में आपके अनुसार, राज्य का उद्देश्य मानव के व्यक्तित्व का विकास, जो नैतिकता की प्राप्ति में निहित है, होना चाहिए। जाकिर साहब के राज-दर्शन में आदर्शवाद के साथ-साथ उपयोगितावाद का भी गहरा पुट व्याप्त है। मानव-कल्याण के हित में सामाजिक जागृति क्रांति व विकास राज्य तभी ला सकता है जब वह "अधिकतम व्यक्तियों के अधिकतम हित' के सिद्धान्त पर आधारित हो। राज्य के सम्बन्ध में कहीं-कहीं पर उनके विचार कौटिल्य के अर्थ-शास्त्र से भी प्रभावित हुए हैं। कौटिल्य की भांति जाकिर साहब के मत में, कानून एक सर्वोपरि शक्ति है। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि आप यदि एक ओर स्वतन्त्रता के अति समर्थक हैं तो दूसरी ओर उसे कानून से सम्बन्धित कर समाज को अराजकता से बचाना चाहते हैं। अन्ततोगत्वा जाकिर साहब का दृष्टिकोण एक ऐसे राज्य की स्थापना करना है जो श्रेष्ठतम जीवन की प्राप्ति में सहायक हो सके। इनके ही शब्दों में, "The State should proceed modestly as a revolutionary state towards a good and perfect state, striving to encourage the development of free moral personality among its citizens and through their development and active co-operation aspire to grow into that good and perfact state." उचित ही है कि एक सर्वोत्तम राज्य की कल्पना व प्राप्ति सरकार व उसके नागरिकों के बीच पूर्ण सक्रिय सहयोग के बिना सम्भव नहीं है। इस प्रकार राज्य के सम्बन्ध में उनके विचार आदर्शवाद और उपयोगितावाद का समन्वित रूप हैं।

कल्याणकारी राज्य

डा० जाकिर साहब का राजदर्शन एक कल्याणकारी राज्य की ओर अधिक उन्मुख है। १३ मई, १९६७ को राष्ट्रपति पद ग्रहण करते हुए आपने अपनी घोषणा में कहा था कि राज्य को अपने प्रत्येक नागरिक के लिए एक सुन्दर मानवीय जीवन की न्यूनतम शर्तें पूर्ण करनी चाहिए। राज्य सामाजिक न्याय की मांगों के प्रति अवहेलना करने वालों का विरोध करे। समाज में व्याप्त संकीर्णता और स्वार्थ को राज्य समाप्त करे। उनके शब्दों में, "राज्य का उद्देश्य शक्ति में नैतिकता; गवेषणा में मानवता; कार्य में मनन; तथा पूर्व पश्चिम का समन्वय करने का होना चाहिए।" एक कल्याणकारी राज्य की प्राप्ति में जाकिर साहब का यह भय उचित ही है कि राज्य की शक्ति स्वाभाविक रूप से बढ़ जाय। इसलिए आप चाहते हैं कि 'कानून के समक्ष समानता के सिद्धान्त द्वारा राज्य के अवांछनीय शक्तिवर्द्धन को धर्म निरपेक्ष समाज के विकास के लिए सीमित कर दिया जाय।

कानून सर्वोपरि

प्रसिद्ध राजनीतिक दार्शनिक बोदां की भांति आप भी विभिन्न प्रकार के कानूनों का प्रतिपादन करते हैं। आप के अनुसार व्यक्तियों के बीच सम्बन्ध स्थापित कराने वाले और सरकार व जनता के बीच सम्बन्ध स्थापित कराने वाले पृथक्-पृथक् कानून हैं। राज्य को अपनी सम्पूर्ण कार्यवाहियों को कानून की सीमा के अन्तर्गत ही करना चाहिए। आपके अनुसार देश की जनता को व्यवस्थापिका सभा तथा कार्यपालिका के अनुचित अधिकार-शक्ति प्रयोग से रक्षा प्राप्त करने का अधिकार है। कानून के हाथ सरकार व जनता दोनों के लिए ही बहुत लम्बे हैं। पिछले गणराज्य दिवस पर भारत के नाम संदेश प्रसारित करते हुए आपने कहा कि "देश की कठिन समस्याओं को सुलझाने के लिये कानून की अवहेलना करना कभी भी स्वीकार नहीं किया जा सकता।"

मर्यादित दल

डा० जाकिर साहब जनतन्त्रीय शासन पद्धति के सर्वाधिक समर्थक रहे हैं; लेकिन उनका मत है कि केवल जनता का शासन में भाग लेना ही जनतन्त्र का परिचायक नहीं है जब तक कि जनता में जनतान्त्रिक या लोकतान्त्रिक संस्कृति व अनुशासन उत्पन्न न हो। लोकतन्त्र के विकास में राजनीतिक दल एक अनिवार्य कड़ी है, किन्तु आपके अनुसार प्रायः राजनीतिक दल शक्ति गठन के सिद्धान्त पर बनाये जाते हैं, जिससे उनमें भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद जैसी संकुचित विचार-धारा व तदनुरूप कार्यवाहियां उभरती रहती हैं। आवश्यकता इस बात की है कि राजनीतिक दल संविधान की परिसीमा में ही गठित व परिचालित हों।

डा० जाकिर साहब पूंजीवादी व्यवस्था के समर्थक नहीं हैं—इसका यह भी अभिप्राय नहीं है कि आप साम्यवादी हैं। आप पूंजीवाद का विरोध इसलिए करते हैं कि इस अर्थ-व्यवस्था का उद्देश्य व्यक्तिगत लाभ है। आप पूर्वी तथा पश्चिमी पूंजीवाद के मध्य कोई पृथकता नहीं देखते। पं० नेहरू के समान योजनाबद्ध आर्थिक व्यवस्था के भी आप समर्थक हैं। आप आर्थिक व्यवस्था पर सामाजिक नियन्त्रण के पक्ष में हैं, क्योंकि इसी से सामाजिक जागृति को बल मिलता है।

बापू व जाकिर हुसैन

डा० जाकिर साहब के राजदर्शन को गांधीजी ने बहुत प्रभावित किया है। गांधीजी के समान वे राज्य को नैतिकता से सम्बन्धित करते हैं। गांधीजी की भाँति आप व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य के साथ-साथ सामाजिक विकास में विश्वास रखते है। आप गांधीजी की भाँति ही विश्व शान्ति के पुजारी भी हैं। गांधीजी की भांति नैतिक शक्ति व मानवीय प्रतिभा मे आपका बहुत विश्वास रहा है। आपके मत में भी भारत अहिंसा के आदर्श को नेतृत्व प्रदान कर सकता है। आप गांधीजी की भांति मैकियावेली के शक्ति सिद्धान्त अथवा मार्गेन्थोव के शक्ति संघर्ष का समर्थन नहीं करते। किन्तु आप गांधी के राज्य के प्रति उस अराजकवादी दृष्टिकोण का समर्थन नहीं करते जहां गांधीजी ने राज्य को एक आत्महीन मशीन की भांति समझा है। दूसरी ओर आपके मत में जैसा अरस्तू ने भी कहा है—' राज्य सुन्दर जीवन की एक आवश्यक शर्त है''--एक नागरिक की राज्य के प्रति देशभक्ति अनिवार्य है। राज्य ही एक मात्र सस्था है जिसमें व्यक्ति और समाज दोनों का सक्रिय रूप में विकास हो सकता है। इस प्रकार राज्य के सम्बन्ध में वे गांधी जी से उस सीमा तक निकट हैं जहां तक नैतिकता का सम्बन्ध है, किन्तु गांधीजी के विपरीत वे राज्य को अराजकता के प्रतिनिधि के रूप में स्वीकार नहीं करते।

इस प्रकार डा० जाकिर साहब एक उच्च कोटि के राजनीतिक दार्शनिक हैं। आपका राजनीतिक-दर्शन आदर्शवाद व यथार्थता का समन्वय प्रस्तुत करता है। एक ओर प्लेटो की तरह दार्शनिक हैं तो दूसरी ओर अरस्तू तथा कौटिल्य की भांति व्यावहारिक। एक ओर गांधीजी की भांति आदर्शवादी हैं तो दूसरी ओर बेन्थम् व जॉन स्टुअर्ट की भांति उपयोगितावादी भी। आपके राजनीतिक दर्शन में अर्थशास्त्र, धर्म, संस्कृति का भी सुन्दर सम्मिश्रण है। आपका राजदर्शन भारतीय परिस्थितियों में पल्लवित तथा अन्तर्राष्ट्रीयता की ओर उन्मुख एक सफल गवेषणा है। ●

प्रेरणा स्रोत—

प्रेमचन्द विजयवर्गीय

हमारे वर्तमान राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन वास्तव में मूलतः एक शिक्षक और शिक्षा शास्त्री अधिक हैं। शिक्षा और शिक्षण संस्थाओं में उनकी अभिरुचि सर्वोपरि है। इसी कारण जब डा० जाकिर हुसैन १ दिसंबर, १९६३ ई० को राजस्थान स्थित महिला शिक्षा की अखिल भारतीय संस्था वनस्थली विद्यापीठ के अट्ठाइसवें वार्षिकोत्सव में पधारे तो यह विद्यापीठ के लिए तो सौभाग्य और हर्ष का विषय रहा ही, स्वयं तत्कालीन उपराष्ट्रपति के लिए भी यह नूतन और सुखद अनुभव रहा।

उस दिन प्रातःकाल ८.४५ पर जब आप विद्यापीठ पधारे तो विद्यापीठ की छात्राओं, यहां के कार्यकर्ताओं, बाहर से आये हुए अतिथियों और दर्शकों की अपार भीड़ ने आपका भव्य स्वागत किया। राजस्थानी भाषा में रचित स्वागत गान को सुनकर डा० साहब भाव विभोर हो उठे थे। यह स्पष्टतः देखा जा सकता था। स्वागत के पश्चात् विद्यापीठ की छात्राओं द्वारा प्रस्तुत आकर्षक 'मार्च पास्ट' में आपने सलामी ली। मार्च पास्ट में एन० सी० सी० की वरिष्ठ और कनिष्ठ टुकड़ियों के अतिरिक्त घुड़सवार छात्राओं तथा अन्य छात्राओं ने भाग लिया था, जिनकी संख्या ५०० से ऊपर थी। डा० जाकिर हुसैन ने जिस जीप गाड़ी में खड़े होकर सलामी गारद का निरीक्षण किया, उसे विद्यापीठ की मोटर चलाना सीखी हुई छात्राओं में से ही एक छात्रा चला रही थी और मार्चपास्ट में सबसे पीछे विद्यापीठ के जिस हवाई जहाज ने डा० साहब को नीचे उड़कर सलामी दी, उसे भी विद्यापीठ में सीखी हुई एक छात्रा ही उड़ा रही थी। मार्च पास्ट में छात्राओं के साथ-साथ उठते हुए कदमों को

देखकर ऐसा लग रहा था कि राष्ट्र की एकता कदम से कदम मिला कर चल रही है।

तत्पश्चात् तत्कालीन उपराष्ट्रपति ने विद्यापीठ के उस सबसे पुराने और सबसे बड़े छात्रावास को देखा जो आज भी कच्चा है, तथा जो विद्यापीठ के जन्म की कहानी स्वयं कहता है। इसी छात्रावास—शान्ताबाई शिक्षा कुटीर में आपने देखा सभा भवन के एक कोने में स्थित उस छोटे से किंतु ऐतिहासिक मन्दिर को, जो न केवल उन कच्ची ईंटों से बना हुआ है, जिन्हें विद्यापीठ के संस्थापक अध्यक्ष पं० हीरालाल शास्त्री की स्व० पुत्री शान्ताबाई ने केवल १२½ वर्ष की अल्पायु में ही मृत्यु से पूर्व, गांव में लड़कियों का एक स्कूल शुरू करने की धुन में, अपने हाथों से बनाया था, वरन् जहां उन ईंटों में से आज भी कुछ ईंट सुरक्षित रखी हुई हैं और जहाँ सुरक्षित रखे हैं "जीवन-कुटीर" में उस होनहार लाड़ली बेटी के खिलौने ! यह स्थल प्रेरणा का वह स्रोत है, जहां प्रति वर्ष विद्यापीठ के स्थापना दिवस के दिन संस्था की छात्राएं और यहां के कार्यकर्ता एकत्र होकर, सूर्योदय के आलोक के साथ, भावी प्रगति और विकास के लिए नयी प्रेरणा और शक्ति ग्रहण करते हैं। विद्यापीठ की जीवन-यात्रा के इस प्रथम चरण को देखने के पश्चात् डा० साहब ने "गृहस्थ शिक्षा मन्दिर" में छात्राओं द्वारा किये जाने वाले गृहकार्य को देखा। गृहस्थ शिक्षा मन्दिर में प्रवेश करने पर तत्कालीन उपराष्ट्रपति का सर्वप्रथम स्वागत किया उस सजावट और अल्पना ने जो प्रत्येक सद्गृह की शोभा है। अन्दर जाकर भी डा० जाकिर हुसैन ने जो चित्र देखा वह स्वावलम्बी मध्यवर्गीय भारतीय गृहस्थ का सा ही था। डाक्टर साहब ने देखा कि कुछ छात्राएं अनाज साफ़ कर रही हैं तो कुछ हाथ की चक्की से अनाज पीस रही हैं। एक ओर छात्राएं सामूहिक पाक तैयार कर रही हैं तो दूसरी ओर मट्ठा बिलो रही हैं। खाना बनाने का कार्य प्राथमिक विद्यालय तथा महाविद्यालय की छात्राएं व्यक्तिशः भी कर रही थीं। भोजन बनाने के अतिरिक्त कुछ छात्राएं पापड़-मँगोड़ी भी बना रही थीं, और फिर भोजन बनाते हुए ही नहीं, छात्राओं की भोजन-संरक्षण विधि को भी उन्होंने देखा। गृहस्थ शिक्षा मन्दिर में इन कार्यों के अतिरिक्त छात्राओं ने उन्हें कपड़ों की धुलाई और रँगाई तथा बर्तनों पर कलई करने का कार्य भी बताया। गृहस्थ शिक्षा की पूर्णता और व्यावहारिकता का यह क्रियात्मक चित्र देख कर जब वे बाहर पधारे तो छात्राओं द्वारा तैयार किये गए विविध व्यंजनों का स्वाद अवश्य उनकी जिह्वा पर बसा हुआ होगा, क्योंकि वे बढ़िया खाने के शौकीन हैं। पकौड़ियों का उल्लेख उन्होंने अपने भाषण तक में एक से अधिक बार किया।

प्राथमिक विद्यालय की छात्राओं के छात्रावास श्री शान्ता भवन का निरीक्षण कर डा० जाकिर-हुसैन जब 'शारदा मन्दिर' पहुँचे तो वहां आपको पुस्तकीय तथा प्रायोगिक शिक्षा की प्रदर्शनी देखने को मिली। प्रदर्शनी भवन में प्रवेश करने पर आपने सर्व प्रथम शिशु वर्ग तथा कक्षा १ और २ के बच्चे-बच्चियों द्वारा बनाये गये चित्र तथा हाथ के काम के नमूने देखे। इसके बाद आपने प्राथमिक विद्यालय की अन्य कक्षाओं द्वारा बनाये गये चित्र, लिखित कार्य तथा हाथ की बनायी हुई अन्य चीजें देखी। उच्च कक्षाओं की छात्राओं ने उस वर्ष सिंधु घाटी की सभ्यता पर प्रयोजना तैयार की थी; छात्राओं के इस विषय के अध्ययन को चार्ट्स आदि के रूप में प्रदर्शित देखकर डा० साहब बहुत प्रभावित हुए थे। प्रदर्शनी भवन में भौतिक विज्ञान प्रयोगशाला, रसायन विज्ञान प्रयोगशाला तथा जीव विज्ञान प्रयोगशाला में छात्राओं को प्रयोग रत देखने के पश्चात् मुख्य अतिथि ने छात्राओं के सिलाई, कशीदा तथा टेलरिंग के

काम को देखा और सराहा। चित्रकला सम्बन्धी तीन कक्षों में आपने क्रमश: छात्राओं के द्वारा बनाये हुए चित्र, विद्यापीठ के चित्रकला विभाग के शिक्षकों द्वारा बनाये हुए चित्र संग्रहीत देखे। उच्च माध्यमिक विद्यालय के पुस्तकालय को देखने के पश्चात् आपने होमनर्सिंग तथा प्रारम्भिक चिकित्सा करती हुई छात्राओं को देखा। एक कक्ष में आपको छात्राओं द्वारा बनाया हुआ भोजन दिखाया गया, तो दूसरे में आपने तेल-साबुन-वेसलीन बनाती हुई तथा जिल्द साजी करती हुई छात्राओं को देखा। एक अन्य कक्ष में छात्राओं द्वारा बनाये गये मिट्टी तथा कपड़े के खिलौनों को देखकर आपने प्रसन्नता व्यक्त की।

इस भव्य प्रदर्शनी को देखने के पश्चात् सम्मानित अतिथि 'बाल मन्दिर' में गये जहां उन्होंने शिशु कक्षा के बच्चों के खेल एवं शिक्षण के लिए प्रयुक्त अनेकानेक उपकरण देखे। यह बाल मन्दिर शिशु वर्ग के लिए इतना बड़ा आकर्षण केन्द्र है कि इसे छोड़कर बच्चे पहली कक्षा में जाना पसंद नहीं करते। बाल मन्दिर के निकट ही डा० जाकिर हुसैन ने 'कला मन्दिर' में चित्रित उन भित्ति चित्रों को देखा जिन्हें ग्रीष्मावकाश के दो मासों में बाहर से आये हुए प्रशिक्षणार्थी, इस कला को यहां सीखकर, बना जाते हैं। भित्ति चित्र कला का शिक्षण मुख्यत: शांतिनिकेतन और वनस्थली विद्यापीठ में ही होता है। विविध शैलियों में चित्रित ये भित्ति चित्र प्रतिवर्ष अभिवर्धित होते हुए विद्यापीठ के भवनों की शोभा को बढ़ाते जाते हैं।

इसके पश्चात् मुख्य अतिथि महोदय ने लक्ष्मी बाई मैदान में विद्यापीठ की छात्राओं के शारीरिक शिक्षा के उस प्रदर्शन को देखा जो सदैव से दर्शकों को आकर्षित करता रहा है।

१२ बजे से तीन बजे तक भोजन तथा विश्राम के पश्चात् डा० जाकिर हुसैन ने 'वीर बाला मैदान' में छात्राओं की घुड़सवारी का कार्य-क्रम देखा, जिसके अन्तर्गत विशेष उल्लेखनीय है एक छात्रा की दो घोड़ों की सवारी, खड़े होकर घोड़े को चलना हाटी कुदाना तथा सरपट घुड़दौड़। सरपट घुड़दौड़ का यह दृश्य स्तब्ध कर देने वाला था! डा० जाकिर हुसैन ने उस दिन वीर बाला का साक्षात रूप अपनी आँखों से देखा। वे चकित भी दिखाई पड़ते थे और चमत्कृत भी।

चाय के पश्चात् सायंकाल ४ बजे से नाट्यशाला में डा० जाकिर हुसैन नृत्य ने का रोचक कार्यक्रम देखा। इस कार्यक्रम के आकर्षण थे वन्दना, वृन्दवादन, भजन, सितार वादन, गायन और नृत्य। शास्त्रीय संगीत के इस कायक्रम के पश्चात् मुख्य अतिथि के सम्मुख छात्राओं की राष्ट्र सभा का कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया। प्रश्नोत्तर काल, मंत्री का वक्तव्य तथा विरोधी दल के सदस्यों द्वारा बहस, प्रधान मंत्री द्वारा बहस का उत्तर, आदि कार्यवाही थोड़ी देर के लिए वास्तविक संसद का भ्रम उत्पन्न किये देती थी।

राष्ट्र सभा के पश्चात् उसी स्थान पर सभा का कार्यक्रम आरम्भ हुआ। छात्राओं द्वारा मंगलाचरण, स्वागत भाषण आदि के बाद जब डा० जाकिर हुसैन ने ७-८ हजार लोगों के समुदाय के सम्मुख अपना भाषण दिया तो उनके वक्तव्य से शिक्षाशास्त्री का सूक्ष्म निरीक्षण और एक उपराष्ट्र पति की उत्तरदायित्व पूर्ण वाणी व्यक्त होती थी। विद्यापीठ के शैक्षणिक कार्यक्रम तथा यहां के वातावरण के दिन भर के निरीक्षण के पश्चात् आपने कहा था :

आज यहां दिन भर का कार्यक्रम देखकर मुझे चार बातें अनुभव हुई : यहां बच्चों के प्रति मुहब्बत है, सेवा की भावना है, महिला शिक्षा के महत्व को समझा गया है और शिक्षा के बारे में यहां के विचार सही हैं। अच्छा शिक्षक मां के स्थान पर होता है, जिसे अपने विद्यार्थी के प्रति प्रेम होता है। और यदि बच्चे के प्रति मुहब्बत और सम्मान है तो उसे खुद आगे बढ़ने देना चाहिए। जो विद्यार्थी पर अपना ठप्पा लगाना चाहता है वह सच्चा शिक्षक नहीं है। साथ ही, अच्छा शिक्षक उस माली की तरह होता है जो सब पौधों को समान भाव से खाद और पानी देता है।

शिक्षा में स्वतंत्रता तथा स्त्री-शिक्षा के महत्व पर जोर देते हुए डा० ज़ाकिर हुसैन ने अपने भाषण में कहा कि अच्छी शिक्षण संस्था के लिए आज़ादी ज़रूरी है, क्योंकि सब के लिए एक से माप-दण्ड नहीं हो सकते। आगे आपने कहा कि लड़कियों की शिक्षा का काम तो लड़कों की शिक्षा से भी अधिक महत्वपूर्ण है। इस दृष्टि से यहां की लड़कियों को समझ लेना चाहिए कि उनका यहां शिक्षा प्राप्त करना भी देश सेवा का काम है। छात्राओं को सम्बोधित करते हुए आपने कहा कि तुम दो चीज़ों को कभी न भूलना—एक तो यह कि शिक्षा का काम तब तक अच्छी तरह नहीं हो सकता, जब तक उसमें महिलाओं का हाथ न हो, दूसरे तुम्हें घर का भी ध्यान रखना है। यदि इस देश के घर बिगड़ गये तो हमारी संस्कृति भी बिगड़ जायेगी। मुझे खुशी है कि यहां घर का काम भी सिखाया जाता है।

उनके विचार से अच्छी शिक्षा वही है जो सर्वाङ्गीण हो और जिसमें प्रयोग करने की स्वतंत्रता हो। इसी प्रकार उनकी दृष्टि में एक अच्छे शिक्षक में अपने विद्यार्थी के प्रति मां जैसा स्नेह होना चाहिए. उसे शिक्षार्थी पर स्वयं को आरोपित करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए था। उसकी दृष्टि में सब विद्यार्थी समान होने चाहिए। इसके अतिरिक्त डा० साहब शिक्षा के क्षेत्र में महिलाओं के कार्य को अधिक महत्व देते हैं और गृह-निर्माण तथा संस्कृति की रक्षा में उनसे बड़ी अपेक्षा रखते हैं। वनस्थली विद्यापीठ में दिया गया डा० ज़ाकिर हुसैन का यह संदेश आज के सदर्भ में और भी महत्वपूर्ण हो उठता है जब कि शिक्षा, शिक्षक, शिक्षार्थी और शिक्षण संस्थाएं-सर्वत्र अराजकता-सी फैली हुई है।

डा० ज़ाकिर हुसैन देश के जिन शिक्षकों और शिक्षण संस्थाओं के लिए प्रेरणा स्रोत रहे हैं, उनकी ओर से समुचित और सम्यक अभिनन्दन यही हो सकता है कि वे उन्हें देश का प्रथम शिक्षक मान कर उनके शिक्षादर्शों को ठीक से समझें और उन्हें व्यवहार में क्रियान्वित करें। इस रूप में उनका अभि-नन्दन वस्तुत : स्वयं शिक्षा और शिक्षक का ही अभिनन्दन होगा। ●

शिक्षा-दार्शनिक

डा० चन्द्रशेखर भट्ट

गणतन्त्र की सफलता और समृद्धि तथा उसके नागरिकों का सुख और सौरभ उसके दार्शनिक शासक पर ही आधारित होता है। हमारे देश के लिए यह बड़े सौभाग्य की बात है यहां सर्वोच्च पद पर महान् दार्शनिक ही आसीन रहे हैं। डा० राजेन्द्र प्रसाद एक राजनीतिज्ञ दार्शनिक के रूप में, डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन विशुद्ध दार्शनिक के रूप में और और हमारे वर्तमान राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन एक शिक्षा दार्शनिक के रूप में प्रसिद्ध हैं।

डा० जाकिर साहब के शैक्षणिक विचार इतर शिक्षा शास्त्रियों के सदृश चिंतन और मनन के परिणाम नहीं हैं। उन्होंने अपने शिक्षा दर्शन का निर्माण भावनाओं के प्राबल्य तथा कल्पना लोक के विचरण में नहीं किया है अपितु विचार और प्रयोग, चिंतन और किया तथा ज्ञान और कर्म में परस्पर समन्वय और सह संबंध की स्थापना करके किया है। वस्तुत: डा० जाकिर साहब का जीवन ही स्वयं में शिक्षाशास्त्र की एक अनुपमेय रचना है। जीवन के विभिन्न अवसरों और घटनाओं के अनुभूत परिस्थितियों से अन्तरदर्शन और आत्मपर्य-वेक्षण के परिणाम स्वरूप जो विचार प्रसून हुए हैं उनमे ही डा० जाकिर साहब के शैक्षणिक विचार सुदृढ़, सुनियोजित, सुव्यवस्थित एवम परिपुष्ट हो कर व्यावहारिक शिक्षा दर्शन के रूप में उभर पाये हैं।

डा० जाकिर साहब की प्रारम्भिक शिक्षा आंग्ल शिक्षकों द्वारा इसी देश में हुई तथा उच्चतम शिक्षा जर्मनी में हुई, फिर भी विदेशी शिक्षा तथा विदेशी शिक्षण संस्थाओं के प्रति आप में अनासक्ति ही रही। विदेशी शिक्षा तथा शिक्षा प्रणाली का उन्होंने अपने देश की राजनैतिक, सामाजिक व सांस्कृतिक

परिस्थितियों और मूल्यों के संदर्भ में अध्ययन किया और विश्लेषणात्मक अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि भारतीय जीवन दर्शन के मूल्यों की मौलिकता के संचयन हेतु व हमारे देश के नागरिकों के सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक व आर्थिक जीवन की समृद्धि की अभि वृद्धि हेतु भारतीय शिक्षा तत्व, भारतीय शिक्षा प्रणाली तथा भारतीय शिक्षण संस्थान ही उपयुक्त हैं। आपकी मान्यता है कि हमारे देश वासियों में भारतीयता की भावना भरने हेतु भारतीय शिक्षा प्रणाली और भारतीय शिक्षण संस्थान ही समर्थ हैं। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु आपने जामिया मिलिया की स्थापना की।

सत्य और अहिंसा का मंत्र डा० जाकिर साहब ने महात्मा गांधी से प्राप्त किया और गांधीजी सदैव उनके जीवन प्रेरणा के स्रोत भी रहे।

महात्मा जी ने डा० जाकिर साहब में अपने शैक्षणिक विचारों की एक साकार प्रतिमा देखी और इसीलिए आपने राष्ट्रीय बुनियादी शिक्षा के लिये उद्देश्य, पाठ्यक्रम, तथा स्वरूप के निर्धारण हेतु जिस समिति का सर्व प्रथम गठन किया, उसका अध्यक्ष डा० जाकिर साहब को ही बनाया और उक्त समिति द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदन डा० जाकिर हुसैन कमेटी रिपोर्ट के नाम से प्रसिद्ध है जो एक महत्वपूर्ण संदर्भ ग्रंथ के रूप में आज भी पढ़ा जाता है। वस्तुत: डा० हुसैन ने गांधी जी को अपने जीवन गुरु के रूप में माना और आपके समस्त कार्य कलापों में गांधी जी का जीवन दर्शन ही व्याप्त रहा और आप आजीवन सत्य और अहिंसा पर आधारित गांधी जी के जीवन दर्शन से प्रसूत शिक्षा तत्वों का ही बुनियादी शिक्षा के क्षेत्र में परीक्षण व प्रयोग करते रहे।

देश की तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक व आर्थिक परिस्थितियों का डॉ० जाकिर साहब पर बड़ा प्रभाव पड़ा। डॉ० जाकिर साहब के युवावस्था के समय हमारा समाज, हमारा राष्ट्र एक संक्रान्ति काल से गुजर रहा था। देश में नवचेतना, नव जाग्रति एवम् नवनिर्माण का बिगुल बज रहा था। समस्त भारतीय देश में स्वशासन प्राप्त करने के लिए आतुर थे, प्रयत्नशील थे। ब्रिटिश सत्ता और संस्कृति के प्रति घृणा और विद्वेष की भावनाएं बलवती होती जा रही थीं। यह स्पष्ट हो चुका था कि सामाजिक एवं सांस्कृतिक पुनर्निर्माण के लिए शिक्षा ही एक अमोघ अस्त्र है। अत: इसकी प्राप्ति के लिए शिक्षा नीति एवम् शिक्षा प्रणाली और उसके व्यवहार में समाज के परिवर्तनशील मूल्यों के अनुरूप परिवर्तन और परिवर्द्धन अवश्यम्भावी है। यहीं पर डॉ० जाकिर साहब की यह धारणा परिपुष्ट हो पाई कि राजनीति नहीं अपितु शिक्षा के द्वारा ही राष्ट्रीय समुन्नयन संभव है। यही कारण है कि राजनीति से पृथक् रहे और शिक्षा के क्षेत्र में एक सिपाही की तरह भिन्न भिन्न स्थितियों में कार्य करते रहे।

अत: हम कह सकते हैं कि राष्ट्रपति डा० जाकिर साहब के शैक्षणिक विचार प्रवाह के निर्माण और विकास में देश की परिवर्तनशील परिस्थितियां, गांधीजी से सम्पर्क तथा उनकी स्वयम् की प्रयोगमय तथा अन्वेषणशील प्रवृत्तियों का प्रमुखत: प्रभाव रहा।

किसी भी शिक्षाविद् के शिक्षा-दर्शन का अनुशीलन निम्न बिंदुओं पर किया जाना उचित तथा वैज्ञानिक होता है :--

१. शिक्षा का उद्देश्य
२. शिक्षा का स्वरूप
३. शिक्षा क्रम व शिक्षा प्रणाली
४. शिक्षक शिक्षार्थी संबंध

यहां भी डा० जाकिर साहब के शिक्षा दर्शन का अनुशीलन,परीक्षण और समीक्षण उक्त बिन्दुओं पर करना ही अधिक समीचीन होगा ।

शिक्षा के उद्देश्य

डा० जाकिर साहब शिक्षा के उद्देश्य की व्याख्या अत्यन्त स्पष्ट एवम् सीधी भाषा में करते हुए यह मानते हैं कि व्यक्ति में प्रेम, सहिष्णुता, त्याग, बलिदान तथा मानवता के गुणों का विकास करने वाली शिक्षा ही सच्ची शिक्षा है । उनकी यह भी मान्यता है कि व्यक्ति में मानवीय मूल्यों के विकास के साथ श्रम में रुचि और स्वावलम्बी बनने की भावना का भी विकास आवश्यक है। साथ ही शिक्षा ऐसी हो कि हर मानव मात्र के प्रति प्रेम और बन्धुत्व की भावना से ओत-प्रोत होकर राष्ट्रीय मूल्यों का अनुकरण करते हुए अन्तराष्ट्रीय दृष्टिकोण को विकसित कर सह संबंध स्थापित करने में सफल हो सकें। डा० हुसेन का मत है कि जिस प्रकार भारतीय सांस्कृतिक एवं सामाजिक मूल्य की "विभिन्नताओं में एकता" एक मौखिक विशेषता है उसी प्रकार भारतीय शिक्षा पद्धति भी समस्त गुणों का सम्पोषण करने वाली होने के साथ ही मौलिक भी होनी चाहिये, डा० जाकिर साहब अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तिका "पोस्टवार एजूशन इन इण्डिया" में रास्ट्रीयता को सर्वोच्च स्थान देते हुए कहते हैं कि हमारी शिक्षा योजना के उद्देश्य और स्वरूप का निर्धारण राष्ट्रीयता के संदर्भ में होना चाहिए ।

शिक्षण पद्धति में ऐसी राष्ट्रीयता का आह्वान किया गया तो जो भिन्नता के भावों का अन्त-करने वाली और अपनत्व, स्वदेश-प्रेम और अटल विश्वास की जननी तथा प्रेम, सेवा, वीरता और बलिदान आदि गुणों की सम्पोषक होने के साथ सांस्कृतिक व सामाजिक मूल्यों की पोषक भी हो ।

अतः डा० जाकिर साहब के अनुसार शिक्षा के स्वरूप की व्याख्या निम्न प्रकार की जा सकती है:

१. शिक्षा स्वदेशी हो तथा देश की आवश्यकताओं और मूल्यों के अनुरूप हो ।
२. राजनीति से सर्वथा दूर हो ।
३. सांस्कृतिक मूल्यों का सम्पोषण करने के साथ राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता के दृष्टिकोण में समन्वय स्थापित करने वाला हो ।
४. शिक्षार्थियों में त्याग, बलिदान, सहिष्णुता, सेवा और सहयोग के मानवीय गुणों का विकास करने वाली हो ।
५. श्रम की सत्ता और उसके महत्व को अनुप्राणित कर स्वावलम्बन में विश्वास और निष्ठा उत्पन्न करने वाली हो ।
६. जिसमें समाज का अधिकतम योग हो और जो शिक्षार्थी को अपने मूल्य का भास कराती हो ।

आपने जामिया मिलिया की स्थापना भी इसी शिक्षा के स्वरूप को साकार रूप देने की दृष्टि से की थी। वहाँ पर आप द्वारा किये गये प्रयोगों और कार्य से स्पष्ट हो जाता है कि डा० जाकिर साहब शिक्षा का ऐसा स्वरूप चाहते हैं, जिसमें शिक्षकों में कोई भेद भाव न हो, शिक्षक व शिक्षार्थी बाह्य ठाठ-बाट के

आडम्बर से परे हों और सादगी पूर्ण जीवन व्यतीत करते हुए शिक्षा के व्यय में अधिकतम मितव्ययता का उदाहरण प्रस्तुत करें।

शिक्षाक्रम एवम् शिक्षण विधि

डा० जाकिर हुसैन की मान्यता है कि बालक को विचार ग्रहण एवम् विचाराभिव्यंजन तथा हिसाब किताब की क्षमताओं के अतिरिक्त अत्यावश्यकता इस बात की है कि उसमें मानवी गुणों के साथ श्रम के प्रति निष्ठा उत्पन्न की जाय। इसीलिये अनुभवों के आयोजन को ही वह पाठ्य क्रम का प्रमुख एवम् एक मात्र आधार मानते हैं। उनके अनुसार बालक को विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न प्रकार के सुव्यवस्थित अनुभवों को सुनियोजित रूप में आयोजित कर छात्रों को अपने भौतिक एवम् सामाजिक वातावरण से समायोजन करने की कला का प्रशिक्षण देना ही पाठ्यक्रम निर्माण का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए।

आपकी राय में पाठ्य-क्रम का नियोजन इस प्रकार किया आना चाहिए कि उससे प्रयोजन शिक्षण का संचरण और संचयन हो तथा स्वकार्य कलाप स्वतः ही छात्रों द्वारा प्रयोग एवम् परीक्षण हेतु प्रस्तुत हों।

शिक्षण विधियों के संबंध में आपका अभिमत है कि शिक्षण विधियाँ प्रकृति के अनुकूल और स्वाभाविक हों/और प्रयोग तथा अन्वेषण की सक्षमताओं से परिपूर्ण हों। इस संबंध में वह रूसो के सिद्धान्तों के हामी हैं।

शिक्षक-शिक्षार्थी के सबंधों के डा० जाकिर साहब का मत है कि दोनों एक दूसरे के निकटतम होने चाहिएँ। शिक्षार्थी शिक्षक के व्यक्तित्व में ईश्वर के प्रतिबिंब के दर्शन करे और शिक्षक शिक्षार्थी को देवत्व की प्रति पूर्ति माने। शिक्षक और शिक्षार्थी के बीच भय और अधिकार के वातावरण के स्थान पर प्रेम और सेवा का वातावरण हो और हो अभि व्यक्ति की स्वतंत्रता। इसी प्रकार शिक्षार्थी के मन में शिक्षक के प्रति विश्वास, श्रद्धा और सेवा की भावना हो और शिक्षक शिक्षार्थी को स्वतंत्रता, निर्भीकता और प्रेम का पाठ पढ़ा उसमें स्वशासी दृष्टिकोण विकसित कर आत्मा लोचन से उद्भूत नयमानु वर्तिता की भावनाओं की अवतारणा करे।

अतः हम कह सकते हैं कि हमारे राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन के शैक्षणिक विचारों में समन्वयवाद परिलक्षित होता है। यह शिक्षाविद उद्देश्यों में आदर्शवादी, प्रणाली में प्रकृति वादी, स्वरूप में यथार्थवादी और पाठ्यक्रम में प्रयोगवादी हैं।

सच्चे अध्यापक

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी

डा० जाकिर हुसैन हमारे देश के गौरव हैं। उनके समान निरभिमानी, सदाचारी और विचारवान सत्पुरुष दुर्लभ ही होते हैं। वे अध्यापक रहे हैं और अध्यापक शब्द की सारी गरिमा से आरंभ से ही मंडित रहे हैं। उनका जीवन त्याग और तपस्या का जीवन था। यह हमारे देश का महान सौभाग्य है कि उनके जैसा विशाल हृदय अध्यापक आज देश के सर्वोच्च पद पर आसीन है।

डा० जाकिर हुसैन का व्यक्तित्व बहुत ही प्रभावशाली और मोहक है। मैं जब-जब उनसे मिला हूँ, तब-तब उनसे प्रेरणा मिली है। उनका जीवन गंगा की धारा के समान शामक और पवित्र है। उनके भीतर और बाहर में कोई अन्तर नहीं है। बड़ा वह होता है जिससे मिलने वाले का बड़प्पन जागृत होता है। जिसके संपर्क से मनुष्य में सुप्त दैवी भावनाएँ बलवती होकर ऊपर आती हैं, वही वस्तुतः दैवी संपदा से सम्पन्न कहा जा सकता है। डा० जाकिर हुसैन के संपर्क में आने वाले के हृदय में उच्चतर दैवी शक्ति जागृत होती है। उनके सहज व्यवहार में ऐसी मोहक शक्ति है कि वह मिलने वालों को अवश्य प्रभावित करती है।

सच्चा अध्यापक वही है, जिसके निकट आने पर सहज ही विद्यार्थी को ज्ञान के प्रति उत्सुकता और जिज्ञासा उत्पन्न होती है और उसके मन, वचन और कर्म से जिज्ञासु का समाधान होता है। विद्यार्थी के जीवन और बाहर के जीवन में उसका व्यक्तित्व बराबर ऐसा ही शामक प्रभाव उत्पन्न करता रहता है डा० जाकिर हुसैन ऐसे ही सच्चे अध्यापक हैं।

आज उनका अभिनन्दन करके हम सब स्वयं अपने आपको अभिनंदित कर रहे हैं। परमात्मा उन्हें दीर्घायु और स्वस्थ बनाए ताकि इस देश में स्वस्थ प्राणधारा संचारित करते रहें। इस अवसर पर मैं इस महान आत्मा का सोल्लास अभिनन्दन कर रहा हूँ।

डा० जाकिर हुसैन का शिक्षादर्श

श्री शिवचरण माथुर,
शिक्षामंत्री, राजस्थान

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के नेतृत्व में राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए जो विराट् अहिंसात्मक आन्दोलन चला, वह केवल राजनीतिक ही नहीं था। वस्तुतः वह राजनीतिक से अधिक नैतिक और आध्यात्मिक था। सदियों की परतन्त्रता से प्रताड़ित पद-दलित एवं मुमूर्षु राष्ट्र के प्राणों में नवीन जीवन-चेतना के संचार का वह एक अश्रुतपूर्व प्रयत्न था, क्लैब्य, कार्पण्य आदि अनेक प्रकार के दोषों से उपहत स्वभाव वाले देश की वाह्य और आभ्यंतर शुद्धि के निमित्त आयोजित वह एक अभूतपूर्व सामूहिक अभियान था। इस आन्दोलन और अभियान के माध्यम से राष्ट्रपिता बापू ने राष्ट्र के आत्मा के सर्वतोमुखी साक्षात्कार का दैवी अनुष्ठान किया था। बापू का वह 'प्रत्यभिज्ञा-दर्शन' राजनीति, दर्शन, और व्यावहारिक अध्यात्म की अनुपम त्रिवेणी बन गया था। इस आन्दोलन के फलस्वरूप आत्म-विस्मृत राष्ट्र में सभी स्तरों पर और सभी क्षेत्रों में अपने आपको पहचानने की प्रक्रिया का श्रीगणेश हुआ। लोगों ने अपने देश के साथ-साथ अपनी भाषा, अपनी वेश-भूषा, संस्कृति आदि के महत्व को भी समझा। उसको आग्रहपूर्वक जीवन में प्रतिष्ठित किया। इस आन्दोलन का एक उल्लेखनीय पक्ष यह है कि यद्यपि राष्ट्रपिता बापू और उनके सहयोगी नेता अंग्रेजों की दण्डनीति की चक्की में बराबर पिसते रहते थे, उनका अधिकांश समय जेलों में बीतता था, फिर भी उनका तेजस्वी चिन्तन देश की विभिन्न समस्याओं के समाधान का मार्ग उद्घाटित करता रहता था। कारण बापू और उनके सहयोगियों को यह विश्वास था कि केवल

राजनीति के संकीर्ण साधन से समग्र जन-जीवन को रूपान्तरित करने वाला जागरण असंभव है। अतएव, बापू ने अंग्रेजों की कर्ल्क-निर्मात्री शिक्षा-पद्धति को बदल कर उसके स्थान पर राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था को प्रवर्तित करने का व्यापक उपक्रम किया। इसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय शिक्षातन्त्र के उद्भव और विकास के लिए जीवन अर्पित करने वाले कई त्यागव्रती महान् व्यक्तित्व सामने आये और काशी विद्यापीठ, गुजरात विद्यापीठ, बिहार विद्यापीठ, गुरुकुल कांगड़ी, बंगाल नेशनल युनिवर्सिटी, तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ, जामिया मिलिया जैसी राष्ट्रीय शिक्षा के अनेक संस्थानों की स्थापना हुई। इस प्रकार राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था के उन्नयन के क्षेत्र में जिन लोगो का योगदान चिरस्मरणीय है, उनमें डा० जाकिर हुसैन का नाम अग्रणी है। दूसरे शब्दों में इसे इस प्रकार कह सकते हैं कि डा० जाकिर हुसैन आधुनिक भारत के अन्यतम शिक्षा-शास्त्री और शिक्षक हैं।

त्याग और तपस्या

डा० जाकिर हुसैन के चरित्र की सब से बड़ी विशेषता मुझे यह प्रतीत होती है कि राष्ट्रपति के सर्वोच्च गौरव-मंडित पद पर समासीन होकर भी वे इस उपलब्धि को अपने दीर्घकालीन शिक्षक जीवन की सहज परिणति मानते हैं। इसी भावना से प्रेरित होकर उन्होंने स्वतन्त्र भारत के तीसरे राष्ट्रपति पद के उत्तरदायित्व को अंगीकार करते हुए अपने भाषण में कहा था कि इस उच्च पद पर मेरा वरण विशेषत: इसीलिए किया गया है कि मैं अपने देश की जनता की शिक्षा के साथ दीर्घकाल से संबद्ध रहा हूँ। राष्ट्रपति के पद की बागडोर हाथ में लेते हुए अपने शिक्षक जीवन का स्मरण करना शिक्षक के जीवन के प्रति उन की असामान्य निष्ठा का प्रमाण है। शिक्षक के रूप में डा० जाकिर हुसैन का जीवन जामिया मिलिया के प्रारम्भ और विकास के साथ घनिष्ठ भाव से जुड़ा हुआ है। उन के शिक्षक-जीवन का यह इतिहास त्याग, तपस्या, सेवा, संघर्ष और बलिदान की रोमांचकारी कहानी है।

सन् १९२६ के आसपास डा० जाकिर हुसैन शेखुल जामिया नियुक्त हुए थे। उस समय से जामिया की कहानी डा० जाकिर हुसैन के जीवन की कथा बन जाती है। उन दिनों जामिया मिलिया नामक संस्था नई दिल्ली के करोल बाग मुहल्ले की एक किराये की इमारत में अवस्थित थी। संस्था की आर्थिक स्थिति बहुत खराब थी, पर जाकिर साहब ने संकल्पपूर्वक इस संस्था के नवनिर्माण का कार्य आरम्भ किया। यद्यपि वे विदेशों से ऊंची से ऊंची शिक्षा प्राप्त करके लौटे थे, पर उन्होंने जामिया में रह कर प्राइमरी स्कूल में पहले स्टैण्डर्ड में भी स्वयं पढ़ाया। वे छात्रावासों में रहने वाले विद्यार्थियों से बराबर मिलते-जुलते थे, उनके साथ भोजन करते थे और उन्हें राष्ट्रीय जीवन और राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण की नित्य नवीन प्रेरणाएँ देते थे। बाहरी और भीतरी स्वच्छता का उनका आग्रह अनेक रूपों में विद्यार्थियों के समक्ष अभिव्यक्त होता था। एक बार कक्षा में जाते हुए वे मार्ग में बिखरे हुए छोटे-मोटे कागजों के टुकड़ों तक को बीन कर अपनी अचकन की जेब में रख कर ले गये थे और उन्हें विद्यार्थियों के सामने निकाल कर रखते हुए कहा था "जामिया ज्ञान का मन्दिर है, इसे पूर्ण स्वच्छ रखा जाना चाहिए। ये टुकड़े मैंने रास्ते में बीने हैं।" उनको कक्षाओं की खिड़कियों के शीशों तक की सफाई का पूरा-पूरा ध्यान रहता था। अध्यापन के अतिरिक्त वे जामिया के लिए धन संग्रह का कार्य भी

अपरिमित उत्साह से करते थे। साथ ही साथ वे जामिया के लिए श्रेष्ठ शिक्षकों का चयन भी निरंतर करते रहते थे। उन्हीं के आकर्षण के कारण जी रामचंद्रन और देवदास गांधी जैसे लोगों ने जामिया की सेवा की थी।

सन् १९३७ में महात्मा गांधी ने अपनी बुनियादी शिक्षा की योजना राष्ट्र के समक्ष रखी। यह कहना अत्युक्ति नहीं है कि डा० जाकिर हुसैन ही इस शिक्षा-योजना के सर्वश्रेष्ठ दार्शनिक एवं सब से महान् प्रवक्ता और प्रयोक्ता सिद्ध हुए। बुनियादी शिक्षा योजना का प्रारूप बनाने के लिए जो शिक्षा समिति महात्मा गांधी के द्वारा गठित की गई थी, उस के अध्यक्ष डा० जाकिर हुसैन ही थे। इसके बाद बुनियादी शिक्षा के आन्दोलन का संचालन वे बराबर करते रहे और उसे देश में सर्वमान्य बनाने में सफल हुए।

शिक्षा क्षेत्र में सेवा

मेरा विचार है कि डा० जाकिर हुसैन ने राष्ट्रीय शिक्षा के स्वरूप को निर्धारित करने के लिए जो कार्य किया है, वह अप्रतिम है। अभी तक इस दिशा में किये गये उनके चिंतन और कार्य का समुचित मूल्यांकन नहीं हो पाया है। सत्याग्रह आन्दोलन के साथ-साथ राष्ट्रीय शिक्षा के उन्नयन और विकास के लिए जो कार्य हो रहा था, उसके सम्बन्ध में जाकिर साहब ने अपने एक भाषण में कहा है, "मैं समझता हूँ जब इस बेदारी (जागृति) की तारीख (इतिहास) लिखी जायगी, तो उस जमाने में कौमी तालीमगाहों (राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाओं) का कयाम हमारी कौमी जिन्दगी के लिए शायद सब से ज्यादा अहम वाके तस्लीम किया जायगा।" उन्होंने सन् १९३५ के काशी विद्यापीठ के अपने दीक्षान्त भाषण में इस बात पर दुख प्रकट किया था कि इस देश में समझदार लोगों का एक बड़ा दल राष्ट्रीय शिक्षा की आवश्यकता का ही अनुभव नहीं करता। उन्होंने कहा था "ये लोग अक्सर वे हैं जो अंग्रेजी पढ़-लिख लेने या कोई हुनर सीख लेने का नाम तालीम जानते हैं।" शिक्षा के वास्तविक स्वरूप का निरूपण करते हुए उन्होंने इसी सन्दर्भ में कहा है कि, "तालीम दर असल किसी समाज की उस जानी-बूझी सोची-समझी कोशिश का नाम है जो वह इसलिए करता है कि उसका वजूद (अस्तित्व) बाकी रह सके और उसके अफराद (व्यक्तियों) में यह काबलियत पैदा हो कि बदले हुए हालात के साथ समाजी जिन्दगी (सामाजिक जीवन) में भी मुनासिब और जरूरी तब्दीली (परिवर्तन) कर सकें। कौमी जिंदगी (राष्ट्रीय जीवन) में तालीम इसी तरह गुजरे हुए जमाने से मौजूदा जमाने को मिलाती है।" शिक्षा और राष्ट्रीय शिक्षा विषयक अपने इन विचारों को और अधिक स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है, "तालीम बस कुछ बातें रट लेने या चंद बातें जान जाने का नाम तो नहीं है, बल्कि तालीम उसे कहते हैं कि आदमी जो दिमागी कूवतें (मानसिक शक्तियां) ले कर पैदा हुआ है, उनमें तरक्की का जितना इमकान हो, वह उसे हासिल करे। जिस तरह इन्सान का जिस्म (मनुष्य का शरीर) एक छोटे से तुख्म (बीज) से शुरू होता है, फिर मुनासिब गिजा पा कर हरकत और काम और सकून व आराम से तबियात और कीमिया के कानूनों के मुताबिक कमाल के दर्जे को पहुँचाता है, इसी तरह जहन (मस्तिष्क) का नश्व-नुमा भी जहनी गिजा पाकर जहनी कानूनों के मुताबिक होता है।"

इस पक्ष पर बल देते हुए उन्होंने कहा है 'देखना यह चाहिये कि जहन को यह गिजा किन चीजों से पहुँच सकती है और इस के असर के कानून क्या हैं ? तो गुजारिश यह है कि जहनी गिजा मिलती है तमद्दुन से तमद्दुन की माद्दी और गैर माद्दा चीजों से, मसलन समाज के इल्मी निजाम (शिक्षा व्यवस्था) से, समाज के फनों से, समाज के मजहब से, समाज की सनअत से, समाज के इखलाक के वसूलों से, समाज के कानूनों से, समाज के रस्मो-रिवाज से, समाज की बड़ी-बड़ी शख्सियतों की जिंदगी से, समाज में खानदानी जिंदगी के नमूनों से, समाज के गांवों, कस्बों और शहरों की जिंदगी से, समाज की हुकूमत से, फौज से, अदालतों से, समाज के मदरसों से।"

इस उद्धरण में डा० जाकिर हुसैन ने राष्ट्रीय शिक्षा के सभी स्रोतों का निर्देश किया है, और सच्चे शिक्षक, शिक्षा-शास्त्री या शिक्षाधिकारी की जानकारी की यह कसौटी निर्धारित की है कि "हर वह शख्स जो तालीम की सही माहियत को समझता है, इस बात पर मजबूर है कि बड़ी हद तक जहन (मस्तिष्क) की तरबियत (संस्कार) के लिए खुद उस समाज की तमद्दुनी चीजों से काम ले जिस से तालिबइल्म (विद्यार्थी) का तअल्लुक (सम्बन्ध) है। वरना उसकी कोशिश के अकारथ जाने का डर है। नतीजा यह निकला कि खुद तालीम की माहियत हमें मजबूर करती है कि हम कौमी तालीम का निजाम (राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था) कायम करें।" जिस समय जाकिर साहब ने ये बातें कहीं थीं, उस समय देश परतन्त्र था, शिक्षा व्यवस्था परकीय थी और शिक्षा के साधन अत्यन्त सीमित थे। यह जानते हुए भी उन्होंने यह आग्रह किया था कि "उस्ताद अपने देश की कौमी तालीम का एक निजाम बनाये" अर्थात् शिक्षकगण अपना राष्ट्रीय शिक्षा का तंत्र प्रवर्तित करें।

डा० जाकिर हुसैन ने कुछ वर्ष पूर्व इस बात पर खेद प्रकट किया था कि इस देश में राष्ट्रीय शिक्षा की समस्या पर बहुत कम विचार किया गया है—"सियासी (राजनीतिक) ही नहीं इल्मी और तालीमी (ज्ञान परक और शैक्षणिक) जमाअतों ने भी कौमी तालीम के मसले पर बहुत कम गौर किया है। इसके मुताल्लिक (संबन्ध में) कुछ कहा है तो बस यही कि मौजूदा निजाम बहुत बुरा है। जाकिर साहब ने आज से तीस वर्ष पूर्व जो कुछ कहा था, उसका महत्व आज भी कम नहीं हुआ है। देश के स्वतन्त्र हो जाने के बाद भी हम राष्ट्रीय शिक्षा की कोई प्रभावशाली व्यवस्था नहीं कर पाये हैं। शिक्षा की प्रारम्भिक भूमिकाओं को अभी तक हम समाज की परम्पराओं और व्यावहारिक उपयोगिता के साथ अच्छी तरह जोड़ नहीं सके हैं। उच्च शिक्षा के क्षेत्र हमारे विश्वविद्यालय स्वार्थसेवी राजनीति के अखाड़े बन गये हैं। वस्तुतः विश्वविद्यालयों से ही देश और समाज को ज्ञान का प्रकाश मिल सकता है, विश्वविद्यालयों के अध्यापक अपने आचरण और व्यवहार से समाज के लिए कल्याणकारी जीवन-मूल्यों का निर्माण कर सकते हैं, जिनके द्वारा समाज का पथ प्रदर्शन हो सकता है। पर आज की स्थिति सर्वथा विपरीत हो गई है। दुर्भाग्य से हमारे विश्वविद्यालय अन्धकार के गढ़ बन गये हैं। उच्चकोटि के चारित्र्य और ज्ञानसंपन्न अध्यापकों का प्रायः अभाव हो गया है। जो थोड़े बहुत हैं वे राजनीति और षड्यंत्र का शिकार हो रहे हैं। ऐसी स्थिति में जाकिर साहब का शिक्षादर्श हमारा पथ प्रदर्शक हो सकता है। ●

डा० जाकिर हुसैन की उत्कर्ष-साधना

सुशीला माथुर

डा० जाकिर हुसैन का जीवन उत्कर्ष-साधना की अत्यंत प्रेरणादायक कहानी है। जिन लोगों ने उनके जीवन का निकट से अध्ययन किया है, उन्हें उसमें बहुत से अंतर्विरोध दिखाई पड़ते हैं। पर ये अंतर्विरोध उनकी उत्कर्ष - साधना के विविध पक्षों को प्रकाश में लाते हैं और उसके वैभिन्नय और वैशिष्ट्य को उद्घाटित करते हैं। प्रोफेसर मुजीब ने उनके विषय में लिखा है कि वे इतने जीवंत, इतने जटिल और परिस्थितियों के प्रति इतने संवेदनशील हैं कि उनके व्यक्तित्व को सही और संतोषजनक विवरण की सीमा में निबद्ध करना संभव नहीं है।

डा० जाकिर हुसैन का जन्म एक संपन्न परिवार में हुआ था, पर उन्होंने जान-बूझ कर गरीबी और अभाव का जीवन चुना और दीर्घकाल तक स्वेच्छापूर्वक उसे अपनाये रहे। उनकी शिक्षा-दीक्षा प्रमुखतः एक अर्थशास्त्री के रूप में हुई, पर उन्होंने अपने लिए अध्यापक के जीवन का वरण किया। अध्यापक के रूप में उनको जो असाधारण सिद्धि और प्रसिद्धि मिली, उसके द्वारा उनका एक महान् अर्थशास्त्री और राजनीतिक चिंतक वाला रूप प्रायः आवृत और विस्मृत हो गया है। शिक्षा की ही तरह अर्थशास्त्र और राजनीति के क्षेत्र में भी उन्होंने अत्यंत मौलिक चिंतन किया है। डॉ० ज़ाकिर हुसैन के जीवन की एक बड़ी भारी विशेषता यह भी है कि यद्यपि उन्होंने सक्रिय राजनीति को छोड़ रखा था, फिर भी उन्हें देश ने ऐसे पद पर प्रतिष्ठित किया है जिसके राजनीतिक महत्व को यदि सर्वोपरि भी कहा जाय, तो इसमें कोई अत्युक्ति नहीं हो सकती। उनके स्वभाव में भी कुछ ऐसी विशेषतायें दिखाई

पड़ती हैं, जो बरबस ध्यान आकृष्ट कर लेती हैं। एक संपन्न परिवार में जन्म लेने के कारण अभिजात्य उनमें सहजात है, फिर भी वे छोटे-से-छोटे लोगों के साथ भी परम आत्मीय संबंध रखते आये हैं और जामिया-मिलिया के लिए धन-संग्रह के निमित्त सारे देश में भ्रमण करते रहे हैं। यद्यपि स्वभाव से वे अल्प भाषी हैं, पर उनकी बातचीत बड़ी मोहक और प्रभावशाली मानी जाती है। उनके आत्मीय जनों का कहना है कि उनमें मैत्री के निर्माण और निर्वाह की असाधारण क्षमता है। उनका जीवन एक पवित्र ग्रंथ की भांति खुला हुआ है, फिर भी उसकी गहराई की थाह पा लेना आसान नहीं है।

डॉ० जाकिर हुसैन ने अपने जीवन में सर्वोत्तम की उपलब्धि को ही अपना लक्ष्य बनाया है, द्वितीय स्थान उन्हें कभी अभिप्रेत या सहज स्वीकार्य नहीं हो सका है। रशीद अहमद सिद्दीकी, प्रोफेसर मुजीब, आबिद हुसैन, बी० एच० जैदी, आदि उनके अंतरंग साथियों ने उनके जीवन की इस विशेषता पर विशेष बल दिया है। चाहे वे अलीगढ़ या बर्लिन के विद्यार्थी हों, अथवा जामिया या अलीगढ़ के शिक्षक हों, चाहे वे मित्रों की सीमित गोष्ठी में हों अथवा विशाल जन-समूह में हों, सभी स्थितियों में उन्होंने अपने को सर्वोत्तम कोटि में ही रखने का प्रयत्न किया है। जामिया मिलिया के प्राध्यापक और शेख के रूप में भी उनका कृतित्व सर्वोत्तम ही रहा है। प्रोफेसर डब्ल्यू० सी० स्मिथ ने अपने 'माडर्न इस्लाम इन इंडिया' नामक ग्रंथ में लिखा है कि जामिया मिलिया की शिक्षा-व्यवस्था अत्यन्त प्रगतिशील और सर्वोत्तम में से एक है।

विद्यार्थी-जीवन में ही जाकिर साहब ने अपनी असाधारण प्रतिभा के अनेक प्रमाण दिये थे। बी० ए० करने के बाद उन्होंने प्रोफेसर एडविन कैनन के प्रसिद्ध ग्रंथ 'एलीमेण्टरी पोलिटिकल इकानोमी' का उर्दू अनुवाद किया। उन्होंने प्लेटो के प्रसिद्ध ग्रंथ 'रिपब्लिक' का भी उर्दू अनुवाद किया। इस अनुवाद में उनका विशिष्ट भाषाधिकार विशेष रूप में परिलक्षित हुआ था। मौलाना इकबाल अहमद सुहैल ने इस अनुवाद की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि यदि प्लेटो ने अपना ग्रंथ उर्दू में लिखा होता, तो वे निश्चय ही जाकिर हुसैन की भाषा-शैली को अपनाते। अर्थशास्त्र के विषय को लेकर उन्होंने उर्दू में 'मशियात कौमी', 'मशियात' जैसे अन्य ग्रंथ भी लिखे जो बहुत प्रसिद्ध और प्रशंसित हुए।

लेखक के रूप में उनको सर्वाधिक सफलता बच्चों की कहानियां लिखने में मिली है। वे एक पूर्णतावादी लेखक हैं और लेखन-कार्य को श्रमसाध्य कला मानते हैं। वस्तुत: डॉ० जाकिर हुसैन के व्यक्तित्व और अंतरंग की सच्ची झांकी उनकी रचनाओं में ही मिलती है। उनकी मान्यता है कि बच्चों की कहानियां साहित्य का अधिक स्थायी रूप प्रस्तुत करती हैं और उनके द्वारा बहुत कुछ कहा जा सकता है। साहित्य की इस विधा में उनकी रुचि सबसे अधिक है। पहले वे 'सकटया रेहाना' के छद्मनाम से जामिया की पत्रिका 'पयामे तालीम' में बच्चों की कहानियां लिखा करते थे। ये कहानियां आगे चलकर 'अबूखां की बकरी और चौदह और कहानियां' के नाम से एक संग्रह के रूप में प्रकशित हुईं। बच्चों की कहानी-लेखन कला का उत्कृष्ट रूप उनकी 'कछुवा और खरगोश' नाम की कहानी में देखा जा सकता है, जिसमें उन्होंने पुरानी कथा को नवीन अर्थवत्ता के साथ प्रस्तुत किया है।

डॉ० जाकिर हुसैन की सौन्दर्यप्रियता बहुत प्रसिद्ध हो चुकी है। कला और प्रकृति के प्रति उनके हृदय में सहज अनुराग है। साथ-साथ उनका यह प्रेम अकृत्रिम और गंभीर भी है जिनके द्वारा

उनकी परिष्कृत ऐन्द्रिय संवेदना का प्रमाण मिलता है। पाश्चात्य शास्त्रीय संगीत और आधुनिक कला में भी उनकी गहरी रुचि है। जामिया मिलिया के अपने कार्यकाल में भी जब उन्हें प्रायः धनाभाव रहता था, वे पैसे बचा कर उदीयमान चित्रकारों की कृतियां खरीद कर उन्हें प्रोत्साहित करते थे। अभावग्रस्त प्रसिद्ध चित्रकार रजा की एक कृति उन्होंने सन् ३० के आस-पास बंबई की एक प्रदर्शनी में ३०) रुपये में खरीदी थी। कलाकार के रूप में रजा के विकास में जाकिर साहब के संरक्षण का बड़ा महत्वपूर्ण योगदान रहा है। किसी ने डॉ० जाकिर हुसैन को सौन्दर्य प्रेमी फकीर कहा है, जो सर्वथा उपयुक्त है।

डॉ० जाकिर हुसैन अनन्य काव्य-रसिक भी हैं। जामी, रूमी, उर्फी, निजामी, सादी, गालिब और इकबाल उनके प्रिय कवि हैं। उनके काव्य-प्रेम ने कई उर्दू कवियों को प्रोत्साहित किया है, सिकन्दर अली वज्द उनमें से एक हैं। इसी प्रकार हुसैन, गुजराल, रामकुमार इत्यादि भी उनके प्रिय हैं। चित्रकार हुसैन को डॉ० हुसैन ने विशेष रूप से प्रोत्साहित किया है। उनका अध्ययन बड़ा व्यापक और गंभीर है। पं० जवाहर लाल नेहरू के साथ समसामयिक साहित्य पर उनकी चर्चा प्रायः होती रहती थी।

डॉ० हुसैन साहब ने विभिन्न क्षेत्रों की व्यापक से व्यापक और गंभीर से गंभीर जानकारी प्राप्त की है। १९५२ के अपने अमरीकी प्रवास में डॉ० जाकिर हुसैन ने बहुत से अमरीकी विश्व-विद्यालयों को देखा। इन विश्वविद्यालयों में ज्ञान की विभिन्न शाखाओं में छात्रों को शिक्षा देने के जो विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम चल रहे थे, उनका उन्होंने बड़ी दिलचस्पी के साथ निरीक्षण और परीक्षण किया। जिन विश्वविद्यालयों में ज्ञान-विज्ञान के शोध और प्रशिक्षण का श्रेष्ठ कार्य सम्पन्न हो रहा था, उनको उन्होंने तीर्थस्थान घोषित किया।

जिन दिनों डॉ० जाकिर हुसैन बिहार के राज्यपाल के पद पर प्रतिष्ठित थे, उन दिनों उन्हें विशिष्ट फासिलों, चट्टानों और खनिज पदार्थों के संग्रह का शौक पैदा हुआ। इन दिनों इस संग्रह में १५०० से ऊपर चीजें हैं। बागबानी का उनका शौक भी काफी पुराना और गहरा है। उनके उद्यान में विभिन्न स्थानों के चुने हुए पुष्प-वृक्ष सदैव स्थान पाते रहे हैं। दक्षिण भारत की अपनी यात्रा से वे एक बार विभिन्न स्थानों के एक सौ बीस पौधे ले आये थे।

डॉ० जाकिर हुसैन का पारिवारिक जीवन बड़ा सुखी है। पारिवारिक जीवन के इस सुख और सफलता में बेगम जाकिर हुसैन का सबसे महत्वपूर्ण योगदान है। वे बड़े ही उन्नत चरित्र की सहानुभूतिशील महिला हैं। जामिया के अभाव के दिनों में बेगम हुसैन का सहयोग उनकी सबसे बड़ी शक्ति रहा है। जिस प्रकार उनका पारिवारिक जीवन सुखी है, उसी तरह मित्र-समाज की दृष्टि से भी उनका जीवन सफल है। शत्रु भी उनकी चारित्रिक विशेषताओं के प्रशंसक रहे हैं। उनके राजनीतिक विरोधी चौधरी खलीकुज्जमा ने उनके विषय में कहा था कि वे अलीगढ़ विश्वविद्यालय की सर्वोत्तम उपलब्धि हैं।

डॉ० जाकिर हुसैन के चरित्र की सबसे उल्लेखनीय विशेषता यह है कि उन्होंने जिस जिम्मेदारी को अपने ऊपर लिया है, उसे उन्होंने संपूर्ण त्याग-भावना और कर्त्तव्य-निष्ठा के साथ निभाया है। जब

वे जामिया में शेख थे, वे दिन जामिया के घोर गरीबी के दिन थे। समय पर किसी को वेतन नहीं मिल पाता था। पर किसी को कोई शिकायत नहीं थी। कारण, शेख का स्वार्थ त्याग और तपोनिरत जीवन सबको निःस्वार्थ बनने की प्रेरणा प्रदान करता था। इन्हीं दिनों जवाहरलाल नेहरू, चक्रवर्ती राजगोपालाचारी और डॉ० मुहम्मद इकबाल ने जामिया को देखा और शेख के व्यक्तित्व, संकल्प-शक्ति और परियोजनाओं से प्रभावित हुए। यहीं से डॉ० जाकिर हुसैन को राष्ट्रीय ख्याति मिलनी आरंभ हुई। इसके पश्चात् वे जहां, जिस किसी पद पर रहे उनकी यह ख्याति बराबर बढ़ती रही। अलीगढ़ विश्वविद्यालय के उपकुलपति के रूप में, बिहार के गवर्नर के रूप में तथा उपराष्ट्रपति के रूप में उन्होंने देश का असाधारण सम्मान पाया है।

भारत के तृतीय राष्ट्रपति के गौरवशाली पद का उत्तरदायित्व वहन करते समय उन्होंने कहा था कि उनका वरण इस पद पर मुख्यतः इसलिए हुआ है कि वे दीर्घकाल तक इस देश की शिक्षा के साथ अध्यापक के रूप में सबद्ध रहे हैं। राष्ट्रपति के ये उद्गार शिक्षक के व्यवसाय के प्रति उनकी सहज सम्मान-भावना को व्यक्त करते हैं। वस्तुतः शिक्षक के रूप में और शिक्षा के क्षेत्र में डॉ० जाकिर हुसैन का परिदान महान् है। महात्मा गांधी की बुनियादी शिक्षा की नौका के वे प्रमुख कर्णधार रहे हैं। जो लोग इस देश को शिक्षा के इतिहास से परिचित हैं, वे जानते हैं कि गांधी जी की बुनियादी शिक्षा की योजना का उग्र विरोध भी हुआ था। विरोध करने वालों में प्रोफेसर के० टी० शाह जैसे प्रतिष्ठित शिक्षाशास्त्री भी थे। पर डा० हुसैन की योग्यता और लगन से ही वह योजना स्वीकृत और सर्वमान्य हुई।

ऊपर डा० जाकिर हुसैन के सम्बन्ध में जो कुछ कहा गया है, उससे यह सिद्ध होता है कि जिस प्रकार वट के सरसों से भी छोटे बीज में विशालकाय परम, शक्तिशाली वृक्ष अंतर्हित रहता है, उसी तरह जीवन की अत्यंत छोटी और साधारण प्रतीत होने वाली घटनाओं से महान् जीवन का अविर्भाव होता हुआ देखा जाता है। डा० जाकिर हुसैन के जीवन में भी यही सत्य चरितार्थ होता है। अंग्रेजों के साम्राज्यवाद के क्रूर बन्धनों में जकड़े हुए इस देश के एक सामान्य परिवार के बालक के सम्बन्ध में कोई यह कल्पना भी नहीं कर सकता था कि कभी वह स्वतन्त्र भारत का राष्ट्रपति बनेगा। पर अंगरेजों के साम्राज्यवाद के विरुद्ध इस देश में जो संघर्ष चला, विशेषतः जो विराट् अहिंसात्मक आन्दोलन महात्मा गांधी के नेतृत्व में प्रवर्त्तित हुआ, उसकी अति नगण्य प्रतीत होने वाली घटनाओं के भीतर से अनेक महान् व्यक्तित्वों और स्वतन्त्र भारत के इतिहास के अनेक स्वर्ण अध्यायों का अविर्भाव हुआ है। डा० जाकिर हुसैन का जीवन इसका प्रमाण माना जा सकता है। उनका स्वयं का कहना है कि गांधी जी के आह्वान पर अपने विद्यार्थी-जीवन में उन्होंने जो निर्णय लिया था, उसी के स्रोत से उनका जीवन-प्रवाह बहा है। १० मार्च, १९२० को गांधीजी ने अपनी सत्याग्रह की योजना पहली बार देश के समक्ष रखी थी। खिलाफत आन्दोलन का भी उन्होंने जोरदार समर्थन किया था। गांधीजी के इस आह्वान पर जिन असंख्य लोगों के जीवन का क्रम सर्वथा परिवर्त्तित हो गया था, उनमें डा० जाकिर हुसैन भी एक थे। उन्होंने अपने आपको राष्ट्रीय आन्दोलन को समर्पित कर दिया था। उनका यह समर्पण ही उनकी आजीवन उत्कर्ष-साधना का श्रीगणेश बन गया।

धर्म निरपेक्ष राष्ट्रपति

ए० यू० चंलानी

डा० जाकिर हुसैन को अपना राष्ट्रपति बना कर भारत अपनी धर्म निरपेक्षता की कसौटी पर खरा उतरा है। भारत में मुसलमान राष्ट्रपती, यह आज के विश्व के लिए नया अनुभव है। भारत ने विश्व को दिखा दिया कि भारत केवल काल्पनिक आदर्श ही नहीं रखता बल्कि उन्हें कार्यान्वित करने में भी पहल और दृढ़ता से काम लेता है। यह सिद्धांतों एवं आदर्शों की विजय तो है ही, साथ ही एक महान् शिक्षा शास्त्री, उच्च देश भक्त व कर्मठ कार्यकर्ता के साधनापूर्ण जीवन और मानवतावादी दृष्टीकोण का आदर भी है। वास्तव में, एक महान पद के लिए एक महान व्यक्तित्व को चुना गया। लगता है, जैसे राजनीति, शिक्षा का आदर करना सीख रही है।

४८ वर्ष से लगातार प्रमुख रूप से देश की सेवा में रत रहने वाले जाकिर साहब, एक निर्भिमानी, स्पष्ट वक्ता, सादगी पसन्द, अध्ययन प्रिय और सौम्य व्यक्तित्व के धनी हैं। अंग्रेजी और उर्दू भाषा का यह प्रकण्ड विद्वान जर्मन भाषा का भी ज्ञाता है। इसी विद्वता एवं अध्ययनशीलता ने उन्हें जाकिर साहब से डा० जाकिर हुसैन बना दिया है। अलीगढ़ विश्वविद्यालय के इस स्नातक ने जर्मनी के बर्लिन विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की थी। शिक्षा के प्रति प्रगाढ़ प्रेम और झुकाव ने, उन्हें इसी क्षेत्र की ओर अग्रसर किया। शिक्षा-पद्धति में राष्ट्रीयता का अभाव देख कर इस विद्वान नवयुवक ने अलीगढ़ में शिक्षक बनना स्वीकार किया। शिक्षा-प्रणाली में राष्ट्रीयता के मूल-सत्यों के समावेश हेतु, उन्होंने बुनियादी शिक्षा-पद्धति को देश में लागू करने, उसे नवीन रूप और आकार देने में मुख्य भूमिका निभायी। इस

शिक्षा-शास्त्री की यह हार्दिक इच्छा थी कि बुनियादि शिक्षा-प्रणाली को हमारे देश की शिक्षा-पद्धति का आवश्यक अंग बनाया जाय। किन्तु, किन्हीं कारणों से ऐसा सम्भव न हो सका।

सन् १८९९ में अफगान परिवार में जन्मा और प्रमुख वकील पिता के लाड़ प्यार से पालित-पोषित यह होनहार बालक, भारत का तीसरा राष्ट्रपति होगा, सम्भवतः किसी ने सोचा भी न होगा। किन्तु उनके शैक्षणिक-चिंतन, अथक-प्रयत्न एवं कार्य-कुशलता को परखने वाली नजरें उस समय भारत का नेतृत्व कर रही थी। अतः भला उस महात्मा की पैनी नजर से यह योग्य व्यक्तित्व कैसे छिपा रह सकता था? १९२० में गांधीजी के सम्पर्क में आते ही जाकिर साहब के जिम्मे बुनियादि शिक्षा का कार्य सौंप दिया गया। जाकिर साहब ने भी इस पुनीत कार्य को पूर्ण लगन और उत्साह से किया। जाकिर साहब की योग्यता ने गांधी जी को बहुत प्रभावित किया।

हमारे राष्ट्रपति एक सुवक्ता एवं प्रख्यात लेखक भी हैं। इतनी संयत, प्रभावशाली एवं मधुर-वक्तृता उनको सर्वप्रिय बनाने में सर्वाधिक सहायक सिद्ध हुई है। उनके भाषण उनके गहन अध्ययन एवं विद्वता के द्योतक होते हैं, जिनमें एक अध्यापक का व्यक्तित्व झलकता है, एक साधक की साधना परिलक्षित होती है। जिस प्रकार उनकी वक्तृता निराली है, उसी प्रकार उनकी लेखन-शैली भी विशिष्ट है। लेखन का चमत्कार उनके स्फुट-लेखों, दीक्षान्त-भाषणों एवं प्लेटो के 'रिपब्लिक' के अनुवाद में देखा जा सकता है। जाकिर साहब की शैक्षणिक, सांस्कृतिक एवं सार्वजनिक देन का सही मूल्यांकन एक कठिन कार्य है।

डा० जाकिर साहब के राष्ट्रपति बनने से पूर्व की गाथा, एक महत्वाकांक्षी, पर स्वयं निर्मित आदर्श व्यक्तित्व की सुनहरी कहानी है, जिसमें हम देखते हैं अलीगढ़ विश्वविद्यालय का शिक्षक किस तरह उसी विश्वविद्यालय का उप-कुलपति, यूनेस्को कार्यकारी मण्डल का सदस्य, फिर बिहार का राज्यपाल, पुनः भारत का उप-राष्ट्रपति तथा अन्त में विश्व के सबसे बड़े गणतंत्र राष्ट्र का राष्ट्रपति बन जाता है।

७१वर्षीय जाकिर साहब पूर्ण धार्मिक-आस्था वाले व्यक्ति हैं। उनकी इस धार्मिक-आस्था में संकीर्ण और साम्प्रदायिकता को लेश मात्र भी स्थान नहीं है बल्कि सृष्टा के प्रति श्रद्धा का भाव ही प्रमुख है। उन्होंने कहा भी है – "अखण्ड-विश्व-समाज के लक्ष्य तक पहुँचने के लिए रूढ़ि, धार्मिक विधानों और रस्मो-पूजा के दायरे से आगे देखना चाहिए।" उन्होंने अपने आपको धर्म की संकीर्णता में कभी नहीं बांधा; उनके विचारों में देशभक्ति और ऊँचे दर्जे की मानवता सदा परिलक्षित होती रही। राष्ट्रपति-पद की शपथ लेते हुए उन्होंने यही कहा था — "मैं धर्म व भाषा के भेदभाव के बिना अपने देश के प्रति निष्ठा की शपथ लेता हूँ। मैं अपने देश को मजबूत और प्रगतिशील बनाने के लिए तथा जाति, रंग व जन्म के भेदभाव के बिना, जन-कल्याण की शपथ लेता हूँ।"

डा० जाकिर हुसैन की धार्मिकता ने विज्ञान का कभी निरादर नहीं किया और न ही धर्मान्धता के घेरे में बन्द होकर विज्ञान और धर्म के बीच की खाई को पाटने में कोई कमी हो रखी है। उन्होंने कहा था कि—"यदि विज्ञान और धर्म के बीच की खाई को नहीं पाटा गया तो विज्ञान थोथा साबित होगा और धर्म में विज्ञान की भावना का समावेश हुए बिना धर्म अन्धविश्वास बन कर रह जायेगा।

जाकिर साहब को समझने के लिए यह आवश्यक है कि उनके व्यक्तित्व को समझें और उसमें अवगाहन कर उनके जीवन का सार-तत्व समझें। तो आइये, जाकिर साहब की इच्छा-शक्ति का पता उनके अपने ही शब्दों से लगाएं "मैने जन-सेवा का जीवन गांधीजी के कदमों में रह कर शुरू किया था। गाँधीजी आज तक मेरे जीवन की प्रेरणा के स्रोत हैं। साधन और साध्य की पवित्रता में विश्वास रखने वाले — गांधी जी के बताये गये मार्ग पर चल कर मै जनता की सेवा कर सकूं और जनता को मार्ग सुझा सकूं, इसी में मेरा जीवन धन्य होगा और यही मेरी कामना है। दलित और पिछड़े हुए लोगों के प्रति गाँधी की सहानुभूति थी और वे विभिन्न जाति, धर्म और सम्प्रदायों के भारतवासियों के बीच एकता लाना चाहते थे। आज मेरा भी वही रास्ता है और वही मंजिल है।" ●

काम का महत्व

कोई काम बड़ा या छोटा नहीं होता। प्रत्येक को अपने काम में श्रेष्ठता लाने का उद्देश्य रखना चाहिए। यही एक जरिया है जिससे कोई भी अधिक अच्छा व्यक्ति बन सकता है।

सभी लोगों को भरसक अच्छा काम करना चाहिए, क्योंकि काम मनुष्य के जीवन में संकल्प और एक महान सुअवसर है तथा इसका एक अंग है। यदि हम अच्छा काम करते हैं तो इसके परिणाम स्वरूप देश का हित सम्पादन होगा।

—डा० जाकिर हुसैन

खण्ड : २

काव्यांजलियां

अभिनन्दन १.

[डा० हनुमान दास चकोर']

हे कुशल प्रशासक ! सौम्यमूर्ति !
विद्वद्वर तुमको नमस्कार !
भारत का जन-जन देख तुम्हें,
हो रहा हृदय में मुदित आज।
धारण कर देह विदेह-सदृश,
कर रहे देश का वहन ताज !
हे कार्य-कुशल ! आनन्द-मूर्ति !

मानववर तुमको नमस्कार !

घन-तम में पथ दिखला हमको,
रवि-रश्मि, सदृश जगमगा दिया !
दे नवल जागरण भारत को,
सरसिज-संपुट-सा खिला दिया।
हे आशा-घन ! औदार्य रूप !

आभामय ! तुमको नमस्कार !

अभिनन्दन २.

[रामेश्वर 'अशांत']

जा धरती ने वेद विचार्‌या,
मानवता · रा बैण उचार्‌या-
सुथरी संस्कृति दीनी जग कूं,
सत्य-अहिंसा दर्शन गाया
वा धरती रा राजमुकुट, हे !

अभिनन्दन ।

जा धरती पै उपजी सीता,
जा बिन घट नारी रा रीता-
जा धरती रे ग्वाल बाल ने,
लिख दीनी जीवन री गीता ।
वा धरती रा राजमुकुट हे ।

अभिनन्दन ।

जा धरती पै राम अवतर्‌या,
राणा और शिवाजी जन्म्या-
जन्म्या लाल बहादुर वीरा,
कोटि-कोटि नयनां रा प्यारा ।
वा धरती रा राजमुकुट हे !

अभिनन्दन ।

जा धरती रा मुकुट हिमालय
पतित पावनी गंगा माई-
हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई,
जहां रहें सब भाई-भाई ।
वा धरती रा राजमुकुट हे !

अभिनन्दन ।

बंदगी !

[बी० सी० ठाकुर 'श्याम']

उस दिन
जब आप राष्ट्रपति बनें,
सचमुच !
हिंदुत्व की सनातन उदारता
हिन्दुस्तान की धर्म निरपेक्षता मूर्त बन गई
संविधान में तैरता हुआ स्वप्न,
इतिहास के कैनवास पर,
हर्फ़-ब-हर्फ़ साकार होगया !

कुछ अनुचित
कुछ संकुचित…… ….
(ऐसे लोग कमो-बेश सभी मुल्कों में होते थे…होते होंगे…और हैं)
सत्य को छिपाने की गरज में,
उरजा गये थे,
लेकिन आपने……
रुद्राक्ष की माला की भांति,
उनके शब्दों को भी ओढ़ लिया !
व्यक्तित्व में गजब की सादगी,
वाणी में शिक्षक की अभिव्यंजना…
और अंधेरे से लड़ने का बेहद उत्साह
ये सब यथार्थ देखते हुए ….
कंठ-कंठ में कोई अल्हादक आवाज
पूरब पश्चिम
उत्तर दक्षिण

सर्वत्र गूं ज ती है
बं द गी… !
बं द गी…. !

ओ मेरे राष्ट्रपति !

[दुर्गा प्रसाद 'मुकुर']

उस रोज सवेरे
उड़ीसा के सम्बलपुर में
जब मैं उतरा था-तो पाया—
लोग ताक रहे हैं आकाश की ओर
सारे के सारे एक साथ ।
हां,
तुम्हारा विमान उठ रहा था ऊपर
ऊपर ही ऊपर
ठीक उसी तरह
जैसे अपने जीवन में
तुम क्रमशः ऊँचे ही उठते गए
ओ मेरे राष्ट्रपति !
मालूम हुआ
तुम आए थे, कल ही
(५ जनवरी १९६८ को)
करने उद्घाटन-उड़ीसा के एक और
विश्वविद्यालय का ।
तुम्हारे पावन हाथों ने
फिर रोपा एक 'ज्ञान का पौधा'
जो समय पाकर फलेगा-फूलेगा-फैलेगा
ओ मेरे राष्ट्रपति !
तुम्हारे इन पावन करों ने ही तो
'बुनियाद' रखी थी-उस शिक्षा-भवन की
जिसे आज हम 'बुनियादी शिक्षा' कहते हैं
तुम्हीं ने तो लगाई थी वह डाली
जिसे हम जामिया-मिलिया-इस्लामियां
कहते हैं
जिसकी जड़ें फैल गई हैं काफी गहरी
जिसकी छाया सघनतर है ।
फल-पौष्टिक ।
मगर सत्य कहता हूँ
ओ मेरे राष्ट्रपति !

जब मैं 'अशोक भवन' देखने गया
(जिसमें कल रात तुम ठहरे थे)
तो मुझे, न जाने क्यों, ऐसा लगा
जैसे तुम्हारी खुशबू भी फैली थी
वहां
जो हम जैसे भावुकों के कान में
चुपके-चुपके फुसफुसा गई
कि, कल रात
तुम सोए कम-अधिक रोए थे
या कि तुम कुछ खोए-खोए थे
क्यों ? क्यों ?? क्यों ???

इसलिए कि, ओ मेरे राष्ट्रपति !

मुझसे ज्यादा तुम्हें यह दीख गया होगा
कि पावन हाथों से रोपे गए वृक्ष
देने लगे हैं "विष फल"
ज्ञान के मंदिर बन गये हैं अज्ञान के
क्रीड़ागार
उनकी घनी छाया, 'रिजर्व' कर ली है
उन्होंने-उन दरिन्दों ने
जिनके नाखून खरोंचते हैं औरो को
जिनके दातों में चमकते हैं लहू के दाग
सारस्वत जनों के !

क्या सच ?

मैंने अकपका कर पूछा 'जवाहर मीनार' से
जो 'हीरा कुंड बांध' की अथाह जल
राशि में
निरख रहा है अपना प्रतिबिंब।
जबाब नही मिला
मैं लगा ताकने उस 'जल-भंडार' की ओर

जिसे जमा किया गया है
धोने के निमित्त-उन आँसुओं को
जो बहते रहे हैं-सदियों से
मगर हाय ! ओ मेरे राष्ट्रपति !
मुझे उसमें चमकता नजर आया
तुम्हारी भी आँखों का 'जल बिन्दु'
जो अन जाने ढुलक गया होगा
किसी 'अनौपचारिक' क्षण में
अनायास ।
नहीं नहीं··· मेरा हृदय कहता है
अनायास नहीं-सहज भाव से
क्योंकि ओ मेरे राष्ट्रपति !
तुम फौलादी हो-जरूर हो
किन्तु मन तो तुम्हारा पत्थर का नहीं !

खण्ड : ३

विचार

बच्चों के नाम

[पयामे तालीम के १६३४ ई० के वार्षिक अङ्क के लिए जाकिर हुसैन साहब ने यह पयाम सम्पादक की प्रार्थना पर लिखा था।]

बच्चों! खुश रहो और स्वस्थ रहो! तुम्हारी 'पयामे तालीम' के निकालने वाले पीछे पड़े हैं कि इस पर्चे में मेरा सन्देश होना चाहिए। भला कोई इनसे पूछे कि जो आदमी रोज तुमसे मिलता हो और तुमसे बातें करता हो, तुम्हारे साथ उठता-बैठता हो वह सहसा कैसे सन्देश दे डाले? जो लोग कहीं दूर हों, कभी-कभी तुमसे मिलते हों, वे कोई संदेश भेजें तो कोई समझ की बात है। मगर यह 'पयामे तालीम' वाले एक नहीं सुनते, बस उन्हें तो सन्देश चाहिए। क्या कीजिए; इनकी बात माननी ही पड़ेगी और सच है कि इनका यह पर्चा और पर्चों से है भी जरा अलग। इसलिए सन्देश न सही, इस अवसर पर तुम से कुछ बातें कर लूँ।

तुम जानते हो इस पर्चे में क्या खास बात है? यह बात है कि यह २६ अक्टूबर को सब भाइयों को मिलेगा। १४ वर्ष हुए इसी तारीख को जामिया मिलिया का काम प्रारम्भ हुआ था। तुम में से बहुत से तो उस वक्त पैदा भी नहीं हुए थे। बहुत से छोटे लड़के जो प्रारम्भ में जामिया मिलिया में आये थे, वे अब ईश्वर की कृपा से जवान हैं। बहुत से दूर-दूर के देशों से शिक्षा ग्रहण कर वापस आ गये हैं। बहुत से यहीं शिक्षा समाप्त कर के सेवा कर रहे हैं, पाठशाला में बालकों को पढ़ा कर योग्य और अच्छा बनाने का प्रयास कर रहे हैं, अच्छे-अच्छे पत्र निकाल कर लोगों को सच्ची जानकारी देते हैं और अच्छी बातें बताते हैं। कुछ लोग व्यापार में रुपया कमा रहे हैं और इस कमाई से अन्य लोगों की सहायता भी करते हैं।

यों तो ये अपने-अपने धन्धों में लगे हैं मगर जामिया मिलिया का ध्यान सब को है।

जामिया मिलिया इन सब को प्यारी है। और देश के लोग जहाँ भी हैं जामिया मिलिया की सहायता कर रहे हैं।

जरा सोचो तो सही, ऐसा क्यों ? ये इस जामिया मिलिया को क्यों प्यार करते हैं ? जहाँ का खाना-पीना फीका मालूम होता था, जहाँ सुबह मुँह अन्धेरे उठना, वुजु करना और नमाज़ पढ़ना, फिर कड़ाकड़ी के जाड़ों में व्यायाम के लिए मैदान में जाना, इन्हें कैसा खलता था ! जहाँ इनके रहने को बहुत अच्छे मकान भी न थे। मदरसे में बैठने को कुर्सियाँ भी नहीं थीं। जहाँ न बहुत आराम था, न बहुत ठाठ। यह जामिया इन्हें इतनी प्यारी है।

इसलिए प्यारी है कि इसने इन्हें आदमी बनाया। इनके दिल में पवित्र जीवन की लगन लगाई और भय दिखला कर नहीं बल्कि परिश्रम से इनके दिल में 'खुदा और रसूल' की मुहब्बत पैदा की। इन के सीनों में अपने भाइयों की सेवा का जोश पैदा किया। इसने उन्हें सिखाया कि जहाँ रहो, कुछ भी करो, सच्चाई को न छोड़ो। इस रास्ते में कठिनाई आये तो मुँह मत मोड़ो। खुद ही कठिनाइयाँ उठाओ और दूसरों के लिए आसानियाँ पैदा करो। तन-बदन मोटे कपड़े से ढक लो और रूखा-फीका खा कर गुजारा कर लो, मगर दिमाग ऊँचे से ऊँचे ख्याल सोच सके, दिल अच्छी से अच्छी इच्छाओं से भरा हुआ हो।

प्यारे बच्चों ! जामिया मिलिया भी तुम्हें यही सिखाना चाहती है और निश्चय है कि यह सब कुछ कर पाओगे तो यहां की तकलीफें याद करके भी उतनी शिकायत तुम्हारी जुबान पर नहीं आयेगी। तुम सच्चे होगे, अच्छे होगे, तन्दुरुस्त होगे। साफ सुथरे होगे, ईमानदार होगे, धुन के पक्के होगे, बुरों के लिए लोहा होगे और अच्छों के लिए मोम, गरीबों का सहारा होगे, लाचार आदमियों का आसरा, सोतों को जगाओगे, डूबतों को उबारोगे, तुम गरीब होगे तब भी दिल अमीर होगा। दूसरों की दौलत को मुँह फेर कर न देखोगे, अमीर होगे तो अपनी दौलत को खुदा की दौलत समझोगे और इसको बन्दों की सेवा में खर्च करोगे। तुम जहां भी होगे अपने साथियों के लिए, पड़ोसियों के लिए, बस्ती के लिए वरदान होगे।

उस समय जिसका मैं जिक्र कर रहा हूँ, हम सब जो इस समय तुम्हारे लिए काम कर रहे हैं बूढ़े होंगे या मर चुके होंगे। हम जीते हों या मर गये हों, अगर तुम अच्छे होगे तो हमारी सब मेहनत सफल हो जायेगी।

इस जामिया को भी तुम्हीं में से कुछ चलाते होंगे। उस समय रुपये की कमी न होगी। किराये के भवन न होंगे। शिक्षा के सम्मान की कमी न होगी। पुस्तकालय में न जाने कितनी पुस्तकें होंगी।

इस समय एक शिक्षा केन्द्र है, उस समय तुम्हारी कोशिशों से सारे देश में केन्द्रों का जाल बिछा होगा। फिर इसी २९ अक्टूबर को सारे मुल्क में लाखों खुश बच्चे और साफ-सुथरे मेहनत मजदूरी करके रोटी खाने वाले लड़के जामिया के हजारों केन्द्रों में उत्सव मनायेंगे।

मेरी जगह पर तुम में से कोई 'पयामे तालीम' में इस अवसर पर कुछ लिखेगा तो हिन्दुस्तान के हर घर में लोग इसे चाव से पढ़ेंगे। इसलिए कि मदरसे के बच्चों में ही नहीं, चारों ओर तुम्हारे काम की चर्चा होगी। शिक्षा तुम्हारे हाथ में होगी। राजनीति तुम्हारे संकेतों पर चलेगी। जनता की राय पर तुम्हारा प्रभाव होगा। आज हम कमजोर हैं। उस समय तुम मजबूत होगे। उस वक्त यह बात न भूल जाना कि तुम्हारी सारी सफलता यह है कि तुम और तुम्हारे अगलों ने निःस्वार्थ सेवा को अपना रास्ता बनाया, जो ठीक समझा वह दिल लगा कर किया और नतीजे को खुदा पर छोड़ा।

बात बहुत बढ़ गई। बस अब रुखसत। जामिया को और तुम्हें यह दिन मुबारक! ●

सही सुधार

हमारे शैक्षिक संगठन में व्यक्ति और समाज की पारस्परिकता पर शायद ही ध्यान दिया जाता है। स्कूल तथा शिक्षण सम्बन्धी दूसरी संस्थाएं तथाकथित बौद्धिक प्रगति के काम में इतनी अधिक व्यस्त है कि उन्हें इन बातों के लिए—जो उनकी नजर में छोटी बातें हैं—समय नहीं है। सामाजिक उत्तरदायित्व की शिक्षा देने के लिए इन संस्थाओं का संगठन सामूहिक निवास की इच्छाइयों के रूप में होना चाहिए। पानी में तैरने से ही तैरना आता है, समाज में सेवा करने से ही सेवा भी आती है। जब तक यह सिद्धान्त हमारी शिक्षण संस्थाओं का प्राण नहीं बन जाता, दूसरे सुधार के कार्य छुटपुट रूप से किए गए ऊपरी या सतही कार्य होंगे। ऐसे संगठन के सदस्य रहने के सिवा भला किसी सुदृढ़ सामाजिक संगठन के नैतिक मूल्य का अनुभव कैसे किया जा सकता है?

—डा० जाकिर हुसैन

क़ौमी तालीम

[१४ अगस्त, सन् १६३५ को काशी विद्यापीठ के दीक्षान्त समारोह में डा० जाकिर हुसैन का भाषण ।]

मैं किस प्रकार कृतज्ञता प्रकट करूँ कि आप ने मुझे यहां बुला कर और भाषण देने की अनुमति दे कर मेरे सम्मान में बढ़ोतरी की है। मेरा काम, क्यों कि मुझे बराबर विद्यार्थियों के साथ रखता है इसलिए अपने विद्यार्थी जीवन और आजकल के समय में, मुझे कोई अन्तर नहीं लगता। मै अपने को आज भी उसी प्रकार का विद्यार्थी समझता हूँ जैसा कि आज से पन्द्रह वर्ष पहले समझता था। इसी लिए जब मुझे आप के कुलपति जो, हम सब के बुजुर्ग डा० भगवानदास जी का तार मिला कि तुम काशी विद्यापीठ के दीक्षान्त समारोह के उत्सव में आकर कुछ कहो, तो मुझे बहुत ही आश्चर्य हुआ, ऐसा ही आश्चर्य जैसा कि आप के किसी कम आयु वाले विद्यार्थी को ये तार पा कर हो कि तुम आकर जामिया मिलिया के दीक्षान्त समारोह के उत्सव में मुख्य भाषण करो। इस कारण से मैंने उत्तर में भी कुछ देर की और मेरा पहला विचार यही था कि मैं डाक्टर साहब से क्षमा चाहूँ और यह लिखूं कि शायद आप ने तार में गलत आदमी का पता लिख दिया है, लेकिन मैंने विचार किया कि शायद इस बुलावे में एक और बात छिपी है, अर्थात ये कि जामिया मिलिया में मेरे मित्र राष्ट्रीय शिक्षा का जो काम बड़ी कठिन दशा में कर रहे हैं, इसमे काशी विद्यापीठ के भाई और मित्र जो स्वयं इस प्रकार के कार्य में लगे हुए हैं, हमारा साहस-वर्द्धन करना चाहते हैं। मैं स्वयं की ओर से तो क्षमा मांग लेता, पर मेरे हृदय में आप के काम करने वालों का जो सम्मान है उसने आज्ञा नहीं दी कि इनके इस निमंत्रण को ना मंजूर कर दूँ। यही कारण है कि मैं इस समय आप के समक्ष उपस्थित हूँ।

दुर्बल प्रयास

आज से कोई पन्द्रह वर्ष पूर्व जब इस विद्यापीठ की नींव डाली गई थी तो वह समय हमारी कौम के लिए बड़ी बेचैनी का समय था। इस बेचैनी का क्रम अब तक किसी न किसी रूप में चल रहा है। कभी उभर आती है और कभी दब जाती है। इस बेचैनी ने हमारी कौम में बड़ी चेतना पैदा की है और कौमी जिन्दगी के विभिन्न क्षेत्रों ने इस से बहुत कुछ लाभ उठाया है। किन्तु मैं समझता हूँ कि जब इस चेतना का इतिहास लिखा जायगा तो इस समय में राष्ट्रीय विद्यालय की स्थिति हमारी कौमी जिन्दगी के लिए शायद सब से अधिक महत्त्वपूर्ण घटना स्वीकार की जायेगी। जिस प्रकार कठिन बीमारी की दशा में शरीर अपने रोग को दूर करने के लिए प्राकृतिक ढंग से कुछ न कुछ करता है और इसमें सोच विचार का अधिक भाग नहीं होता उसी प्रकार हमारी कौम ने भी कौमी तालीम के मामले में कुछ अधिक सोचा तो न था लेकिन दुःख बढ़ा तो उसने इसे दूर करने के लिए और उपायों के साथ अपने आप हो यह उपाय भी किया कि कौमी तालीम का कुछ प्रबन्ध करें। जब रोगी बहुत दुर्बल हो जाता है तो रोग को मिटाने के लिए प्रयास भी दुर्बल ही होते हैं। हमारे दूसरे प्रयासों की भाँति यह कौमी तालीम का प्रयास भी बहुत दुर्बल है। बल्कि स्वयं हमारी कौम में अच्छे समझदार आदमियों का एक विशेष बड़ा दल है, जो इस प्रयास की आवश्यकता को ही स्वीकार नहीं करता और इसके लाभों से बिलकुल अनभिज्ञ है। ये लोग प्रायः वे हैं जो अंग्रेजी पढ़-लिख लेने या कोई हुनर सीख लेने का नाम शिक्षा जानते हैं और सोचते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी आवश्यकता और हैसियत के अनुसार, जो और जितना पढ़ना-लिखना चाहता है लिख-पढ़ लेता है और सीख लेता है। अगर इन लोगों के विचारों की गहराई में पहुँचने का प्रयास कीजिये तो पता चलता है कि इन के निकट समाज अपने स्थान पर कोई वस्तु नहीं होता। अलग-अलग आदमियों के मिलने से बन जाता है, जैसे पत्थरों का ढेर, कि इस में असली चीज तो अलग-अलग पत्थर हैं। एक स्थान पर आ जाने से ढेर बन गया है। समाज में भी उनके विचार में व्यक्ति अकेला आदमी है। असली और प्रथम चीज है समाज जो इन अकेलों के मिल जाने का नाम है। मानसिक जीवन की नदी अकेला आदमी ही है—वही सोचता है, वही समझता है, वही सब मानसिक चीजें पैदा करता है और अतिरिक्त इस के कि जीवन को सहज बनाने के लिए दूसरों से कुछ सहायता ले ले या उनकी कुछ सहायता कर दे, विचार और मस्तिष्क के अर्थ में वह अपना संसार स्वयं है। हमारे शिक्षित लोग प्रजातंत्र के उदार दर्शन को पढ़-पढ़ कर, ह्यूमिज़्म, प्रोमीथिस और रॉबिनसन के नामों, कार्यों और कहानियों से प्रभावित हो कर अकेले आदमी को सामाजिक जीवन की सही वास्तविकता और समाज को इन अकेलों का ढेर मानने लगे हैं।

मानसिक जीवन

परन्तु इसके मुकाबिले में एक दूसरा विचार भी है और मैं समझता हूँ कि कहीं अधिक ठीक भी है अर्थात् यह कि असली वस्तु और प्रारम्भिक वस्तु समाज है और अकेला आदमी, व्यक्ति इस के सहारे और इसी के लिए हो सकता है और होता है। समाज की हैसियत शरीर की है, और अकेला आदमी या छोटे-छोटे समाजी दल इस शरीर के भाग होते हैं। शरीर के भागों का शरीर से और पत्थरों के ढेर का पत्थरों से जो सम्बन्ध है, उस का अन्तर प्रकट है। इस विचार के अनुसार मैं समझता हूँ कि

मानसिक जीवन बिना समाज के सम्भव नहीं। अकेला आदमी बतौर जानवर के समझ में आ सकता है मगर पूरे इन्सान की हैसियत से, जिस का विशेष गुण बुद्धि है, इसकी कल्पना भी संभव नहीं। मानसिक जीवन तो किसी मानसिक जीवन से ही पैदा होता है। ये दीपक सदैव किसी दूसरे दीपक से ही जलाया जा सकता है। मानसिक जीवन में ही तो मैं भी है नहीं तो मैं का स्थान भी न हो—इसी लिए मानसिक जीवन के लिए, जो वास्तविक अर्थ में मानव-जीवन है, समाज का स्थान आवश्यक है। शरीर में प्रत्येक अंग की कुछ अलग हैसियत भी अवश्य होती है। किन्तु इसी सीमा तक कि वह सारे शरीर से सम्बन्धित है और इसके अन्तर्गत अपनी सेवाएँ प्रस्तुत कर रहा है। एक अंग के कट जाने से शरीर में कमी आ जाती है। मगर वह बाकी रह सकता है। किन्तु अंग शरीर से अलग हो कर कभी नहीं रह सकता। बृक्ष में प्रत्येक शाखा और पत्ती भी अलग-अलग स्थान रखते हैं परन्तु शाखा या पत्ती के टूट जाने से बृक्ष समाप्त नहीं होता, बृक्ष से अलग हो कर शाखा और पत्ती के लिए मिट जाने के सिवा भले ही और कुछ नहीं है।

कभी न टूटने वाला क्रम

जिस प्रकार कुछ समय में शरीर का एक-एक कण बदल जाता है मगर शरीर का जीवन बराबर जारी रहता है, जिस प्रकार वृक्षों की पत्तियां बदल जाती हैं मगर पेड़ वही रहता है, इसी प्रकार समाज के व्यक्ति भी बराबर समाप्त होते रहते हैं, मगर सामाजिक जीवन बाकी रहता है। प्रत्येक जीवित प्राणी की तरह समाज में भी दो काम बराबर होते रहते हैं, एक तो बदलते रहने का और एक अपने—हाल पर स्थिर रहने का। इन में से कोई एक काम भी रुक जाय तो मौत का सामना होता है। जो शरीर अपने को स्थिर नहीं रख सकता वह तो मिट ही जाता है। पर जिसमें अपने को बदलते रहने की शक्ति न रहे वह भी मौत के ही घाट उतरता है। समाज में व्यक्ति के रहने का उद्देश्य यह है कि इस मौत और जिन्दगी, दृढ़ता और परिवर्तन, स्थिति और प्रमाण का कारण बने और इन्हें इस योग्य बनाने के लिये समाज के उपाय और इसका कर्त्तव्य नई नस्लों की शिक्षा है। शिक्षा वास्तव में किसी समाज के उस सोचे-समझे प्रयत्न का नाम है जो कि वह इस लिए करता है कि इसकी स्थिति बाकी रह सके और उस के व्यक्तियों में यह योग्यता पैदा हो कि बदली हुई दशा के साथ सामाजिक जीवन में भी उचित और आवश्यक परिवर्तन कर सकें। कौमी जिन्दगी में शिक्षा इसी प्रकार भूतकाल को वर्तमान काल से जोड़ती है, जैसे अकेले आदमी के जीवन में, उसकी स्मरण शक्ति। जो समाज अपनी शिक्षा का प्रबन्ध ठीक नहीं रखता वह अपनी स्थिति को भय में डालता है और जिस तरह स्मरण शक्ति समाप्त हो जाने से अकेले जीवन का क्रम बाकी नहीं रहता उसी प्रकार कौमी तालीम न होने से कौमी जिन्दगी का सिलसिला समाप्त हो जाता है। अगर दुनियां के समाज में भारतीय समाज को अपना अलग अस्तित्व स्थिर रखना है और दूसरे समाजों के मुकाबले में इसके पास कुछ है जो इसे दूसरों से अलग करता है और वह इस योग्य है कि बाकी रहे और दुनियां की जिन्दगी से मालामाल हो तो हमारे समाज का कर्त्तव्य है कि अपनी शिक्षा में उन वस्तुओं का ध्यान रखे, जिन्हें विशेष वह अपना समझता है। अपने बीते हुए समय को अपनी आने वाली नस्लों तक पहुँचाने का प्रबन्ध करे, इसलिए कि केवल पुस्तकों में लिखे रहने से हमारा इतिहास जीवित नहीं रह सकता ! इस के जीवन का बस एक ही उपाय है कि ये समाज के प्रत्येक व्यक्ति के हृदय और मस्तिष्क के अंश-अंश मे जीवित रहे। मगर बहुत से लोग ऐसे भी हैं

जो कहेंगे कि ये पुरानी रूढ़िवादी बातें हैं। कौमी परम्पराएँ तो अक्सर कौम के रास्ते में रुकावट ही हैं और भूत का बोझ गर्दन पर उठा कर कौम के लिए आगे चलना कठिन हो जाता है। इन छोटे विचारों से स्वतन्त्र होना चाहिए और वर्तमान आवश्यकताओं का विचार कर के और आने वाली आवश्यकताओं को सामने रख कर अपनी नई नस्लों को सिखाना-पढ़ाना चाहिए। बस यही कौमी तालीम है और शेष सब ढकोसले हैं। ऐसी बातें वे लोग भी करते हैं जो दिल से कौम की भलाई चाहते हैं और जिनके दिल में इस बात की लगन है कि उनकी कौम जल्द से जल्द उन्नति करे और जितनी तेजी से आगे बढ़ सकती है आगे बढ़े। अर्थात् खुद कौम के लिए वे कौमी तालीम के इस विचार को पसन्द नहीं करते, जिसका जिक्र ऊपर हुआ। मैं इन लोगों की नेकनीयती पर एक क्षण के लिए शक नहीं करता, मगर मुझे लगता है कि ये शिक्षा के महत्त्व से अनजान हैं वर्ना शायद ऐसी बात न करते। शिक्षा केवल कुछ बोल रट लेने या कुछ बातें जान लेने का नाम ही नहीं है, बल्कि शिक्षा तो उसे कहते हैं कि आदमी ने जो मस्तिष्क की शक्तियाँ ले कर जन्म लिया है उन के विकास की जितनी संभावना हो वो उसे प्राप्त करे। शिक्षा आदमी के मस्तिष्क की पूरी-पूरी परवरिश का नाम है। जिस प्रकार इन्सान का शरीर एक छोटे से बीज से शुरू होता है फिर उचित भोजन पा कर हिलने-डुलने लगता है और काम करने, शक्ति और आराम से, भौतिक और रासायनिक सिद्धान्तों के अनुसार पराकाष्टा की श्रेणी को पहुँचता है, इसी प्रकार मस्तिष्क का लालन पालन भी मानसिक भोजन पा कर मानसिक सिद्धान्तों के अनुसार होता है। देखना ये चाहिए कि मस्तिष्क को ये भोजन किन-किन वस्तुओं से पहुँच सकता है और इसके प्रभाव का सिद्धान्त क्या है। निवेदन यह है कि मस्तिष्क को मानसिक भोजन मिलता है संस्कृति से, संस्कृति से सम्बन्ध रखने वाली अन्य वस्तुओं से—उदाहरणार्थ समाज की शिक्षा पद्धति से, समाज के कला-कौशल से, समाज के धर्म से, समाज की कारीगरी से, समाज की सभ्यता के सिद्धान्तों से, समाज के नियमों से, समाज के रीति-रिवाजों से, समाज के बड़े-बड़े व्यक्तियों के जीवन से, समाज में पारिवारिक जीवन के आदर्शों से, समाज के नगरों व कस्बों और शहरों के जीवन से, समाज के शासन से, सेना से, न्यायालयों से, समाज की शालाओं से।

मस्तिष्क की उपज

अब यह बात याद रखने की है कि समाज से सम्बन्धित सारी बातें मानव मस्तिष्क की उपज होती हैं। मानव मस्तिष्क अपने को इन वस्तुओं में प्रकट करता है या यों कहिये कि मस्तिष्क अपने को अपने से बाहर ये रूप देता है। इन वस्तुओं में उस व्यक्ति के मस्तिष्क का प्रभाव भी होता है, जिसने इन्हें बनाया। उस जाति या नस्ल का प्रभाव भी होता है जिससे बनाने वाला सम्बन्धित था। उस समय और स्थान के वातावरण का प्रभाव भी होता है जिन में उस ने ये वस्तुएं बनाई थीं। इन सब का प्रभाव कहिये जो इस चीज में आ कर छिपा रहता है, सो जाता है। कोई नया मस्तिष्क वाला व्यक्ति जब उसे अपने अन्दर स्वीकार करता है तो ये छिपी हुई शक्तियाँ उभरती हैं। सोई हुई शक्तियां जागती हैं। सांस्कृतिक वस्तुओं की इन सोई हुई शक्तियों के फिर से इन्सान के मस्तिष्क को जगाने से इस मस्तिष्क की शिक्षा होती है और किसी वस्तु से मस्तिष्क की दीक्षा उस सीमा तक समझनी चाहिये, जिस सीमा तक इस की सोई हुई शक्तियाँ स्वीकार करने वाले के मस्तिष्क में जागी हैं। उदाहरणार्थ, अच्छे से अच्छे शेर को कोई रटे जाय, मस्तिष्क की कोई शिक्षा नहीं होगी अगर पढ़ने वाले के मस्तिष्क में पूरी तरह या कुछ

न कुछ वे दशाएं उत्पन्न न हों, जो कहने वाले पर छाई हुई थीं और जिन्हें उस ने अपने कलाम में गोया लाकर सुलाया था। कोई व्यक्ति अगर दूसरों के धार्मिक जीवन का हाल उम्र भर पढ़ता या सुनता रहे लेकिन इसके मस्तिष्क से इस जिक्र से धर्म की सच्ची दशा न पैदा हो तो उम्र भर के सम्बन्ध के होते हुए, उस के मस्तिष्क को इन धार्मिक बातों से कोई शिक्षा न होगी और यही हाल तमाम दूसरी सांस्कृतिक चीजों का है। शिक्षा के कार्यों से सम्बन्ध रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति को ज्ञात है कि हर मस्तिष्क की दीक्षा संस्कृति की हर एक वस्तु से नहीं होती। जिस प्रकार प्रत्येक शरीर को एक भोजन नहीं भाता, उससे कहीं अधिक हर मस्तिष्क को भी हर मानसिक भोजन नहीं पचता। बच्चा जिस समाज में जन्म लेता है उस के संस्कार से पैतृक सम्बन्ध होने के कारण हो उस के मस्तिष्क में कुछ सम्बन्ध स्थापित हो जाते हैं और इसी लिए स्वयं अपने समाज की सांस्कृतिक चीजों से उस के मस्तिष्क की अधिक उत्तम दीक्षा हो सकती है। दीक्षा पा जाने, उन्नति कर चुकने के बाद मस्तिष्क दूसरे समाज की वस्तुओं को भी अपना सकता और उनसे भी पूरा लाभ उठा सकता है, किन्तु प्रारम्भ में अपने पैतृक सम्बन्धों के कारण एक रूप में बड़ी सरलता और दूसरे में बड़ी कठिनाइयाँ होती हैं, इस लिए प्रत्येक वो व्यक्ति जो शिक्षा के वास्तविक महत्व को समझता है इस बात पर विवश है कि एक बड़ी सीमा तक मस्तिष्क को दीक्षा के लिए स्वयं इस समाज की सांस्कृतिक वस्तुओं से काम ले जिन से विद्यार्थी का सम्बन्ध है। वर्ना इस के प्रयत्न के बेकार जाने का भय है।

पहला कर्त्तव्य

इस लिए बावजूद इस के कि स्वयं हमारी कौम के बहुत से समझदार लोग अभी इस बात को सही नहीं मानते, हमें प्रसन्न होना चाहिए कि कौमी तालीम के कुछ विद्यालय तो देश में स्थापित हो चुके हैं। इन विद्यालयों का जिनमें आपकी विद्यापीठ का बड़ा महत्त्व है, कर्त्तव्य यही नहीं कि वे विद्यार्थियों की शिक्षा का प्रबन्ध कर दें, जो इनके यहां आते हैं या कुछ साधारण जानकारी की और कुछ मुख्य खोज की पुस्तकें छाप दें, इन विद्यालयों का आवश्यक कर्त्तव्य है कि कौमी तालीम का पूरा-पूरा प्रबन्ध करें। मैं जानता हूँ कि यह प्रबन्ध अभी बहुत कुछ कल्पनात्मक होगा और इसको जारी करने का इस समय अवसर नहीं है, किन्तु जारी करने के अवसर कह कर नहीं आते। फिर जब आते हैं तो ऐसी दशाओं में आते हैं कि सोचने—समझने का बहुत समय नहीं होता, और समय पर जो बन पड़ता है कर लिया जाता है और इस में अक्सर बड़ी त्रुटियां हो जाती हैं, जिनकी हानि शताब्दियों तक जारी रहती है। इस कर्त्तव्य को अभी से पूरा करने की आवश्यकता इस कारण से और भी है कि हमारे देश में राजनीति ही नहीं, शैक्षणिक संस्थाओं ने भी कौमी तालीम की समस्या पर बहुत कम ध्यान दिया है। इसके सम्बन्ध में कुछ कहा है तो बस यही कि वर्तमान प्रबन्ध बहुत बुरा है और इसमें जो सुधार प्रस्तुत किए हैं वो अक्सर बहुत एकांगी हैं। इसलिए हमारी शिक्षा के प्रबन्ध में बस इतने परिवर्तन से काम नहीं चलेगा कि इसमें देशी भाषा के लिए अच्छा स्थान निकल आए और इतिहास की पुस्तकें बदल दी जायं। हमारी कौमी तालीम की समस्या बहुत पेचीदा है। उदाहरणार्थ हमारे देश में तरह-तरह के लोग बसते हैं जिनकी बोलियां अलग-अलग हैं। रहने-सहने के ढंग भिन्न हैं। आदतें और रस्में अलग-अलग हैं। धर्म अलग-अलग हैं। कौमी तालीम का प्रबन्ध करने वालों को सोचना होगा कि वो प्रबन्ध की समानता के लिए और एक कौम पैदा करने के उत्साह में इन भिन्नताओं

पर बिल्कुल ध्यान न दें या प्रत्येक प्रदेश और प्रत्येक दल को, जिसकी संस्कृति इतनी है कि अपने व्यक्ति को मानसिक शिक्षा का साधन बन सके, इस बात का अवसर दिया जाय कि वह अपनी सांस्कृतिक वस्तुओं से शिक्षा ले और अपनी शिक्षा से अपनी संस्कृति की उन्नति के कारण निकाले। अगर आपके करीब शिक्षा का वह दृष्टिकोण ठीक है जिसका जिक्र मैंने अभी किया है तो लगभग अपने शहरियों के इन विभिन्न दलों को अपनी-अपनी संस्कृति से शिक्षा को काम लेने का अवसर देना—राजनीतिक बुद्धिमानी की मांग ही नहीं समझी जायगी, बल्कि स्वयं सही शिक्षा के लिए ठीक माना जायगा। उदाहरणार्थ आप हिन्दी मुसलमानों की शिक्षा की समस्या को ही ले लीजिए, क्या भारत की कौमी शिक्षा का प्रबन्ध इन मुसलमानों को इस बात का अवसर देगा या नहीं कि वे अपने सांस्कृतिक जीवन को अपनी शिक्षा का माध्यम बनाएं? आप जानते हैं कि ये कौमी समस्या हमारी जिन्दगी के लिए कितनी कठिन है। सम्भव है कि कुछ नेकनीयत, अत्यधिक कौम परस्त सम्पूर्ण भारतीय जातीयता का ऐसा चित्र अपने मस्तिष्क में रखते हों कि जिसमें मुसलमानों को ये अधिकार देना कौम की शक्ति और कौम के लिए हानिकारक हो। किन्तु हमारे शिक्षा शास्त्री अगर नेकनीयती से भारत की शिक्षा विधि बनाय तो मुझे यकीन है कि वे मुसलमानों की इस इच्छा को प्रसन्नता से स्वीकार लेंगे कि वो अपनी शिक्षा की नींव अपनी संस्कृति पर रखें जो कि सही शिक्षा और सही राजनीति दोनों की मांग है। आप मुझे क्षमा करें अगर इस सम्मानित उपस्थिति के समक्ष मैं सचाई से ये बात प्रस्तुत करूं कि मुसलमानों को जो वस्तु पूरी हिन्दुस्तानी कौमियत से बार-बार अलग खींचती है उसमें जहां तक व्यक्तिगत स्वार्थ, सूक्ष्म दृष्टि और देश के भविष्य की सही कल्पना न करने के कारण हैं, वहां इस गहरे सन्देह का भी बड़ा भाग है कि कौमी शासन के आधीन मुसलमानों के सांस्कृतिक जीवन के सर्वनाश होने का भय है। और मुसलमान किसी हाल में ये मूल्य देने को तैयार नहीं और मैं, बहैसियत मुसलमान ही नहीं, सच्चे हिन्दुस्तानी की हैसियत से भी, इस पर प्रसन्न हूँ कि मुसलमान इस मूल्य को अदा करने के लिए तैयार नहीं। इसलिए कि इससे मुसलमानों की हानि होगी सो होगी ही, स्वयं हिन्दुस्तान की संस्कृति भी कहाँ से कहाँ पहुँच जायगी। यही कारण है कि सच्चे मुसलमान हिन्दुस्तानी अपनी धार्मिक परम्पराओं, अपने इतिहास, अपनी सांस्कृतिक सेवाओं और अपनी संस्कृति से आशाओं के कारण अपने धार्मिक संगठनों को स्वयं अपने लिए ही मूल्यवान नहीं समझते बल्कि हिन्दुस्तानी कौमियत के लिए बहुत अधिक मूल्यवान समझते हैं और इनके मिटाये जाने पर, कमजोर किये जाने को अपने ही साथ अत्याचार नहीं बल्कि हिन्दुस्तानी कौम के साथ भी बड़ा धोखा समझते हैं। हिन्दुस्तानी मुसलमानों को अपना देश किसी अन्य से कम प्यारा नहीं। वे हिन्दुस्तानी कौम का अंग होने गर्व पर करते है, मगर वे ऐसा अंग बनना कभी स्वीकार न करेंगे जिसमें उनकी अपनी हैसियत बिल्कुल मिट चुकी हो। उनका उत्साह है कि अच्छे मुसलमान हों और अच्छे हिन्दी और न कोई मुसलमान इन्हें हिन्दी होने पर लजाये और न कोई हिन्दी इन के मुसलमान होने पर उँगली उठाये। हिन्दुस्तान में इनका धर्म देश से सम्बन्ध न रखने का बहाना नहीं बल्कि सेवाओं का उत्तरदायित्व इन पर डाले, इनके लिये दोष न हो बल्कि सम्मान हो। इस विचार का फल यह होगा कि सब मुसलमान राजनीतिक क्षेत्र में दूसरे तमाम हिन्दी लोगों के साथ होंगे। अलग और मिले हुए चुनावों के झगड़े भुलाये जा चुके होंगे और लगभग कर्मचारियों की नीतियों में भी मुसलमान एक स्वाभिमानी दल की तरह बजाय रक्षा के, मुकाबले पर आने के लिए आग्रह करते होंगे। इस समय भी वे अवश्य चाहेंगे कि उनकी शिक्षा के प्रबन्ध में उनको सांस्कृतिक वस्तुओं का पूरा-पूरा

समन्वय हो। मुझे यकीन है कि भविष्य का बुद्धिमान भारतीय शासन उनकी इस मांग की पूर्ति कर के मुसलमानों की उन्नति और इस से स्वयं अपनी शक्ति का सामान तैयार करेगा।

कमजोरी का कारण

बात जरा दूर जा पड़ी। मैं निवेदन यह कर रहा था कि हमारे दक्ष शिक्षा शास्त्रियों को देश के धार्मिक और भौगोलिक दलों के अलग-अलग या बिल्कुल एक से प्रबन्ध के सम्बन्ध में ध्यान देना चाहिये। परन्तु अगर उनका निश्चय यही है जिसकी ओर मैंने संकेत किया है तो एक और कठिन प्रश्न का हल इन्हें सोचना पड़ेगा—यानी इस प्रकार वर्गों को सांस्कृतिक स्वतन्त्रता दे कर के एक कौम और इसकी रियासत को कमजोर नहीं होने देंगे, इसलिए कि अगर वर्गों की इस स्वतन्त्रता के साथ, कुल के साथ, प्रेम का बहुत ही मजबूत सम्बन्ध स्थापित नहीं हुआ तो निःसन्देह ये स्वतन्त्रता कुल कौम के लिए कमजोरी और कुछ दशाओं में मृत्यु का कारण हो सकती है। इसलिए हमारी कौमी शिक्षा के प्रबन्ध को मुख्य विचार यह प्रस्तुत करना होगा कि जिस तरह व्यक्ति के भीतर मुख्य पालन-पोषण और व्यक्तित्व की पूर्ति का यही रास्ता है कि वे अपने समाज की संस्कृति से अपना पालन-पोषण करें और इसकी सेवा को अपनी उन्नति का साधन जानें, इसी प्रकार हमारे बड़े हिन्दुस्तानी समाज में जो वर्ग और छोटे-छोटे समाज हैं, इनमें भी यह निश्चय बहुत ही पक्का हो जाना चाहिये कि किसी भी वर्ग की स्थिति में वे उस समय पूरी उन्नति कर सकते हैं जबकि बड़े समाज का अपने को सेवक जानें। इसकी भलाई में अपनी भलाई, और इसकी बुराई में अपनी बुराई देखें। इस निश्चय का पैदा करना, अगर राजनीतिक प्रबन्ध की अच्छाइयों पर आधारित है तो शिक्षा के प्रबन्ध पर भी बहुत अधिक आश्रित है।

यही क्या, ऐसे अनगिनत और भी प्रश्न हैं, जिन पर हिन्दुस्तान के सबसे अच्छे मस्तिष्कों के ध्यान देने की आवश्यकता है। उदाहरणार्थ अगर हमारा शिक्षा प्रबन्ध हमारे हाथ में हो तो उस समय भी क्या पाठशालाएँ केवल पुस्तकें पढ़ा देने के लिए स्थापित होंगी और उनका उद्देश्य भी स्वस्थ, अच्छे, सच्चे आदमी पैदा करने के स्थान पर चलते-फिरते पुस्तकालय पैदा करना होगा? क्या इस समय भी बच्चों की मूल प्रवृतियों का ध्यान रखे बिना सब को एक ही लकड़ी से हांका जा सकेगा और उस प्रकार कौम की मानसिक शक्ति को, जो कि इसकी सबसे मूल्यवान पूंजी है, बर्बाद कर दिया जायगा? या भिन्न-भिन्न प्रवृत्ति वालों के लिए, भिन्न-भिन्न प्रकार की पाठशालाएँ होंगी, जिनमें प्राथमिक शिक्षा के पश्चात् बच्चे भेजे जा सकेंगे और अपने विशेष मस्तिष्क के रुझान के अनुसार शिक्षा पायेंगे? क्या उस समय भी हमारी पाठशाला और कौम के जीवन में इतना ही कम सम्बन्ध होगा जैसा कि इस समय है या बचपन ही से ऐसे अवसर भी मिला करेंगे जिससे प्रत्येक हिन्दुस्तानी के दिल में यह बात बैठ जाए कि कौन सी सेवा करके वह अपनी उन्नति का रास्ता निकाल सकता है? क्या उस समय भी हमारी पाठशालाएँ स्वार्थ और आपसी मुकाबिले ही के प्रायोगिक पाठ दिया करेंगी और दूसरों की सेवा या सहायता के अवसर इन में न पैदा होंगे? क्या उस समय भी पाठशालाओं को बस इससे मतलब होगा कि विद्या सिखा दी लेकिन विद्या के प्रयोग और चाल-चलन पर प्रभाव डालने का कोई सामान न होगा? क्या उस समय भी हमारा पाठ्यक्रम ऐसा ही चूँ-चूँ का मुरब्बा होगा, जैसा कि अब है? यानी क्या उस समय भी प्रत्येक वस्तु का विषय बना कर और पाठ्यपुस्तक में सम्मिलित करके बच्चे के लिए

कठिनाई और उसकी शिक्षा के लिए प्रभाव रहित होने का सामान किया जायगा या एक या थोड़ी सी बातों में अच्छी दक्षता पैदा करके ऐसी योग्यता उत्पन्न करदी जायगी जिससे वो दूसरी वस्तुओं को आवश्यकता के समय स्वयं प्राप्त कर सके? क्या उस समय भी पेशे और सार्वजनिक शिक्षा को बिल्कुल अलग-अलग रखा जायगा या पेशे की ऐसी शिक्षा का प्रबन्ध हो सकेगा कि वही सार्वजनिक शिक्षा की मजबूत नींव साबित हो? गरज यह है कि इन जैसी अनगिनत समस्याएँ हैं, जिनका जिक्र करके मैं आपका समय नष्ट नहीं करना चाहता। इतना भी सिर्फ इसलिए जिक्र किया कि यहां एक बड़ी कौमी विद्यापीठ के कार्यकर्ता उपस्थित हैं। इन्हें इस ओर आकर्षित करने से शायद इस बात का अवसर निकल सके कि हमारे शिक्षा क्षेत्र में कार्य करने वाले इन समस्याओं पर विचार करें और अपनी खोज के फलों को कौमी शिक्षा के किसी विद्यालय की ओर से छाप सकें, ताकि होते-होते सब के सोच-विचार से कौमी तामील का एक शुद्ध कार्यक्रम तैयार हो जाय और अगर सारी व्यवस्था को प्रतिकूल वातावरण के कारण जारी न किया जा सके तो कम से कम प्रारम्भिक शिक्षा की समस्या को निश्चित करने के पश्चात् पाठशालाएँ स्थापित की जाएँ और कम से कम शिक्षा की इस बुनियादी मन्जिल को म्यूनिसिपल और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के ही द्वारा ठीक करने का उपाय किया जाय। कुलपति जी! मैंने आपके निमंत्रण और इस उत्सव से लाभ उठा कर कुछ शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं का जिक्र कर दिया कि शायद इससे खोज का द्वार खुले। जिसकी मैंने प्रार्थना की है। लेकिन मुझे निश्चय नहीं कि मैंने यह ठीक भी किया या नहीं। इस समय तो मुझ से आशा होगी कि मैं इन नवयुवकों से कुछ कहूँ जो आपकी विद्यापीठ से शिक्षा समाप्त करके जा रहे हैं। अब आपकी आज्ञा से इन विद्यार्थियों से कुछ कहना चाहता हूँ। अजीजो! तुम शिक्षा के इस नगर काशी से यहां की इस प्रसिद्ध विद्यापीठ में अच्छे-अच्छे और योग्य-अध्यापकों से शिक्षा पाकर अब दुनियां में कदम रखते हो। मुझे मालूम नहीं कि इस दुनियाँ में जो विद्यापीठ से बहुत ज्यादा सख्त और बे रहम जगह है तुम क्या करना चाहते हो? हो सकता है कि व्यापार या नौकरी से बहुत सा धन-दौलत कमाओ और चैन से अपने और अपने खान्दान की जिन्दगी गुजारने का सामान करो। अगर ऐसा है तो खुदा तुम्हारे इरादों में बरकत दें, मगर मुझे तुम से फिर कुछ बहुत कहना नहीं है—तुम अपनी कामयाबी के लिए खुद राहें तलाश कर लोगे। अगर ठीक रास्ते पर पड़े तो ज्यादातर अपना फायदा करोगे। अगर गलत पर पड़े तो सजा भुगतोगे। मगर दूसरों का कुछ बहुत नुकसान न होगा। लेकिन चाहे तुम धन-दौलत की फिक्र ही में लग जाओ, कम से कम काशी विद्यापीठ के स्नातक हो कर तुम कभी अपनी कौम की राह में रोक न बनना। अपनी कामयाबी के लिए बहुत से लोग कौम का नुकसान करने से भी नहीं चूकते। तुम इसका ध्यान रखना कि कामयाबी के लिए यह जरूरी नहीं है कि अपने कर्त्तव्यों को छोड़ कर अपनी सारी अच्छी इच्छाओं को पैरों तले रौंद कर इस तक पहुँचा जाय। जो अपने उद्देश्य के लिए इतना अन्धा हो जाय कि अपने देश और अपनी कौम को हानि पहुँचाने से भी न चूके, वो आदमी नहीं जानवर है और अगर काशी विद्यापीठ में पढे हुए होने के कारण तुम अपनी जिन्दगी देश की सेवा में लगाना चाहते हो तो मुझे तुम से बहुत कुछ कहना है।

कसौटी

तुम जिस देश में यहां से निकल कर जा रहे हो वो बड़ा अभागा देश है। वो गुलामों का देश है, जाहिलों का देश है, बेइन्साफियों का देश है, बेरहमियों का देश है, जालिमाना रस्मों का देश

देश है, गाफिल पुजारियों का देश है, भाई-भाई में नफ़रत का देश है। भूख और मुसीबत का देश है। गरज बड़ा कम्बख्त देश है। लेकिन क्या कीजिए। तुम्हारा और हमारा देश है। इसी में जीना और इसी में मरना है। इसलिए ये मुल्क तुम्हारी हिम्मतों के इम्तिहान, तुम्हारी दक्षता के इस्तेमाल और तुम्हारी मुहब्बत की आजमाइश की जगह है।

मुमकिन है कि अपने चारों तरफ इतनी बरबादी, इतनी मुसीबत, इतना अत्याचार देख कर तुम बेसब्री में ये चाहो, जैसे बहुत से नौजवान चाहने लगे हैं कि इसमें बसने वाले समाज को ही खत्म कर दो और बर्बाद कर डालो, इसलिए कि इसमें सुधार की कोई सूरत नहीं। तुम्हें अख्तियार है, मगर अपने एक भाई की राय सुन लेने में क्या नुकसान है, सो मेरा खयाल ये है कि बर्बादी से हमारा काम कुछ सहज नहीं होगा। तबाही और बर्बादी तो पहले ही से काफी मौजूद है। कौमी जिन्दगी का कौन सा भाग है जिसमें पहले से तबाही का दौर-दौरा न हो? लेकिन हमारी बेशुमार बीमारियों और अनगिनत कठिनाइयों में से ऐसी बहुत कम हैं कि हम एकाएक गर्मा कर थोड़ी सी देर में उन्हें खत्म कर डालें। मैं समझता हूँ कि हमें बिगाड़ना इतना नहीं है जितना कि बनाना है। हमारे देश को हमारी गर्दनों से उबलते खून की धारा की जरूरत नहीं है बल्कि हमारे माथे के पसीने का बारहमासी बनने वाला दरिया दरकार है। जरूरत है काम की। खामोश और सच्चे काम की। हमारा भविष्य किसान की टूटी झोंपड़ी, कारीगर की धुएँ से काली छत और देहाती पाठशालों के फूस के छप्पर तले बन और बिगड़ सकता है। राजनैतिक झोंपड़ी, कांफ्रेंस और कांग्रेसियों में कल और परमों के किस्सों का फैसला हो सकता है। लेकिन जिन जगहों का नाम मैंने लिया इनमें सदियों तक के लिए हमारे भाग्य का फैसला होगा और इन जगहों का काम सब्र चाहता है और दृढ़ता। इसमें थकन भी ज्यादा और कद्र भी कम होती है। जल्दी नतीजा भी नहीं निकलता है। कोई देर तक सब्र कर सके तो जरूर फल मीठा मिलता है।

बेसब्री घातक

अजीजो! इस नए हिन्दुस्तान के बनाने के काम में तुम से जहां तक बन पड़े, हाथ बंटाना मगर याद रहे कि अगर मिजाज में बेसब्री है तो तुम इस काम को अच्छी तरह नहीं कर सकते। यह बड़ा देर तलब काम है। अगर तबियत में जल्दबाजी है तो भी तुम काम बिगाड़ दोगे। ये बड़ा पत्ता मारने का काम है। अगर जोश में बहुत सा काम करने की आदत है और इसके बाद ढीले पड़ जाते हो तो भी शायद ये कठिन काम तुमसे न बन पड़ेगा। इसलिए कि इसमें अरसे तक एक सी मेहनत और लगन की आवश्यकता है। अगर असफलता से निराश हो जाते हो तो इस काम को न छूना। इसमें असफलताएँ आवश्यक है। बहुत असफलताएँ और बार बार असफलताएँ। ये काम वही कर सकता है जिसे हर असफलता और ज्यादा मेहनत करने पर उभारती है। इस देश की सेवा में पग-पग पर स्वयं देश के लोग तुम्हारा विरोध करेंगे, वो लोग विरोध करेंगे जिन्हें हर परिवर्तन से हानि होती है, वो जो इस समय चैन से है और डरते हैं कि शायद दशायें बदलें तो वो इस तरह दूसरों की मेहनत के फलों से अपनी झोलियां न भर पायेंगे। लेकिन याद रखो कि ये सब थक जाने वाले हैं। इन सब का दम फूल जायगा। तुम ताजा दम हो, जवान हो, तुम्हारे दिल में अगर सन्देह हो और भरोसा न हो तो

इस कार्य में बड़ी कठिनाइयां सामने आयेंगी। इसलिए शुरू से शक्ति पैदा करो। गंदे हाथ और मैले दिल लेकर भी तुम इसको अन्जाम तक न पहुँचा सकोगे। ये पवित्र काम है। घृणा व बदगुमानी भी इसके काम में कुछ अच्छे साथी साबित न होंगे। तुम्हारी जातीयता की इमारत की बुनियादें मुहब्बत और भरोसे की चट्टानों पर बन सकेंगी। संक्षेप यह है कि तुम्हारे सामने तो अपने जौहर दिखाने का अजीबो-गरीब मौका है। मगर इस मौके से काम लेने के लिए बड़ी कड़ी मेहनत की आवश्यकता है। जैसे कारीगर होंगे वैसी ही इमारत होगी और काम क्योंकि बड़ा है, एक या थोड़े से आदमियों के कुछ दिनों के परिश्रम से पूरा न होगा। दूसरों से सहायता लेनी होगी और दूसरों की सहायता करनी होगी। तुम्हारे वंश के सारे हिन्दी नवयुवक अगर अपना सारा जीवन इसी एक धुन में लगा दें तब शायद ये नाव पार लगे। देखना यह है कि तुम सहायता करने और सहायता लेने योग्य होगे या नहीं और दूसरे सहायता देने के लिए तैयार होंगे या नहीं। जब जात-पात, धर्म, भाषाओं के अन्तर से हमारा देश टुकड़े-टुकड़े नजर आता है, जिस देश में स्टेशनों पर मुसलमान पानी और हिन्दू दूध मिलता है उस देश में विभिन्न प्रकार के वंश मिलते है, जहां बिल्कुल भिन्न प्रकार की संस्कृतियां साथ-साथ जारी है, जहां एक का सत्य दूसरे का झूठ है, जहां मूर्ति पूजने वाले और मूर्ति तोड़ने वाले को प्रकृति ने साथ-साथ दुःख-सुख के लिए साथ जीने और साथ मरने के लिए एक स्थान पर कर रखा है, इस देश में नवयुवकों से ऐसे मिलकर काम करने की आशा जरा कठिन है। मगर दिल यही गवाही देता है कि थोड़े दिन और धक्के खाने के बाद इस देश के नवयुवक देश की सेवा के लिए एक दिल हो जायेंगे; इसलिए मेरा पूरा-पूरा विश्वास है कि हिन्दुस्तान के भाग्य में प्रकृति ने ये बात रखी है कि यहां बिल्कुल विभिन्न प्रकार के इन्सानों के नमूने एक दूसरे से मिलकर एक ऐसा इन्सान तैयार करें जो सभ्यता और संस्कृति का एक नया रूप हो। प्रकृति के इस अनुभव और इसके उद्देश्य में उसकी सहायता करना तुम्हारा काम है, और इस सहायता के लिए अपने आपको अच्छा आदमी बनाना और अपने दिल को कपट से खाली करना आवश्यक है। बलिदानों के लिए तैयार रहने की आवश्यकता है। अपने संकल्प को दृढ़ करने और वासनाओं पर संयम रखने की आवश्यकता है। अगर तुम में और तुम्हारे साथी नवयुवकों में ये गुण न हुए और आज ही तुम्हें किसी महात्मा की कृपा से राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन के अच्छे-अच्छे उपदेश बैठे-बिठाये मुफ्त में प्रकृति की ओर से भेंट में मिल गये तो भी याद रखो कि ये भेंट बेकार होगी। ये पाठ सब के सब ऊँचे होते हुए उस स्तर पर पहुँच जायेंगे, जिस पर तुम्हारी चारित्रिक शक्ति होगी और उनका रूप ऐसा बिगड़ जायगा कि कठिनाई से उन्हें कोई पहचान सकेगा। कौम अपने उद्देश्यों और अपने पद को उस श्रेणी पर स्थिर रख सकती है जिस पर कि स्वयं अपने बाहुबल से पहुँचने योग्य हो। इसलिए हिन्दुस्तान की बड़ाई तुम्हारी अच्छाइयों पर निर्भर है। अपनी जाति की तमाम शक्तियों की उन्नति कर के एक ऐसा सुसंस्कृत व्यक्तित्व बनाओ जिसे भारत माता के सामने प्रस्तुत करने जाओ तो तुम्हें स्वयं लज्जा न आये और वो प्रसन्न होकर उसे स्वीकार कर ले। सेवा के इस मार्ग में जिसका वर्णन कर रहा हूँ, प्रकट है कि बड़ी कठिनाइयां हैं इसीलिए ऐसे समय भी आयेंगे कि तुम थक कर निराश हो जाओगे, बेदम से हो जाओगे और तुम्हारे दिल में ये सन्देह भी उत्पन्न होने इसलिए कि जो कुछ किया कहीं बेकार तो न था। इस समय भौतिक और आध्यात्मिक ढंग प-ालिक है और माता के इस चित्र की ओर ध्यान लगाना जो तुम्हारे दिल में सदा रहना चाहिये र। गरीब प्रकृति

के चित्र पर जिसमें सत्य का शासन होगा, जिसमें सबके साथ न्याय होगा, जहाँ धनी और निर्धन का अन्तर न होगा बल्कि सबको अपने-अपने व्यक्तित्व के विकास का अवसर मिलेगा, जिसमें लोग एक दूसरे पर भरोसा करेंगे और एक दूसरे की सहायता, जिसमें धर्म का प्रयोग इस कार्य में न होगा कि झूठी बातें मनवाए और स्वार्थियों की आड़ बने, बल्कि जीवन को सुधारने और उसको सार्थक बनाने का साधन होगा। इस चित्र पर दृष्टि डालोगे तो तुम्हारी थकान दूर हो जायेगी और तुम नये सिरे से अपने काम पर लग जाओगे फिर। भी अगर चारों ओर नीचता और स्वार्थपरता, मक्कारी और बहानेबाज़ी, दासता और दासता पर स्वीकृति पाओ तो समझना काम अभी समाप्त नहीं हुआ है। मोरचा जीता नहीं गया है। अभी युद्ध जारी रखना है और जब भी समय आये बस को आना है, और इस मैदान को छोड़ना पड़े तो ये शान्ति तुम्हारे लिए बहुत होगी कि तुमने अपनी शक्ति भर उस समाज को स्वतन्त्र करने और अच्छा बनाने का प्रयत्न किया जिसने तुम्हें आदमी बनाया था। तुम चले जाओगे, दूसरे तुम्हारे कार्य को जारी रखेंगे, इस लिए ये कार्य कभी समाप्त होने वाला कार्य नहीं। समाज की स्वतन्त्रता और समाज का स्वास्थ्य ऐसी वस्तुएं नहीं, जो बस एक बार में प्राप्त कर ली जाएँ। ये ऐसे समाज को मिलती हैं और ऐसे के पास रहती हैं जिसके सपूत इन्हें प्रतिदिन नये सिरे से प्राप्त कर सकें।

बस अब विदा! तुम्हें तुम्हारी शिक्षा का प्रमाण पत्र मुबारक, तुम से बहुत सी आशाएं हैं। ईश्वर करे कि निराश न करो! ●

असली शिक्षा

असली शिक्षा आदमी के अपने ही हाथों होती है। दूसरा घोड़े को पानी तक ले जा सकता है, पानी पीना तो उसे आप ही पड़ता है। मेरी प्रार्थना शिक्षकों स्नातकों सभी से यही है कि इसे अपना काम बनाइये, ऐसा कार्य जिससे मन का विकास हो।

—डा० जाकिर हुसैन

स्वयं देश .
वो जो इस स
फलों से अपनी
दम फूल जायगा।

बच्चों की शिक्षा

[१० मार्च, १९३४ को डा० जाकिर हुसैन की ग्रॉल इण्डिया रेडियो से प्रसारित वार्ता]

हमारी रंगारंग दुनिया में ऐ क्या कमी है जिन्हें देख कर ग्रा से उँगली दाँतों तले दबा ले। प के बच्चे से अधिक ग्राश्चर्य में डालने वाली शायद और कोई वस्तु नहीं। किसी और जानदार का बच्चा इतना बेबस नहीं होता न इतने समय तक अपने माता-पिता और बड़ों का मुँह ताकता है। कोई अन्य बच्चा अपनी सारी शक्तियों को पूर्ण उन्नत करने में इतनी देर नहीं लगाता। प्रथम तो इसकी लाचारी और सुस्त गति पर हँसी आती है। पर जरा सोचिये तो विचार होता है कि यह संसार के अधिकारी और सम्राट इन्सान का बच्चा है। शायद प्रकृति चाहती है कि बड़े होते-होते सम्राट के कार्य के योग्य हो जाये इस लिए इसकी शिक्षा का पाठ्यक्रम इतना लम्बा रखा गया है। इसके शरीर की उन्नति तक में ऐसा ज्ञात होता है कि प्रकृति ने विशेष प्रबन्ध किया है कि काम खूब पक्का हो, कहीं जल्दबाजी में खराब न हो जाये।

(प्रथम वर्ष बच्चा बड़ी तेजी से बढ़ता है, परन्तु दो वर्ष से पाँच वर्ष की आयु तक प्रकृति गति को सुस्त कर देती है। पहले साल के खिंचाव के पश्चात् ये भराव उस समय होता है। पांच से सात साल तक बच्चा फिर तेजी से बढ़ता है। ये खिंचाव का दूसरा समय है जिसके पश्चात् सात से बारह वर्ष तक फिर भराव के लिए होते हैं। इसके पश्चात् एक बार फिर खिंचाव होता है और इसी से सम्बन्धित एक भराव का दौर और आता है जो इसे उत्साह और उमंग वाला नवयुवक बना देता है।) संक्षेप में प्रकृति अपना कार्य खूब ठोक बजा कर करती है, इसलिए कि यही तो इसके खजानों का मालिक है और यही इसकी दुनिया का सरदार। गरीब प्रकृति

बहुत कुछ कर देती है मगर सब कुछ तो नहीं कर सकती। इस नन्हीं सी जान को दुनियां में—खुदा के खलीफा तक पहुँचाने में इसके मां-बाप रिश्तेदार और सारी इर्दगिर्द की इन्सानी दुनियां को भी बहुत कुछ करना होता है और प्रायः इसी भाग में कसर हो जाती है और आदमी के सुपुर्द अपने बच्चों की शिक्षा और देखभाल का जो काम है इसमें वह ऐसी-ऐसी मूर्खताएँ कर गुजरता है कि अक्सर प्रकृति की इच्छा पूरी नहीं हो पाती और इच्छा पूरी होनी दूर रही हमारे देश में तो लाखों बच्चों को तो जन्म के साल भर के अन्दर-अन्दर ही इस संसार ही से विदा होना पड़ता है और लाखों को पांच वर्ष तक पहुँचने से पहले-पहले हो। जो बच रहते हैं वो पिता की बुद्धिमानी, या अम्मा के लाड़ प्यार का अभ्यास-पट बनते हैं। मस्तिष्क में तरह-तरह की ग्रन्थियाँ डाल दी जाती हैं जो उम्र भर उलझनें नहीं सुलझतीं। इस से भी कोई बच निकले तो पाठशालाओं में एक से एक बढ़कर अध्यापक पड़ा हुआ है, वो इन्हें मनुष्य बनाने के प्रयास में पशु से बदतर दर्जे पर पहुँचा देता है और जब ये संसार में ईश्वर से विरोध कर कारोबार संभालने निकलते हैं तो तन ठीक होता है और न मन, न उत्साह, न उमंग, न जोश, न निश्चय, भयभीत सहमे-सहमे, हर चीज में भय, हर चीज पर सन्देह, न किसी से लगाव, न किसी पर भरोसा, न काम का शौक, न तफरीह का सलीका। कुछ करते भी हैं तो गुलामों की तरह, सजा के डर से या इनाम के लालच से। न अपने आसपास की वास्तविकता की जानकारी, न इन में मिलने की योग्यता, खयाली पुलाव पकाते हैं और हवाई मंसूबे गाँठते हैं जिन्हें पग-पग पर जिन्दगी की कठिन वास्तविकता टुकड़े-टुकड़े कर देती है। ये जिन्दगी को बेकार जानने लगते हैं और जिन्दगी इन से बेजार रहती है। दुनियां इनके लिए कारागृह और ये दुनियां के लिए अभिशाप !

इस बदहाली को और बड़ों के हस्तक्षेप से छोटों की जिन्दगी कड़वी और बेअसर होते देखकर कुछ नेक दिल लोग ही ये तक कहने लगे है कि बच्चों की शिक्षा के लिए कुछ करना ही न चाहिये, इन्हें अपने हाल पर छोड़ दो तो कुछ न कुछ हो कर रहेंगे। इस खयाल में कुछ तो मां-बाप और अध्यापकों की लापरवाही और त्रुटियों पर उचित क्रोध की मिलावट है मगर साथ ही स्वतन्त्रता के दर्शन की दृष्टि को चकाचौंध करने वाली चमक का भी थोड़ा बहुत मेल है, जिसकी तेज रोशनी कभी-कभी अँधेरे में रहने वालों की रही सही दृष्टि को भी समाप्त कर डालती है और ये बेचारे बेसमझे शब्दों के गोरखधन्धे में फंस कर न इधर के रहते हैं न उधर के। बच्चों पर तरह-तरह की रुकावटों के बुरे-भले को देख कर बहुत से अच्छे समझदार लोगों ने इन रुकावटों को कम करने की ओर ध्यान आकर्षित किया है जो अपने स्थान पर उचित बात है, परन्तु इसमे हमारे यहां के खयालों के उचक्के न जाने क्या समझ लेते हैं और लगते हैं कहने कि बच्चों को उन के हाल पर छोड़ दो। इसलिए निवेदन ये है कि हां छोड़ सकें तो अवश्य छोड़ दीजिए मगर आप को नहीं एक तन्दुरुस्त बच्चे को जो सारी शक्तियां ले कर दुनियां में आया हो। यही कोई बीस बाइस हजार साल की उम्र पाते-पाते सभ्यता की उस श्रेणी पर पहुँच जायेगा जिस पर कुशलता से आप हैं कि अपनी वर्तमान स्थिति पर पहुँचने के लिए कहते हैं कि इन्सानियत को कमबख्त इतना समय लगा है।

इस लम्बे समय पर मुझे एक किस्सा याद आया। कहिये तो सुना दूँ ? मगर हाँ, आप इस समय तो मुझ से फर्मा नहीं सकते, सिर्फ सुन सकते है। खैर सुनिये। आप जानते हैं कि अमेरिका के लोग दुनिया के सारे नए धनवानों की तरह हर चीज की कीमत बहुत पूछा करते हैं।

एक अमेरिकन करोड़पति एक बार ऑक्सफोर्ड पहुँचे। कहते हैं कि ऑक्सफोर्ड के हरे लॉन बहुत ही अच्छे हैं। अमेरिकन करोड़पति साहब इन पर रीझ गये थे। फौरन जैसे किसी ने बटन दबा दिया हो, ये सवाल मुँह से निकला—"ऐसे लॉन कितने में तैयार हो जायेंगे ?" साथ जो प्रोफेसर साहब थे उन्होंने कहा कि "मैं तो इल्मुलइन्सान के विभाग का अध्यक्ष हूँ। इसके बारे में बिलकुल अजान हूँ। आप कहें तो माली को बुला दूँ, आप उससे दरियाफ्त फरमालें।" "बुलाइये" माली आया। करोड़पति साहब ने कहा, 'हम बिलकुल ऐसा ही लॉन अपने यहां चाहते हैं, कितने में तैयार हो जायगा ?" माली ने कहा, "साहब, इसमें कितने का क्या सवाल है ? कौड़ियों में तैयार होना है, कौड़ियों में ! जमीन तो आपके पास होगी ही, जरा अच्छी तरह बराबर कर लीजियेगा, उस पर घास जमा लीजियेगा। जब घास जरा बढ़ जाय तो उसे काट कर ऊपर से रोलर फेर दीजियेगा और बस यही कोई समझिये, पांच बरस करते रहियेगा, बस ऐसा लॉन तैयार हो जायगा।" हां तो अगर इसी तरह बच्चों को बिलकुल आजाद छोड़ कर कोई साहब ठीक से शिक्षा करना चाहें तो इन बच्चों को कोई बीस हजार साल तक जिन्दा रखने का उपाय करलें। हालात अनुकूल हुए और ईश्वर ने चाहा तो इस उम्र को पहुँचने पहुँचते इच्छानुसार फल निकल आयेगा। इस समय तक तो हमारा विचार यही है कि बच्चों को मदद की आवश्यकता है। उपदेशों की आवश्यकता है। सहानुभूति और परिश्रम की आवश्यकता है। समझने और समझाने की आवश्यकता है। इसमें सन्देह नहीं कि कार्य कठिन है पर केवल सहज काम ही तो करने के नहीं होते। पिछले दिनों बच्चे के शारीरिक लालन-पालन, उस की मस्तिष्क की उन्नति और प्रवृत्ति के सम्बन्ध में बहुत कुछ छानबीन हुई है, मगर माता-पिता, अध्यापक अपने काम के महत्व को समझें और सोचें कि इन्सान के थोड़े से ध्यान से दुनियां में कितना दुःख कम हो सकता है और कितनी खुशी बढ़ सकती है, तो वे अवश्य इस खोज का लाभ उठा कर अपना काम समझ-बूझ कर करेंगे।

इस समय इस खोज के वर्णन का अवसर नहीं है। दिल्ली ब्राडकास्टिंग स्टेशन से आप इस विषय पर कुछ न कुछ सुनते ही रहते हैं। विभिन्न आयु के बच्चों के स्वास्थ्य के लिए क्या उपाय करने चाहिए, इनके लिए भोजन कौन से उचित हैं, इनमें सोने-जगने, खाने-पीने, पेशाब-पाखाने के समय की पाबन्दी की आदतें किस तरह डालनी चाहिएँ। ये बातें शायद आप इससे पहले सुन चुके हैं। मै तो इस समय केवल उन्हीं गुत्थियों का जिक्र करता हूँ जो प्रायः माता-पिता और संरक्षक बेजाने अपने बच्चों के मस्तिष्क में डाल देते हैं और इन में भी बस कुछ मोटी-मोटी बातों का। इस सम्बन्ध में सब से अधिक याद रखने की बात यह है कि नन्हा बच्चा भी एक व्यक्तित्व रखता है। वह कोई बे जान चीज नहीं, खिलौना नहीं। जब लोग उसे गुड़िया से अधिक नहीं समझते हैं तो वह उसी समय से चुपचाप अपने लिए कोई उद्देश्य, कोई मंजिल निश्चित भी कर लेता है और उस तक पहुँचने की बराबर कोशिश करता है। सारी दुनियां को इस उद्देश्य की रोशनी में देखता है और अपने आस-पास के हालात को गलत समझ कर ये मकसद निश्चित कर लिया है तो सारी दुनियां ही को गलत समझना पड़ता है। अपने छोटे होने, कमजोर होने बड़े भाई से छोटे होने या चहेते भाई की बदसूरत बहन होने, मां-बाप के घृणित समझने—संक्षेप में तरह-तरह की कमियों का उसे एहसास होता है। ये एहसास उस के विचारों को कार्य क्षमता प्रदान करता है। वह अपनी हालत को सुधारने और अपनी हैसियत को उभारने में लग जाता है। कमी का एहसास और उसको पूरा करने की कोशिश ये दो चीजें उसकी जिन्दगी का केन्द्र होती हैं। इनमें गलती होती है तो सारी जिन्दगी गलत राह पर पड़ जाती है। मां बाप की तरफ

से शिक्षा की बुनियादी गलतियाँ ये होती हैं कि वे या तो बच्चे में कमी और घटियापन का एहसास, गैर जरूरी तरह से पैदा कर देते हैं या कमी पूरी करने की कोशिश में रुकावट बनकर उन्हें गैर-मामूली तौर पर उकसा कर गलत रास्ते पर जाने देते या डाल देते हैं। कमियों का सही एहसास हो और पूरा करने के उचित उपाय हों तो बच्चे की शिक्षा ठीक हो मगर इस में ज्यादती हुई और संतुलन बिगड़ा; उदाहरणार्थ माँ-बाप की बातचीत से, उनके कार्यों से उनकी सख्ती, बुरा-भला कहने से, अगर बच्चे में अपने घटिया और कम दर्जे होने का एहसास ज्यादा मजबूत हो जाये तो वह इस से बचने के नित नये उपाय करता है। आगे बढ़ना चाहता है, अच्छा बनना चाहता है। अपनी ओर ध्यान आकर्षित करना चाहता है, यह सब अपने स्थान पर ठीक है, लेकिन अगर उचित सीमाओं से बढ जाये तो उसी से बच्चे में द्वेश और जलन पैदा हो जाती है। ऐसे बच्चे अपने बराबर वालों की, भाई की, बहन की दूसरे बच्चों की बुराई चाहने लगते हैं। अपनी कदर बढ़ाने के लिए दूसरों की चुगलियां खाते हैं। उन पर झूठे आरोपण करते हैं। उनके भेदों को बताते हैं और कुछ रूपों में तो यह प्रवत्ति अपराधी रंग अख्तयार कर लेती है और नन्हे-नन्हे बच्चे दूसरे बच्चों को शारीरिक हानि पहुँचाने से भी नहीं चूकते हैं। कभी-कभी यह होता है कि माता-पिता और सम्बन्धी बच्चे के आगे बढ़ने की इच्छा को अनुचित ढंग पर उभार कर उसके उत्साह की तीव्रता को और दूसरों से बढ़चढ़ कर रहने की इच्छा को रोग की श्रेणी तक पहुँचा देते हैं। अपने बच्चे को कक्षा की परीक्षा में प्रथम नम्बर पर देखने की व्यर्थ इच्छा कितने भले मानुसों को सताती है। इस बनावटी उत्साह से बच्चे की मानसिक दशा में एक तनाव पैदा हो जाता है जिसको वह अधिक समय तक बरदाश्त नहीं कर सकता है। इस एकांकी उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए जिस पर बड़ों ने ध्यान जमा दिया है, और जिसमें सफलता से उनको भारी प्रशंसा मिल सकती है, यह बच्चा अपनी सारी शक्ति उसी पर व्यय करता है। परीक्षा में प्रथम आता है। बस पुस्तकें हैं और वह है। न खेल की सुद न व्यायाम का ध्यान। सारा संसार तज दिया जाता है, कुछ दिन दूसरों की आशाओं को पूरा करने में लगा रहता है। मगर उनकी बोझिल और एकतरफा आशाओं का बोझ उसके कमजोर कन्धों के लिये आवश्यकता से अधिक साबित होता है। लेकिन दूसरों से वाह-वाही पाने का चस्का पड़ जाता है। इसी लिए छोटी-छोटी काल्पनिक बातों में सफलता प्राप्त करके उनका प्रचार करता है। जब यह शक्ति भी समाप्त हो चुकती है तो कई बार बिल्कुल नई ख्याली मार्ग अख़्तयार करता है। वगैर लोगों को अपनी ओर आकर्षित किये उसे चैन नहीं आता है। सोचता है। बदनाम अगर होंगे, तो क्या नाम न होगा। घर से गायब रहने लगता है। पाठशाला से भागता है, मार पीट होती है। उसे भी प्रसिद्धता का साधन समझता है। उस जैसी कठिनाई में फँसे हुए और भी लड़के होते हैं। उनके गिरोह में जा मिलता है। उनकी सरदारी के लिये मुजरिमाना कार्यवाहियों तक उतर आता है। पर यह क्यों? इसलिए कि पिताजी को बड़ी इच्छा थी कि बच्चा प्रथम नम्बर पास हो। मजा यह है कि प्रायः अध्यापकों, डाक्टरों, वकीलों संक्षेप में शिक्षित पिताओं के बच्चे कठिनाइयों में फंसे होते हैं। संम्भव है इसीलिए समय के इन प्रकाण्ड पण्डितों को अव्वल नम्बर पास होने वाले पुत्र का बाप होना अधिक पसंद होता है।

इसके बिल्कुल विपरीत यह गलती माता-पिता बड़ों से यह होती है कि वे बच्चे को तुच्छ और नीचे दर्जे का समझते हैं। अपना बड़प्पन जताने के लिए बेचारा बच्चा ही मिलता है। "मूर्ख है" "गधा है, गधा" निकम्मा है, "किसी काम का नहीं है"। गरज बात-बात पर बच्चे पर बरस पड़ते हैं। उसे

लज्जित करते हैं। सब के सामने उसके ऐब गिनवाते हैं। उसे अपमानित करते हैं। यही बच्चे जिन पर बड़ों की यह तवज्जे होती है बड़े होकर किसी चीज को अच्छा नहीं समझते हैं। हर एक को उकसाते हैं। न किसी की प्रसंशा करते हैं न सुन ही सकते हैं। बचपन में उन्हें अपमानित किया गया था। अब वे इसका बदला लेते हैं और सबको बुरा समझते हैं। दुनिया से इनकी अनबन रहती है। बच्चे को बचपन में अपमानित और निराश करके बुजुर्ग उसकी सारी जिन्दगी को कड़वा बना सकते हैं।

बचपन में कुछ अवसर ऐसे आते हैं कि बच्चे को अपनी कमियों का, दूसरों से कम होने का बड़ा ख्याल पैदा होता है। यही वक्त बच्चे को सहारा देने का होता है। इस समय जरा सी त्रुटि या लापरवाही से उसके जीवन को प्रायः न पूरी हो सकने वाली हानि पहुँच सकती है। इन अवसरों का जिक्र भविष्य में किसी अवसर पर करूँगा।

मेरी ये बातें सुनकर शायद कोई साहब फरमायें कि यह अजब बात है। बच्चे का साहस बढ़ाईये तो आप अप्रसन्न, उसे बुरा कहिये तो आप ना खुश; आप भी खूब आदमी हैं। तो क्या कीजिये? मामला कुछ यूँही है? न आवश्यकता से अधिक प्रसन्नता बच्चे के लिए अच्छी है। न बेजा लज्जित करना। न इतना गिराइये कि फिर कदम ही न उठा सके न इतना चढ़ाइये कि जमीन पर कदम न रखे। संक्षिप्त सी बात है। शर्त यह है कि दिमाग में बैठ जाये। बच्चे को ईश्वर का सेवक समझिये। न वह आपकी चीज है न आपका खिलौना, आपके पास ईश्वर और इन्सानियत की अमानत है। इसमें प्रकृति ने जो मूल प्रवृतियां रखी हैं उन्हें न बहुत उकसा कर बहुत खराब कीजिये न बहुत दबाकर और हां इस बात का दूसरा पहलू भी याद रहे कि अगर बच्चा आपका खिलौना नहीं है तो आप भी बच्चे का खिलौना नहीं हैं, आप भी भगवान् के सेवक हैं। बस जरा ज्यादा अनुभवी हैं। न आप उस पर अत्याचार करें न वह आप पर, न आप उससे खेलें न वह आप से। दोनों में एक-दूसरे पर भरोसा हो प्रेम हो और भगवान् करे तो आप जरा थोड़ा सा अधिक समझ लें, बस! ●

गलत हाथों में अस्त्र

नासमझ तथा सम्पूर्ण सत्ता के हाथ में शिक्षा एक ऐसा अस्त्र है जो वास्तविक माननीय विकास के मार्ग में भारी खतरे डाल सकता है। ऐसे अधिकार से किस तरह छुटकारा पाया जाए यह वास्तव में केवल अथवा प्रधान रूप से शैक्षिक प्रश्न नहीं है। यह तो अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा विशाल एक सामाजिक एवं राजनीतिक चुनाव का प्रश्न है।

—डा० जाकिर हुसैन

बच्चों की शिक्षा—२

[८ अप्रैल, १९३६ को डा० जाकिर हुसैन द्वारा ऑल इण्डिया रेडियो दिल्ली से प्रसारित वार्ता]

कोई तीन सप्ताह होते हैं मैने बच्चों की शिक्षा पर आपसे बातें की थीं। बातें यों ही की थीं और समय भी काफी व्यतीत हो गया। मुझे यकीन है कि आप सब कुछ भूल गये होंगे और मै आज भी वही कथा फिर दोहराऊँ तो शायद ही कोई पकड़ पाये। मगर पास आगा साहब खड़े हैं। क्यों इसकी इजाजत देने लगे। इसलिए कुछ और कहना पड़ेगा। मैंने उस बार बताया था कि (बच्चे के मानसिक जीवन में दो चीजों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। एक इसके उस अनुभव करने पर कि वह औरों से कम है और दूसरे उस कमी को दूर करने के लिए इसके प्रयासों पर। इन्हीं दो चीजों से इसके मानसिक जीवन का ढांचा बनता है। इन्हीं में उसे सहारे और पथ-प्रदर्शन की आवश्यकता होती है और इस में माता-पिता से त्रुटियाँ हो जाती हैं।) आज मैं यह बताना चाहता हूँ कि ये त्रुटियाँ साधारणतया विशेष अवसरों पर होती हैं। माता-पिता इन से परिचित हो जायँ तो शायद इन त्रुटियों से बचने में सरलता हो।

(सब से प्रथम तो उन त्रुटियों से बचने की आवश्यकता है जो माता-पिता इस कारण से करते हैं कि उन्हें या तो अपने बच्चे के शारीरिक गुणों की जानकारी नहीं होती, या जानकारी होती है तो वे उधर ध्यान नहीं देते और अभाव के कारण से बच्चे के सामने जो कठिनाइयां आती हैं उनका जरा ख्याल नहीं करते हैं। कितने बच्चे हैं जो आँखो की खराबियों की वजह से कभी बिना तकलीफ पढ़-लिख नहीं सकते हैं। किसी को दोहरा दीखता है। किसी के पढने मे सिर में

दर्द हो उठता है। ये बच्चे पढ़ने-लिखने में औरों से पीछे रहते हैं, तो बजाय इसके कि उनकी असली कठिनाइयों को मिटाया जाय, उन्हें बुरा-भला कहा जाता है। दण्ड दिया जाता है। बच्चा अपने दोष को समझता नहीं। दण्ड को अत्याचार जानता है और अपने बस भर इससे बचने का उपाय निकालता है या अपनी अयोग्यता का यकीन करके परिश्रम और ध्यान से हाथ उठा लेता है। आप को सुन कर आश्चर्य होगा कि बच्चों में बहुत बड़ी संख्या बाएं हाथ से लिखने वालों की होती है। आप का जी अगर आजमाने को चाहे तो बच्चों की किसी कक्षा में कहिये कि अपने पंजे में पंजा डालो। जिस बच्चे का बायां अंगूठा सीधे अंगूठे के ऊपर हो वह बाएं हाथ से कार्य करने वाला ही होता है। यह तरीका सौ फी सदी सच्चा नहीं, लेकिन करीब-करीब ठीक नतीजे बना सकता है। इन बेशुमार बाएं हाथ से लिखने वाले बच्चों को भी रहना-सहना है। बाएं हाथ से लिखने वाले इस दुनियां में गुजर करने को तो करते ही हैं, लेकिन उन की कठिनाई का कुछ तो अन्दाजा करना चाहिये और उनसे कुछ तो सहानुभूति रखना आवश्यक है। अगर आप हिंदुस्तान से, जहां सड़क पर बाएं हाथ को बचते हैं, जर्मनी जायें जहां दाहिने हाथ को बचना होता है तो आप को इन गरीब बच्चों की कठिनाई का कुछ अन्दाजा होगा। आपको कदम-कदम पर किसी न किसी से क्षमा याचना करनी पड़ेगी, या डाँट सुननी होगी। अगर आप खुद अपनी मोटर कार चला रहे हों तो खुदा जाने आप पर क्या गुजरे! मगर इस से बहुत ज्यादा मुसीबत है इन बाएं हाथ से काम करने वाले बच्चों की। इन्हें दाहिने हाथ से काम करने वाली दुनियां में रहना पड़ता है, सीधे हाथ से लिखना सिखाया जाता है। जब अच्छा नहीं लिखते तब बुरा-भला कहा जाता है। क्या आश्चर्य है कि बहुत से भले मनुष्यों का लेख इतना बुरा होता है कि लिखावट भी कुछ लोगों के भाषण की तरह भेदों को छुपाने का साधन बन जाती है। यह नहीं कि ये बच्चे सीधे हाथ से लिखने का पूरा प्रयास लगातार नहीं करते। यों तो कुछ चित्रकार जो सीधे हाथ से काम करते थे, बाएं हाथ वाले थे। मगर आवश्यकता इसकी है कि कठिनाइयों को समझ कर बच्चों का उत्साहवर्द्धन किया जाय। उल्टी डाँट से उन्हें जिद्दी या निरुत्साह होने का सबक न दिया जाय। यही हाल आँख, कान के बहुत से दोषों का है। जन्म दोष के बाद बच्चे की भविष्य में मस्तिष्क की देखभाल के लिए कठिनाई का एक वह समय होता है, जब उसका दूध छुड़ाते हैं। साधारणतया जिस तरह धोका देकर डरा-धमका कर दूध छुड़ाते हैं, मां उस समय बच्चे से छुपी हुई, अलग-अलग रहती है। वह बच्चों में माताओं की तरफ से ऐसी बेएतबारी करने का सामान होता है जो अक्सर सारी उम्र साथ नहीं छोड़ता। मां की गोद और मां का दूध यही तो बच्चे के सारे आनन्द और प्रसन्नता का संसार था। अब कुछ चालों से उनसे उसे वंचित किया जाता है तो जिस पर बच्चा सबसे ज्यादा भरोसा करता था उस पर ही संदेह करने लगता है। दूध छुड़ाने के साथ यह आवश्यक नहीं कि मां बच्चे से अलग-अलग दूर-दूर भी रहे और उसे अपनी मुहब्बत से और अपनी गोद की आत्म-वर्द्धक गर्मी से भी वंचित कर दे। इस समय में तो बच्चे से और भी ज्यादा, और अधिक प्रेम करने की आवश्यकता है ताकि बच्चा अपने जीवन के इस पहले परिवर्तनशील अनुभव के प्रभाव पर से आसानी के साथ गुजर सके।

एक और कठिनाई का समय वह होता है जब बच्चा बोलना प्रारम्भ करता है। बोलना सामाजिक क्रिया है और बोलने की योग्यता समाज के अनुभवों से विकसित होती है, जो बच्चे दूसरों से बेफिक्र मिलते हैं वे जल्द बोलना सीखते हैं। जो ठिठके-ठिठके अकेले रहते हैं वे देर में बोलना सीखते हैं। बच्चों का

यह ठिठकना और झिझकना बे वजह नहीं होता है। इसकी वजह भी भरोसे की कमी होती है। इसलिए जरूरत है कि उन्हें जमाने में मिलने-जुलने का अवसर दिया जाय, उनका उत्साहवर्द्धन किया जाय और उनमें बे सहारे रहने की आदत डाली जाये। खेल-कूद और सरल-सरल काम करने के अवसर निकाले जायें ताकि उनमें सफलता से धैर्य बने और अपने पर भरोसा बढ़े तथा अपने घटिया रहने के विचार और औरों से कम रहने के विचार पर काबू पा सकें। कुछ मां-बाप, विशेषकर मालदार अपने बच्चों के ऊपर इतने नौकर-चाकर नियुक्त कर देते हैं और लाड़-प्यार में वे इतना अपव्यय करते हैं, जब कि गरीब को अपनी आवश्यकताओं तक के प्रकट करने का अवसर नहीं होता। प्रकट करने से पूर्व ही कोई न कोई उसे चूसने पर तैयार मिलता है। इसी कारण से वह अक्सर बहुत देर में बोलना सीखता है और यह है भी वाजिब। बदायूं के वह मशहूर लल्लाह जो खासी बड़ी उम्र तक अपनी अन्ना की अंगुली थामे बाहर निकलते थे, इन्हीं मालदार अभागों में से थे। यही बात थी कि बड़े होने पर भी तुतलाते थे। किसी ने पूछा "मियां साहबजादे क्या पढ़ते हो?" तो शर्माये तथा चेहरा लाल हो गया। धाय के लहंगे से मुंह आधा छुपा लिया और बोले, "अन्ना टू ही टह दे के लुल टू लल पढ़ता हूँ।"

हकलाने की आदत भी अक्सर बिना किसी अंग दोष के बचपन में इसी कारण से पैदा हो जाती है कि दूसरों से सम्बन्ध पैदा करने में किसी कमी का विचार हो। दूसरों के फटकारने से, मां-बाप के बुरा कहने से झिझक पैदा हो जाती है। यही कारण है कि वार्तालाप के साधन से दूसरों से सम्बन्ध पैदा करने में कोई जटिलता पैदा हो जाती है। उदाहरणार्थ किसी लिखी हुई या याद की हुई कविता को पढ़ना हो और इस प्रकार खुद सोचना न हो, जिससे बात की जाय उसकी तरफ से ध्यान हटा लेना सम्भव हो, तो हकलाने में बहुत कमी हो जाती है। प्रायः हकलाने वाले क्रोध में बिल्कुल नहीं हकलाते, खूब खरी-खरी सुनाते हैं। इश्क और मुहब्बत के एकान्त स्थान में भी कहते हैं हकलाहट जाती रहती है। लेकिन दूसरों से सम्बन्ध स्थापित करने के अतिरिक्त एक और कारण हकलाहट के पड़ जाने का यह होता है कि बच्चा सदा दूसरों का ध्यान अपनी तरफ खींचना चाहता है। जो बच्चे आरम्भ से साफ बोलते हैं उनकी तरफ कोई ध्यान नहीं देता, पर जिन बच्चों की बोली में कोई दोष होता है उनकी ओर सब ध्यान देने लगते है, उन्हें सब छेड़ते हैं। उन पर सब हँसते हैं। उनकी नकल करते हैं। लाचार यह बच्चा भी अपनी बोली की तरफ ज्यादा तवज्जे करता है और इसकी वजह से बोलना और कठिन हो जाता है। बहुत से काम जिन्हें बच्चा आरम्भ के तौर पर आसानी से करता है, अगर इनकी तरफ ध्यान हो जाये तो इनका करना मुश्किल हो जाता है।

इस पर मुझे एक दोस्त का किस्सा याद आया। वह नार्वे के रहने वाले थे, बहुत बूढ़े कोई ७०-७५ वर्ष की उम्र थी। उनका कई वर्ष बीते स्वर्गवास हो गया। उनकी याद किस कारण आई? उन की दाढ़ी बड़ी शानदार थी। ऐसी वैसी नहीं, पूरी सूंडी तक और निहायत घनी, सफेद जैसे बुर्राक। एक दिन रेल में बैठे जा रहे थे। सामने एक महिला बैठी थीं और उनकी आठ वर्ष की बच्ची साथ थी। यह बच्ची कई मिनट तक हर पहलू से उनकी तरफ देखती रही। फिर माँ के कान में कुछ कहा। माँ मुस्करा कर चुप हो रही। उसने फिर माँ से कहा, "पूँछू?" माँ चुप हो रही। फिर कहा, "पूँछू"? तो माँ ने कहा, "पूछ ले।" बच्ची हर नीलज़ के पास अदब से आकर खड़ी हुई और कहा, "बाबा एक बात पूँछू?" हर नीलजू ने प्यार से

उसके सिर पर हाथ फेरा और कहा "बेटी, पूछो"। बच्ची बोली, "बाबा, तुम रात को सोते समय यह दाढ़ी लिहाफ के अन्दर रखते थे या बाहर?" गरीब बाबा ने बहुत सोचा मगर समझ में कोई उत्तर नहीं आया कि क्या जवाब दें। आदमी सच्चे थे कह दिया कि "बेटी, याद नहीं आता।" खुद कहते थे कि उस दिन दिन भर यही ध्यान रहा। रात हुई, सोने लेटा तो दाढ़ी पहले लिहाफ के अन्दर रखी। जी घबराया, बाहर रखी। फिर बेचैनी सी रही। इसे अन्दर बाहर करते तीन पहर रात बीत गई। आखिर उठ कर एक सोफे पर बैठा। पैरों पर कम्बल डाल लिया तो रात बीती।

हाँ तो हकले बच्चे अपनी बोली की तरफ ध्यान देने लगते हैं तो बोलना और भी मुश्किल हो जाता है और कमजोर या किसी कमी का विचार रखने वाले बच्चे को अपनी इस कमजोरी में बड़ों को अपनी ओर आकर्षित करने का एक और साधन हाथ आ जाता है। इसी प्रकार कमी का विचार रखने वाले बच्चे जब कोई ठीक तरीके अपनी कमियों को छोड़ने के नहीं अख्त्यार कर पाते तो कुछ कमजोरों की राजनीति से काम लेते हैं तथा औरों का ध्यान उनकी ओर न हो इसका उपाय सोचते हैं। उदाहरणार्थ यह कि काम में सुस्ती करने लगते हैं। बीमार बन-बन कर पड़ जाते हैं। खाना नहीं खाते और कुछ नहीं बन पड़ता तो वे बिस्तर पर पेशाब कर देते हैं। विशेष कर जिस भोजन को मां खिलाना चाहती है उसे इन्कार होता है। मां की ओर से खुशामद होती है। फिर धमकियां, फिर ठुकाई। उस का उद्देश्य सब से हसिल होता है। औरों का ध्यान आकर्षित कर लिया। धीरे-धीरे भोजन की तरफ से तबियत में एक रुक सी पैदा हो जाती है और ये बच्चे कभी-कभी वास्तव में बीमार हो जाते हैं। बिस्तर पर पेशाब कर देने की वजह भी साधारणतया कोई अंग दोष की नहीं होती। बच्चे का मसाना और आंतें ठीक होती हैं। यह तो मां-बाप या उस्ताद का ध्यान आकर्षित करने की एक चाल होती है। इस पर दण्ड देने से जिद्द या ध्यान आकर्षित करने की सफलता से एक मूर्खता की बात पैदा हो जाती है जिसका अमल रफ्ता-रफ्ता आदत बन जाती है। अगर इन हालतों में डाक्टरी इलाज के स्थान पर मानसिक इलाज किया जाय यानी बच्चे का ध्यान आकर्षित करके किसी और तरह संन्तोष करा दिया जाय, उसका भरोसा हासिल किया जाय इसका उत्साहवर्द्धन किया जाय तो अवश्य सफलता होगी। इससे विपरीत बच्चे को औरों के सामने शरमाना बड़ी गलती है। इस से बच्चे में अपने ऊपर भरोसा और कम होता है और मर्ज घटने की बजाय बढ़ता है।

फिर बच्चे की शिक्षा के लिए एक कठिन समस्या दूसरे भाई-बहन के पैदा होने के समय उपस्थित होती है। जिस परिवार में बहुत से बच्चे हों वहां सब से बड़ा बच्चा एक समय तक अकेला बच्चा होता है। दूसरे बच्चों को यह सम्मान प्राप्त नहीं होता। जब पीठ का बहन-भाई पैदा होता है तो इस बड़े भाई को ऐसा लगता है कि इस नवजन्म ने मुझे सिंहासन से उतार दिया और इसमें माता पिता ने इस नये आने वाले की मदद की और मुझ से बेवफाई बरती। इस पर माँ-बाप से और नव आगतुक से बच्चा अप्रसन्न होता है तो क्या बेजा करता है? और अपने खोए हुए राज्य को दुबारा हासिल करने के लिए प्रयास करता है तो क्या आश्चर्य?

मैं एक परिवार को जानता हूँ। इस में दो बच्चे है। एक भाई है और एक बहन। बहन ६ वर्ष छोटी है। भाई की उम्र ११ वर्ष की है। बाप इन्शोरेन्स कम्पनी के ऐजेन्ट है। हमेशा दौरे में रहते हैं। शादी के बाद ४ वर्ष बे-औलाद गुजरे। बड़ी प्रार्थना और मानताओं, तावीज, गण्डे, इलाज, मानताओं

के बाद बच्चा पैदा हुआ। जाहिर है कि माँ की आंखों का तारा है। उसने जो चाहा वही हुआ। बच्चे की माँ लिखी-पढ़ी होशियार बीवी है। बच्चे की मामूली शिक्षा अच्छी हुई थी। तीसरे दर्जे में पाठशाला में भी बड़े चाव से पढ़ने जाता था। सब परीक्षाओं में पास होता था। इधर दो वर्ष से हाल ही कुछ और है। मां को तरह-तरह से दिक करता है। बाल खेंचता है। मेहमानों मे विशेष कर असभ्यता करता है। कपड़े फाड़ता है। मना रहता है। अध्यापक बराबर शिकायत घर लिख-लिख कर भेजता है। आप समझते हैं कि कारण क्या है? बात यह है कि बहिन ने इस को जिन्दगी का सांचा बदल डाला। उस का अपना ही उस को अच्छा नहो लगा था। जब वह तीन साल की हुई तो अपने मीठे-मीठे बोलों मे माँ का दिल लुभाने लगी। यह मदरसे में रहता और वह माँ की गोद में। बाप भी दौरे से आते तो उसी से बातें ज्यादा करते। यह सहन करने योग्य न था। अब यह बहन उसे कैसे समझता। उसे प्रतिद्वन्द्वी जानता है। मुकाबले का केन्द्र समझता है। इसका सिंहासन छिन गया। आप चाहते हैं कि इसका उपाय न करे? इसी सिंहासन को फिर से पाने के लिए बचपनी उपाय करता है। यह प्रयास बेशक बचपने के हैं। आप का जी चाहे हँसें मगर इसके दिल से पूछिये इसे यही उपाय आता है। इसी असभ्यता से मां बाप को, बेवफाओं को, अपनी तरफ ध्यान देने के लिये आकर्षित करता है। अध्यापकों को खराब रिपोर्टों से खुश होता है। इसलिए कि एक बार किसी अध्यापक ने कह दिया था कि तुम पढ़ते-लिखते नहीं हो। हम तुम्हारा नाम काट देंगे। तुम घर पर ही पढ़ा करो।

इससे आशा हो गई है कि पाठशाला से छुटकारा पा कर घर रह सकूँगा तो दिन भर वह प्रतिद्वन्द्वी मां पर कब्जा न कर सकेगा। संक्षेप यह है कि इस बच्चे ने अपनी सारी जिन्दगी इसी एक ख्याल पर आश्रित कर ली है। लेकिन क्या यह आवश्यक और जरूरी है? अगर मां बड़े बच्चे को छोटे के पैदा होने से पहले इस अवसर के लिए तैयार कर ले तो इसमें बहुत कुछ कमी हो सकती है। फिर प्रतिद्वन्द्विता का ख्याल रहे तो अपने इस वंचित रहने के विचार को इस प्रकार अनुभव न करें। समझदार माताओं के लिये यह असम्भव न होना चाहिये कि वे इस बड़े बच्चे के लिए इस जन्म अवसर को शत्रु के जन्म की घटना की जगह वास्तविक भाई, दोस्त, साथी की आमद का मुबारक अवसर बना दे।

अधिक बच्चे वाले परिवारों में इस बात से भी अमूमन बच्चों के मस्तिष्क पर बुरा असर पड़ता है कि उन का पद इन बच्चों में क्या है। छोटा अमूमन सबसे तेज होता है या बिल्कुल निकम्मा। वजह साफ है। यह सब से कम होता है। इसलिए सब से बढ़ना चाहता है। अगर होशियारी है और वातावरण अनुकूल है तो तेजी से बढ़ता है और सब से आगे बाजी मार लेता है। अगर शक्तियां उत्साह का साथ नहीं देतीं तो बिल्कुल सहम कर निराशा से कंधा डाल देता है। सब से छोटे बच्चे के लिए यह भय भी है कि कुछ न हो और यह भी सम्भव है कि सब कुछ हो जाये। इसके मुकाबले में सब से बड़ा बच्चा शक्ति का पुजारी, जबरदस्ती को मानने वाला, शासन और कानून का साथी होता है। इसलिए कि उसने सम्मान का आनन्द लूटा है और जब दूसरे बच्चों के जन्म ने उस से सम्मान को छीना तो वह उस समय से उसे और भी मूल्यवान समझने लगा। माँ-बाप अगर इन अवसरों पर जिन का जिक्र मैंने किया है, जरा होशियारी से काम लें तो बच्चे की जिन्दगी में बहुत से पेच न पड़ने पायें। जरूरत है मुहब्बत के साथ थोड़ी समझ और थोड़े से इल्म की और हाँ, सब्र की। मुहब्बत तो कहते हैं कि माँ-बाप को बच्चे से होती ही है। मगर ये आखरी तीन चीजें कम मिलती है। ●

बच्चों की शिक्षा–(३)

[२६ अप्रैल १९३६ को डा० जाकिर हुसैन द्वारा ग्रॉल इण्डिया रेडियो से प्रसारित वार्ता]

आप को याद हो या न हो इससे पहले "बच्चों की शिक्षा" पर आपसे दो बार बातें कर चुका हूं, रेडियो का प्रबन्ध कुछ ऐसा है कि बस आदमी अपनी सुनाता है। दूसरे की नहीं सुनता। मगर अभी अल्लाह रखे डाक का महकमा सलामत है। इसलिए यहाँ से १५ मिनिट बातें करके जाइये तो यह नहीं कि बात आई-गई हुई। तीसरे ही दिन से खत आना शुरू हो जाते हैं। और अजब-अजब, भाँति-भाँति के, बहुत से झूठ-मूठ की प्रशंसा लिख भेजते हैं। कुछ किसी छोटी सी बात का जिक्र लिख भेजते है। उदाहरणार्थ दो शब्द आपने ऐसे बोल दिये जो इनकी समझ में नहीं आये। कई रुष्ट भी होते हैं। बहुत से लिखते हैं कि अब की बार यह बात अवश्य कहियेगा, यह बात जरूर ही बताइयेगा। और हाँ, यहाँ तक कि चाहें तो हमारा नाम भी ले लीजियेगा। तो जनाब सुनिये। हजरत, आपसे अर्ज है कि जिन्होंने ये खत लिखे थे इन सबका जवाब देना तो मेरे बस की बात नहीं। प्रशंसा करने वालों का धन्यवाद। रुष्ट होने वाले साहब का भी धन्यवाद। यह मुझे निश्चय है या समझिये कि मैं देख रहा हूँ कि इनमें से एक साहब तो इस वक्त भी अपने रिसीवर के पास बैठे हैं। इस की एक घुण्डी को घुमा–घुमा कर मेरी आवाज को, जो पहले ही से बहुत अच्छी नहीं, और खराब कर रहे हैं और चाहते हैं कि जो शब्द इनके समझ में नहीं आये वह कम से कम बहुत जोर से तो बोल ही दिया जाये। अलीगढ़ के प्रसिद्ध अध्यापक मौलवी अल्लाह हुसैन साहब फरमाया करते थे कि भाई 'कुरात' का फन अब खत्म हो गया। मेरे स्वर्गीय अध्यापक इसके आखरी जानने वालो में से

थे। फरमाया करते थे कि अगर "क़" का शुद्ध उच्चारण मटके के अन्दर कर दूं तो मटका फट जाय ! तो जनाब बटन घुमाने वाले साहब, आप से निवेदन है कि मैं तो अपने देश के लोगों से सीधी-सादी भाषा बोलता हूँ। इसमें एक 'क़ाफ' कहीं-कहीं आ जाता है तो इसे खराब नहीं समझना। न आपको ऐसा समझना चाहिये। मेरा तो उच्चारण भी हिन्दी होगा, मगर फिर भी किसी 'क़ाफ' का उच्चारण कुछ भी सही हो गया तो आपके सैट का वाल्व तो फट ही जायेगा। बस बात सुनिये और एक-एक लफ्ज़ के पीछे न पड़िये। भगवान ने चाहा तो आप की समझ में भी आ जायेगा। हाँ, जिन साहबों ने राय भेजी है उनका सबसे ज्यादा शुक्रिया। वे अब सुनें, उनकी रायों पर बहुत कुछ अमल किया गया है। चाहे इसमें वह हैदराबाद वाले साहब खुश हों या झांसी वाले दोस्त, बम्बई वाले भाई या ढाके वाले बुजुर्ग कि हमारी वाली राय पर अमल हो रहा है। सच यह है कि सब सच पर है। और खुद का भी यही कहने का इरादा था। यानी क्या ? लीजिये, सुनिये।

महत्वपूर्ण मोड़

मैंने पिछली बातचीत में यह बताया था कि बच्चे की शुरू की जिन्दगी में कुछ खास-खास वक्त ऐसे होते हैं कि जब उससे अपने आस-पास के ख्यालात या इर्द-गिर्द के लोगों के समझने में चूक हो जाती है और वह बेचारा तो इसे अपनी भूल जानता ही नहीं इसलिए इस पर अपने जीवन की सारी इमारत उठाये चला जाता है। बुनियाद की ईंट की टेढ़ ऊपर तक जाती है। और यह हमेशा उसको भुगतनी है। उदाहरणार्थ मैंने बताया था कि जब बच्चे का दूध छुड़ाते हैं, जब बच्चा कुछ बातें करने लगता है, जब किसी सख्त बीमारी से उठता है, जब कोई भाई-बहन पैदा होता है, आदि। इन्हीं कठिन आपत्तियों में से पहले-पहल पाठशाला जाने का समय भी है (बच्चा जब पाठशाला जाता है तो यूं समझिये की नई दुनिया में दाखिल होता है) जिन्दगी की सड़क के वे मोड़ जहां बड़ी होशियारी और समझ-बूझ की जरूरत है और जहाँ टकरा कर नुकसान उठा जाने का बड़ा डर है, इनमें से एक सख्त मोड़ पाठशाला भी है (जिस तरह दूसरे किसी मोड़ के लिए बच्चे को तैयार करके उसकी मुश्किल को समझ कर खतरे को बहुत कुछ बटाया जा सकता है, उसी तरह इस मोड़ यानी पाठशाला के लिए भी बच्चे को तैयार किया जा सकता है। यदि पहिले से बच्चे को दूसरों से मिलने-जुलने की आदत हो, अगर वह पहले से अपने ऊपर भरोसा करके आप अपना थोड़ा बहुत काम करना सीख चुका हो, अगर अध्यापकों के पास जाने के पहले माता-पिता के स्नेह और ध्यान में अपने भाई-बहन को सम्मिलित करना जान गया हो और इन से उसका मन न उठ गया हो तो शायद पाठशाला का संसार उसे इतना अनोखा न जान पड़े जितना कि प्रायः लगता है) परन्तु होता यह है कि इस प्रकार की तैयारी नहीं कराई जाती, बल्कि मुद्दतों पहले से बच्चे को पाठशाला भेज दिये जाने की धमकी दी जाती है। पाठशाला से डराने का काम लिया जाता है "खबरदार ऐसा करोगे तो पाठशाला भेज दिये जाओगे", पिता जी फरमाते है। माता जी कहती हैं "देखो, यह काम कर लो वरना पाठशाला भेज दूँगी"। बच्चे के विचार मण्डल में इस भयानक स्थान का जो विचार स्थापित होता होगा वह हरगिज ऐसा नहीं हो सकता कि वहां पहुंचने पर वह इस स्थान से सरलता से राजी हो, लेकिन अगर बहुत सों के लिए इस मूर्खता से पाठशाला जाने और इससे लाभ उठाने का काम कठिन हो जाता है तो ऐसे बच्चे भी अवश्य होते हैं और अच्छी खासा तादाद में होते हैं जिनके घर की शिक्षा ठीक होती है

और जब वे पाठशाला जाते हैं तो इस कठिन समस्या को हल करने के लिए तैयार होते हैं। मगर क्या कहिये कि पाठशाला पहुँच कर इनका रंग भी कुछ बदल जाता है और इनकी शिक्षा में भी ऐसी गुत्थियाँ पड़ जाती हैं जो उम्र भर सुलझाये नहीं सुलझती हैं। हमें इन दोनों तरह के बच्चों पर नजर डालनी चाहिए। आइये पहले उन्हें लें जो घर से अच्छे खासे आते हैं, पाठशाला इनके लिए हौवा भी नहीं होती और घर की शिक्षा मे कोई ऐसा ऐब भी साथ नहीं लाते जिससे, न जानने की वजह से, पाठशाला में बच्चे के समझने और उसकी सहायता करने में कमी हो।

अनुशासन या जबरदस्ती

इन बच्चों की शिक्षा में सब से पहले तो पाठशाला के साधारण प्रबन्ध और आम अनुशासन तथा इस अनुशासन की शक्ति से उलझनें पैदा होती हैं। ये बच्चे जब मदरसे आते हैं तो सब तन्दुरुस्त बच्चों की तरह खेलने-कूदने, हँसने बोलने के अरमान साथ लाते हैं। लेकिन यहाँ अनुशासन घण्टों इन्हें खामोश, बे हिले-डुले बैठने पर मजबूर करता है। यह जबरदस्ती इन बच्चों का भला कैसे भा सकती है। मगर जबरदस्त मारे और रोने न दे। पाठशाला इन के लिए एक मन्दिर हो जाती है। इस में अनुशासन के बे समझ और जालिम देवता की पूजा उसके जालिम पुजारी अध्यापक इन से मजबूरन कराते●। वह इस निरर्थक अत्याचार का अर्थ नहीं समझता। न कोई उसे समझाता है। इस जालिम देवता की इबादत में या तो उसकी तबीयत का असली उत्साह समाप्त हो जाता है, जी बुझ जाता है और वह भी और कमजोरों, जलीलों, दबने वालों की तरह होते-होते उसका आदी हो जाता है या इससे बचने के जो तरीके सोचता है और जुल्म को जुल्म जानने के बाद इस से छुटकारे की जो राह निकालता है वह ऐसी होती है जिससे हमेशा के लिए उसकी शिक्षा के सही होने की राह बन्द सी हो जाती है। अच्छे अध्यापक बच्चों की प्राकृतिक इच्छाओं को मारे बिना और उन पर बेजा दबाव बिना उन में इसकी आदत डाल देते हैं कि हर बच्चा दूसरे के हक का ख्याल, रखे अपने स्वार्थ को कक्षा और पाठशाला के लिए दबाना सीखे और दूसरे के विचारों और आवश्यकताओं का सम्मान करना जाने, मगर अच्छे अध्यापक कम होते हैं और अधिकांश को अनुशासन की बेजा ज्यादती ही ठीक राह नजर आती है। इन अध्यापकों में बहुतसे गरीब ऐसे होते हैं जिनकी उम्र का इब्तदाई जमाना माँ-बाप की मार खाते और अध्यापकों की डाँट-डपट सहते कटा, अब शासन का अवसर मिला है तो दिल खोल कर शासन करना चाहते है और यह बीमारी कुछ ऐसी है कि ज्योंज्यों शासन करनेका अवसर बढ़ता है यह मर्ज भी बढ़ता ही जाता है। बहुतेरे ऐसे होते हैं कि सुस्ती की वजह से उत्साह और कार्य करने की रुचि की कमी से बस यही अच्छा समझते हैं कि काम एक ढर्रे पर पड़े। कौन हर वक्त नई-नई बातें सोचे और नई-नई समस्यायें हल करे। यह डर है कि लड़कों में उपज और स्वतन्त्रता को बढ़ाया तो हर लहमें नये उपाय करने और नये मार्ग निकालने होंगे और इतना दिमाग कहाँ। इस कठिनाई में कोई क्यों पड़े। लड़के समय पर आयें और समय पर जायें। चुपचाप बैठे सुनें और यह जैसे-तैसे पाठ्य क्रम समाप्त करा दें और रजिस्ट्रों में काम पूरा कर दें और उन्नति के लिये मुख्य अध्यापक महोदय की सिफारिश हासिल करें। बस अल्लाह-अल्लाह खैर सल्लाह। सच, यह मशीन बनना सहज है, आदमी रहना मुश्किल है। इसी दल में वे अध्यापक होते हैं जिन्हें अपने ऊपर भरोसा नहीं होता। वे हर वक्त डरते हैं कि बच्चों के काम में जरा भी ढील की और वे काबू से निकले। उन्हें अनुभव तो होता है

अपनी कमियों का और बच्चों में एक विरोधी शक्ति का हउआ देख-देख कर डरते रहते हैं। बच्चों पर इनका अत्याचार वास्तव में इसी डर का फल होता है। ये अध्यापक अच्छी शिक्षा के शत्रु हैं और जिन पाठशालाओं में ये साहबान कार्य करते हैं उन में जिस दिन अच्छी शिक्षा का प्रबन्ध हो जायेगा उस दिन चिरायते का बीज बो कर शकर की फसल भी काटी जाने लगेगी। अल्लाह का शुक्र है कि शिक्षा का काम करने वाले अब अनुशासन की वास्तविकता को समझने लगे हैं और शायद वह वक्त जल्द आये कि पाठशाला का अनुशासन भी हर सच्चे अनुशासन की भाँति स्वयं बच्चों के विचारों पर आधारित हो और इन के प्राकृतिक गुणों को विकसित करने का साधन बने. न कि इन्हें मारने का शस्त्र।

साधन और उद्देश्य

कड़े अनुशासन के भूत के अलावा पाठशालाओं में प्रचलित पाठ्यक्रम भी बच्चों की शिक्षा ठीक नहीं होने देता। आदमी के इतिहास पर नजर डालिये। इसकी बड़ी-बड़ी निराशाएँ इस कारण पैदा हुई हैं कि यह जिन चीजों को पहले किसी कार्य का साधन बनाता है, होते-होते इसी साधन को खुद अपना उद्देश्य मान लेता है। साधन पास होता है और उद्देश्य दूर। बस-साधन ही दृष्टि में रह जाता है। उद्देश्य ओझल हो जाता है। निराशा की इस कहानी में पाठशाला का प्रबन्ध भी एक परिच्छेद है। इसने पाठशाला अपने आने वाली नस्लों के मस्तिष्क की शिक्षा के लिए बनाई। इस शिक्षा के लिए समाज ने अपनी बनाई हुई मानसिक वस्तुओं को साधन बनाया और ठीक बनाया। होते-होते ये साधन खुद उद्देश्य बन गये। भाषा, सभ्यता, इतिहास, गणित, धर्म ये सब पाठशाला में इसलिए पहुँचे कि बच्चे की शिक्षा का साधन बनें।मगर वे वहाँ शासक है, बच्चा शासित।बच्चा वहाँ इसलिए जाता है कि वहां उनका बोझ उठाये, इसलिए नहीं कि ये बच्चे का बोझ हल्का करें। अब कोई नहीं देखता इन साधनों से मस्तिष्क की शिक्षा होती भी है कि नहीं। ये साधन तो पाठ्यक्रम की "लाल किताब में दर्ज हैं" इन्हें कौन छेड़ सकता है। इनके संयोग से अध्यापकों को वेतन मिलता है। पाठशाला को सहायता मिलती है। यह कौन देखे कि इन विषयों के ढेर के नीचे कितने होनहार मस्तिष्क घुट-घुट कर समाप्त हो जाते है। उम्र भर शिक्षा और दीक्षा का काम करते हैं, पर यह सोचने का अवसर कैसे मिलता है कि भला मानसिक शिक्षा होती कैसे है ? हालाँ कि साफ सी बात है। शरीर जिस तरह विभिन्न दशाओ में विभिन्न भोजनों से पलता और बढ़ता है, आदमी का मस्तिष्क भी उन चीजों से पलता है और बढ़ता है और अपनी प्राकृतिक शक्तियों को तरक्की देता है. जो इससे पहले समाज में दूसरे आदमियों ने अपने मानसिक प्रयास से बनाई हैं। इन चीजों में भाषा, सभ्यता भी है। रस्म-रिवाज भी, लतीफे भी हैं, इमारतें भी औजार भी हैं और कला-कौशल भी। संक्षेप यह है कि सब कुछ जिसको पिछलों के मानसिक प्रयासो ने कोई ऐसी सूरत दे दी है जो इस तक पहुँचाई जा सकती है, वह सब इसकी मानसिक शिक्षा के लिए हाजिर है। इसलिए कि बनाने वाले के मस्तिष्क ने इसमें अपनी जो-जो शक्तियाँ बन्द की हैं। सुलादी हैं, वे जब इस बच्चे के मस्तिष्क में आ कर खुलती है, जागती हैं तो इससे इसकी शिक्षा होती है। याद रखने की बात यह है कि शिक्षा के थाल पर जो बेशुमार भोजन चुने हैं, हर मस्तिष्क इन सब को खा कर नहीं पनप सकता। कुछ इसे रास आते हैं कुछ नहीं और यह क्यों ? यों कि इन चीजों में जो-जो

शक्तियां सोई हुई हैं वे जिस मस्तिष्क का साया हैं। उसमें और बच्चे के मस्तिष्क की प्राकृतिक बनावट में कुछ न कुछ समानता अवश्य होनी चाहिए। इस मुआफिक मिजाज. ओस से बच्चे के मस्तिष्क की कली खिलती है और फिर सारी जिन्दगी को अपनी खुशबू से सुगन्धित कर देती है। इसी समानता रखने वाले दीये से इस बच्चे के मस्तिष्क का दीपक भी प्रकाशित होता है जो फिर संसार के अंधियारे में हर अंधेरे कोने को उजागर करने में सहायता देता है। यह उजाला हर मस्तिष्क का हक है। पर हर एक को यह हक एक ही तरह हासिल नहीं होता। किसी को यह रोशनी कहीं से मिलती है किसी को कहीं से। किसी का मस्तिष्क सभ्यता से शिक्षा पाता है तो किसी का खेती के कार्य से तो किसी का खिलौनों और औजारों से। सभ्यता वाले के मस्तिष्क को औजारों से और औजार वालों को पौधों से शिक्षा देने के प्रयास करना बस शिक्षा देने के महत्त्व ही से बेखबरी है। पाठशाला का कार्य यह है कि बच्चों की मस्तिष्क की बनावट का अनुमान करके उस चीज या उन चीजों से उसकी शिक्षा का प्रबन्ध करे जो उसके अनुसार हों वरना हम रोज देखते हैं कि अशुद्ध प्रयास बेकार और व्यर्थ ही नहीं होते बल्कि इन चीजों में असफलता से जिससे बच्चे का कोई सम्बन्ध नहीं पर जिसका जुआ उसकी गर्दन पर व्यर्थ रखा हुआ है, निराश और निरुत्साह हो कर और माननीय मास्टर साहब के अङ्कों और टिप्पणियों और माता-पिता के निराशा से भरे वचनों से अपनी कमियों का यकीन होने पर कितनी असाधारण प्रतिभाओं का खून रोज हमारी आंखों के सामने होता है। अगर अध्यापक सफल प्रयास करने और सफल काम करने के जादू से वाकिफ हो तो प्रकट में कमजोर बच्चों को देखते-देखते कहाँ से कहाँ पहुँचा देता है और सहज पाठ्यक्रम की रस्मी पाबन्दी से यूं प्रतिभाओं का खून न करे। वह दिन दुनियाँ के लिए बड़ा मुबारिक दिन होगा जब इसकी पाठशालाओं में अध्यापक यह समझ लेंगे कि वह किसी ऐसे कारखाने के काम करने वाले नहीं हैं जिसमें से सब माल एक ही ठप्पे और एक की मार्के का निकलना जरूरी है। बल्कि जो भिन्न-भिन्न तरह की प्रतिभाएं उनकी अमानत में दी जाती हैं, उन्हें उन्नति की पराकाष्ठा तक पहुँचाने में सहायता पहुँचाना उनका बहुत बड़ा कर्त्तव्य है।

कुछ गलतियां

इन बुनियादी गलतियों के अलावा पाठशाला में अध्यापकों में कुछ और गलतियां भी ऐसी होती हैं जिनसे बच्चे की शिक्षा पर बुरा असर पड़ता है। इनमें एक बहुत ही आम गलती तरफदारी और नाइन्साफी की है। बच्चे जब अध्यापक की बेजा तरफदारियाँ देखते हैं तो उन पर बड़ों से बहुत ज्यादा इसका असर होता है। वे अभी प्राकृतिक जीवन के निकट होते हैं और संसार की बेइन्साफियों का अनुभव न होने का कारण उन्हें अपनी सादगी में यह चीज बहुत खलती है। और चूँकि अध्यापक उनके लिए बड़ों की दुनियाँ का दूत होता है इसलिए इस पर से भरोसा उठा और यूँ समझिये सब बड़ों की इन्साफ पसन्दी की पोल इनकी नजर में खुल गई। बच्चे उस्तादों की तरफदारी और नाइन्साफी का ऐसा गहरा असर लेते हैं कि यह अक्सर उम्र भर इनके जहन से नहीं हटता है और पाठशाला के और अच्छे दूसरे प्रभाव इस अनुभव के कारण मिट जाते हैं।

दण्ड के सम्बन्ध में भी कुछ ऐसी गलतियाँ होती हैं कि सही शिक्षा का उद्देश्य बिल्कुल मर

जाता है। दण्ड का अगर कोई शैक्षणिक महत्त्व है तो बस यह कि यह पछतावे का रूप है। इसलिए दण्ड को डराने-धमकाने का साधन नहीं होना चाहिए। दोष के मान लेने से छुटकारा दिलाने का साधन होना चाहिए वरना यह शिक्षा के मार्ग में रोड़ा होता है। सच्चा और लाभदायक दण्ड उस समय सम्भव है जबकि बच्चे को अपने दोष का भान हो जाए, उस पर पछतावा भी हो और उसके दिल में स्वयं ही पछता कर फिर ऐसा न करने का विचार आए। वरना सजा भय है, इलाज नहीं। और शारीरिक दण्ड आम तौर पर पूछताछ का रूप अख्तयार नहीं कर सकता इसीलिए शिक्षा के लिए अक्सर बेलाभ और हानिकारक होता है। शारीरिक दण्ड आम तौर पर बच्चों में जिल्लत का ख्याल पैदा करता है। किसी को अपमानित करके उसके चरित्र और आत्मिक शक्तियों को उभारा नहीं जा सकता। फिर यह शरीर को तकलीफ देता है और शरीर का दुःख बिल्कुल हमारी सारी तव्वजा अपनी तरफ खींच लेता है और तमाम शक्तियों को विरोध के लिए तैयार कर देता है। विरोध का यह ख्याल सजा के गुजर जाने के बाद भी कायम रहता है और इस तरह दण्ड का उद्देश्य ही समाप्त हो जाता है। इस प्रकार की और बहुत सी गलतियां पाठशाला में होती हैं, जिनसे बच्चे के मस्तिष्क का साँचा गलत बनावट अख्तयार कर लेता है और फिर सारी जिन्दगी ही इस गलती के साचे में ढल जाती है।

पाठशाला की तकलीफें

ये सब कठिनाइयां तो सब बच्चों पर बराबर पड़ती है। पर उन का क्या हाल पूछिये जिन के लिए घर की शिक्षा की कमियां पाठशाला को बिल्कुल नर्क बना देती हैं। इन बच्चों में पाठशाला से अधिक तकलीफ तीन प्रकार के बच्चों को होती है। एक तो घर के लाड़लों को जिन्हें इसका कभी अवसर नहीं मिला कि अपना कोई काम आप कर लेते। दूसरे बच्चों के साथ समान बर्ताव करते। मारते तो पिटते भी, कहते तो सुनते भी। सदा इनका कहना माना गया। इन्हें खाना किसी और ने खिलाया। कपड़े किसी और ने पहनाये। मुँह हाथ तक धोने की नौबत न आई। कभी अकेले सोये नहीं। संक्षेप में हैं मिर्जा फोया। दूसरे पाठशाला में उन बच्चों को बड़ी कठिनाइयाँ होती हैं जो घर पर मुहब्बत और प्यार को तरसते हैं। सौतेली माँओं के हाथों तकलीफें उठाते हैं। जिन से नई माँ ने पिता का प्रेम भी छीन लिया और मानवता से सदा के लिए इनका भरोसा उठा लिया। तीसरे वे बच्चे हैं जिनमें कोई शारीरिक दोष होता है। जिन बालकों में शारीरिक दोष होते हैं उनकी शिक्षा की कठिनाइयों पर मैं पिछली दफा कह चुका हूँ। वे कठिनाइयाँ पाठशाला जाते समय और बढ़ जाती हैं। अक्सर पाठशालाओं में छात्रों की संख्या इतनी होती है कि ऐसे दोष पर कोई ध्यान नहीं करता। फिर अगर यह दोष चेहरे को या शरीर को बदनुमा करता है तो इस पर दूसरे बच्चे नादनी में हँसते हैं। बेचारा मरीज कुढ़ता है और विरोधियों की दुनियाँ से बेजार रहता है। वह जितना घबराता है, दूसरे उतना ही और छेड़ते हैं और आपस में मेल-मिलाप पैदा होने के मार्ग बन्द होते जाते है। अगर दोष आँख, कान का या कोई छुपा हुआ दोष है तो बड़े समय तक कोई पूछता नहीं, मगर इससे बच्चे की पढ़ाई पर असर पड़ता है। वह फिस्सडी शुमार होने लगता है। डाँट सुनता है, अपमान सहता है और यूं इसके जहन में इन तमाम बुराइयों के पैदा होने का कारण

पैदा होता जाता है जो कमियों के गहरे विचार के साथ पैदा होती और जिन्दगी को गलत रास्ते पर डाल देती हैं।

मुहब्बत को तरसे हुए बच्चे दुनियाँ की तरफ से अविश्वास रखते हैं, इसलिए इस नयी दुनिया में भी हर चीज को सन्देह से देखते हैं। मुहब्बत की वह भूख जो यह साथ लाए हैं यहाँ और भी बढ़ जाती है।इसके दूर करने का सामान भी नहीं होता है और यों इनको मस्तिष्क की गुत्थियों में वृद्धि ही का भय बढ़ता जाता है। लेकिन सब से ज्यादा कष्ट लाड़ले मियां और मिर्जा फोया को होता है। इनकी आदत तो यह कि सारा घर इनकी सेवा में खड़ा रहे। पहुँचे शामत के मारे पाठशाला में, किसी ने डाँट जमाई, किसी ने धक्का दिया, किसी ने मुँह चिढ़ाया, उनके रोने में सब हँसने लगे। अध्यापक महोदय आए तो यह समझे कि पिता की तरह हमें ही बस गोद में उठा लेंगे। अध्यापक महोदय गरीब के जिम्मे शैतानों की एक पूरी फौज। इनसे छुटकारा पाना मुश्किल, उन्होंने बात भी न पूछी। बस, साहब जादे का सम्बन्ध पहले दिन से पाठशाला से खराब हो गया और जिस तरह पहले बता चुका हूँ इस गलत ख्याल पर सारे भविष्य के जीवन की इमारत खड़ी होने लगी। लेकिन क्या इन सब कठिनाइयों का कोई इलाज नहीं। प्रकट में तो मालूम होता है कि नहीं है। संसार का केन्द्र ऐसा मालूम नहीं होता है कि मूर्खता पर आ जमा है। पाठशाला में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन के प्रयास जारी हैं। मगर कौन सुनता है। पाठ्य शिक्षा के पाठ्यक्रम पर अत्याचार को समझने वाले रोते हैं। मगर जिन के हाथों में प्रबन्ध होता है वे इसे बहुत अधिक महत्व नहीं देते, बच्चे नष्ट होते हैं। किसी को कानों-कान खबर नहीं होती। पशुओं की तरह उस्ताद बच्चों को मारते है—लेकिन किसी के कान पर जूँ नहीं रेंगती। बहुतेरे बच्चों पर पाठशाला में जो आत्मिक कष्ट गुजरते हैं उसका हाल उन्हीं का दिल जानता है। हाल में एक किताब पढ़ रहा था। साइंस के एक अध्यापक (Willisenohans) की लिखी हुई (The dark Pleaces of Education) इसने कई काफी मशहूर आदमियों के बयानात दर्ज किये हैं कि इन पर पाठशाला में क्या गुजरी! पढ़ कर ख्याल होता है कि पाठशाला किसी सख्त जालिम की ईजाद है। इसके कष्टों और दुखों को याद उम्र भर दिल से नहीं मिटती। मगर इस निराशा में बस एक आशा की किरण है। वह यह कि अगर पाठशाला में एक अच्छा अध्यापक पहुँच जाए, तो इस अँधेरे स्थान को जगमगा देता है। बेजान अधिकारीगण और निरीक्षण, रजिस्टर और डायरियाँ पड़ी रह जाती हैं और यह अपने व्यक्तित्व के जादू से मुर्दों को जिन्दा और जिन्दों को अधिक जिन्दा कर देता है। बच्चों की उजाड़ दुनियाँ बस जाती है और तबीयत की कुम्हलाई कली खिलने लगती है। मगर आप कहेंगे कि अच्छे अध्यापक होते कहाँ हैं? जी हाँ—सच है। ये कम मिलते हैं। मगर ऐसा नहीं कि नहीं मिलते हैं। मुझे कुछ ऐसे अध्यापकों के साथ कार्य करने का गौरव और सम्मान प्राप्त है इसलिए मैं तो निराश नहीं। भविष्य में मिलने पर निवेदन करूँगा कि ये अच्छे अध्यापक होते कैसे लोग हैं।●

अच्छा अध्यापक

[१५ मई १९३६ को डा० जाकिर हुसैन द्वारा आल इण्डिया रेडियो से प्रसारित वार्ता]

मनुष्य का जीवन सदा किसी अन्य के जीवन से सम्बन्धित होता है। उसके मानसिक जीवन का दीपक सदा किसी दूसरे मानसिक जीवन से प्रकाशित होता है। जीवन की लहलहाती बाड़ी में खरबूजे को देखकर खरबूजा रंग पकड़ता है और यूँ प्रत्येक मनुष्य किसी अन्य का अध्यापक, सिखाने वाला, बताने वाला और बनाने वाला होता है। अध्यापक के अर्थ का इतना विस्तार कर दें तो बात बहुत फैल जायेगी। हम तो यहां केवल उन लोगों से विवाद करना चाहते हैं जो जानबूझ कर सिखाने पढ़ाने वाले का काम अपनाते हैं और उस को कार्य का रूप देते हैं। ये व्यक्ति इस कार्य को अपनाते हैं इसलिए कि उन के मन की रुचि इधर होती है। मन का यह मिलना एक प्राकृतिक बात है। स्वयं किसी ओर झुकाव होता है. इस ही प्रकार के कार्य को जी चाहता है। इस ही में जी सुख पाता है। कुछ लोगों के मन की रुचि स्वयं अपनी ओर होती है। उन में जो शक्ति है उसकी इच्छा कमाई का लपका, जमा करके ढेरी लगाने की लत, लालच-लोभ, औरों से हड़पने की चाह होती है। कुछ व्यक्तियों के मन का झुकाव अपनी ओर नहीं अन्य की ओर होता है। उन पर सहानुभूति, सहकारिता, मेल-मिलाप, उदारता, दूसरों को सहारा देने और सहायता पहुँचाने की इच्छा राज करती है। किसी को हर वस्तु की खोज लगाने और हर बात की तह तक पहुँचने की धुन होती है। कोई संसार को बनाने वाले और पालनहार के ध्यान में मस्त है, अपने को उसके महान अस्तित्व में मिला देने, विरह को समाप्त करके लीन

हो जाने और मोक्ष प्राप्त करने की लग्न लगी रहती है। कोई चीजें बनाता, बिगाड़ता और नये-नये आविष्कारों में अपने हृदय को शान्त करता है।

एक प्रश्न

मनुष्यों की इस भीड़ में अध्यापक को कहां खोजें और इन भांति भांति के व्यक्तित्वों में अच्छे अध्यापक को कहां से पकड़ निकालें ? इस प्रश्न के उत्तर में इस बात से सहायता मिलेगी कि हम यह देखें कि जिस काम को मनुष्य करना चाहता है, जिन मूल्यों का वह आदर करता है, जिन गुणों का वह सेवक है या बनना चाहता है, वह किस प्रकार पूरा हो सकता है ? कुछ गुण केवल चीज़ों में आकर पूरे होते हैं। कुछ गुण चीज़ों और मनुष्यों दोनों में अपनी विशेषता दिखाते हैं : उदाहरणार्थ सुन्दरता का गुण वस्तुओं में भी चमकता है और मनुष्य में भी। सूरत मे भी अपना आकर्षण दिखाता है और आचरण में भी। कुछ गुण ऐसे होते हैं कि केवल मनुष्यों में सम्पूर्णता को पहुँच सकते हैं जैसे चारित्रिक और धार्मिक गुण। अब जो व्यक्ति ऐसे गुणों का सेवक है जो केवल मनुष्यों में ही सम्पूर्णता को पहुँच सकते हैं तो वह स्वयं या तो अपने पर ध्यान देगा या औरों की ओर ध्यान करेगा। इनमें से जिसका ध्यान अपने पर जम जाये उसके लिए आवश्यक नहीं कि वह दूसरों पर भी ध्यान दे। धार्मिक लोग सारी-सारी उम्र एक अपनी ही जिन्दगी को ठीक करने में खपा देते हैं। एक अपने मोक्ष की चिन्ता में लगे रहते हैं। कुछ तो त्रिकुटी जमा कर अपनी नाक की चोंच का ध्यान करते-करते जीवन समाप्त कर देते हैं। परन्तु जो किसी गुण को अन्य मनष्यों तक पहुँचाना चाहता है उसे अपने सुधार पर भी कुछ न कुछ ध्यान करना होता है, जो किसी को कुछ सिखाना चाहता है उसे स्वयं को भी सीखना होता है, जो किसी को कुछ बनाना चाहता है उसे स्वयं को भी कुछ बनना होता है। ऐसे मनुष्य की मानसिक बनावट में दो बातें, सहानुभूति और दूसरों से मेल-मिलाप की इच्छा, पहले दिन से होती हैं। ये व्यक्ति यूँ कहिये जातीय और सामाजिक मनुष्य होते हैं।

अच्छा अध्यापक

अध्यापक भी इस प्रकार का सामाजिक मनुष्य होता है। यह सत्य है कि प्रत्येक व्यक्ति सामाजिक मनुष्य नहीं होता परन्तु अच्छा अध्यापक अवश्य इस ढाँचे में ढला होता है। सामाजिक व्यक्ति होना, दूसरों के जीवन में उन गुणों का चाहने वाला होना जिन का यह आप सेवक है, औरों को कुछ बनाने की इच्छा, इस के लिए स्वयं कुछ बनने या होने की आवश्यकता, यह अच्छे अध्यापक के मस्तिष्क की बनावट का ताना-बाना है। बाजार में इससे मिलता-जुलता माल भी बहुत मिलता है, परन्तु इससे धोखा नहीं खाना चाहिए। ऐसे अध्यापक भी होते हैं जिनका मन दूसरों की ओर तनिक भी नहीं झुकता, इन विशेष गुणों से भी कोई मन का लगाव नहीं होता। इन्हें बस अपना पेट पालना होता है। दूसरे को कुछ हुनर सीखने की आवश्यकता होती है, ये दुकान लगा देते हैं। लोग दाम देते हैं, ये हुनर बेचते हैं। अनाज बेच कर न कमाया, खेती पर दो पुस्तकें लिख कर कमा लिया। इसी अध्यापक के रूप ऐसे में लोग भी होते हैं। प्रायः अध्यापक के वेश में ऐसे कारीगर होते हैं जिन की सारी उम्र की कोशिश से कुछ झूठे जाल-साज जो देखने में तो बहुत अच्छे धार्मिक और सभ्य व्यक्ति हैं, पैदा होते हैं, परन्तु जिनके अच्छे कार्यों की जड़ें उनके मन तक नहीं पहुँचती। ये लोग झूठे माल पर

अपने कारखाने का ठप्पा लगा देना काफी समझते हैं और असली धातु के स्थान पर मुलम्मा कर देने पर राजी रहते हैं।

प्रेम की आवश्यकता

अच्छे अध्यापक के लिए आवश्यक है कि वह दूसरे मनुष्यों से प्रेम रखता हो। उसके मन में मनुष्य के रूप में मनुष्य से प्रेम हो। आप इन सच्चे पण्डितों और अच्छे अध्यापकों पर दृष्टि डालिये तो इन में बहुत से कट्टर धार्मिक व्यक्ति नजर आयेंगे। सुन्दरता और आकर्षण के प्रेमी कलाकार भी इनकी कतार में मिलेंगे। परन्तु ये गुण उनकी मानसिक बनावट में बेलबूटे हैं, ताना-बाना वही सेवा की रुचि और मानव जाति का प्रेम है।

अध्यापक के जीवन की पुस्तक के मुख्य पृष्ठ पर "विद्या" नहीं लिखी रहती, "प्रेम" का शीर्षक होता है। समाज जिन गुणों का इच्छुक है उनमे प्रेम होता है, इन नन्हीं-नन्हीं आत्माओं से प्रेम होता है, जो आगे चल कर इन गुणों को अपनाएंगी। इनमें जहां तक और जिस ढंग से इन गुणों को पूरा करने का सामान है वह इस में सहायता देता है, इस काम से अपने मन में चैन और आत्मा में शान्ति पाता है।

मन का रुझान

अच्छे अध्यापक की सब से प्रथम और सब से बड़ी पहचान यही है कि उसके मन का रुझान आप ही आप बच्चों और नवयुवकों के बनते हुए व्यक्तित्व की ओर होता है। इन ही में रह कर उसे शान्ति मिलती है, इन के बिना संसार में परदेशी की भांति भटकता है। वह केवल पाठशाला की कक्षा में ही अध्यापक नहीं होता बल्कि हर समय उस का मन अपने शिष्यों में अटका होता है। अध्यापक के इस प्रेम की व्याख्या बहुत कठिन है। सम्भव है इस में अन्य बहुत सी इच्छाएं मिली हुई हों, सम्भव है अपने को मनवाने की इच्छा भी उस के मन में कार्य करती हो। सम्भव है बच्चों का दिल हाथ में लेने, अपने लिए इन का प्रेम और आज्ञा पालन करने की भावना प्राप्त करने की इच्छा भी इस में मिली होती हो। अर्थात थोड़ा सा स्वार्थ भी, हां क्यों नहीं, आवश्यक होता होगा और यदि मेल अधिक हो जायें तो वास्तविक जाहिर गुण सम्भव है दब जायें। परन्तु सावधानी से विचार किया जाये तो अच्छे अध्यापक के सारे कार्य में ऐसे मोल-तोल और हिसाब-किताब का भाग नहीं होता। अच्छा अध्यापक अपने बहुत से कार्यों को बच्चों ही की तरह प्राकृतिक ढंग पर अधिक विचार किये बिना ही कर डालता है। जो कार्य अपना उद्देश्य आप स्वयं होते हैं और अपने से बाहर कोई उद्देश्य नहीं रखते उन्हें खेल कहते हैं। हां, तो अध्यापक का काम बहुत कुछ तो खेल ही खेल में पूरा हो जाता है। उसका कार्य प्रायः अपना पारितोषिक आप होता है। संसार वालो, नापतौल करने वालों की दृष्टि में यह मूर्खता हो, तो बेशक अच्छा अध्यापक इस मूर्खता में फँसा होता है। यूरोप के एक प्रसिद्ध अध्यापक पेस्टोलोजी ने एक स्थान पर अपनी और एक हिसाबी-किताबी दुनियादार की बातचीत अच्छी लिखी है। पेस्टोलोजी ने कहा है, "मैं तो अपने जीवन में सदा कुछ बच्चा ही सा रहा। शायद यही बात थी कि लोग हजारों रंग से मुझ से खेलते रहे।" बुद्धिमान दुनियादार बोला, "यदि आपकी दशा यह है तो अच्छा हो किसी कोने

में आकर बैठे रहें, अपनी मूर्खता पर लज्जा करें और बस चुप रहें।" उत्तर मिला, "हाँ महाशय, शायद आपका विचार ठीक है।" दुनियादार भला कब चुप रहने वाला था, "तो फिर ऐसा करते क्यों नहीं?" पेस्टोलोजी ने कहा, "हाँ महाशय। ऐसा भी कर चुका हूँ, लेकिन क्या करूं। अब भी कुछ ऐसे मनुष्य पड़े हैं जिनसे लोग इस ही प्रकार खेलते हैं जैसे मुझ से खेलते हैं, कभी कभी इन से कुछ खेलने को मन चाहता है।" दुनियादार बुजुर्ग इस सादगी की ताब न ला सके। और बेतकल्लुफ हो कर बोले, "यार तुम तो अब तक बस नन्हें बच्चे ही हो।" तो पेस्टोलोजी क्या अच्छा उत्तर देता है, जिसमें अच्छे अध्यापक की आत्मा झलकती है, "हाँ महाशय, बच्चा ही हूँ और मरते दम तक बच्चा रहना चाहता हूँ, तुम्हें क्या बताऊँ मन को इससे कैसी शान्ति मिल सकती है कि मनुष्य थोड़ा-थोड़ा बच्चा भी है। ऐसा यकीन कर सके, भरोसा कर सके, प्रेम कर सके, गलती हो जाये, भूल-चूक हो, मूर्खता हो तो इनसे लौट आये और आपके सारे बुद्धिमान लफंगों से अधिक भोला, अधिक अच्छा और अन्त में चल कर अधिक बुद्धिमान भी निकले। महाशय, इसके विरुद्ध बहुत कुछ देखा और बहुत कुछ सुना, मगर फिर भी इसमें बड़ा आनन्द है कि मनुष्य मनुष्यों के प्रति अच्छे से अच्छा विचार रखे और चाहे रोज फरेब खाये, रोज नये सिरे से मनुष्यों के मन की सुन्दरता पर विश्वास करे और बुद्धिमानों को और मूर्खों को जो कि दोनों पथ भ्रष्ट होते हैं, क्षमा करे।

बचपन भी जरूरी

यह कथन एक अच्छे अध्यापक का हो सकता है। बुद्धिमान लोग इसे मूर्खता जानें तो ठीक, मूर्खता ही सही और इसे बचपन बतायें तो बेशक बचपन है और जब तक अध्यापक में बचपन है वह बच्चों के भेद जानता है और इनके जीवन में लगातार सम्मिलित हो कर इन को बलंदी की ओर ले जा सकता है। जिस अध्यापक में यह बचपन नहीं होता वह बच्चों के मन की बोली नहीं समझता, न उन्हें अपनी समझा सकता है। मूर्खता से जिधर पग उठाता है, तो कुछ न कुछ कुचल डालता है। कुछ न कुछ तोड़ डालता है। जिस अध्यापक में शिक्षा सम्बन्धी खोज का चाव हो या निरीक्षण करने की अधिक रुचि हो वह इस के बचपन को कम कर देता है। वह पहले से अधिक उत्तम ज्ञानवान हो जाता हो या वह चीज जिसे "माहिरे तालीम" कहते हैं, परन्तु अध्यापक वह पहले से खराब होता है।

प्राकृतिक लगाव

हाँ, मैने अध्यापक की जो यह पहली पहचान बताई कि उसे बच्चों और नवयुवकों से प्राकृतिक लगाव और प्रेम हो और वह बच्चों में बच्चा बन सके तो यह पहली और आवश्यक बात है परन्तु केवल यही काफी नहीं। प्रत्येक अच्छे अध्यापक में इसका होना आवश्यक है, पर प्रत्येक वह व्यक्ति जिस में यह हो, अच्छा अध्यापक नहीं होता।

प्रेम के इस मिलान को एक विशेष प्रकार से प्रयोग करने की योग्यता भी होनी आवश्यक है। यह योग्यता लगातार कार्य करने और प्रयासों से उन्नत हो सकती है, परन्तु होती यह भी प्राकृतिक है— ईश्वर की देन। इसे बहुत सी विद्याओं से सहायता भी मिलती है। शिक्षा और प्रवृत्तियों आदि के सिद्धान्तों की जानकारी से भी काम निकलता है, परन्तु वास्तविक बात यह है कि अच्छे अध्यापक

में बच्चों के व्यक्तित्व को समझने की योग्यता होना चाहिए। जब कोई किसी बढ़ती हुई, बदलती हुई जीवित वस्तु पर प्रभाव डालना चाहे जैसा कि अध्यापक चाहता है तो उस वस्तु को समझना अत्यन्त आवश्यक है। अच्छे अध्यापक में वह गुण होना चाहिए जो अच्छे ड्रामा लिखने वाले, अच्छे उपन्यास लिखने वाले, अच्छे इतिहासकार में होता है कि वह एक साधारण सी घटना से, एक जरा सी बात से, एक साधारण सी हरकत से, मुख के रंग से, आँखों के प्यार से, संक्षेप में प्रकट करने के साधारण ढंग से पूरे मनुष्य की दशा का पता लगा लेते हैं।

मानवीय प्रचलित सिद्धान्त यहाँ आ कर धोखा देते हैं और परदा बन जाते हैं। कोई प्राकृतिक मस्तानी शक्ति होती है जो इन नन्ही-नन्ही खिड़कियों से झाँक कर आत्मा की गुप्त दशा को देख लेती है और समझ लेती है। अध्यापक की दूसरी पहचान यह है कि उसमें ये मस्तियाँ हों और अनुभव करने की यह तेजी।

सूझ-बूझ

परन्तु समझ लेना, जान लेना भी तो काफी नहीं। समझ कर जान कर ठीक ढंग से प्रभावित करने की योग्यता भी तो होनी चाहिए। जाँच के बिना इलाज नहीं होता, परन्तु किसी को केवल जाँच आती हो और इलाज न आता हो तो वह भी तो स्वास्थ्य प्रदान नहीं करता। अध्यापक की तुरन्त उपज होनी चाहिए कि मामले को समझते ही करीब-करीब बिना सोच-विचार किये ठीक उपाय उसकी समझ में आ जाये। पुस्तकें पढ़ कर बच्चों पर प्रभाव डालने वाले सोच-विचार करते रहते हैं और मामले और उसके उपाय की अनगिनत पुस्तकीय सम्भावनाओं के गोरख-धन्धे में भटकते ही रहते हैं और अच्छा अध्यापक सूझ-बूझ से ठीक उपाय कर गुजरता है। कभी हँस कर, कभी रुष्ट हो कर, कभी प्रशंसा कर के, कभी हलका सा बुरा-भला कह कर, कभी उकसा कर, कभी थोड़ा सा रोक कर, कभी अपनी ओर खेंच कर, कभी अपने से दूर कर के, कभी नुकता-चीनी से और कभी टाल कर वह अपना काम कर लेता है। इन सब अवसरों के लिए पुस्तकों में हिदायतें दर्ज होंगी इसलिए कि पुस्तकों में तो अब सब कुछ दर्ज है। पर जिस समय काम पड़ता है तो "लाल पुस्तक" के देखने का अवसर नहीं होता और यदि इसको आम हिदायत याद हो तो इस आम नियम को इस खास मामले पर लगाना भी तब ही सम्भव होता है जब कि अध्यापक में यह प्राकृतिक सूझ मौजूद हो।

बे बने व्यक्तित्व

सुधारकों और पैगम्बरों की भाँति अध्यापक को बने बनाये व्यक्तित्व से वास्ता नहीं पड़ता बल्कि उन से सरोकार होता है जो अभी बन रहे हैं। सुधारक और पैगम्बर तो बने हुए व्यक्तित्व से अपना काम लेते हैं। इन्हें उन विश्वासों, रीतियों, पाठशालाओं और विचारों का सेवक बना देते हैं, जिनके फैलाने या स्थापित करने के लिए वे आये हैं; जो इन्हें कत्ल करने निकलते हैं उनके जीवन का रुख बदल कर उन्हें विरोधियों के वास्ते अभिशाप बना देते हैं, जो पहले एक ओर झुकता था उसका सिर अब दूसरे के सामने झुका देते हैं। अध्यापक का वास्ता पड़ता है बे बने व्यक्तित्व से उसे। उसे अपने शिष्य के बनने वाले व्यक्तित्व का रुख समझना और उसकी उन्नति की सम्भावनाओं का अनुमान करना पड़ता है और उसको उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुँचाने में सहायता करनी होती है। न केवल बुद्धि की

दृष्टि से ये सम्भावनाएँ दिखाई देती हैं कि मनुष्य के जीवन में न जाने अबुद्धिमानों के भाग सम्मलित होते हैं; न केवल जांच, खोज और तीव्र बुद्धि पर अध्यापक भरोसा कर सकता है। यहां जाँच और बुद्धि को मिलाने की आवश्यकता है। अच्छा अध्यापक विभिन्न साँचों की जानकारी रखता है जिनमें मनुष्य का चरित्र ढलता है और इस साधारण जानकारी के साथ बच्चे की मुख्य दशा का निरीक्षण उसे ठीक नतीजे तक पहुँचा सकता है। इसलिए पहले वर्णन किए हुए गुणों के साथ अच्छे अध्यापक में ठीक निरीक्षण का गुण भी होना चाहिए जिसके बिना वह अपने शिष्य के व्यक्तित्व की पूरी जाँच नहीं कर सकता। इसके बिना पूर्ण उन्नति में सहायता नहीं दे सकता। इस निरीक्षण में प्रायः स्वयं अध्यापक का बनाया हुआ व्यक्तित्व रोक बन जाता है। मनुष्य मुर्दा चीजों का निरीक्षण तो कुछ बेतकल्लुफी से कर सकता है परन्तु मनुष्य के शरीर का निरीक्षण कैसे बेतकल्लुफी से हो सकता है? इसके लिए स्वयं अपने से लड़ना और अपने को दबाना होता है। परिश्रमी और बुरी रुचि वाला, सीधे और शरीर, आज्ञाकारी और अवज्ञाकारी, तेज और सुस्त, हँसमुख और रोनी सूरत सब को एक दृष्टि से, बेतकल्लुफी के साथ देखना सरल कार्य नहीं। परन्तु अच्छे अध्यापक का काम भी सरल नहीं होता और यह सम्मान तो प्रत्येक को प्राप्त भी नहीं हो सकता।

अध्यापक का मुख्य कार्य चरित्र की तैयारी और सारी शिक्षा का बुनियादी उद्देश्य यही होता है कि बच्चे के इरादे और कार्य करने की शक्ति को किसी सीधी राह पर डाल दे और सच्चे सिद्धान्त के प्रकाश में, अच्छी आदतों की सहायता से उस के चरित्र में, विचार में अटलता और पक्कापन पैदा कर दे। जो व्यक्ति अध्यापक बन कर शिक्षा का यह काम करता है उसे स्वयं भी तो ज्ञान होना चाहिये कि वह चरित्र को किस राह पर डाले। खुद इसके चरित्र का भी तो कोई रंग, रूप इसके जीवन का भी तो कोई अपरिवर्तनशील ढंग होना चाहिये। इस के प्रभाव से बच्चे में अटलता भी तभी पैदा होगी कि स्वयं इसमें अटलता हो। जो थाली के बैंगन की तरह इधर-उधर लुढ़कता हो वह दूसरों को एक दिशा में कैसे चला सकेगा। चरित्र की अटलता के विभिन्न प्रश्नों पर विवाद करने का यह अवसर नहीं। इतना कहना काफी है कि अच्छा चरित्र उसी को नसीब होता है जिसके इरादे में कोई मजबूती हो. जिसकी राय में पक्कापन हो. जो सही हुक्म लगा सके और ठीक तमीज कर सके, जिसके जज़बात में लताफत हो और जो दूसरों के हाल को इस लताफत की वजह से आसानी के साथ समझ सके, फिर जिसमें इन गुणों के लिए, जिन्हें वह जानता है, जोश और उत्साह हो। और तीन गुणों का वर्णन तो पहले किसी न किसी सम्बन्ध में हो चुका है। यह अन्तिम जोश और उत्साह का गुण भी याद रहे कि अध्यापक के लिए बहुत जरूरी है। अच्छे अध्यापक की जज़्बाती जिन्दगी में गुंजाइश भी होती है, गहराई भी और टिकाऊपन भी। उसकी आत्मा में सच्चाई, सुन्दरता, नेकी, पवित्रता, न्याय और स्वतन्त्रता के दृश्यों से गर्मी पैदा होती है जिससे वह दूसरे दिल को गर्माता है और जिसमें तपा-तपा कर अपने शिष्यों के चरित्र को अच्छा बनाता है।

बहुत बड़ा फर्क

इस स्थान पर एक बात साफ कर दूं। शिक्षक अपने प्रभाव से शिष्यों को जो रंग देता है उसमें शायद किसी को शासन और शक्ति की, जबरदस्ती की झलक नजर आये, क्योंकि शासक भी दूसरों के इरादों

को अपने मुताबिक बनाते हैं और अध्यापक भी दूसरे के जीवन को अपने पद-चिन्हों पर चलाने के उपाय करता है और दूसरों से अपने इरादे पूरे कराता है। लेकिन यह धोका है। बात यह नहीं। अच्छे शिक्षक में शक्ति और शासकों की आदत का एक कण भी नहीं होता। शासकों और इनमें पृथ्वी और आकाश का फर्क है। शासक जबरदस्ती करते हैं, यह सन्तोष करता है। वे मजबूर करके एक राह पर चलाते हैं। यह स्वतन्त्र छोड़ कर साथ लेता है। एक के अत्याचार और जबरदस्तियां, दूसरे की मुहब्बत और सेवा। एक का कहना भय से माना जाता है, दूसरे का रुचि से। एक आज्ञा देता है, दूसरा राय। वह गुलाम बनाता है और यह साथी। इन गुणों के अतिरिक्त और भी बहुत से गुण अध्यापक में पाये जाते हैं। अच्छा शिक्षक होने के लिए यह अच्छा वक्ता भी होता है। और ऐसे ही बहुत से छोटे-छोटे गुण और रखता है। मगर मुख्य अन्तर यही है कि इसके जीवन की जड़ें प्रेम के सरोवर से सिंचती रहती हैं इसलिए वह वहां आशा रखता है, जहां दूसरे निराश हो जाते हैं, वहां ताजा दम रहता है जहाँ दूसरे थक जाते हैं, इसे वहाँ रोशनी दिखाई देती है जहां दूसरे अन्धेरे की शिकायत करते हैं। यह जीवन की परिस्थितियों को भी देखता है। लेकिन इनकी वजह से ऊंचाइयों को भूल नहीं जाता और बड़े की कदर के के साथ-साथ छोटे के महत्व को ओझल नहीं करता। मनुष्यता में मानव श्रेष्ठता का विचार भी आंखों के सामने रखता है, मगर नादान और विवश बच्चे की सेवा को अपने जीवन का गौरव मानता है। बच्चे की ओर से जब सारा संसार निराश हो जाता है तो बस दो व्यक्ति हैं जिनके मन में आशा शेष रहती है : एक उसकी माता और दूसरा उसका अध्यापक। ●

तीसरा रास्ता

अहिंसा और विज्ञान खयाली और बातें भी हो कर रह जा सकते है, किताबी चीजें बन जा सकते हैं और बहुतों के लिए हैं भी। गांधी जी की अहिंसा और विज्ञान खयाली, किताबी न था। इसलिए उन्होंने एक तीसरा रास्ता बनाया था। यह काम का रास्ता है। अहिंसा को भी जीवन में बरतना और विज्ञान को भी जीवन के लिए काम में लाना, उन्होंने अपने जीते जी यह कर के भी दिखाया था।

—डा० जाकिर हुसैन

तिब्बी तालीम

[राजकीय तिब्बिया कालेज, पटना में १६३८ में डा० जाकिर हुसैन का दीक्षान्त भाषण]

सज्जनो ! आपकी आज्ञा थी, उपस्थित हूँ और कृतज्ञ हूँ कि आप ने याद फरमाया और इस सम्मानित उत्सव में भाषण देने का सम्मान प्रदान किया। परन्तु सही निवेदन करता हूँ कि अभी तक मैं ठीक-ठीक नहीं समझा कि इस राजकीय तिब्बिया महाविद्यालय के प्रमाण-पत्र बाँटने के अवसर पर मैं इस कार्य के लिए क्यों बुलाया गया हूँ ? इस गुत्थी को सुलझाने का प्रयास किया तो विचार हुआ कि कहीं मेरे नाम के साथ जो कुछ दिन से डाक्टर शब्द जुड़ गया है उस से तो धोखा नहीं हुआ ! कभी-कभी ग्रामों और कस्बों में लोगों ने मुझ से नब्ज देखने और नुस्खा लिखने का आग्रह इस ही धोखे में किया है। परन्तु हमारे देश में तो यूनानी तिब्बियों और एलोपेथिक डाक्टरों में कुछ ऐसी बहुत बनती भी नहीं है कि सन्देह में मुझे यहाँ बुलाया जाता।

फिर विचार हुआ कि शायद यह कारण हो कि एक शिक्षा संस्था का उत्सव है। मेरा भी एक शिक्षा संस्था से सम्बन्ध है। शिक्षक और शिक्षार्थी का सम्बन्ध, शिक्षा और दीक्षा का कार्य और इस का उत्तरदायित्व अधिकतर एक सा ही होता है। चाहे शिक्षा केन्द्र में रहन-सहन, राजनीति, दर्शन और सभ्यता का पाठ हो या व्याख्या एवं अङ्गों की दुर्बलता, तिब्ब एवं चीर फाड़ का, परन्तु आज कल प्रत्येक कलाकार अपनी-अपनी कम्पनी में कुछ ऐसा मस्त रहता है और शिक्षा केन्द्रों में भी कुछ ऐसी बातें दिखाई देती हैं कि इस का भी भली प्रकार निश्चय नहीं हो सका।

फिर सन्देह हुआ कि शायद मुझे, सम्भव है, रोगियों के उस दल का प्रतिनिधि जानकर

आप ने निमंत्रण दिया हो जो आप की उच्च कला से लाभ उठाता है और आप के नए प्रमाण-पत्र पाने वालों के लिए कम से कम कुछ वर्ष और आप के कुछ मजेदार साथियों के लिए उम्र भर अभ्यास का काम देता है। परन्तु हमारे देश में वास्तविक और काल्पनिक रोगियों की भी कुछ ऐसी कमी नहीं है कि चुनने वाले की दृष्टि मुझ तक पहुँचती।

किसी एक कारण पर तबीयत पूरी तरह जमी नहीं तो मैंने सोचना बन्द किया और यह तय किया कि जो तीन कारण समझ में आये हैं उन्हीं को ठीक मान कर आप के सामने कुछ निवेदन कर दूँ। पहली बात यह है कि नवीन पश्चिमी तिब्ब और यूनानी तिब्ब में क्या वास्तविक बुनियादी अन्तर है, दूसरे यह कि मेरी राय में यूनानी तिब्ब की शिक्षा में किन बातों का विशेष ढंग पर विचार होना चाहिए और तीसरे यह कि भारत का प्रत्येक साधारण नागरिक इन तिब्बियों से, जो आप के महाविद्यालयों से पढ़ कर निकलते हैं, क्या आशा रखता है।

अनभिज्ञता

मेरा विचार यह है कि नये पाश्चात्य तिब्ब और यूनानी तिब्ब से मनुष्य जितना अनजान होगा उतना ही उनके अन्तर पर ज़िद करेगा। इनको अच्छी तरह जानना होगा कि ये वास्तव में एक, बस शाखा में भिन्न हैं। सत्य यह है कि पश्चिमी तिब्ब, यूनानी तिब्ब की बेटी है। बेटी ने माँ की बहुत सी वस्तुएँ ले ली है। परन्तु कुछ छूट भी गई हैं। बेटी बड़े घर ब्याही है साधनों की कमी नहीं, उसने बहुत कुछ नई दौलत प्राप्त कर ली है, प्रारम्भ में कुछ नई दौलत का गर्व था, कुछ कम आयु होने के कारण अनुभव की कमी; मा की जो वस्तुएँ रह गई थीं, उन्हें ज़रा घृणा से देखने लगी थी या उनकी ओर से लापरवाह हो गई थी, परन्तु है होशियार और बुद्धिमान। अब भी इन वस्तुओं को ले सकती है और शायद ले लेगी। माँ ज़रा चक्कर में आ गई, समय परिवर्तन हो गया, साधनों का अभाव रहा इसलिए जो कुछ अपने पास था उस को भी संभाल कर न रख सकी। बद हाली में साहस भी कम हो जाता है, नई वस्तुओं को प्राप्त करने का हौसला भी नहीं रहता, कुछ मिजाज भी चिड़चिड़ा हो जाता है, इसलिए बेटी की वस्तुओं की ओर एक आँख देखना भी उसे न भाता था।

परन्तु बेटी की दौलत इल्म की दौलत है जिसमें किसी का इजारा नहीं होता। यह उसी को मिलती है जो इसे बरतने को तैयार हो और उसी के पास रहती है जो उसे बढ़ाने का प्रयास करे और दूसरों को देने पर तैयार हो। इधर माँ का मिज़ाज भी सम्भल रहा है और जमाने का रंग भी, वह क्यों न इन वस्तुओं को अपना लेगी।

बेशक इस अपनाने के पश्चात् भी दोनों में भूगोल और रहन-सहन के वातावरण के कारण कुछ अन्तर रहेगा, पर इसमें कोई हर्ज नहीं। उदाहरणार्थ बेटी के घर में जड़ी-बूटियाँ कम होती हैं प्रायः बाहर से लानी होती हैं, प्रकट है वह इस उपाय में रहती है कि उन के जौहर (सत) निकाले ताकि सरलता से इधर-उधर भेज सके। फिर तबीयत भी जरा व्यापारिक है। धन से सम्बन्ध है। इस की दृष्टि तो हरदम हर वस्तु से लाभ पर लगी रहती है।

दवाओं से निःसन्देह मनुष्य का दुःख दर्द कम होता है। परन्तु लाभ भी तो उठाना है और जहां तक हो सके अधिक लाभ। बड़े पैमाने पर व्यापार करना है। कारखाने में वर्ष के बारह मासों में एक ही दवा बनती रहे तो क्या कहना। ऐसा करने में प्रकृति की प्रसिद्ध वस्तुओं से सम्बन्ध हो तो कष्ट होता है, इसलिए यूँ भी धन की रुचि दौलत पैदा करने के पूरे क्षेत्र में जिन्दा से मुर्दा की ओर है। वह मकान और पुल और जलयानों में लकड़ी के स्थान पर लोहा लगाना चाहता है, सरसों और तिल्ली के तेल के स्थान पर मिट्टी के तेल से काम चलाता है और फूलों के स्थान पर तारकोल में रंगों के कोष खोज निकालता है। प्रकट है कि इसकी दृष्टि इस पर है कि जड़ी-बूटियों से छुटकारा भी मिले और अप्राकृतिक तत्वों से काम निकले तो अधिक उत्तम है। प्राकृतिक तत्वों को भी रसायनिक ढंग पर बनाया जा सके तो अच्छा है और यह न हो सके तो जड़ी-बूटियों के सत निकाल कर और यूँ तोल कम कर के और माल में समानता उत्पन्न कर के उनकी बिक्री का क्षेत्र तो बढ़ा ही लिया जाय।

माँ का घर जड़ी बूटियों से भरा पड़ा है। इन में बहुतसियों को तो बेटी ने अभी बरता ही नहीं। परन्तु माँ के देश में चारों ओर निर्धनता है। यहाँ मंहगी दवाइयाँ बेच कर लाभ उठाने का विचार करें तो यहां के निर्धन लोग तो दवा को तरस-तरस कर ही मर जायँ। यहाँ आदमी इनकी प्राकृतिक सूरत को बदल कर टके सीधे करने की अधिक चिन्ता न करे तो क्या बुरा है। फिर दवाइयों की प्राकृतिक किस्म देने से उनका बहुत से कष्टों से भी बचाव हो जाता है। माँ की दवाओं का कोष बेटी से कहीं बड़ा है। उस की दवाओं के प्रभाव शताब्दियों के अनुभवों से जाने और परखे जा चुके हैं। बेटी को नई दवाओं को बरतते अभी जुमा-जुमा आठ दिन हुए हैं। निःसन्देह कुछ बीमारियों के लिए अचूक हैं, परन्तु अभी किसे ज्ञात है कि इन के प्रयोग से कहीं जीवन के काल पर तो प्रभाव नहीं पड़ता या शारीरिक बनावट में इन से कोई और बुरा प्रभाव तो इसके पश्चात् उत्पन्न नहीं होता। इस बेटी को अपनी वस्तुओं पर बहुत इतराना न चाहिये और माँ को उनका अनुभव करने में अधिक लज्जा नहीं करनी चाहिये।

संक्षेप में दवाओं के सम्बन्ध में आपसी लेन-देन में यूनानी तिब्ब को कुछ देने का ही अधिक अवसर है। इसके कार्य करने वालों का धर्म है कि जो अनगिनत जड़ी-बूटियाँ इनके प्रयोग में हैं और जिन पर इनका हजारों वर्षों का अनुभव है उनके प्रभावों की नई हकीमी खोज करें और उनके गुण पश्चिमी तिब्ब को बतायें। नये ढंग से रसायनिक खोज कर के उनके प्रभावों और गुणों का अधिक शुद्ध मूल्य स्थापित करें।

यूनानी तिब्ब ने ही नये तिब्ब की नींव रखी। जब यूरोप सो रहा था, तो इसने यूनानियों की विद्या की रक्षा की और उसे उन्नत कर के कहां से कहां पहुँचा दिया। और फिर यूरोप वालों के सुपुर्द किया। आज भी वह अपने दवाइयों के कोष से पश्चिमी तिब्ब को बहुत वर्षों दे सकती है। पिछले वर्षों में जो कार्य इस संबंध में हमारे देश में हुआ है, विशेषकर आयुर्वेदिक और यूनानी तिब्बी कालेज, देहली की खोज सम्बन्धी शाखा में डा० सलीमउज्ज़मा साहब सद्दीकी की खोजों ने अपनी ओर पश्चिमी बुद्धिमानों को

आकर्षित किया है। हमें आशा रखनी चाहिये कि यह सिलसिला बढ़ेगा और यदि हम अपने पुराने शिष्यों से बहुत कुछ लेंगे तो उन्हें कुछ न कुछ दे भी सकेंगे। आपके तिब्ब और नये तिब्ब की सबसे महत्वपूर्ण समानता तो यह है कि दोनों का आधार निरीक्षण पर है। यूनानियों और उनके पश्चात मुसलमानों ने इस कला की सब से बड़ी सेवा यही की है कि वहम और गुमानों के गोरख-धन्धे से निकाल कर निरीक्षण और परीक्षण पर इस नींव को सुदृढ़ किया। बुकरात और जालीनूस से कुछ अधिक ही राजी और इबने सीना के प्रति तिब्ब कृतज्ञ है कि उन्होंने इस कला को हकीमी नींव पर स्थित किया। फिर इस नींव पर यूरोप ने तामीर को और ऊंचा उठाया। इस हकीमी नींव के लिये रोग और इलाज का निरीक्षण क्षेत्र बहुत आवश्यक है। आज नई तिब्ब जिस लम्बे चौड़े पैमाने पर निरीक्षणों को इकट्ठा कर रही है उससे मनुष्य आश्चर्य में पड़ जाता है। परन्तु आपके पास भी हजारों वर्षों के जमा किये हुए निरीक्षणों का कोष है। अफसोस कि इसका बहुत सा भाग निरीक्षकों के साथ नष्ट हो गया, परन्तु फिर भी आपकी खानदानी और शिक्षा की परम्पराओं में बहुत कुछ शेष है और आपकी प्राचीन पुस्तकों में विभिन्न देशों और विभिन्न दशाओं में जमा किये हुए निरीक्षणों का इतना ढेर है कि आज फिर संसार के सामने लाया जाये तो शायद तिब्ब की फिर से उन्नति में और इस में खोज करने वालों को नये मार्ग समझाने में बड़ी सहायता दे सके। हमारा कर्तव्य है कि इन निरीक्षणों की ऐसी ध्यान देने योग्य बातों पर अड़ने के स्थान पर जिन को इनके पश्चात निरीक्षणों ने झूठा सिद्ध कर दिया है, स्वयं इन निरीक्षणों को लें और इन पर हकीमी कार्य करें। रोगों की पहिचान और इनके इलाज के सम्बन्ध में आप की पुस्तकों में जो व्याख्यायें दर्ज हैं, जैसे अबुबक्र, मोहम्मद जकर या राजी की "हादी" में जिसकी कलमी पुस्तकें आज यूरोप के कोई आधे दर्जन पुस्तकालयों में बिखरी पड़ी हैं और किसी मेहनती खोज करने वाले की बाट जोह रही हैं। उनको पढ़कर आज भी लाभदायक फल निकाले जा सकते हैं। या आप का नब्बाजी का फन है, इसमें हजारों वर्षों के निरीक्षण का निचोड़ है और इन वस्तुओं से पश्चिम के दक्ष लोग दिल के रोगों को आज फिर से मालूम कर रहे हैं। जिस चीज पर आज से कुछ वर्षों पहले वे और उन से अधिक उन के जाहिल चेले हंसा करते थे, उसकी बारीकियों का पता चलाने पर आज स्वयं नित नये औजारों की सहायता से ध्यान देते हैं। आप का फन अपने हजारों वर्षों के निरीक्षण की सहायता से इस नई खोज की सफलताओं को बहुत से मार्ग बता सकता है।

वातावरण का प्रभाव

कहते हैं कि हर फन पर रहन--सहन के वातावरण का प्रभाव भी होता है। आपकी तिब्ब जिस काल में बढ़ी थी वह व्यक्ति से अधिक समाज का और अंग से अधिक पूर्णता के महत्व का काल था। पश्चिमी तिब्ब को उन्नति उस समय हुई जब यूरोप, अंग या भाग को मानने वाला काल था। लोकतन्त्र, लिबरल दर्शन विज्ञान सब की माँग यह थी कि ध्यान पूर्णता की ओर से हट कर अंग की ओर आये। इस अवधान के उत्पन्न करने में भी अवश्य अरबी और इस्लामी मस्तिष्क का कुछ भाग था और यह बात सत्य की सीमा में आती है, परन्तु अधिकता तो प्रत्येक वस्तु की बुरी होती है धीरे-धीरे हुआ यह कि अंग पर ध्यान देने ने कुल की ओर से गाफिल कर दिया। ये लोग पेड़ों को देखने

में ऐसे तन्मय हुए कि जंगल आंखों से ओझल हो गया। तिब्ब में भी यही हुआ। रोगों की एकाङ्गी खोज और विशेष रोग के विशेषज्ञों के पृथक् कार्य का फल यह हुआ कि रोगी के पूरे व्यक्तित्व पर से दृष्टि हट गई। आपके तिब्ब का मार्ग कुछ और था।

अफलातून से एक प्रसिद्ध बातचीत में सुकरात ने पूछा है, "क्या तुम ख्याल करते हो कि कुल महत्व का पता लगाये बिना तुम आत्मा के महत्व को समझ सकते हो?" तो उसने उत्तर दिया कि 'जी, सुकरात का कथन तो यह है कि आत्मा तो आत्मा है। शरीर का महत्व भी कुल के विचार से ही समझा जा सकता है।"

आज पश्चिमी जिन्दगी के सांचे बदल रहे हैं। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इस समय अंश से कुल की ओर रुख है। इस लिए मेरा तो ख्याल है कि पश्चिमी तिब्ब, जो एक सत्य मार्ग पर तनिक अनुचित सीमा तक बढ़ गई थी वहां से लौटेगी और आप की तिब्ब की यह विशेषता कि रोगी के पूरे व्यक्तित्व को सामने रख कर उसके एक-एक अङ्ग के दु:ख-दर्द का इलाज खोजती थी, फिर नये तिब्ब के अभ्यास में वापस आयेगी और क्या आश्चर्य है कि मिजाजों और तबीयतों की वह दृष्टि जिससे आप रोग की खोज और इलाज की तजवीज में क्या कुछ सहायता नहीं लेते, फिर नये तिब्ब में अधिक विस्तार और कारणों सहित स्पष्ट होकर प्रवेश करे।

परन्तु जहां आपकी ओर से नये पश्चिमी तिब्ब पर ये प्रभाव पड़ सकते हैं, वहां इसकी भी आवश्यकता है कि नये तिब्ब ने जिन पुरानी अशुद्धियों को रद्द किया है, जो नई बातें मालूम की हैं उन्हें आप खुले मन से स्वीकार करें। खोज की नयी विधियों को अपनायें जोकि आप ही की पुरानी परन्तु भुलायी हुई विधियां हैं, नई हकीमी बोलचाल के ढंग सीखें कि अपनी समझायें और दूसरे की समझ सकें। योग्यताओं की विरुद्धता से ही न जाने कितने परदे पड़ गये हैं। एक ही बात कहते हैं और दूसरों को विरोधी समझते रहते हैं। आप के पास जो कुछ है दीजिये और उनके पास जो कुछ है लीजिये। विद्या उसकी सम्पत्ति होती है जो इसे खोजता है और इसे प्रयोग करता है। अपनी पुरानी पुस्तकों को झाड़ डालिये। इन से अभी बहुत कुछ सीखा जा सकता है। इनसे सीखिये और दूसरों को सिखाइये। दूसरों की पुस्तकों में जो है उसको अपनी पुस्तकों में लिखिये। आपके पूर्वज यदि उस ही पर संतोष करते जो उन के पास था, तो उनका "फन" कहां होता? उन्होंने तो हुनैन बिन इसहाक और ईसा बिन अहिया और साबित और इब्राहीम के साथ अनुवाद कर्ताओं की सेना लगा दी थी और जहां से जो मिला अपनी भाषा में लिख लिया और फिर उस की बुनियाद पर आगे कदम बढ़ाया। आज यूनानियों की बहुत सी खोजें संसार को अरबी अनुवाद के द्वारा मिल सकती हैं। आपके "फन" के बाबा आदम जालीनूस की व्याख्याएं आज यूनान में नायाब है और अरबी अनुवाद द्वारा ही संसार तक पहुंची हैं। संसार के परिवर्तनों को पूर्व ही से कौन देख सकता है। लेकिन शायद नये पश्चिमी तिब्ब की वस्तुएं आने वाली पीढ़ियों को भारतीय अनुवाद से पहुंचे। परन्तु ऐसा तब ही हो सकता है कि आप में विद्या के लिए वही लगन हो जो आपके पूर्वजों को थी और सीखने का वही उत्साह हो जो प्रत्येक स्थान पर और प्रत्येक व्यक्ति को अच्छी

बात सीखने को तैयार रखता है। इस समय हमारे देश में 'दोनों' दलों में बिना भेदभाव ऐतिहासिक दृष्टिकोण आवश्यकता है। यह पैदा हो जाय तो दोनों एक दूसरे से लाभ उठायें और तिब्बिया कालेज में प्रमाण पत्र वितरित करने के अवसर पर किसी डाक्टर और मेडिकल कालेज के उत्सव में किसी यूनानी तिब्ब को बुलाने में दोनों हिचकिचाहट न करें।

जिम्मेदारी

मैंने ऊपर जिन गुणों का वर्णन किया है अर्थात् अपने ऊपर विश्वास और दूसरे से सीखने की भावना, विशाल दृष्टि और बिना भेदभाव उनके पैदा करने का काम बहुत कुछ तिब्ब के शिक्षा केन्द्रों के जिम्मे है। आज्ञा दीजिये कि यूनानी तिब्ब की शिक्षा के संबंध में कुछ विचार संक्षेप में प्रस्तुत कर दूँ। पहली बात जिसका कहना जरूरी समझता हूँ यह है कि इन शिक्षा केन्द्रों को हरदम यह याद रखना चाहिये कि तिब्ब एक "फन" है, विद्या पर आधारित। इसके शिक्षा पाने वाले को इसे विद्या की तरह जानना और "फन" की तरह सीखना चाहिये। विद्या सत्य का पता लगाना चाहती है दूसरे के कहने पर संदेह करती है। फिर अपने निरीक्षण और सोच विचार से इस सन्देह का हल ढूँढती है और जब उसे मिल जाता है तब ही उसे सन्तोष होता है। 'फन' किसी उद्देश्य के प्राप्त करने के लिए शुद्ध साधनों की खोज करत है और उन्हें प्रयोग करने की विधियाँ निकालता है। 'फन' बताता है कि यह कैसे हो सकता है। विद्या बताती है कि क्यों ऐसा हुआ। तिब्ब में विद्या के बिना 'फन' अन्धा रहता है और फन के बिना विद्या बेकार। अच्छे तिब्बी शिक्षा केन्द्र का काम यह है कि तिब्ब की विद्या और तिब्ब का फन दोनों सिखाये। यह आवश्यकता इस कारण से और भी महत्वपूर्ण है कि इस 'फन' से अपरिचित दावेदारों की दुनियां में कभी कमी नहीं रही। प्राचीन काल से हर व्यक्ति ने इसमें ध्यान दिया और आज तक करीब-करीब हर रोग, और प्रत्येक रोगी की सेवा करने वाले नुस्खों में परिवर्तन को प्रार्थना करना और खोज की बात करना वह अपना जन्म सिद्ध अधिकार समझता है। किसी रईसका किस्सा है कि उन्हें एक बार ख्याल आया कि आओ याद करें कि नगर में कौन से धन्धे वाले सब से अधिक हैं। इन दिनों सख्या और गिनती तैयार करके छपती नहीं थी। उन्होंने अपने मित्रों और सहयोगियों से पूछा। किसी ने कुछ बताया किसी ने कुछ। दरबार के मसखरे ने कहा "हूजूर, तबीब सबसे ज्यादा हैं।" तबीब इस शहर में ऐसे बहुत थे नहीं। सब ने इस बात को काटा तो मसखरे ने कहा, "बहुत अच्छा जिन्दगी है तो किसी दिन अपने कथन का सबूत पेश कर दूँगा"। दूसरे ही दिन प्रातः मसखरे ने अपने चहरे पर ऊपर से नीचे तक एक चौड़ी सी पट्टी लपेटी और घर से निकला। पहला ही व्यक्ति जो द्वार पर मिला उसने पूछा, "क्यों भाई, क्या हुआ"? मसखरे ने कहा "दाढ़ में दर्द है, रात भर पलक से पलक नहीं लगी"। जवाब मिला, "भाई, बड़ी ही अच्छी दवा है, इसकी हजार बार परीक्षा कर ली गई है, फलां फलां चीज लो और पीस कर मल लो। भला दर्द खड़ा तो रह जाय"। मसखरे ने एक कागज के टुकड़े पर कुछ लिखा जैसे दवा का नाम लिख रहा हो, परन्तु लिखा था तबीब साहब का नाम। कुछ पग ही आगे बढ़ा होगा एक और बड़े बूढ़े मिले। "अरे भाई यह क्या"? मसखरे ने फिर वही बात कही, उत्तर मिला "भाई, इसकी तो बड़ी अच्छी दवा मेरे पास है, एक साधू ने बख्शी थी, फलाँ-फलाँ चीज ले कर पानी में उबालो और इससे गरारा कर लो। एक ही बार में दर्द गायब हो जायगा"। मसखरे ने उन का नाम भी टांक लिया। रास्ते भर पग-पग पर कोई महाशय मिलते और कोई न कोई परीक्षित नुस्खा बताते

और यह सब तबीबों का नाम लिखता जाता। होते-होते रईस साहब के महल पर पहुँचा। नौकरों, साथियों में से जो मिलता है यही पूछता है कि, "क्या हुआ"? और झट एक परीक्षित दवा बता देता है। इसने इन सब के नाम भी लिख लिए। इतने में रईस साहब का सामना हो गया बोले, "अमाँ ये क्या"? कहा "हुजूर, दाढ़ में सख्त दर्द है। रात भर सोया नहीं। जी चाहता है कि दीवार से सर मारूं।" "नहीं अमाँ" रईस साहब बोले "ये भी कोई बीमारी है। इसमें क्या रखा है। उठाना तो वह मेरी लाल पुस्तिका। इसके तो दसियों परीक्षित नुस्खे हैं। लो ये दवाएँ मगा लो, सब को पीसकर पोटली बनालो और गर्म करके जरा सेक लो, बस दर्द गायब"। मसखरे ने रईस साहब का नाम भी दर्ज कर लिया। पट्टी खोल दी और हाथ जोड़ कर निवेदन करने लगा कि "हुजूर जब मैंने यह निवेदन किया था कि तिब्ब का धन्धा सब से ज्यादा आम है तो स्वयं मुझे भी खबर न थी कि इतने तबीब होंगे। घर से यहाँ तक आते-आते कोई सौ से ऊपर तबीब मुझे मिल गये। फहरिस्त देखिये। हुजूर का भी नाम बुद्धिमान तबीबों की इस फहरिस्त में दर्ज है।"

यह दशा कुछ हमारे ही देश में विशेष नहीं है न अशिक्षित मूर्खों तक सीमित है। उदाहरणार्थ इंग्लिस्तान के हकीमों की सब से प्रसिद्ध सभा रॉयल सोसायटी के स्थापित करने वाले, रसायनिक जानकारी की नींव डालने वाले फैलाव के सम्बन्ध में उस मशहूर नियम के दरियाफ्त करने वाले जो आज तक उनके नाम से प्रसिद्ध है, राबर्ट बाइल ने भी अभी ढाई सौ वर्ष भी नहीं हुए ऐसे ही परीक्षित नुस्खों का संकलन प्रकाशित कराया था जो बहुत सी बेकार और बहुत सी हानिकारक दवाइयों से भरा हुआ था। इसे भी बहुत समय नहीं हुआ है कि इंग्लिस्तान के एक प्रसिद्ध अमीर ने एक 'सफूफे हमदर्दी' का आविष्कार किया था। किसी रोगी व्यक्ति के खून से सने हुए वस्त्रों को इस सफूफ के मिश्रण में तर करने से घाव अच्छे हो जाते थे। इस सफूफ को हजारों जख्मियों ने इस्तेमाल किया होगा और सैकड़ों सच्चे अंग्रेजों के प्रमाण पत्र इसके प्रभाव की गवाही देते हैं। खून से सने कपड़ों को मिश्रण में भिगो दिया और बस दर्द घटने लगा। जख्म भरना शुरू हो गया। खुद हमारे देश में हमारे ही समय में ऐसे पवित्र इलाज करने वाले गुजर चुके हैं, जिनके चित्र को प्रातः ही देखने से हजारों बीमार अच्छे हो जाते थे।

प्रथम कार्य

मैंने इस भय का तनिक विस्तार से इसलिए वर्णन किया है कि यदि आप की शिक्षा इस का इलाज न कर सकी तो मानो इस ने अपना बुनियादी काम नहीं किया। आप का "फन" निरीक्षण और परीक्षण पर आधारित है परन्तु बुकरात के कथनानुसार निरीक्षण बड़े धोके देते हैं और निश्चित तय करना बड़ा कठिन है। आप की शिक्षा का प्रथम काम यह है कि शुद्ध निरीक्षण की योग्यता उत्पन्न करें, इस के धोखों से बचना और शुद्ध निरीक्षण से शुद्ध फलों पर पहुँचने का अभ्यास करायें। ठीक देख सकना, तर्क विधि पर सोच सकना सिखा दीजिए तो आप ने शिक्षा का तीन चौथाई कार्य कर दिया। ऊपर जिन लोगों का वर्णन हुआ ये सब इरादे से धोखा न देते होंगे और जो इनकी बात मानते थे वे सब बिलकुल गधे न होंगे, बात केवल इतनी है कि तर्क विधि से सोचने का गुण मनुष्य में आम नहीं होता, शिक्षा भी प्रायः इस आवश्यक कार्य की ओर से उदासीन रहती है और समझती है कि

कुछ पुस्तकें रटा देने से, कुछ नुस्खे लिखा देने से, कुछ अद्भुत-अद्भुत नाम याद करा देने से मनुष्य शिक्षित हो जाता है, हालाँकि शिक्षा का कार्य है मानसिक शक्तियों का विकास करना इसमें, क्रम और निरीक्षण के धोके से बचने की योग्यता उत्पन्न करना। धोकेबाज़ी और इरादे की दुर्बलता के जो उदाहरण ऊपर दिए गए उन में बस यही अशुद्धि तो आम तौर पर होती है कि यदि कोई वस्तु किसी दूसरी वस्तु के पश्चात् प्रकट हो तो लोग पहली को रोग का कारण और दूसरी को वह रोग जिसका कोई कारण हो समझ बैठते हैं। ख्याल होता है कि यह इसके पश्चात् हुआ है इसलिए इसके कारण हुआ होगा। हालाँकि तर्क विधि पर सोचने वाला सदा यह ज्ञात करना चाहता है कि आया यही फल बिना पहली वाली बात के भी प्रकट होता या नहीं या यह कि कहीं यह फल पहली बात के होते हुए तो पैदा नहीं हुआ। इन प्रश्नों के उत्तर के लिए वह अपने निरीक्षण को अनुभव से जाँचता है। कुछ हालात को बदलता है, कुछ को उन के हाल पर रहने देता है और यूँ धीरे-धीरे रोग के कारणों और रोग के सम्बन्ध का पता लग जाता है।

यदि आप अपने शिष्यों को तिब्ब की सारी पुस्तकें रटा दें, परन्तु इनमें निरीक्षण और निरीक्षण से जाँच की आदत न डालें तो आप तिब्ब की शिक्षा नहीं देते, वैसे ही बताते हैं। आप के फन में इस का भय और अधिक इस कारण से है कि यह निरीक्षण पर आधारित है। यदि विद्या का सहारा इसे न हो तो यह धीरे-धीरे "तिब्ब के फ़न" की श्रेणी से अट्ट-पट्ट पर और अट्ट-पट्ट से प्राणों के भय तक पहुँच सकता है। हमारे देश में तिब्बी शिक्षा के प्रबन्ध की ख़राबी ने इस 'फन' को नीची से नीची मंजिल तक पहुँचाने में क्या कमी की है।

आपका कर्त्तव्य है कि इसे इसकी विद्वता की श्रेणी से गिरने न दें। बल्कि सबसे ऊँचे पद पर इसे पहुँचाएं, जिस के लिए आवश्यकता है कि बजाये इसके कि सब कुछ थोड़ा-थोड़ा बताया जाये, कुछ ही चीजें अच्छी प्रकार से सिखाई जायें। पाठ्यक्रम को हरे-सूखे से भर देने के स्थान पर इसका प्रबन्ध हो कि बुनियादी विद्याओं, रसायन, व्याख्या और अङ्गों के कार्यों की विद्यार्थियों को पूरी जानकारी हो जाय; केवल समय पर पूरा करने और परीक्षा पास करने के लिए नहीं बल्कि वास्तव में इनके सिद्धान्त की विद्यार्थी जानकारी प्राप्त कर लें, इन विद्याओं में जिस प्रकार उन्नति होती है उस के गुर को समझ लें और प्रयोगशाला तथा आपरेशन थियेटरों में उन विधियों का प्रयोग भी कर लें जिन पर चल कर फन वालों ने कमाल हासिल किया है, तो बड़ी बात हो। इन राहों पर चलने का समय तो सारी उम्र मिलता रहेगा। परन्तु इन पर चलने की योग्यता और इच्छा विद्यार्थी काल में अवश्य पैदा कर देनी चाहिए। यह विद्या लम्बी-चौड़ी तो न हो परन्तु गहरी हो। इस की गहराई आप के विद्यार्थियों को अट्ट-पट्ट के उथलेपन से बचायेगी।

प्रयोगात्मक शिक्षा

सब से अधिक जरूरी यह है कि आपको पुस्तकीय शिक्षा से कहीं अधिक ध्यान प्रयोगात्मक शिक्षा की ओर देना चाहिए। निरीक्षण और अनुभव का, अभ्यास का अवसर भी शिक्षार्थी को शफाखाने में

मिलेगा और प्रयोगात्मक इलाज करने और देख भाल का भी. यहीं इस की शिक्षा की नीवें सुदृढ़ होंगी और "फन" की महारत भी प्राप्त हो सकेगी। आज पश्चिमी तिब्ब के शिक्षा केन्द्रों के साथ जैसे प्रयोगशालाओं और शफाखानों का प्रबन्ध होता है, कोई कारण नहीं कि इससे कम दर्जे पर इस्लामी तिब्ब के शिक्षा केन्द्रों के साथ हो। इस्लामी तिब्ब ने जिन दिनों यूनानियों की विद्या में चार चाँद लगाए थे तो इसकी शिक्षा हेतु भी ये साजोसामान होता था। आज से हज़ार वर्ष पूर्व के उस शफाखाने का हाल मालूम कीजिए जो अहमद बिन तूलून ने काहिरा में स्थापित किया था। फिर मारस्तान इल कबीर इल मंसूरी का हाल पढ़िये, जो १३८४ में कहीं स्थापित हुआ। इसके खर्चों के अनुमान देखिये, हर रोग के रोगियों के पृथक-पृथक रहने के प्रबन्ध का जिक्र देखिए, बीमारों के खाने की तैयारी के प्रबन्धों का विस्तार सुनिए, शफाखाने के साथ शिक्षा के लिए पढ़ाने के कमरों का प्रबन्ध देखिए, दवाइयों के पृथक कोषों का विस्तार ज्ञात कीजिए तो ख्याल होता है कि बीसवीं शताब्दी के किसी बहुत बड़े पश्चिमी शफ़ाखाने का हाल सामने है। फिर तेरहवीं शताब्दी के मध्य में तबरेज़ में रशीदउद्दीन फज्ल इल्लाह् के रबी रशीदी की सैर कीजिये। इस के पत्रों में तमाम संसार से अच्छी से अच्छी दवाइयों की बड़ी मिक़दारों के आर्डर देखिए और इस की देख-रेख में तिब्ब की शिक्षा के विस्तृत हालात ज्ञात कीजिए तो ख्याल होता है कि ठीक-ठीक शिक्षा देने का प्रबन्ध आज भी कहीं इससे अधिक उत्तम नहीं है। इस एक तबीब वज़ीर ने हिन्दुस्तान, मिस्र, श्याम और चीन से पचास बाकमाल तबीब जमा कर लिए हैं, प्रत्येक अपने फन में अपने समय का अद्वितीय है, प्रत्येक के साथ केवल दस-दस चुने हुए होनहार शिक्षार्थी नियुक्त हैं। इनके जिम्मे शफाखाने में निश्चित कर्त्तव्य है। ये बीमारों की दशा का निरीक्षण करते हैं, इसके नोट्स रखते हैं और अपने अध्यापकों से इन के सम्बन्ध में बातचीत करते हैं। शफाखाने के कामों के लिए हर प्रकार के दक्ष लोग सहायक हैं, जिन के साथ प्रयोगिक कार्य सीखने के लिए पाँच-पाँच सहायक शिक्षार्थियों में से हैं। इन शिक्षार्थियों से यह आशा हो सकती है कि इन्हें शुद्ध निरीक्षण की विधि आ जायेगी और निरीक्षण से शुद्ध फल निकालने की योग्यता सीख लेंगे। इन से आशा हो सकती है कि ये निरीक्षण के धोखों से बच सकेंगे और अपने फल के पद को अपने प्रयासों और अनुभवों से बुलन्द करेंगे। मेरे विचार से तो आप के फ़न की तालीम में सफलता का गुर बस यही है कि शिक्षा-काल में बुनियादी चीजें सिखायें। ऊँची बातों को छोड़िए, कम चीजें सिखाइये और पुस्तकों के स्थान पर प्रयोगिक कार्य की ओर अधिक ध्यान दीजिए। विद्यार्थियों में अध्यापक अपने उदाहरण से, अपने फन से प्रेम, इसकी शराफत की अनुभूति, मेहनत की लगन, काम को हमेशा अपने बस भर अच्छी से अच्छी तरह करने की आदत, रोगियों से सहानुभूति की आदत पैदा कर दें और इन की मानसिक शिक्षा की वह व्यवस्था जिसका जिक्र कर चुका हूँ, तो इन्हें विश्वास होना चाहिए कि एक शरीफ फन के अच्छे फन वाले इनकी सहायता से पैदा हुए और यह विश्वास इतना बड़ा इनाम है कि कोई अध्यापक इस से अधिक की इच्छा नहीं कर सकता।

विद्यार्थियों से अनुरोध

अब इस निज़ामिया केन्द्र के कार्यकर्ताओं से और विशेषत: विद्यार्थियों से जो इस वर्ष निवृत्त हुए हैं और आज प्रमाण-पत्र प्राप्त कर रहे है, उस दल की ओर से कुछ कहना चाहता हूँ

जिन की सेवा इन के जिम्मे है, अर्थात् आम हिन्दुस्तानी नागरिकों की ओर से, उस आबादी की ओर से जिसकी निर्धनता, जिस की मूर्खता और जिसकी दासता इसे प्रायः यह जानने भी नहीं देती कि स्वास्थ्य किसे कहते हैं, इलाज किसका नाम है, दुःख-दर्द में कोई सहायता भी कर सकता है या नहीं, उस आबादी की ओर से जिसकी सेना की सेना चेचक, हैज़े, प्लेग में प्रति वर्ष एक बेतोप, बे बन्दूक की लड़ाई में काम आ जाती है, जिस के लाखों आदमी प्रति वर्ष मलेरिया में फँसते हैं और मरते हैं और मरने मे बचते हैं तो उम्र भर को अपने सारे काम को खो बैठते हैं, जिस ने एक इन्फ्लुएंजा की महामारी में दो वर्षों के अन्दर कोई पचास लाख आदमी हाथ से खो दिए थे, उस आबादी की ओर से जो रोग के आक्रमण के सामने ऐसे ही लाचार हैं जैसे सिंह के सामने बकरी, जो न स्वास्थ्य रक्षा के नियमों से परिचित है न रोग का सामना करने के उपायों से, जो सिसक-सिसक कर जीना और एड़ियाँ रगड़-रगड़ कर मरना जानती है और अपनी लाचारी को सन्तोष का नाम दे कर प्रसन्न हो लेती है : इस आबादी को रोगों से बचाना, रोग होने पर इस का इलाज करना आप के जिम्मे है। इस में गिनती के लोग खाते-पीते हैं और शेष गरीब और निर्धन; खुश हाल बस ऐसे ही हैं जैसे किसी गरीब की हाँडी में शोरबे पर चिकनाई की कुछ बूँदें। अब आप को यह तय करना है कि आप अपना सारा ध्यान इन गिनती के खुशहालों पर केन्द्रित करेंगे जो भूख से नहीं अधिक खाने से बीमार होते हैं या उन पर जिन के बच्चों की हड्डियाँ ठीक भोजन न मिलने के कारण पूरी परवरिश तक नहीं पा सकतीं और जो जीवन में कभी एक बार भी भरपेट खाना नहीं खाते इसलिए किसी रोग के आक्रमण का सामना नहीं कर सकते। आपका मन भी खुशहालों में शरीक होने को चाहता हो तो अपना समय खुशहालों के लिए शक्तिदायक माजूनों और पाचक चूर्णों के नुस्खे लिखने में व्यतीत कर देंगे। परन्तु देश का काम इस से नहीं चलेगा। यूँ तो आदमी आँखों पर ठीकरियां रख ले तो कोई क्या कर सकता है, पर आप के चारों ओर जो दुःख, रोग फैले हुए हैं, गरीबी और फाक़े ने आम स्वास्थ्य का जो हाल कर रखा है, मूर्खता ने जिस प्रकार इस बुरी दशा को और अधिक बुरा बना दिया है, उस की अनुभूति आप को होगी तो आप चैन की नींद न सो सकेंगे। जीवन की विपदा, दुःख, बीमारियाँ हमसे इतनी पास है कि प्रायः हम इनसे लापरवाह हो जाते हैं। आहें इतने सीनों से निकलती हैं कि सारा वातावरण इन से भर जाता है और हम इन्हें सुन नहीं सकते और शायद अपनी जिन्दगी गुज़ारने के लिए यह ठीक ही हो, इसलिए कि यदि पूरी-पूरी अनुभूति हो, हर आह सुनाई दे और हर दुःख दिखाई दे तो ऐसा हो जाय जैसे कोई घास के उगने और बढ़ने की आहट सुनने लगे और हर जीव की दिल की धड़कन अनुभव करने लगे और शायद हम इस भयानक शोर को सहन न कर सकें जो विपदा के इस सन्नाटे में छिपा हुआ है। भले ही यह सुनाई दे कर हमारे कानों के परदे न फाड़े और दिखाई न दे कर हमारी आँखों को सला-सला कर ज्योति हीन न करे, परन्तु इसके अस्तित्व की जानकारी हम में है और इस से भागना सम्भव नहीं। मेरा निवेदन आप से यह है कि इस दुःख के दूर करने के लिए आप कमर बांधें। साहस से सब काम हो जाते हैं। चेचक की महामारी जिस से आप ही के प्रान्त में हज़ारों मनुष्य प्रति वर्ष मरते हैं यूरोप में भी ऐसी ही आम बीमारी थी जैसी हमारे यहाँ है, बल्कि इस से कुछ अधिक। वहाँ तो करीब-करीब प्रत्येक व्यक्ति को यह रोग होना था। हर बारह मनुष्यों में से एक मनुष्य इसमे मरता था। जो बच जाते थे उन की बदनुमा आँखें और चेहरे उम्र भर इस के दुःख को याद दिलाते थे। धनी और निर्धन सब इस के हाथों तङ्ग थे। न मालूम कितने बादशाह

इस के शिकार हुए, अट्ठारवीं सदी में कोई छ: करोड़ मनुष्य यूरोप में इस रोग से मरे. अर्थात् प्रति वर्ष कोई छ: लाख, परन्तु आज यूरोप इस महामारी से करीब-करीब मुक्त है।

महामारियाँ

प्लेग की महामारी जिस में आज भी हमारे अनेक देशवासी प्रति वर्ष मरते हैं, कभी दूसरे देशों में भी आम थी। प्रसिद्ध लेखक गिबन ने एक स्थान पर लिखा है कि 'यदि पूछा जाय कि संसार के इतिहास में सब से अच्छा काल कौन सा था। तो मैं रोम का सन् ९६ और १८० ई० के मध्य का समय बताऊँगा।" गिबन बड़ा लेखक है और इसकी बात वज़न रखती है, परन्तु आप को शायद ज्ञात होगा कि इतिहास के इस सब से उत्तम समय में रोम में कम से कम तीन बार प्लेग की महामारी फैली और सन १६४ ई० से तो बराबर १६ वर्षों तक रही। इस 'सब से उत्तम' समय का प्रारम्भ इस महामारी से हुआ जिसमें एक-एक दिन में दस-दस हज़ार प्राण गए। इस समय इस सारे देश में मलेरिया फैला और तीन शताब्दियों तक देश को नष्ट करता रहा। यहाँ तक कि जर्मन-जङ्गलों के असभ्य कबीलों ने इसे नष्ट-भ्रष्ट किया परन्तु इस के बावजूद गिबन ने इसे 'सब से उत्तम' समय इसलिए कहा है कि गिबन के इस समय तक इस महामारी के जो आक्रमण यूरोप में होते रहे वे इन से भी अधिक भयङ्कर थे। गिबन के लिखने के समय यूरोप पर प्लेग की चार शताब्दियाँ समाप्त हो चुकी थीं। इन पश्चिमी नगरों में भी यहाँ की भाँति प्रति दिन हजारों मौतें होती थीं परन्तु आज इस रोग के कारण ज्ञात हो जाने से और उन्हें काबू में लाने की कोशिश से यूरोप इस रोग से स्वतन्त्र हो गया। अभी सन् १७९३ ई० में फिलेडेलफ़िया की जनसंख्या में प्रति १०० में१० आदमी पीले बुखार के शिकार हो गये थे। परन्तु अमरीकी डाक्टरों की विद्या और प्रयास ने अपने देश को इस सङ्कट से बचा लिया। और उदाहरणों से क्या लाभ, आप के सामने एक बड़ा महत्वपूर्ण, शानदार काम मजबूत दिल और बुलन्द हिम्मत लोगो के करने का काम है। स्वार्थियों के लिए पैसा कमाने का अवसर है परन्तु उनकी छाती पर यह बोझ रहेगा कि उन्होंने अपनी जाति वालों, अपने देशवासियों की निर्धनता, नासमझदारी, दासता, लाचारी से लाभ उठा कर कुछ धातु के टुकड़े इकट्ठे कर लिए और रोगों और बीमारियों के विरुद्ध लड़ने और अपनी जाति को इससे छुटकारा दिलाने के मुबारक काम में हाथ न बटाया। नि:सन्देह अपना जीवन व्यतीत करने के हेतु भी प्रत्येक को कुछ आवश्यकता होती है। आप के जीवन व्यय का प्रबन्ध सरकार को करना चाहिए, आप के धन्धे के लोगों के लिए प्राचीन काल में यह रीति थी। सरकार इनकी सारी आवश्यकतायें पूरी करने का प्रबन्ध कर देती थी और ये निश्चिन्त हो कर धनी और निर्धन की सेवा बिना भेद-भाव के किया करते थे। इन परिवर्तित दशाओं में जब कि सरकार का साया उठ गया था, जिस प्रकार तबीबों के बहुत से प्रसिद्ध वंशों ने सारे देश में निर्धनों की सेवा की है, वह हमारे राष्ट्रीय जीवन की वह पूँजी है जिस पर हमें गर्व है। धन के जंग से राष्ट्रीय जीवन की सुन्दरता को सुरक्षित रखने हेतु कोई वस्तु इतनी प्रभावशाली नहीं होती जितना कि नि:स्वार्थ काम करने वालों का ऐसा दल जो इस के सुनहरे हार का इच्छुक न हो बल्कि इसका सारा ध्यान 'सत्य' की खोज हो, जो 'सत्य' के प्रचार और मानव सेवा के लिए समर्पित हो। मेरा आशीर्वाद है कि आप के केन्द्र से प्रमाण-पत्र लेने वाले उस दल में सम्मिलित हों और सच्चे सैनिकों की भाँति देश को अज्ञान और रोगों जैसे शत्रुओं से स्वतन्त्रता दिलायें।

बुनियादी तालीम

[जामिया नगर में बुनियादी शिक्षा सम्मेलन के अवसर पर ११ अप्रेल १६४० को डा० जाकिर हुसैन का भाषण।]

राजन बाबू, भाइयो और बहनो ! आज बुनियादी शिक्षा की दूसरी कान्फ्रेंस आरम्भ ही हो रही है। हमारे बुलावे पर आप सब लोग दूर और नजदीक से यात्रा की कठिनाइयाँ उठा कर, कामों का हर्जा करके इस में सम्मिलित होने आये हैं। हम हृदय से आप के कृतज्ञ हैं। हमें बड़ी आशा है कि अपनी बात सुना कर और दूसरों की सुन कर, अपनी सफलताओं से औरों का साहस बढ़ा कर और अपनी असफलताओं से दूसरों को आगाह कर के आप के यहाँ मिलने से देश सही बुनियादी शिक्षा की राह पर एक कदम आगे बढ़ सकेगा।

आपको याद होगा, पहली बुनियादी कान्फ्रेंस एक मालदार प्रदेश की हुकूमत ने आयोजित की थी। आज आप एक गरीब, कौमी विद्यालय के बुलावे पर यहाँ एकत्रित हुए हैं। आप को अगर रहने-सहने और खाने-पीने का वैसा आराम न हो तो हमें क्षमा कीजिएगा और विश्वास मानिए कि आप के आराम में अगर कोई कमी है तो इस कारण से नहीं कि हम आराम देना नहीं चाहते, बल्कि इस कारण से है कि हमारे पास इस का पूरा सामान नहीं है। वैसे मुझे तो यकीन है कि आप शायद इन छोटी-छोटी कठिनाइयों पर ध्यान ही नहीं देंगे। लेकिन पहली और दूसरी कान्फ्रेंस के इस अन्तर से ध्यान इस ओर अवश्य जाता है कि ये बुनियादी शिक्षा का काम है किस का, शासन का या निजी आदमियों और विद्यालयों का ? मैं चाहता हूँ कि हम सब इस बात को अच्छी तरह सोचें। जैसा कि आप को मालूम है, बुनियादी शिक्षा का प्रस्ताव निजी आदमियों ने बनाया था। अगर कोई शासन

इस प्रस्ताव को न अपनाता तब भी लोग शिक्षा के इस ढङ्ग को ठीक समझते। इस को कहीं न कहीं अवसर पाकर चलाते, अपने अनुभवों से विद्यालयों को शायद कोई नया मार्ग दिखा सकते या, जैसे बहुत से काल्पनिक प्रस्ताव बनाये जाते हैं, यह प्रस्ताव भी बनाया जाता और एक छोटी पुस्तक के रूप में कहीं न कहीं किसी पुस्तकालय में मिलता। लेकिन मैं आपसे पूछता हूँ, क्या आप के विचार से यह पहला और दूसरा रूप सम्भव था ? मैं तो समझता हूँ कि ये प्रस्ताव बना ही इसलिए था कि बनाने वाले के करीब हमारे देश को एक अच्छा राज्य बनने का समय आ गया था। अगर राज्य बन जाये तो वे इस काम को संभाले, न बने तो शिक्षा सम्बन्धी कार्य करने वालों का कर्त्तव्य है कि वे इसे चलायें और इस को चला कर सच्चे और अच्छे राज्य के आने का समय करीब ले आएँ। इस प्रस्ताव को बनाने वालों को अवश्य मालूम होगा कि अच्छे राज्य का बनना खेल नहीं। बनते-बनते ही बनता है। इसलिए शायद वे पहले ही दिन से राज्य की सहायता के बिना चलाने के लिए कमर कस चुके होंगे। यह तो बस संयोग की बात थी कि इस शिक्षा-प्रस्ताव को कई प्रदेशों की हुकूमतों ने थोड़ी बहुत काट-छाँट के बाद एक ही समय में मान लिया और बिना बहुत तैयारी के, और कहीं-कहीं तो ऐसे ऐसे लोगों के हाथों जिन्हें इस पर पूरा भरोसा था, इसे शुरू कर दिया, कहीं छोटे पैमाने पर कहीं बड़े पैमाने पर और आज भी इन में से कई जगह तो यह नया परीक्षण बड़ी महनत से चलाया जा रहा है। कहीं बे दिली से इसे घसीटा जा रहा है और एकाध जगह तो आठ-दस महीने के लम्बे अनुभव के पश्चात् जैसे थक कर या लज्जित हो कर इस से तोबाह भी कर ली गई है। इस में भी सन्देह नहीं कि ये हुकूमतें इस प्रस्ताव को मान न लेतीं तो इस पर जितना अनुभव हुआ है, न हो पाता. मगर साथ-साथ यह भी सच है कि हुकूमत के बाहर निजी लोगों को शायद इस से बैठे-बिठाये बे-वजह इतनी बे-चैनी भी न होती। केवल इस कारण से कि कुछ ऐसी हुकूमतों ने इसे चलाया कि जिनसे वे लोग राजी न थे, ये इस प्रस्ताव को जाँचना और मानना तो क्या एक दृष्टि देखना भी नही चाहते। यह भी हुआ कि हुकूमत ने इसे आज्ञा से चलवाया और काम कहीं नहीं तो जा कर ऐसे लोगों के हाथ में आया जो स्वयं या तो इस प्रस्ताव को समझे नहीं थे या किसी ऐसी वजह से जिस का शिक्षा से कोई वास्ता नहीं, इसे पसन्द नहीं करते थे।

सरकार का काम

शासन के हाथ में इस प्रस्ताव के आने से अगर लाभ हुआ तो हानि भी अवश्य हुई। फिर हमें क्या करना चाहिए ? क्या इसकी कोशिश करनी चाहिए कि इस काम को सरकार के हाथ में दें या कि गैर-सरकारी शक्तियों को इस की सेवा में लगायें ? मैं अपनी राय आप को बता दूँ। मैं समझता हूँ कि बुनियादी शिक्षा का काम सरकार का काम है। यह इतना बड़ा और फैला हुआ काम है कि निजी प्रयास इसे समेट नहीं सकते। लेकिन अगर राज्य किसी एक वर्ग या एक गुट के शासन का नाम है तो शिक्षा इस के हाथ में कभी अधिक समय तक सीधे मार्ग पर नहीं चल सकेगी। हाँ, राज्य अगर सामाजिक जीवन के उस प्रबन्ध को कहते हैं जिसकी नींव इन्साफ पर हो, जो स्वयं दिन-प्रतिदिन अपनी इस नींव को सुदृढ़ करके चरित्र की उन्नति करता जाता हो और जिसकी निगरानी में दिन प्रति दिन हर तबके का हर आदमी के लिए सुसंस्कृत व्यक्तित्व के पूर्ण विकास का मार्ग सरल से

सरल होता जाता हो तो फिर शिक्षा ऐसे राज्य का सबसे आवश्यक काम है। इस लिए कि स्वयं इस की चारित्रिक उन्नति इस काम से होती है। संसार का कोई राज्य पूर्णतया बेऐब नहीं हो सकता। मगर कुछ प्रदेश की नींव चरित्र और नेकी पर होती है और कुछ की नहीं। कुछ राज्य चरित्र की अच्छाइयों पर चलते हैं और कुछ नहीं चलते। कुछ न्याय के निकट होना चाहते हैं, कुछ नहीं चाहते। कुछ में सब के लिए उन्नति के मार्ग खुले हुए हैं, कुछ में कुछ के लिए खुलते हैं और कुछ के लिए बन्द हो जाते हैं। बुनियादी शिक्षा का कार्य प्रथम प्रकार के राज्य का कार्य है। दूसरे प्रकार के राज्य के हाथ में यह न पहुँचे तो अच्छा है। हमारे मुल्क में अभी इस चारित्रिक राज्य का बनना शेष है। फिर जब तक वह नहीं बनता क्या हम हाथ पर हाथ धरे बैठे रहें? नहीं। जिस तरह आजाद और अच्छे आदमियों का कर्त्तव्य है कि वे जल्द से जल्द अपने सामाजिक जीवन की नींव ऐसे चारित्रिक राज्य पर रखें जैसा कि मैंने अभी बयान किया है, वैसे ही हर सच्चे तालीमी काम करने वाले का फर्ज है कि वह ऐसे राज्य के बनने में अपने काम से सहायता करे। इस में शक नहीं कि इसका काम इस राज्य में कठिन होगा। परन्तु इस कारण से उसे छोड़ा तो नहीं जा सकता। हाँ, यह अवश्य जानना चाहिए कि खोदना बहुत होगा और पानी बहुत कम निकलेगा। परन्तु क्या आश्चर्य है कि इस परिश्रम ही से लोगों का ध्यान कुछ पलटे और हमारे देश में वह राज्य बने जो हमारे धीमे काम को एक ही बार में कहीं से कहीं पहुँचा दे। इस समय सौभाग्य से बाबू राजेन्द्र प्रसाद जी यहाँ मौजूद हैं और हमारी कांफ्रेंस का अभी कुछ मिनटों में उद्घाटन करने का कष्ट करेंगे। मै इनके जरिये से शिक्षा का काम करने वालों की यह प्रार्थना अपने देश के सब राजनीतिक पथ-प्रदर्शकों की सेवा में पहुँचाना चाहता हूँ कि ईश्वर के लिए इस देश में राजनीति को सुधारिए और जल्दी से जल्दी ऐसे राज्य की नींव डालिए जिसमें कौम कौम पर भरोसा कर सके कमजोरों को जोरावर का डर न हो। निर्धन धनियों की ठोकर से बचा रहे। जिसमें संस्कृति के साथ शांति फल फूल सके और हर एक से दूसरे की खूबियां उजागर हों। जहाँ हर एक वह बन सके जिसमें बनने का उसमें गुण है और वह बन कर सारे गुणों के साथ अपने को समाज का सेवक जाने।

मैं जानता हूँ कि इन बातों का कह देना सरल है और करना किसी एक आदमी के बस की बात नहीं। लेकिन मुझे यकीन है कि आज यह बात हमारे राजनीतिक पथ-प्रदर्शकों के हाथ में इतनी है जितनी पहले कभी न थी कि कुछ समझकर, कुछ समझाकर, कुछ मान कर कुछ मनवा कर, ऐसे राज्य की नींव रखदें। जब तक यह नहीं होता हम शिक्षा के काम करने वालों का हाल दया के योग्य है। कब-तक इस राजनीतिक मरुस्थल में हल चलायें। कब तक सन्देह और बदगुमानी के धुएं में शिक्षा को घुटने सिसकते देखें? कबतक इस डर से थर्राते रहें कि हमारी उम्र भर के प्यार को कोई एक राजनीतिक मूर्खता कोई एक राजनीतिक जिद भस्म कर देगी? हमारा काम भी तो कोई फूलों की सेज तो है नहीं! इसमें भी बहुत निराशाएँ होती हैं और प्राय: दिल टूटता है। फिर जब हमारे कदम डगमगायें तो हम कहाँ सहारा ढूंढें? क्या इस समाज में, जहाँ भाई एकदिल नजर नहीं आते, कोई कदर आखरी कदर मालूम नहीं होती, जिसमें कोई गीत नहीं जो सब मिलकर गायें, कोई त्योहार नहीं जो सब मिल कर मनायें, ? कोई शादी नहीं जो सब मिल कर रचाये, कोई दु:ख नहीं जो सब बटाये? हमारी यह कठिनाई दूर कीजिये और जल्द कीजिये। अब भी काफी देर हो चुकी है और देर न जाने क्या दिन दिखाये।

गैर सरकारी जिम्मेदारी

भाइयों और बहिनो मैंने राजन् बाबू के यहाँ होने से फायदा उठा कर ये जो बातें कहीं, मैं जानता हूँ कि आप सब के दिल की गूँज है। लेकिन अगर राजन बाबू कुछ न करें, अर्थात् राजनीतिक प्रथ-प्रदर्शक कुछ न कर सके तो क्या हमें थक कर बैठ जाना चाहिये ? हो सकता है कि थकावट हम में इतना दम न छोड़ें कि हम कुछ कर सकें। मगर जब तक ऐसा नहीं है इस बात का ख्याल भी अच्छा नहीं लगता। अगर हम को भरोसा है कि बुनियादी शिक्षा का काम हमारी कौम के लिए आवश्यक काम है, तो हमें बैठे-बैठे यह सोच कर राजनीति का मुँह नहीं ताकना चाहिये कि जब वह दुरुस्त हो जायेगी और जब ऐसा राज्य बन जायेगा जो अपने कन्धों पर सब नागरिकों की शिक्षा का बोझ उठा सके तो उस समय हम भी उस की मदद करेंगे। नहीं, अगर आज ही से इस अच्छे काम में लगे न रहेंगे तो शायद इस वक्त भी और अपनी नासमझी, अनुभव हीनता से काम को बिगाड़ेंगे। अच्छे से अच्छा राज्य भी तो अपने एक संकेत से वे नदियां नहीं बहा सकता, जिनके स्रोत पहले से खुले न हों। इसलिए इस काम को तो चलाना ही है और इस तरह चलना है कि जब कोई शासन बुनियादी शिक्षा के कार्य को लेना चाहे तो वह यह न कह सके कि हम जानते नहीं कि यह काम कैसे होगा और हो भी सकेगा या नहीं। यही नहीं, जब प्रादेशिक शासन इस काम को सम्भाल ले और इसे हमारी इच्छाओं के अनुसार ही चलाये तो क्या उस वक्त हमारा काम समाप्त हो जायेगा ? मैं समझता हूँ कि नहीं। कोई राज्य ऐसा नहीं होता कि उस में उन्नति की आवश्यकता न हो हर अच्छा राज्य, अगर सच्चाई और नेकी पर उसकी बुनियादी है तो अच्छे से और अच्छा होता जाता है। आदमी के सब उद्देश्यों का यही हाल है। आगे बढ़ते हैं, नहीं तो पीछे हटना होता है। अच्छा राज्य होता ही वह है जिस में नागरिक अपने जीवन को बराबर उत्तमतर बनाते जायें। इसलिए अगर राज्य ने बुनियादी शिक्षा के काम को अपने हाथ में ले लिया तब भी अच्छे समझदार और शिक्षा के काम से लगाव रखने वालों की एक सेना की सेना इस शिक्षा को अधिक उत्तम बनाने में शासन के स्कूलों के बाहर भी लगी होगी। वह ऐसे अनुभव कर सकेगी जो हुकूमत अपने काम के फैलाव की वजह से न कर सके और वह अपने अनुभवों से, सफलताओं से और असफलताओं से शासन को फैले हुए शिक्षा कार्य को नया मार्ग दिखा सकेगी। संक्षेप यह है कि गैर सरकारी लोगों पर काम का बोझ अब भी है और कल भी रहेगा। राजनीतिक परिवर्तन होते रहेंगे मगर बुनियादी शिक्षा का काम चलेगा। कभी शासन के हाथों, कभी शासन की सहायता के बिना। बुनियादी शिक्षा के प्रस्ताव में जो चीजें बुनियादी हैं उन्हें अब हमारी कौम, जहां तक मैं समझता हूँ हाथ से नहीं जाने देगी। पहली बात तो यह है कि हमारे मुल्क में ऐसा शासन होगा कि जो सब की भलाई बराबर चाहेगा, जो अमीर और गरीब, हिन्दू और मुसलमान हिन्दुस्तानी और गैर हिन्दुस्तानी में अन्तर न करेगा जो हुकूमत सब की स्वीकृति से और सब की भलाई के लिए होगी वह सब लड़के और लड़कियों के लिए कम से कम ७ साल की शिक्षा का प्रबन्ध करेगी और इसे अनिवार्य बनायेगी। मैंने ७ साल कम से कम कहा। तरक्की होगी तो शायद राज्य इस समय को बढ़ायेगा लेकिन अब किसी प्रकार किसी उत्तरदायी शासन में 'अपर प्राईमरी' और लोअर प्राईमरी और प्रारम्भिक तालीम के चक्कर में कौम ७ साल से कम अवधि की मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा पर राजी न होगी। दूसरी बात जिसे इस तरह आखरी तौर पर तय समझना चाहिये यह है कि ये सात साल की तालीम मातृ-भाषा में होगी। तीसरी बात जो मेरी राय में इन्हीं दो की भांति महत्वपूर्ण है वह

यह है कि तालीम के इन सात साल में काम को प्रमुख स्थान दिया जायेगा और जहाँ तक हो सकेगा इसके माध्यम से सिखाने और बताने की चीजें सिखाई और बताई जायेंगी। इस तीसरी बुनियादी बात का भी मेरी जानकारी में कोई विरोध है नहीं, मगर यह जरूर नई सी बात है, इसलिए इसके समझने में खुद बुनियादी तालीम के काम करने वालों को भी दिक्कत होती है। आप इजाजत दें तो मैं थोड़े शब्दों में अपना विचार बताऊँ कि शिक्षा कार्य का क्या अर्थ है और जो हम पुस्तकों की पाठशाला को काम की पाठशाला में बदलना चाहते हैं तो काम से क्या मतलब लेते हैं।

शिक्षा और काम

काम को शिक्षा में सम्मिलित करने की चर्चा आज से नहीं बहुत दिनों से है, मगर जितने मुँह इतनी बातें। कोई कहता है कि काम को सिद्धान्त के तौर पर मानो, इसे विषय न बनाओ। कोई कहता है कि इसे एक विषय बना लो, एक घण्टा दे दो, मगर और सब ज्यों का त्यों रहने दो। कोई कहता है कि काम ऐसा हो कुछ दाम भी हाथ आये। 'हरकत में बरकत है' बच्चों को जरा हाथ पैर चलाने का अवसर दो, चाहे कुछ बने या न बने। यह कोई मजदूरों का काम थोड़े ही है। यह तो बनाने का काम है। मैं इन लोगों में से किसी से झगड़ा मोल नहीं लेता, लेकिन अपने विचार प्रकट करना चाहता हूँ। मेरा विचार है कि जब हम शिक्षा के सम्बन्ध में काम का जिक्र करें तो हमें वही काम ध्यान में रखना चाहिए जिस से तालीम हो, मस्तिष्क की दीक्षा हो, आदमी अच्छा आदमी बने। मैं समझता हूँ कि आदमी का मस्तिष्क अपने किए को परख कर इसके अच्छे बुरे पर नजर करके उन्नति करता है और जब आदमी कुछ बनाता है या कोई काम करता है, चाहे यह काम हाथ का हो चाहे दिमाग का, तो इस काम से इसके मस्तिष्क को शिक्षा लाभ उसी समय पहुँचा सकती है जब वह इस काम का पूरा-पूरा हक अदा करे। काम से शैक्षणिक लाभ वही उठाता है जो इस काम का हक अदा करने में काम के अनुशासन को पूर्णतया माने। इसलिए हर काम शैक्षणिक कार्य नहीं हो सकता।

चार मंजिलें

शिक्षा का कार्य उसी समय हो सकता है कि आरम्भ में मस्तिष्क की तैयारी करें। जिस कार्य का आधार मस्तिष्क न हो वह कार्य मुर्दा मशीन भी कर सकती है और इस से मस्तिष्क की शिक्षा-दीक्षा नहीं होती। कार्य करने से पूर्व मस्तिष्क में कार्य का खाका, कार्य का चित्र बनाना आवश्यक है। फिर दूसरा कदम भी मस्तिष्क का ही होता है, अर्थात् इस चित्र को पूरा करने के साधन सोचना। इन में से किस को लेना किस को छोड़ देना। तीसरा कदम होता है इस कार्य को उन चुने हुए साधनों द्वारा संपन्न कर डालना, और चौथा कदम है किए हुए काम का मूल्यांकन कि जो चित्र बनाया था, जो करना चाहा था वही किया और जिस प्रकार करने का निश्चय किया था उसी प्रकार किया या नहीं और फल इस योग्य है या नहीं कि इस कार्य को किया जाता। ये चार मंजिलें न हों तो शिक्षा का कार्य सम्भव ही नहीं हो सकेगा परन्तु यदि ये चारों हों, तब भी प्रत्येक कार्य शिक्षा नहीं होता। प्रत्येक ऐसे कार्य से कुछ योग्यता अवश्य पैदा हो जाती है, चाहे हाथों की योग्यता, चाहे मस्तिष्क की, भाषा की, परन्तु योग्यता शिक्षा नहीं है। शिक्षित व्यक्ति का चित्र जो हम सबके समक्ष आता है, उसमें केवल योग्यता का रंग नहीं

होता। योग्य चोर भी होते हैं। योग्य धोखेबाज भी होते हैं। योग्य सच को झूठ भी कर दिखाते हैं। ऐसी योग्यता शिक्षा का उद्देश्य नहीं हो सकती। शिक्षा का कार्य वही कार्य हो सकता है जो किसी ऐसे मूल्य की सेवा करे जो हमारे स्वार्थ से दूर हो और जिसे हम मानते हों। जो अपने ही स्वार्थ का कार्य करता है, वह योग्य अवश्य हो जाता है, परन्तु शिक्षित नहीं होता। जो मूल्यों की सेवा करता है वह शिक्षा पा जाता है। मूल्य की सेवा में मनुष्य का कार्य उत्तरदायित्व निभाता है, अपने आनन्द की खोज नहीं करता। इससे वह आदमी बनता है, अपना चरित्र सजाता, है इसलिए कि चरित्र और है ही क्या इसके अतिरिक्त कि जो मूल्य स्वीकृति योग्य हैं, उनकी सेवा में मनुष्य अपनी इच्छाओं और लालचों और आनंद को दबाये, मूल्य की पूरी-पूरी सेवा करे और इस सेवा का जो उत्तरदायित्व है वह पूरा-पूरा अदा करे। कार्य का यह गुण हस्तकला में हो सकता है और हस्तकला इससे रिक्त भी हो सकती है। सच्चे कार्य की पाठशाला वही है जो बच्चों में कार्य से पूर्व सोचने और कार्य के पश्चात परीक्षण और मूल्यांकन की आदत डाले, ताकि कार्य से इस बात की आदत सी हो जाए कि जब कभी कोई कार्य करें हाथ या दिमाग का, तो उसका पूरा-पूरा उत्तरदायित्व निभाने का प्रयास करें। कार्य को शिक्षा का माध्यम बनाने वालों को प्रतिक्षण याद रखना चाहिए कि कार्य उद्देश्य हीन नहीं होता। कार्य प्रत्येक फल को स्वीकार नहीं करता। कार्य बस कुछ करके समय काट देने का नाम नहीं, कार्य केवल दिल बहलाव नहीं, कार्य खेल नहीं कार्य कार्य है, स-उद्देश्य परिश्रम है। कार्य शत्रु की भांति आपसे अपना हिसाब करता है। जो इसमें पूरा उतरता है, उसे वह ऐसी प्रसन्नता देता है जो कहीं नहीं मिलती। कार्य खेती है, कार्य ईश्वर की प्रार्थना है।

सच्ची शिक्षा

परन्तु खेती और प्रार्थना में भी तो लोग स्वार्थी हो जाते हैं; अपना स्वार्थ पक्का कर लिया दूसरे से क्या मतलब? कार्य की सच्ची पाठशाला यदि सच्ची शिक्षा का स्थान है तो काम को कभी अकेले का स्वार्थ नहीं बनने देती, बल्कि सारी पाठशाला की पाठशाला एक कार्य में लगी एक कक्षा बन जाती है जिसमें सब मिलकर कार्य करते हैं और सब के कार्य से ही सारा कार्य पूरा होता है। सब से सब का काम निकलता है और सब के किये बिना काम बिगड़ता है किसी एक की त्रुटि से सबके कार्य का हर्ज होता है। कमजोर को पीछे छोड़ कर आगे चल देना कठिन होता है, यूं मिल जुलकर काम करने में खवे से खवा मिलता है तो वे गुण पैदा होते हैं जिनकी हमारे देश में बड़ी कमी है अर्थात आदमी का निभाव करना और उत्तरदायित्व को अनुभव करना जिससे समाज का प्रत्येक कार्य, प्रत्येक का कार्य बन जाता है और फिर कार्य की अच्छी पाठशाला इस पर भी राजी नहीं होती कि इसके बच्चों ने काम से अपनी शिक्षा करली। कार्य से इसके बच्चे एक समाज से बन गये और इसके कर्त्तव्य और जिम्मेदारियां जानने और समझने ही नहीं बल्कि बरतने और उठाने भी लगे। बल्कि कार्य की अच्छी पाठशाला समाज को भी किसी ऊँचे उद्देश्य का सेवक बनाती है ताकि कहीं यह न हो कि अकेलों के स्वार्थ से तो बच जायें मगर इससे बचकर समाजी स्वार्थ के दल-दल में फंस जायं। सारांश यह है कि कार्य की पाठशाला यदि बन जाये तो वह अपने बच्चों को इस प्रकार का कार्य सिखा देती है जैसा कि कार्य का हक है। इन को मिल जुलकर कार्य करने का अवसर देती है और इनमें विश्वास पैदा कर देती है कि इन का काम समाज की सेवा है और फिर इस समाज में भी इस बात की

लगन पैदा कर देती है कि आदमी के ख्याल में अच्छे से अच्छे समाज का जो चित्र आ सकता है उससे यह समाज रोज नजदीक होता जाय। वह इस बात की नीव डालता है कि समाज में आदमी कोई तरह का काम करे इस काम को अपना समाजो धर्म और चारित्रिक कर्त्तव्य जाने और अपने कामों तथा अपने जीवन से अपने समाज को अच्छा समाज बनाने में महायता करे। यदि कभी हमारा समाज अच्छा समाज बन गया तो वह ऐसी पाठशालाओं बिना एक मिनट भी कैसे चैन लेगी। लेकिन जब तक पहिले ऐसो पाठशालाएं न होगी वह समाज सरलता से कैसे बन जायेगा? इसलिए जिमसे बन पड़े ऐसी पाठशालायें स्थापित करें। मेरा निवेदन केवल आप से नहीं, जो बुनियादी शिक्षा के साथी हैं, उनसे भी है और उनसे भी है, जिन्होंने बुनियादी शिक्षा के प्रस्ताव को बुरा माना है। मैं उनसे केवल यह कहना चाहता हूँ कि बुनियादी शिक्षा यदि वही वस्तु है जो मैंने अभी वर्णन की तो आप इसके विरुद्ध कैसे हो सकते हैं? जरूरी है कि किसी और बात ने आपको इसका विरोधी वताया है। शायद आपको बुनियादी शिक्षा के इस पाठ्यक्रम में जो एक निजी सभा ने बनाया था, कुछ बातें न जँचती हों। कुछ बातें आपके नजदीक इसमें कम होंगी, कुछ ऐसी होंगी जिन्हें आप नापसद करते होंगे, परन्तु पाठ्यक्रम बुनियादी शिक्षा की योजना नहीं है। पाठ्यक्रम सिद्धान्त नहीं। पाठ्क्रम ऐसा नहीं कि वदला न जा सके। पाठ्यक्रम उपस्थित करते समय भी पाठ्यक्रम बनाने वालों ने यह कह दिया था कि यह आजमाइशी चीज है। इस पर आज तक कोई आधी दर्जन सभाओं ने सोच-विचार तथा बहस कर करके कुछ घटाया-बढ़ाया है और बहुत कुछ मान लिया है। लेकिन यह मानना भी कोई अन्तिम बात नहीं। अभी दो दिन पश्चात् इस कान्फ्रेंस में इस पाठ्यक्रम पर बहस होगी और न जाने कितनी त्रुटियाँ सामने आयेंगी परन्तु इन त्रुटियों के कारण प्रस्ताव के बुनियादी सिद्धान्तों को, जो कि मेरी मान्यतानुसार शुद्ध और ठीक हैं छोड़ न देना चाहिए। इसमें छोड़ने वाले को ही हानि है। इन सिद्धान्तों को सामने रख कर दूसरा पाठ्यक्रम तैयार कीजिए, ऐसी कुछ पाठशालाओं में परीक्षण कीजिये और स्वयं अपने फल का मूल्यांकन कीजिये। अच्छा होगा तो दूसरे भी इससे लाभ उठायेंगे और यदि आप गलती पर होंगे तो गलती समझ में आजायेगी। शायद आप इस प्रस्ताव को इस कारण से न चाहते हों कि जिन्होंने इसे बनाया है आपको वे व्यक्ति अच्छे नहीं लगते। परन्तु अच्छो और ठीक बात तो अच्छों का खोया हुआ माल है, जहां भी हो वे उसे उठा लेते हैं। इस बात से आप क्यों अपने फैसले पर प्रभाव डालते हैं कि यह प्रस्ताव किस ने वनाया, और कहां बनाया और किन व्यक्तियों ने इसको स्वीकार किया। नाम न तो पूछे ही जायें न इनसे यूं भड़कना चाहिये।

मुझे क्षमा कीजिये, मैंने आप का बहुत सा समय ले लिया। मैं दिल से आप सब का स्वागत करता हूं आप के सामने तीन दिन परिश्रम का काम है। इन तीन दिनों के पश्चात और भी मेहनत आप के लिए हैं अर्थात यहां जो कुछ सोचा जायगा, उसे करना है। अगले वर्ष फिर अपने काम के फलों को परखना होगा और जिस प्रकार हम काम-पाठशालाओं में बच्चों को काम से शिक्षा देना चाहते हैं, उसी प्रकार स्वयं अपने काम से अपनी शिक्षा का काम लेना होगा। भगवान हमें शक्ति दे कि हम अपने को अपने काम से अच्छा सेवक बना सकें। उस से प्रार्थना है कि हमें सीधा मार्ग दिखाये। ●

नन्हा मदरसे चला

[३१ मई, १९४२ को डॉ० जाकिर हुसैन द्वारा ऑल इण्डिया रेडियो से प्रसारित वार्त्ता]

लीजिए, अब आप का नन्हा मदरसे चला। आदमी का बच्चा प्रारम्भ में ऐसा बेबस होता है और बड़ा हो कर आदमी के जिस पद पर उसे पहुँचना होता है वह इतना ऊँचा है कि उस की शिक्षा में बहुत दिन लगते हैं और उस को शिक्षित बनाने में बड़े जतन करने पड़ते हैं। इस शिक्षा और दीक्षा के काम में आप, अर्थात् नन्हे के माता-पिता, संरक्षक अकेले जो कुछ कर सकते थे, कर चुके। अब शायद आप समझते हैं कि कार्य केवल आप से न सम्भलेगा, इस में दूसरों की सहायता की आवश्यकता है, इसलिए नन्हा मदरसे भेजा जाता है; परन्तु शिक्षा और दीक्षा का कार्य ऐसा मिला-जुला काम है, विभिन्न प्रकार की शक्तियाँ प्रत्येक ओर से चल कर बच्चे के व्यक्तित्व में इस प्रकार गड-मड होती हैं कि उन्हें अलग-अलग करना कठिन है। मदरसा जब इस कार्य को अपने सिर पर लेता है तो घर बहुत कुछ बना या बिगाड़ चुका है। फिर मदरसे के सुपुर्द होने के पश्चात् भी घर का प्रभाव समाप्त नहीं हो जाता। या तो मदरसा और घर साथ-साथ चलते हैं और एक दूसरे के काम को समझ कर हाथ बटाने की व्यवस्था करते हैं या वह एक ओर खींचता है और यह दूसरी ओर। इस की ढोलकी अलग, उस का राग अलग।

दौलत का बोझ

अब जो नन्हा पाठशाला चला तो देखना यह है कि आप, अर्थात् माता-पिता और संरक्षक, उसे पहले से क्या बना चुके हैं। परन्तु 'आप' तो न जाने क्या-क्या हो सकते हैं। सम्भव है आप उन अभागों

में हों जिन के पास दूसरों की कमाई हुई दौलत इतनी होती है कि समझ में नहीं आता कि उसे करें क्या। दौलत की अधिकता का बोझ कभी-कभी बुद्धि की कमी से हल्का होता है। क्या आश्चर्य है कि आप का बोझ भी कुछ इस प्रकार हल्का हुआ हो। यदि ऐसा है तो गुमान यही है कि आप ने नन्हें की शिक्षा का कर्त्तव्य दौलत के खर्च से पूरा करना चाहा होगा। नन्हें के लिए अनगिनत बेकार नौकर होंगे और अनावश्यक सामान। तरह-तरह के कपड़ों से बक्स भरे होंगे, परन्तु शायद ही कोई पोशाक इस बच्चे के लिए उपयुक्त होगी। जूतों की कतारें होंगी और नन्हा प्रायः नङ्गे पैर रहता होगा। खिलौनों का एक अच्छा खासा संग्रह होगा, जिससे बच्चा कभी का उकता चुका होगा। यह नौकरों पर, आप के पद चिन्हों पर चलते हुए, उचित-अनुचित शासन जताता होगा। घर में लाड़-प्यार करने वाली दादी या नानी होंगी तो उन को प्रसन्नता के लिए कभी-कभी आप को भी कुछ सुना देता होगा। अपने हाथ पैर से काम करने की नौबत कठिनाई ही से कभी आती होगी क्योंकि यह अमीरों की शान के विरुद्ध है। बस खाना स्वयं पचाता होता होगा। शायद यही काम ठीक नहीं किया जा सकता होगा। बच्चा चिड़चिड़ा होगा, जिद्दी होगा, असभ्य होगा, मनमानी करने वाला होगा और अब यह पाठशाला जायेगा! आपके किसी मित्र ने बताया होगा कि अमुक पाठशाला में भेजो, वहाँ फीस अधिक है इसलिए पाठशाला अच्छी होगी। आप को यदि अवकाश मिला होगा तो एक पत्र अंग्रेजी भाषा में प्रधानाध्यापक के नाम लिख दिया होगा और सुपुत्र दो-तीन नौकरों और एक दो आयाओं के साथ आप की बड़ी मोटर में बैठ कर पाठशाला पधारे होंगे। यदि नानी अम्मां ने एक सप्ताह के भीतर बच्चे को पाठशाला से न उठा लिया तो निश्चय समझिये कि पाठशाला आप के किये को 'अन किया' किये बिना अपना कर्त्तव्य कठिनाई से ही पालन कर सकेगी। और फिर भी न जाने घर कहाँ-कहाँ पाठशाला के मार्ग में आयेगा।

जीनियस या गधा

हो सकता है कि आप उन सम्मानित व्यक्तियों में हों जिन्होंने अपने को स्वयं के प्रयासों से बनाया है, अपनी मेहनत और योग्यता से आगे बढ़ कर अपने व्यवसाय या कारोबार में विशेष सम्मान प्राप्त किया है या किसी ऊँचे सरकारी पद पर पहुँच गये हैं। आप ने यह सोचा होगा कि अपने बच्चों को अपने से बेहतर शिक्षित बनायें, परन्तु आप स्वयं को इतना कम अवकाश होगा कि इस को देख-भाल कोई दूसरा ही करता होगा। परन्तु जिस प्रकार आप अपने कार्य में व्यस्त होते हुए भी जीवन के सब आवश्यक क्षेत्रों-धर्म, रहन-सहन का ढंग, राजनीति पर पक्की और निश्चित राय रखना और उस का प्रचार अपने कम पढ़े-लिखे और कम धनी लोगों में आवश्यक जानते हैं और समझते है कि इस से अपने व्यस्त जीवन के एक-तरफा झुकाव में कुछ सीध पैदा करेंगे; इसी तरह आप अपने बच्चे की ओर ध्यान न देने का बदला इस के सम्बन्ध और इस की शिक्षा की सम्भावना के सम्बन्ध में पक्की और अफसोस कि निश्चित राय फरमा कर चुकाना चाहते हैं। आप चूँकि सफल मनुष्य हैं, इसलिए अपनी दृष्टि में आप ही मानवता का मापदण्ड हैं। यदि आप की दृष्टि में कहीं बच्चे की यह हैसियत अधिक जमी कि वह आप की अच्छाइयों का वारिस है तो शायद आप की राय होगी कि आप का बच्चा अद्भुत है। इस की समझ के क्या कहने, इसकी स्मृति का क्या पूछना। उसे दो पद्य याद करा दिये गये हैं जो आप प्रायः इस गरीब से अपनी मित्रमण्डली में पढ़वाते हैं। यह इन्हें खास अन्दाज से सिर हिला-हिला कर और

हाथ मटका-मटका कर सुनाता है। आप ने स्वयं के असीमित स्नेह में एक रविवार के दिन इसे कुछ अंग्रेजी वाक्य रटा दिये हैं। यह भी इसे प्राय: मित्र मण्डली में दोहराना पड़ता है और इन दृश्यों के पश्चात् आप अपने मित्रों को विश्वास दिलाते हैं कि यह लड़का ग़जब है ग़जब ! परन्तु आप को कौन बताये कि इस ऊँचे मापदण्ड से तो सारे तोते और सारे बन्दर भी जीनियस् हैं और यदि कार्य की अधिकता के कारण आप के अङ्ग कमजोर पड़ गये हैं, जिगर का कार्य भी कुछ खराब है और दुर्भाग्य से बच्चे से कोई मिज़ाज के विरुद्ध बात भी कई बार हो गई है, क्योंकि ऐसी दशा में मिज़ाज के विरुद्ध बात करने के लिए किसी बड़े हुनर की आवश्यकता नहीं तो आप अपनी बुद्धि के कारण इस पक्के नतीजे पर पहुँच सकते हैं कि वह गधा है ! दूसरी रायों की भाँति आप अपनी इस राय को भी समय-समय पर घोषणा करते होंगे और आदमी के इस बच्चे को गधा बनाने में अपने बस पड़े कोई यत्न उठा न रखते होंगे । अब आप का यह जीनियस् या आप का यह गधा अपनी शुद्ध उत्तमता की अनुभूति या अशुद्ध निकृष्टता की अनुभूति के साथ पाठशाला जाता है। देखिये, पाठशाला आप के पैदा किये हुए उलझाव को किस प्रकार सुलझाती है और आपका हस्तक्षेप वहाँ भी कहीं और गुत्थियाँ तो नहीं डालता। शायद आप की व्यस्तता पाठशाला को अपना काम करने दे और आपका 'जीनियस" या "गधा" मनुष्य बन जाये।

धमकियों से तैयारी

परन्तु सम्भव है कि न आप बे-हिसाब बे-कमाई दौलत के वारिस हों न रात दिन कमाई की खींच-तान में संलग्न, बल्कि औसत दर्जे के ठीक भले मानस हों। अपने दो कान रखते हों, किसी कार्यालय में सौ सवा सौ के मुलाजिम हों, किसी पाठशाला में अध्यापक हों, प्रतिदिन कुछ समय अपने बच्चों में बिता सकते हों। घर का काम आप की धर्म पत्नी स्वयं सम्भाल लेती हों, नौकर-चाकर न हों, होशियार धर्म पत्नी घर को साफ-सुथरा रखती हो और बच्चों की देख-भाल करती हो । तब आप का बच्चा बहुत से उन खतरों से सुरक्षित है जिन को अभी बता चुका हूँ; परन्तु फिर बच्चा है, कभी आप के साफ-सुथरे घर में कहीं कुछ गिरा देगा, साफ चाँदनी मैली हो जायेगी, माँ क्रोधित होगी और कहेगी, "अच्छा, आने दे तेरे अपने पिताजी को, कल ही तुझे पाठशाला न भिजवा दिया तो कहना !" कभी बच्चे से कोई चीज टूट जायगी, वही पाठशाला की धमकी; कभी खेल कूद में बच्चा चिल्लायेगा, शोर मचायेगा, अभी कपड़े बदले गये थे, अभी गन्दा होकर माँ के सामने आयेगा---वही पाठशाला की धमकी दी जायेगी। धमकी का प्रभाव बढ़ाने के लिए पाठशाला का विशेष भयानक चित्र भी कभी खींचा जायेगा और यूं आज के दिन के लिए क्या ही खूब तैयारी की गई होगी, इसलिए कि आज आप का नन्हा भी पाठशाला चला है। या हो सकता है कि आप हिन्दुस्तान के उन करोड़ों किसानों और मजदूरों में से हों जिनके बच्चों के लिए बस घर की कठिन जिन्दगी ही पाठशालाओं का काम देती है, जिन के लिए पाठशाला स्थापित करने को कभी काफी पैसे इकट्ठे नहीं हो सकते और जिन के बच्चों को शिक्षा दिलाने के लिए इतनी पाठशालाओं की आवश्यकता है कि हर शिक्षा विशेषज्ञ अँगुलियों पर हिसाब लगा कर बता देता है कि इतनी पाठशालाएँ स्थापित करने हेतु जितनी पूँजी की आवश्यकता है वह तो इकट्ठी ही नहीं हो सकती। और यह बात बता कर समझते हैं कि बड़े दूर की कौड़ी लाये। फिर इन सब कठिनाइयों के होते हुए भी यदि कुछ पाठशालाएँ इन के लिए बन जाती हैं तो ये

अपने बच्चों को इन पाठशालाओं को भेजने के लिए ये तैयार नहीं होते। मैंने गलती से कहा कि आप शायद इन करोड़ों किसानों या मजदूरों में से हों। इन बेचारों को इतनी फुरसत कहां कि बेफिकरों की भाँति रेडियो पर भाषण सुनें। कहीं-कहीं शिक्षा अनिवार्य हो जाने के कारण, कहीं इस के मुफ्त होने के लालच से, कहीं आस-पास के खुशहाल लोगों की देखा देखी, ऐसे किसान या मजदूर का नन्हा भी पढ़ने के लिए बिठा दिया जाता है। वहां नन्हा, जो घर के कामों में माता-पिता का हाथ बटाता है, जो बकरियाँ चरा लेता है, खेत पर पिता के लिए रोटी ले जाता है, माँ उपले थापती है या रोटी पकाती है तो यह छोटी बहन को बहला लेता है, हाथ पैर का अच्छा मज़बूत है, बस आँखें दुखती हैं या नाक बहती है, परन्तु आँख मिला कर बातें करता है, बे सहारे जीवित रह सकता है, आदमी का बच्चा है, मुरमुरों का थैला नहीं, और हाँ, न "जीनियस" है न "गधा"; परन्तु इसका पिता भी चाहता है कि बच्चा पढ़ कर पटवारी बन जाये, यह न हो सके तो लाल पगड़ी वाला चपरासी ही सही। अनिवार्य शिक्षा का कानून इस के ज़िले के कुछ गाँवों में लागू हो गया है, इसलिए यह भी आज पाठशाला जाता है।

अपनी-अपनी कठिनाइयाँ

अब आप ही देखिये कि कैसे भाँति-भाँति के बच्चे पाठशाला जाते हैं। घर ने कैसे-कैसे नमूने बनाये हैं। क्या-क्या आशाएँ हैं और उनको पूरा करने की कैसी-कैसी तदबीरें। माँ-बाप के मानसिक उलझाव को देखिये, उनके नतीजे अर्थात् बच्चों की मानसिक गुत्थियों पर ध्यान दीजिये तब ज्ञात होता है कि पाठशाला का कार्य भी कैसा कठिन है। परन्तु क्या पाठशाला वाले वास्तव में कठिन समझते हैं या उन का ध्यान अपने काम की इस कठिगाई की ओर जाता है? उनकी ये कठिनाइयाँ तो सुनने में आई हैं कि वेतन कम है, कार्य बहुत है, अधिकारियों के स्वागत-सत्कार में या उन के काम में अवकाश का और कभी-कभी काम का भी बहुत समय निकल जाता है, छुट्टियाँ कम हैं, अधिकारी भेद-भाव से काम लेते हैं, कुछ स्थानों में महीनों वेतन नहीं मिलता। ये सब और इन जैसी बहुत सी शिकायतें सुनने में आती हैं और प्राय: ठीक भी होती हैं; परन्तु शिक्षा और दीक्षा के कार्य की वास्तविक कठिनाई कुछ और ही है। वह कठिनाई वही है जिसके कारण से घर में शिक्षा की गलतियाँ होती हैं, अर्थात् बड़ों का यह घमंड कि वही सब कुछ हैं, बच्चा कुछ नहीं, वे सब कुछ जानते हैं, मंजिल जानते हैं, राह पहचानते हैं, यात्रा की गति बता सकते हैं, कार्य उनकी इच्छा के अनुसार हो—इच्छा की रगारंगी के क्या कहने—उन्हें घमंड है कि बच्चा उनकी मिलकियत है, वह जो चाहें उसे बना सकते हैं, चाहे अपनी दिल्लगी के लिए उसे अपना खिलौना बनायें चाहे अपने मनमाने उद्देश्यों के लिए अपना दास। उन्हें अपनी बाजीगरी पर इतना भरोसा है कि आम को इमली और इमली को आम बना सकते हैं। पहले बच्चा घर में इस मूर्खता से दो-चार होता है, फिर पाठशाला पहुँचता है। क्या पाठशाला बच्चे को इस दु:ख से राहत देती है? क्या अध्यापक महोदय भी इस रोग से पीड़ित नहीं होते जिस से संरक्षक पीड़ित थे? क्या वह भी सब कुछ नहीं जानते और सब कुछ नहीं कर सकते? क्या वह भी यह नहीं समझते कि बच्चा उन के हुनरमंद हाथों में मिट्टी का एक ढेर है, वे जो रूप चाहें उसको दे दें और उसका मस्तिष्क एक सादा कागज़ का तख्त है, वे उस पर जो चाहे लिख दें? उन्होंने शिक्षा के पूरे भवन को ऐसी अशुद्ध नींव पर

खड़ा कर रखा है और शिक्षा का सारा कार्य बस इस मनहूस प्रयास पर निर्भर है कि प्रकृति जो चाहती वह न होने पाये या जो हम चाहते हैं प्रकृति को भी वही चाहना चाहिये। प्रकृति तो प्रत्येक बच्चे में व्यक्तित्व के चित्रों की अनगिनत सम्भावनाओं में से किसी एक को पूरा करवाना चाहती है।

किसी ने खूब कहा है कि हर बच्चा जो पैदा होता है वह इस बात की घोषणा है कि ईश्वर अभी आदमी से निराश नहीं हुआ है। लेकिन यहाँ यह भरोसा है कि जो सांचा हमने तैयार किया है बस वही आखरी चीज है। व्यक्तित्व के मोम को पिघला कर बस इसमें डाल देना चाहिये और जो ठप्पा हम ने बनाया है, वही सब से अच्छा है, उसकी छाप बच्चे पर लगानी चाहिये।

कुदरत की अमानत

इस समय मैं बच्चों के अभिभावकों और उन के अध्यापकों को सम्बोधित कर रहा हूँ। यह निवेदन किये बिना नहीं रह सकता कि आप किसी तरह अपने को इस बुनियादी ग़लत विचार-धारा से मुक्त करें। बच्चे को आदमी का अगुआ समझें, इस को बे-सहारे स्वयं भी बढ़ने दें, इसकी प्राकृतिक योग्यता और प्रवृत्तियों का सम्मान करें, समझें कि यह नन्हीं सी जान अपने विकास की स्वभाविक सीमा की ओर स्वयं कदम उठाती है। इसे सहारा दीजिये, रास्ते से कांटे हटा दीजिये परन्तु इस के चलने की दिशा न बदलिये, न इस पर इतना ध्यान दीजिये कि यह फिर अपने पर स्वयं ध्यान ही न दे सके। न इतना रूखा-पन बरतिये कि इस की वे आवश्यकताएँ भी पूरी न हों जिन में वास्तव में यह आप पर आश्रित है, न लाड-प्यार की अधिकता में उस को मिरज़ा फोया बनाइये, न दुरस्ती और सख्ती से जिन्दगी से या कम से कम आदमियों से दुखी। मानसिक जीवन की अनगिनत शक्लों को ध्यान में रखिये और यह निश्चय मत कीजिये कि उच्च अधिकारियों या सफल वकीलों के सब बच्चों को ईश्वर विशेष ढंग से सिविल सर्विस की परीक्षाओं में बैठने के लिए बना कर संसार में भेजता है। संक्षेप में इन सम्भावनाओं के कारण जो आप के बच्चे के मानसिक जीवन में अभी छिपी हुई हैं, उन मूल्यों के लिहाज से जो वह प्राप्त कर सकता है, आप उस का मान-सम्मान कीजिये। जी हाँ, आप घबरायें नहीं, मैंने कहा कि आप बच्चे का मान-सम्मान कीजिये। लाचार बच्चे से स्वतन्त्र, सच्चरित्र व्यक्तित्व तक पहुँचने का प्रयास वास्तव में सम्मान योग्य प्रयास है। आप ने स्वयं चाहे इस राह पर कदम उठाना छोड़ दिया हो और थक कर कहीं बीच ही में बैठ रहे हों कि अनगिनत मनुष्यों को इस मंजिल तक पहुँचने का सम्मान प्राप्त नहीं हो पाता, परन्तु आप का बच्चा अभी इस राह पर पहले-पहल क़दम उठा रहा है, इस का मार्ग न रोकिये और यह भय भी अपने दिल में न आने दीजिये कि वह आप की मिलकियत है। आप जो चाहें उसे बनायें, वह आप की मिलकियत नहीं, आप के पास कुदरत की अमानत है। कुदरत के हक को अपनी इच्छा से ऊंचा मानिये।

बुनियादी सिद्धान्त

अध्यापकों से भी, जिन की पाठशाला में ये बच्चे इसलिए भेजे जाते हैं कि समाज के विचार से घर शिक्षा-दीक्षा के कर्त्तव्य को पूरी तरह निभा नहीं सकता, मेरी यही प्रार्थना है कि आप भी अपने पवित्र

काम का बुनियादी सिद्धान्त इस सभ्यता और सम्मान को बनायें । यह सिद्धान्त मस्तिष्क में आ गया तो शिक्षा के काम में आप का सारा ढंग बदल जायेगा । आप अपनी कक्षा को भेड़ों की रेवड़ न समझेंगे, बल्कि इस में प्रत्येक बच्चे की विशेष प्रवृत्तियों और विशेष आवश्यकताओं का ध्यान रखेंगे । मैंने आज की बातचीत में परिवारों की दशा के कारण बच्चों में जो भिन्नता हो जाती है उस की ओर संकेत किया है । आप यदि इन पर दृष्टि न रखेंगे तो जहाँ सहारे की आवश्यकता है वहाँ धक्का लग जायेगा, जहाँ साहस बढ़ाने से काम बन सकता है वहाँ आप बे जाने निरुत्साह का कारण बन जायेंगे । जहाँ आप की एक मुस्कराहट से बच्चे के दिल की कली खिल सकती थी वहाँ आप की बेरुखी से उस के मुरझा जाने का डर उत्पन्न हो जायेगा । यदि बच्चे के प्रति सद-व्यवहार और उसका सम्मान आप के नजदीक ठीक सिद्धान्त होगा तो आप अपने शिष्यों की मानसिक कठिनाइयों को समझने की कोशिश करेंगे और हर एक के मुनासिब उपाय सोचेंगे । इन सामाजिक अन्तरों के अतिरिक्त बच्चों की मानसिक आवश्यकताओं में जो अन्तर होते हैं उन पर भी आप की दृष्टि रहेगी । पहले-पहल जब यह मानसिक अन्तर अधिक प्रकट नहीं होते तो आप प्रयास करेंगे कि जो समानतायें अधिक से अधिक बच्चों में हों उन्हीं को कक्षा में शिक्षा का साधन बनायें । उदाहरणार्थ सात से बारह चौदह बर्ष तक के बच्चों में यदि आप देखें कि बच्चे हाथ के काम मे रुचि रखते हैं तो आप शायद इस बात की जिद्द न करें कि उन की शिक्षा बस पुस्तकों द्वारा ही हुआ करे क्योंकि बड़े-बूढ़ों के विचार से पुस्तकों का पढ़ना ही शिक्षा कहलाता है । छोटे का अदब प्रेम और मेहरबानी का रूप ले लेता है । यह सिद्धान्त जो मैंने बताया है आप में बच्चे के प्रति प्रेम और उस पर मेहरबानी का गुण उत्पन्न कर देगा । आप को असफलता का सामना करने के लिए सहनशीलता और संतोष की वह शक्ति प्रदान करेगा जो प्रेम के पश्चात् अध्यापक की सब से बड़ी पूंजी है । आप बच्चों के अच्छे अध्यापक, अर्थात कुदरत की अमानत के सच्चे अमीन बन जायेंगे और आप के परामर्श और आप की मिसाल से बच्चों के पिता तथा संरक्षक भी अपने कर्त्तव्य को अधिक अच्छी तरह समझेंगे और अध्यापक और अभिभावक के सहयोग से शिक्षा-दीक्षा का कार्य वास्तविक ठीक तरीके से किया जा सकेगा । ●

बच्चों को पहचानिये

राष्ट्रपति पद ग्रहण करने के बाद डा० जाकिर हुसैन ने अपने प्रथम अभिनन्दन के उत्तर में कहा: मैं मामूली शिक्षक हूँ, जिस पर मुझे गर्व है । आप सब से भी मेरा यही अनुरोध है कि देश की तरक्की और खुशहाली के लिए पहले शिक्षा पर ध्यान दीजिये, विशेषकर बच्चों की शिक्षा पर । जिस समाज में बच्चों की अच्छी शिक्षा का प्रबंध नहीं होगा, वह कभी उन्नति नहीं कर सकता । हमें बच्चों का सम्मान करना सीखना चाहिए । कौन जानता है कि इन्हीं बच्चों में कोई महात्मा गाँधी, जवाहर लाल, विवेकानन्द या रवीन्द्रनाथ भी हों ।

इफ्तदाई तालीम

[२४ फरवरी, १९४६ को न्यू एजूकेशनल फैलोशिप के लाहौर सम्मेलन में डा० जाकिर हुसैन का भाषण]

भाइयो और बहनो, आपका धन्यवाद करने से पहले क्षमा चाहता हूँ कि आम दस्तूर के विरुद्ध आपकी सेवा में यह भाषण अपनी मातृभाषा में पेश कर रहा हूँ। अजब सी बात है कि ऐसी बात करने पर क्षमा चाह रहा हूँ। चाहिए तो ये था कि अगर किसी अन्य भाषा में आप को सम्बोधित करता तो क्षमा चाहता। लेकिन हमारी सभाओं के आम दस्तूर ने वर्त्तमान दशा को बिल्कुल उल्टा कर दिया है। देश में अंग्रेजी शिक्षित वर्ग की भाषा बन गई है। वे इस में पढ़ते हैं, इस में लिखते हैं, अगर सोचते हैं तो इसी में सोचते हैं और जब शिक्षित लोगों को सभा में कुछ कहना हो तो अपने विचारों को अंग्रेजी शब्दों की पोशाक पहना कर उपस्थित करते हैं। ऐसा क्यों और कैसे हुआ, इस से मुझे इस वक्त बहस नहीं। अच्छा हुआ या बुरा हुआ इस पर भी कुछ निवेदन करना नहीं चाहता। केवल इतना जानता हूँ कि यदि हमारे देश में शिक्षा किसी एक छोटी सी जाति के साथ रहने वाली नहीं है, अगर इस देश के रहने वाले पशुओं के रेवड़ों की तरह नहीं बल्कि मनुष्य के वर्गों की तरह जीवन गुजारना चाहते हैं, अगर यहां का शासन किसी छोटे से ताकतवर या चालाक गिरोह का इजारा नहीं बल्कि यहाँ के लोकतन्त्र की इच्छा के अनुसार होने वाला है, तो इल्मी जबान के मामले में वर्त्तमान दशा बदलेगी और जल्द बदलेगी। कोई यह न समझे कि मैं अंग्रेजी जबान की कद्र करना नहीं जानता। मैं जानता हूँ कि हम ने अंग्रेजी भाषा के साधन से बहुत कुछ सीखा है। जानता हूँ कि इस से बहुत कुछ और सीखना है। इस ने हमारे विचार मण्डल में हरकत पैदा की है। इस ने हमें पश्चिम के

कला-कौशल, विद्याओं विचारों और सभ्यताओं की जानकारी करवाई। इस ने राजनीति और रहने-सहने के ढङ्गों से परिचित कराया। इस का हम पर बड़ा अहसान है और इस से अभी और बहुत काम लेना है। हम में और पश्चिमी संस्कृति में यही एक साधन शायद अर्से तक समान रहने वाला है। लेकिन जहाँ मैं ये सब जानता हूँ वहाँ यह भी जानता हूँ कि हम अंग्रेजी जानने वालों ने जो एक नई जाति इस देश में बना ली है उस ने बेजा तरीके, स्वार्थ से अपने विशेष फायदों को अपने तक सीमित रखने के भी प्रयास किये हैं। उस ने अपनी शिक्षा को औरों से ऊँचा उठाने का साधन बनाया। जो सीखा वह सिखाया नहीं। विशेष व्यक्तियों को जो हासिल हुआ उसे आम जनता तक नहीं पहुँचाया गया। अपने को सींचा है और कौम को प्यासा रखा है। चूँकि इल्मो हिकमत के खजाने बचाने से घटते हैं और लुटाने से बढ़ते हैं, इसलिए इस वर्ग के स्वार्थीपन ने इसे भी कुछ कम हानि नहीं पहुँचाई। अपनी कौम के वास्तविक जीवन से असम्बद्धता ने इन्हें अपने देश में परदेशी बना दिया, देश में देश-निकाला कर दिया। इन के विचारों में नयापन पैदा नहीं होने दिया। इन के कामों को फलदार नहीं होने दिया। इन की जुबान को माँगे की बातचीत मिली और इन के उत्साह को माँगे की इच्छाएँ।

शीघ्र परिवर्तन जरूरी

खैर यह जो हुआ सो हुआ। हमें जल्द से जल्द इसे बदलना चाहिए। विशेषतया शिक्षा का काम करने वालों को इस में जरा देर न करनी चाहिए कि अपने मार्ग से एक परदेशी भाषा के साधन से तालीम देने की कठिनाई को हटायें। प्रारम्भिक और इससे पहले की शिक्षा की समस्या पर सोच-विचार करने के लिए जो सभा यहाँ एकत्रित है उस के कार्यकर्त्ताओं को तो जानना चाहिए कि इन का सारा काम बच्चों में और बच्चों के माता-पिता के साथ मातृ-भाषा ही के द्वारा सम्भव है। इसलिए अपनी भाषा में यह भाषण देने पर क्षमा चाहना कुछ आवश्यक तो नहीं है, परन्तु रस्मो-रिवाज की माँगें कठिन होती हैं। हमारी शैक्षणिक सभाओं में मातृ-भाषा को स्थान मिलना नई बात है। मैं आप से आज्ञा लिए बिना इसे यहाँ ले आया हूँ, इसलिए क्षमा चाहता हूँ। यद्यपि इस क्षमा याचना में थोड़ी सी शिकायत और ताड़ना भी सम्मिलित है।

आप ने क्षमा कर दिया हो, और विश्वास करता हूँ कि क्षमा कर ही देंगे, तो अब आगे बढ़ूँ। सब से पहले आप को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ कि इस सभा की अध्यक्षता के लिए आप ने याद फरमाया। मैं न्यू एजूकेशन फैलोशिप के काम से एक समय से परिचित हूँ और इस की दिल से कद्र करता हूँ। इस फैलोशिप ने संसार के विभिन्न देशों में शिक्षा का काम करने वालों को नये मार्ग सुझाये हैं। इस ने बच्चों के व्यक्तित्व को साँचों और ठप्पों में दबने से बचाने के प्रयास किये हैं। बच्चों की प्रवृत्तियों और रुझानों को उन की शिक्षा की बुनियाद बनाने पर जोर दिया है। बच्चों की निजी रुचियों के कामों को पाठशाला और घर में बढ़ावा दिया है। स्वतन्त्रता में अनुशासन के सही विचार से जन साधारण को अवगत किया है। शिक्षा में खेल और कार्य के महत्त्व को दर्शाया है और सब से कठिन यह कि शिक्षा का काम करने वाले अध्यापकों को एक नयी आशा प्रदान की है, इन में एक नया उत्साह पैदा किया है और एक बेजान बेगार को एक आनन्दपूर्ण पद दिया है। इस फैलोशिप की किसी

सभा में अध्यक्षता का सम्मान मेरे हक से बहुत ज्यादा है। लेकिन आप के प्रेम ने यह सम्मान प्रदान किया। हार्दिक धन्यवाद !

आप इस सभा में प्रारम्भिक शिक्षा और इससे पहले की शिक्षा के सम्बन्ध में सोच-विचार और वाद-विवाद करने वाले हैं। मैंने प्रारम्भिक शिक्षा की समस्या पर सोचने और काम करने में कुछ समय अवश्य व्यतीत किया है, परन्तु इस से पूर्व की शिक्षा के सम्बन्ध में अब तक कुछ नहीं कर सका हूँ, इसलिए निजी अनुभव से इस विषय में कुछ निवेदन नहीं कर सकूंगा। हाँ, अनिवार्य शिक्षा की हिमायत की वजह से कुछ दोस्तों ने मुझ पर जो सन्देह किया है कि मैं इससे पूर्व की शिक्षा-दीक्षा को शायद कुछ महत्व नहीं देता और उस की समस्याओं को ध्यान देने योग्य नहीं समझता, वह ठीक नहीं है। अकेली दिनचर्या में एक समय में एक चीज का सिद्धान्त, प्रायः लाभदायक सिद्ध होता है। लेकिन इस का अर्थ दूसरी सब वस्तुओं मे असम्बद्धता या बेसुधी नहीं होता। बुनियादी शिक्षा की आवश्यकता पर, इसे मुक्त और अनिवार्य बनाने पर पिछले चन्द वर्षों में ठीक ढंग से जोर दिया जाता रहा है। इसका उद्देश्य हरगिज यह नहीं होना चाहिये कि इस बुनियादी शिक्षा की मन्जिल से पहले की शिक्षा और दीक्षा की समस्या कोई खास महत्व नहीं रखती। अफसोस है कि हमारे देश में अब तक इस प्रारम्भिक उम्र में शिक्षा और दीक्षा की समस्या को अधिक ध्यान दिये जाने का हक नहीं मिला। हालांकि जीवन की बाज बुनियादी आदतों के बनने-बिगड़ने में यह जमाना बड़ा ही महत्वपूर्ण है। चाहे शारीरिक लालन-पालन को देखिये कि उम्र के पहले ही साल में बच्चे का कद पैदाइश के समय से कोई तिगुना हो जाता है और फिर सारी उम्र कभी इस तेजी से नहीं बढ़ता है। पहले १८ महीनों में मस्तिष्क के बढ़ने में जितनी तेजी होती है फिर कभी इतनी मुद्दत में उतनी नहीं होती। जोड़ों और अंगों का भी यही हाल है। शरीर की इस तीव्र बढ़ोतरी के कारण ही यह समय स्वास्थ्य के लिए खतरों से भरा हुआ जमाना है। हमारे देश का तो कहना ही क्या। यहाँ के वातावरण में जो हजारों बच्चे पहला साँस लेते हैं उनमें से पौने दो सौ के करीब तो बाल्यावस्था की मन्जिल से आगे नहीं बढ़ पाते। दूसरे देशों में भी जहाँ जीवन इतना सस्ता नहीं है और बच्चे जीवन के भोजन के थाल पर बिन-बुलाये मेहमान की हैसियत नहीं रखते, वहाँ भी यह खतरे नन्ही-नन्ही जानों को उठाने पड़ते हैं। अमेरिका में यह सारी मौतों का एक तिहाई, छः वर्ष से कम उम्र वालों के हिस्से में आता है, इंगलिस्तान में अनुमान लगाया गया है कि ८० से ९०% बच्चे स्वस्थ पैदा होते हैं, मगर जब ५ साल की उम्र में पाठशाला जाते हैं और वहाँ डाक्टरी निरीक्षण होता है तो एक तिहाई से अधिक तरह-तरह की बीमारियों में फँसे पाये जाते हैं। कहीं छूत के रोगों के फल के रूप में, कहीं घर के अस्वस्थ वातावरण की बदौलत, कहीं घर की उलझनों की खींचतान के असर से। जहाँ इन हालात को बदला गया है वहाँ यह सूरत भी बदल जाती है। निरीक्षण बताता है कि अच्छी पाठशालाओं में जा कर बच्चों का स्वास्थ्य ठीक हो जाता है। बीमारियाँ भाग जाती हैं। दाँतों की हालत और हो जाती है, और बच्चों के मुकाबले में कद और तेजी से बढ़ता है। फिर यही नहीं कि यह समय बच्चे के लालन-पालन के विचार ही से बड़ा महत्व रखता हो, सीखने की रफ्तार भी शारीरिक बढ़ाव की रफ्तार से कुछ कम नहीं होती। इसी जमाने में बच्चा ज्ञानेन्द्रियों का प्रयोग सीखता है। इन की सहायता से अपने वातावरण को पहचानता है। जिस्म के पट्ठों पर अधिकार प्राप्त करता है। चलना सीखता है, बोलना सीखता है। ढाई-तीन साल की आयु में अपनी मातृभाषा को काम चलाने के योग्य सीख चुकता है। चीजों के आपसी

सम्बन्ध का अनुभव उसे प्राप्त होने लगता है। विस्तार के मार्ग पर चलना प्रारम्भ कर देता है और अनुभवों की बढ़ोतरी में तो इतनी तेजी होती है कि जानने वाले कहते हैं कि इसी समय में इसके चरित्र की नीवें पड़ चुकती हैं। जीवन का और कौन सा समय इतने और ऐसे बुनियादी महत्व रखने वाले विस्तार से भरा होगा ?

न्यूनतम आवश्यकता

इस में कोई शक नहीं कि अगर हमारे कौमी जीवन की शक्ल और प्रबन्ध जिम्मेदार वाकई इस फर्ज़ को पूरा करना चाहते हैं तो इन्हें इस उम्र के बच्चों की शिक्षा को पहले से अधिक अपने इरादों में स्थान देना होगा। मैं नहीं जानता कि बुनियादी तालीम छः वर्ष की उम्र से अनिवार्य की जायेगी, जैसा कि सैन्ट्रल एडवाईजरी बोर्ड का प्रस्ताव है या ७ साल की उम्र से जैसा कि बुनियादी कौमी शिक्षा के प्रस्ताव की माँग है (या जो उम्र आपकी कॉन्फ्रेंस सोच-विचार के बाद तय करे)। बहरहाल ६ या ७ साल की उम्र के बच्चों की देखभाल, डाक्टरी जाँच और मुनासिब इलाज, इन के लिए खुली हवा, अपने हम उम्रों के साथ दिन का एक हिस्सा गुजारने का प्रबन्ध, इस उम्र की आवश्यकताओं और तकाजों को जानने वालों की प्रेमपूर्ण निगरानी में स्वास्थ्य और सफाई का, मेल जोल की जिन्दगी का, अपने नन्हें-नन्हें पैरों पर खड़े हो सकने का और दूसरे नन्हें साथियों की व्यक्तिगत और दलगत आदतें पैदा करने का प्रबन्ध जरूर करना होगा।

मेरे ख्याल में इस उम्र के बच्चों को बाल-बाड़ियों में और नन्हें शिक्षा केन्द्रों में भेजना अभी माता-पिता के लिए अनिवार्य तो नहीं करना चाहिये, परन्तु बच्चों की बड़ी संख्या के लिए खास तौर पर जहां घर के लोग काम-धन्धों या दूसरी मजदूरियों के कारण अपना कर्त्तव्य पालन नहीं कर सकते, इन शिक्षा केन्द्रों का प्रबन्ध सरकार की ओर से होना चाहिये। गैर सरकारी प्रबन्ध में ऐसे शिक्षा केन्द्र खोले जायें तो उदारता से उनकी सहायता करना सरकार का कर्त्तव्य है। इतनी छोटी उम्र के बच्चों को घर से अलग करना बहुत नई-सी बात है और बहुत से घर शायद अपना कर्त्तव्य आप पालन करने के योग्य भी हों, इसलिए फिलहाल अगर इस उम्र के बच्चों में १० में से २ इन शिक्षा केन्द्रों में भेज दिये जायें तो हिसाब के विचार से तो कम ही हैं, मगर कार्य के विचार से काफी होंगे। इनके लिए अलग शिक्षा केन्द्र खोल कर या बुनियादी पाठशालाओं के साथ इन छोटे बच्चों के लिए अलग विशेष प्रबन्ध कर के सरकार अपने कर्त्तव्य से उऋण हो सकती है, बशर्ते कि पाठशाला के इस हिस्से की देखभाल के लिए अलग शिक्षा प्राप्त अध्यापक बल्कि अध्यापिकायें इकट्ठी की जायें और बच्चो को साफ, खुली हवा में एक अच्छे बगीचे के अन्दर, घर से बेहतर हाल में, रखने का प्रबन्ध हो सके। साधारणतया यह समझा जाता है कि ये शिक्षा केन्द्र या बाल बाड़ियाँ इसलिए आवश्यक हैं कि बहुतेरे बच्चों को अच्छा घर नसीब नहीं। गरीबी और सुस्ती, बीमारी आदि अक्सर बच्चों को घर के वास्तविक वरदानों से वंचित रखते हैं। इसलिए भी इन शिक्षा केन्द्रों की आवश्यकता है। लेकिन सच यह है कि अगर घर वह सब कुछ हो जो उसे होना चाहिये तब भी वह सब कुछ इकट्ठा नहीं कर सकता जिसकी माँग बच्चे का लालन-पालन और तेजी से नये-नये रूप धारण करने वाली तबीयत

करती है। इसलिए इन नये शिक्षा केन्द्रों के बनाते वक्त यह बात सामने रखनी चाहिये कि यह घर का विकल्प भी है और घर की कमी को पूरा करने वाला भी। बच्चे की शिक्षा में घर का वह प्रभाव है कि यदि इन शिक्षा केन्द्रों ने घर से अपना सम्बन्ध मजबूत न किया तो ये अपना काम कभी खूबी से नहीं कर पायेंगे। एक ओर उन की जानकारी से काम लेना होगा और दूसरी ओर माँ को बच्चे की सेवा की राहें समझनी और सुझानी होंगी। उसका कुछ बोझ अपने कन्धों पर लेना होगा ताकि जो बोझ इस के जिम्मे रहे वह इसे ज्यादा खूबी से उठा सके। इन शिक्षा केन्द्र को डाक्टरी सहायता पहुँचानी होगी जिसकी बच्चे को आवश्यकता होती है। इन्हें बच्चों में अच्छी-अच्छी आदतें डालनी होंगी और ऐसा वातावरण पैदा करना होगा जिसमें वह अपनी आयु के अनुसार वह सीख सके जो प्रकृति चाहती है। वहां तरह-तरह के खेलों का प्रबन्ध करना होगा, विकास सम्बन्धी भी और काल्पनिक भी। आदतें बनाने के सम्बन्ध में भी और बच्चे को अपने शारीरिक विकास के लिए जिस कार्य-क्रम और प्रकृति की आवश्यकता है उसके अवसर भी इकट्ठे करने होंगे। आस-पास की चीजों की विशेषता से जानकारी का सामान करना होगा। इस के बरतने में जो दक्षता की आवश्यकता है उसकी बुनियाद डालनी होगी और बातचीत करने, अपने साथियों और अपने बड़ों से अपनी कहने तथा उन की समझने की आदत बनानी होगी। फिर दो-तीन साल की उम्र ही से बच्चे को साथियों की तलाश होती है। केवल माँ का साथ ही काफी नहीं होता। वह अपने इर्द-गिर्द और बच्चे चाहता है। इन से सहारा लेना, इन्हें सहारा देना चाहता है और सामाजिक जीवन का, साँस्कृतिक सिद्धान्तों का लेन-देन प्रारम्भ हो जाता है। इसीलिए बच्चे को दूसरे बच्चों की संगत और सोहबत मिलनी चाहिए और उसके शिक्षा-केन्द्र का प्रबंध प्राय: घरों में अधिक उत्तम ढंग से किया जा सकता है। अलबत्ता यह ख्याल रखना आवश्यक है कि साथियों का यह वर्ग कहीं बड़ा न हो जाये। जब दोस्त बहुत ज्यादा हो जायें तो वे भाई-बहन नहीं रहते, गिरोह बन जाते हैं जिसमें बच्चा खो-सा जाता है और जिस से कभी कोई लगाव पैदा नहीं हो पाता। वह इस गिरोह में या तो अन्दर को खिंच जाता है, शर्मीला और झेंपू बन जाता है या फिर लड़ता-झगड़ता है और हर एक पर धौंस दिखाने की कोशिश करने लगता है। या दब जाता है या दबाना चाहता है। तादाद बढ़ाने में नन्हें बच्चों के लिए छूत की बीमारी का भी सख्त खतरा है। इसलिए तादाद तो कम ही रखना ठीक है और इसका ख्याल और भी आवश्यक है कि हम कहीं अपनी आर्थिक कठिनाइयों को सामने रखते हुए, या काम को जल्द फैलाने के लिए यह न कर बैठें कि इन शिक्षा केन्द्रों में बहुत से बच्चों को एक स्थान पर भर दें। मेरी राय में तो एक शिक्षा केन्द्र में तीस-चालीस से ज्यादा बच्चे नहीं होने चाहिये।

शैक्षणिक आवश्यकताएँ

इन नये शिक्षा केन्द्रों को अगर वास्तव में एक घर का स्थान देना है और घर की कमियों को पूरा करने वाला बनाना है तो इन की इमारत, इन के बगीचे, इन के खेल के मैदान, खाना तैयार करने और खाना खिलाने का साफ प्रबन्ध, इस-में बच्चों के पालतू जानवरों की गुंजाइश, बच्चों के लिए सफाई और शौच के स्थान, इन के लिए नीचे व हल्के साज और सामान, संक्षेप में बहुत-सी बातों को सामने रख कर हर चीज की जगह निकालनी होगी। हमारे देश में अभी शिक्षा के भवनों में शैक्षणिक आवश्यकताओं का ख्याल जरा कम ही रखा जाता है। इस तरह के भवन हर प्रकार के काम में लाये

जा सकते हैं ; परन्तु प्रकट है कि यह बात सत्य नहीं। क्या ही अच्छा हो कि देश के अच्छे भवन निर्माण विशेषज्ञ और शिक्षा शास्त्री आपस में परामर्श से इन शिक्षा केन्द्रों के लिए नमूने के नक्शे बनाएं जिन में स्थानीय विशेषताओं को दृष्टि में रख कर कुछ परिवर्तन कर के हर स्थान में काम लिया जा सके। ब्रिटेन के नर्सरी स्कूल एशोसिएशन ने सन् १९४४ के शिक्षा नियम, लोकसभा में पास होने से पूर्व ही अपनी एक कमेटी बैठा दी थी जिस ने ब्रिटेन के हालात सामने रख कर, एक रिपोर्ट भी प्रकाशित कर दी है, जिस में इन नये शिक्षा केन्द्रों के लिए, जो इस नियम के अधीन सारे देश में बनने वाले हैं, भवन और साज-सामान से सम्बन्धित तमाम कार्य पर विशेषज्ञों से परामर्श का संक्षिप्त विवरण पेश कर दिया है। क्या ही अच्छा हो कि हम भी अपने कामों में इस दूरअन्देशी का सबूत दे सकें। क्यों न आप की फैलोशिप इस तरह के काम अपने जिम्मे ले ले ?

आप की कॉन्फ्रेंस के सामने दूसरी विवादग्रस्त समस्या प्रारम्भिक शिक्षा की है जिसे आज सारे देश की शिक्षा की भाषा में हम बुनियादी तालीम कहने लगे हैं। यह ५-६ साल से ऊपर की आयु के लड़के-लड़कियां की शिक्षा की समस्या है। इस कम उम्र के लड़के-लड़कियों में कुछ की शिक्षा तो सदा जैसी-तैसी होती ही रही है। लेकिन जब तक शिक्षा का यह काम निजी काम होता है, बच्चों के संरक्षक अपनी इच्छा और बच्चे से सम्बन्धित अपने विचारों की दृष्टि से इस प्रकार की जैसी और जितनी शिक्षा का प्रबन्ध चाहते हैं करते हैं या अध्यापक अपनी इच्छा से विद्यार्थी को जो चाहता है बनाता है। इसलिए शिक्षा के उद्देश्यों और उसकी विधियों के सम्बन्ध में बहुत भिन्नता रही है। जितने मुँह उतनी बातें। जितने राही उतनी राहें। लेकिन जब शिक्षा समाज का उत्तरदायित्व बन जाती है तो समाज प्राकृतिक स्वभाव से सदा यह चाहता है कि वह शिक्षा से बच्चों को अपना लाभदायक साधन बनाये। उसे लाभदायक बनाने में समाज की ओर से बड़ी ज्यादतियां होती हैं और बराबर होती रही हैं। लाभदायक बनाने की खातिर मानवता के अधिकार छीन लिये जाते हैं। साँचों में कस कर हर व्यक्तिगत विशेषता का झोल मिटा दिया जाता है और एक-से काटे-छांटे ढले-ढलाये नागरिक बनाने की इच्छा को बे रोक-टोक पूरा किया जाता है। अगर समाज का प्रबन्ध लोक-तंत्रीय हो तो चूँकि लोकतन्त्र मानव की कदर करता है, इसलिए उस की व्यक्तिगत विशेषता का लिहाज करने पर भी मजबूर होता है। मगर लाभदायक आदमी तो इसे भी दरकार होते हैं। बल्कि उसका तो अस्तित्व ही अपने नागरिकों की ठीक शिक्षा पर आधारित होता है। दूसरे अगर अपने लिए लाभदायक और आज्ञाकारी जनता बनाने की सोचिए तो भी इसे अपने वास्तविक मालिकों की शिक्षा का काम पूरा करना होता है। इसलिए जहाँ भी लोकतंत्र हैं, पाठशालाएँ उन्नति करती हैं। शिक्षा का आम प्रबन्ध करना होता है। इसका मुफ्त प्रबन्ध करना होता है और चूंकि विषय समाज के अच्छे या पूरे बनने का ही नहीं होता है, बल्कि उसकी मौत और जिन्दगी का होता है, इसलिए शिक्षा को भाग्य और अवसर पर नहीं छोड़ा जा सकता, बल्कि अनिवार्य भी करना होता है। हमारे देश में भी जैसे-तैसे राजनीति लोकतन्त्र की ओर बढ़ी है शिक्षा की समस्या सामाजिक जीवन की एक महत्वपूर्ण समस्या बनी है और इस समय हम लोकतंत्रीय शासन के बहुत करीब हैं, चाहे एक सयुक्त हिन्दुस्तान में, चाहे पृथक्-पृथक् हिन्दुस्तान और पाकिस्तान में। इसीलिए उस बात पर सब एक राय होंगे कि हमें उतने समय के लिए, जितना सामाजिक उद्देश्य की दृष्टि से आवश्यक हो,

अपने तमाम लड़के-लड़कियों के लिए आम और मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का प्रबन्ध करना ही है। मैं समझता हूं कि इस पर भी सब एक राय होंगे कि यह समय यदि ४ या ५ साल का हुआ तो काम न चलेगा और स्वतन्त्रता और लोकतन्त्र का बोझ उठाने वाले नागरिकों की तैयारी के लिए वर्तमान में कम से कम ७-८ साल तक की शिक्षा का प्रबन्ध करना होगा। आगे चल कर इस अवधि को और बढ़ाना पड़ेगा।

वास्तविक प्रश्न

परन्तु ये चीजें, मैंने जिन का जिक्र किया है, बस बाहरी ढांचे हैं। वास्तविक प्रश्न तो यह है कि शिक्षा हो कैसी? इस का उत्तर सोचना और सफलता बराबर अधिक निकट लाने का प्रयास लोकतन्त्री प्रयास में यों तो सब का काम है पर विशेषकर शैक्षणिक कार्यकर्त्ताओं का कर्त्तव्य है। हमें इस कॉन्फ्रेंस में भी इस पर जरूर गौर करना चाहिए। उस प्रश्न का उत्तर तलाश करने या समाज के उद्देश्यों को हम पहली जगह दे सकते हैं। समाज की तरफ से शिक्षा का प्रबन्ध हो, इसके कार्यकर्त्ताओं को तरक्की हो तो यह आसानी से हो सकता है कि हम समाज की आवश्यकताओं को ही सामने रख कर इस प्रश्न का उत्तर दे दें; परन्तु याद रहे कि इसमें बड़े खतरे है। लोकतन्त्रीय समाज भी बिल्कुल हर तरह पाक नहीं होता। व्यक्तित्व के सम्मान के दावों को सामाजिक जीवन की आवश्यकताओं का कार्य रूप नकार सकता है और लोकतन्त्र में शिक्षा प्रबन्ध भी इंसान की इंसानियत को मिटा कर अपने नागरिकों को मशीनों के बीच वैसा ही बनाने की तदबीरें कर सकता है। सामाजिक लाभों के लिए स्थायी उद्देश्यों को नजरअन्दाज कर सकता है, वर्तमान पर भविष्य को कुर्बान कर सकता है, इसलिए सही रास्ता यह मालूम होता है कि हम व्यक्ति को दृष्टि में रखते हुए शिक्षा के महत्व पर गौर करें तथा समाज के दृष्टिकोण से भी और देखें कि अगर दोनों में कोई भिन्नता है तो वह कैसे दूर हो।

शिक्षा के अमल में व्यक्ति और समाज के बीच पहले दिन से चोली-दामन का साथ है। आप शिक्षा का कार्य करने वाले हैं। आप से तो छिपा हुआ न होगा कि शिक्षा अर्थात् वास्तविक मानसिक शिक्षा कैसे होती है। मस्तिष्क अपने विकास के लिए शरीर की तरह भोजन चाहता है। यह भोजन इसे कहां से मिलता है? समाज की संस्कृति, इसकी परम्पराओं, रस्म-रिवाज आदि से। इसके इल्म से, इसकी जबान से, इसकी भाषा से, इसकी सभ्यता से, इसके कला-कौशल दस्तकारी से, इसके चरित्र से, इसके सामाजिक जीवन के नमूने से, इसके गाँव, कस्बों को बनावट से, इसके ज्ञान-विज्ञान से, चित्रकारी से, इसकी भवन निर्माण कला से, इसकी दूकानों से, इस के कारखानों से, इसके शासन प्रबन्धों से, इसके बड़े-बड़े आदमियों के जीवन के नमूनों से।

सुरक्षित शक्तियाँ

सामाजिक संस्कृति की ये सारी अन्दर और बाहर की चीजें जो मस्तिष्क के विकास के लिए भोजन का काम देती हैं, स्वयं भी किसी न किसी मानव मस्तिष्क की पैदावार होती हैं। किसी न किसी

मानव मस्तिष्क ही ने इनमे में यह रूप लिया है। किसी मानव मस्तिष्क ही ने इतनी शक्ति को सुरक्षित कर दिया है। इन में मानव मस्तिष्क की इच्छायें, सूझ-बूझ और दोष ही तो छिपे हुए हैं। यह सब मस्तिष्क की पूंजी रखने वाले का गुप्त कोष है या किसी अलमस्त के आराम करने का सिरहाना। गर्ज सब जहनें इन्सानियत की आभारी हैं।

तोते और सरकस के जानवर

जब कोई मानसिक व्यवस्था, मस्तिष्क इन चीजों से मिलता है तो इन की छिपी हुई ताकतें प्रकट होती हैं। इन में सोई हुई शक्तियां इस नये मस्तिष्क में जा कर जग जाती हैं। इसके लिए ये गड़े हुए खज़ाने अपना मुँह खोल देते हैं और शांत सिरहानों से इस के लिये फिर शोर उठ खड़ा होता है। हाँ, यह जरूर कि हर मस्तिष्क के लिए हर सांस्कृतिक वस्तु अपनी छिपी हुई शक्तियां प्रकट नहीं करती। शारीरिक भोजनों की तरह मानसिक खाने भी सब को एक ही से नहीं रास आते हैं। किसी को कोई भाता है, किसी को कोई। भेद इस का यह है कि हर मस्तिष्क को वही चीज भाती है जो आप की मानसिक बनावट के अनुसार हो। यही तालीम का बुनियादी गुर है। इस को भूलना या इसके खिलाफ चलना ऐसा है जैसे अन्धे को रंग और बहरे को आवाज से शिक्षा देने का प्रयास। जिस मस्तिष्क की बनावट सभ्यता के फलों के अनुसार हो उसे कारीगरी की चीजों से, जिस की बनावट इल्मी और नजरी चीजों से मेल रखती हो उसे अमली चीजों से तालीम देना चाहिये। इसके विरुद्ध शिक्षा के महत्व से अनजान की दलील है और वास्तविक मानसिक शिक्षा के दरवाजों को बन्द कर के तोतों और सरकस के जानवरों का पद देना चाहती है।

अच्छा, तो इस सिद्धान्त की मांग ६-७ वर्ष की आयु के बालक-बालिकाओं के लिए क्या है? यदि ऐसा हो कि प्रत्येक बालक-बालिका की मानसिक शिक्षा पृथक-पृथक सांस्कृतिक वस्तुओं से हो सकती है तो फिर किसी सार्वजनिक व्यवस्था के बनाने की कठिनाइयां असम्भव की सीमा तक पहुँच जातीं। जन साधारण के लिए पूर्ण व्यवस्था करने वालों का सौभाग्य है कि इस आयु में मानसिक भिन्नता उत्पन्न होने के पूर्व कार्य करने की रुचि बच्चों में बहुत आम, बल्कि यूँ कहिये कि सर्वव्यापी होती है। इस आयु में बच्चे चाहते हैं कि कुछ बनायें बिगाड़ें, तोड़ें, जोड़ें। इन के हाथ काम के लिए बेचैन होते हैं। इन की मानसिक शिक्षा के लिए इस आयु में प्रकृति की इच्छा यही जान पड़ती है कि वे हाथों की सहायता से सोचें, वस्तुओं को बरत कर पहचानें और काम कर के सीखें। यह बड़ा ही अनजानपन और भुलावा है कि हम इस आयु के बच्चों के लिए मानसिक शिक्षा की इस सीमा को अर्थात सक्रियता को इन की शिक्षा में स्थान नहीं देते और प्रकृति की माँगों को ठुकरा कर अपने मनमाने उपायों से उच्च शिक्षा के स्थान पर केवल मुलम्मेकारी पर जोर देते रहते हैं। मैं तो समझता हूँ कि इस में दो राय नहीं हो सकतीं कि इस मंजिल में सक्रियता को शिक्षा प्रयासों का केन्द्र बनाया जाये।

बड़ा अन्तर

शिक्षार्थी और शिक्षा विधि में अनुकूलता के अतिरिक्त इस मंजिल पर हाथ का काम स्वयं मानसिक व्यायाम और मानसिक व्यायाम से मानसिक विकास का सर्वश्रेष्ठ लाभप्रद रूप है। इस के द्वारा जो

कार्य दक्षता और जानकारी अर्जित की जाती है वह मानसिक शक्ति को चमकाती है। जो केवल पुस्तकों से प्राप्त हो वह शिक्षा प्राय: और अधिकतर इस उद्देश्य के लिए बेकार सिद्ध होती है । हम शिक्षा का कार्य करने वालों को यह कभी न भूलना चाहिये कि प्रत्येक कला और जानकारी मानसिक शिक्षा का साधन नहीं होती; ये न इस से सम्बन्धित हैं न इस की माप । जानकारी भी दो प्रकार की होती है और कलाकारी भी दो प्रकार की । एक जानकारी वह है, जिसके लिए दूसरे कार्य करते हैं, वह हमें बैठे-बिठाये मिल जाती है। सूचना की दृष्टि से एक जानकारी वह होती है जो स्वयं के प्रयास और अनुभव से प्राप्त होती है और जो व्यक्ति की उपलब्धि का अंश और मानसिक शक्ति बनती है, मस्तिष्क को प्रकाशित करती है और इस में दृष्टि पैदा करती है । इस ही प्रकार एक कलाकारी मशीनी कलाकारी होती है । इस में सूझबूझ की आवश्यकता नहीं, बस परिश्रम की आवश्यकता है। पहले से जो निश्चित है उस का प्रतिपादन करती है। पहले से जो दूसरों ने निश्चित कर दिया है उसे पैदा करती है । एक कलाकारी ऐसी भी है जो मशीनी नहीं होती, स्वयं की योग्यता के आधार पर नया अधिकार पैदा करने से उत्पन्न होती है । इस को अर्जित या पैदा की हुई कलाकारी कह सकते हैं । परम्परागत सूचनार्थ विद्या निष्प्राण होती है और प्रकाश रहित । इस से न तो मस्तिष्क को प्रकाश प्राप्त होता है और न आत्मा बढ़ती है। प्राय: स्वार्थ के अवगुण पाने हेतु एक सुन्दर परदा है या एक खाली बरतन पर मढ़ा हुआ चाम, जो आवाज बहुत देता है पर अन्दर से होता है खोखला । अनुभव से प्राप्त की हुई विद्या विनय, नम्रता और सम्मान पैदा करती है, मानसिक शिक्षा देती है, आत्मा का पालन करती है और सदा आगे बढ़ने की शक्ति प्रदान करती है । यही दशा मशीनी कलाकारी के मुकाबले में पैदा की हुई कलाकारी की है । वास्तविक शिक्षा अर्थात् मस्तिष्क की वास्तविक शिक्षा अनुभव द्वारा अर्जित विद्या और पैदा की हुई कलाकारी दोनों के लिए बुनियादी पाठशालाओं में हाथ के कार्य को सम्मिलित करना और इस से ठीक--ठीक शिक्षा का काम लेना आवश्यक है ।

हर कार्य शैक्षणिक नहीं

इस माँग से कुछ लोग तुरन्त यह नतीजा निकाल लेते हैं कि फिर सूचनार्थ पुस्तकीय ज्ञान और मशीनी कलाकारी के लिए पाठशाला में कोई स्थान ही नहीं होना चाहिये । मैं समझता हूँ कि ये लोग जरा जल्दबाजी करते हैं और सैद्धान्तिक जीवन का सहचर नहीं बनाते बल्कि जीवन को मन घड़न्ती सिद्धान्तों का दास बनाना चाहते हैं । एक सत्य बात को बढ़ा-चढ़ा कर प्रस्तुत कर के एक समस्या बनाने का प्रयास करते हैं । सत्य यह है कि प्रत्येक पैदा करने अथवा बनाने वाला काम आवश्यक ढंग से शैक्षणिक कार्य नहीं होता और न प्रत्येक अनुभव द्वारा अर्जित विद्या ही शिक्षा है; न सारी पुस्तकों को अग्नि में भस्म करना ही आवश्यक है । तनिक संतोष कीजिये तो ज्ञान होगा कि शिक्षा के विचार से सफल कार्य वह होता है जिसमें पहिले कार्य करने वाले को समस्या का साफ–साफ ज्ञान हो, वह अपने कार्य का मानसिक चित्र बनाये, इस के साधनों पर विचार करे कार्य को पूरा करने के सम्भव मार्गों में से एक को चुने, फिर इस कार्य को कर डाले । करने के पश्चात अपने प्रारम्भिक उद्देश्य और चित्र को सामने रख कर इसे जांचे । इस की अच्छाई पर प्रसन्नता हो और इस की त्रुटियों से पाठ सीखे और भविष्य में अधिक उत्तम ढंग से करने को तैयार हो । शिक्षा के कार्य में ये मंजिलें आवश्यक हैं । यही इस कार्य को शैक्षणिक गुण प्रदान करती है । सूचनार्थ शिक्षा और मशीनी काम में ये मंजिलें नहीं होतीं, इसलिए ये सच्ची शिक्षा का

साधन नहीं बन सकते, परन्तु फिर भी शिक्षा के क्षेत्र में इन के लिए स्थान है और कुछ कारणों से विशेष महत्वपूर्ण स्थान। और कुछ बातों को ध्यान में रखते हुए मुख्य महत्वपूर्ण स्थान पर होता यह है कि वास्तविक शैक्षणिक कार्य के सम्बन्ध में काम करने वालों को बहुत सी ऐसी जानकारी की आवश्यकता होती है जिसे सब को यदि अनुभव ही से प्राप्त करना चाहें तो आयु समाप्त हो जाये। बहुत से विकास सम्बन्धी शैक्षणिक कार्यों में ऐसी कुशलता की आवश्यकता होती है कि यदि वह पहले से प्राप्त कर के मशीनी ढंग पर काम में न लाई जा सके तो यह उद्देश्य पूरा ही न हो सके। ऐसी दशा में मशीनी कुशलता और सूचनात्मक शिक्षा अनुभव और विकास के उद्देश्यों में सहायक के ढंग पर सम्मिलित हो जाते हैं और इस प्रकार इन की मुर्दनी भी जीवन की सहायक हो कर इन्हें जीवन प्रदान कर देती है।

हाथ का काम

शैक्षणिक कार्य की जो मुख्य मंजिलें हैं, जिनका मैंने ऊपर वर्णन किया है, वे केवल मानसिक कार्य में भी हो सकती हैं; सभ्यता के परकोटे बनाने में भी. शिक्षा सम्बन्धी खोजों में भी और हाथ के प्रयोगिक कार्य में भी। और विस्तार का अवसर नहीं है। थोड़ी सी तसल्ली से सोचने पर प्रकट हो जायेगा कि हाथ के कार्य में ये मंजिलें बहुत कुशल काम करने वाले के सामने आ सकती हैं, इसलिए यदि हम अनुभव की गई शिक्षा और विकास सम्बन्धी कुशलता को सत्य मानें तो अपनी इन बुनियादी पाठशालाओं में हाथ के काम से यह शिक्षा सेवा लेने का उपाय करना और भी आवश्यक है।

बुद्धिमानी का तकाजा

यह जो शिक्षा कार्य का महत्व, शैक्षणिक कार्य, अनुभव की गई शिक्षा और विकास सम्बन्धी कुशलता की शैक्षणिक शक्ति की माँगों से हम व्यक्ति की पूरी मानसिक शिक्षा के लिए हाथ के काम को बुनियादी पाठशालाओं में रिवाज देना चाहते हैं; अवसर की बात है कि कक्षा से होने वाले लाभों की मांग भी यही है। जिस वर्ग में बहुत बड़ी संख्या हाथ के काम को अपने जीवन का महत्वपूर्ण धन्धा बनाने पर मजबूर है इस के शिक्षा केन्द्रों और शिक्षणालयों को हाथ के काम की हवा न लगने देना कहां की बुद्धिमानी है? सत्य यह है कि कौमी जिन्दगी से ऐसी दूरी और इस की प्रकट मांगों से ऐसी लापरवाही उसी समय सम्भव है जब ये पाठशालायें गिनती के स्वार्थियों को ऊपर बढ़ाने और अपनी जाति के बड़े दायरे से अलग करने का कारण हों। कहीं और ये ठीक हो या न हो परन्तु एक लोकतन्त्रीय देश में यह कदम विचार करने योग्य नहीं है। हाथ के काम को पाठशाला में स्थान दे कर यह लोकतन्त्र वास्तव में वह कार्य करेगा जो इस का प्रथम उद्देश्य हो सकता है अर्थात् योग्य नागरिक पैदा करना ताकि व्यक्ति का सम्मान जो लोकतन्त्र की आत्मा है और व्यक्ति इस प्रकार लाभदायक बने कि अपनी व्यक्तिगतता को भी तजना न पड़े और अपनी शिक्षा की सम्भावना से भी वंचित न हो।

उद्देश्य ही महत्वपूर्ण

अच्छा, यदि हमने व्यक्ति और समाज को शिक्षा-सम्बन्धी माँगों को ध्यान में रख कर अपनी बुनियादी पाठशालाओं को लाभदायक पाठशालाएं बना दिया और इन में अनुभव सम्बन्धी शिक्षा और विकास सम्बन्धी कार्य और इनकी सहायक बल्कि सेविका पुस्तकीय शिक्षा तथा मशीनी कार्य का एक ऐसा मिश्रण तैयार कर लिया जिससे ६,७ से १४ वर्ष तक के लड़के-लड़कियों के मानसिक व्यायाम का काम उत्तम प्रकार से हो सके, तो क्या हम ने सब कुछ कर लिया जो इनकी शिक्षा हेतु करना है ? खैर, सब कुछ तो कोई कभी नहीं कर सकता, परन्तु हमने तो शायद अभी अपना सबसे कठिन काम भी नहीं किया है। हमने यदि मानसिक शक्तियों के लालन-पालन का प्रबन्ध कर दिया, यदि कुशलताएँ पैदा कर दीं तो शिक्षा का काम समाप्त नहीं हो गया। योग्यतायें और कुशलतायें अच्छी होती हैं और न बुरी, वे अच्छी-बुरी बनती हैं उन उद्देश्यों से जिनकी सेवा में लगाई जाती हैं। आपके न्यायालयों में झूठ को सच बना कर रुपया बटोरने वाले, आपकी व्यापारिक फर्मों में काली मण्डी के लाल सौदागर और सामाजिक पूँजी के चोर, आपके ओहदेदारों में रिश्वत का बाजार गर्म करने वाले, आपके सामाजिक कार्यकर्त्ताओं में स्वयं के स्वार्थ के लिए जन साधारण के लाभ को चुटकी बजाते न्योछावर करने वाले, आपके विद्वानों और पण्डितों, आपके साधुओं और सूफियों में आम जनता की मूर्खता से बिना हिचकिचाहट लाभ उठाने वाले, आपके झूठे गवाहों और जालसाजों के नामुराद दिल, ये सब योग्यताओं और मानसिक कुशलता में किसी से पीछे तो नहीं हैं। क्या हम अपनी पाठशालाओं को मानसिक गुणों के चमकाने और कुशलता उत्पन्न करने के स्थल बनाकर इन में इन्हीं फौजों के लिए रंगरूट प्राप्त करना चाहेंगे ? नहीं, शिक्षा योग्यता से नहीं होती, योग्यता को अच्छे उद्देश्य का अनुचर बनाने से होती है। लोकतन्त्रीय समाज में इस वास्तविकता को नजरअन्दाज करना समाज के जीवन की शर्तों में लापरवाही बरतना है। जब तक मनुष्य अपनी शक्तियों को समाज की सेवा के लिए खर्च करना न सीखे उस समय तक इसकी कार्य-कुशलता समाज की विश्रृंखलता का कारण बन सकती है और विशेषकर लोकतन्त्रीय राज्य में जो खोज और वास्तविकता को ढूँढ निकालने की स्वतन्त्रता है, समाज की स्वतन्त्रता है, बोलने और सीखने की स्वतंत्रता है, इन सब से व्यक्तित्व की विश्रृंखलित शक्तियाँ उभरती है। जो इन स्वतन्त्रताओं का आदर करते हैं और समाज के लिए इन्हें हाथ से जाने देने को बहुत मंहगा सौदा जानते हैं लेकिन जिन्हें सामाजिक जीवन की विश्रृंखलता भी स्वीकार नहीं, उन्हें स्वतन्त्रता के साथ समाज के मस्तिष्क के लालन-पालन और जातीय समाज को सुदृढ़ बनाने के उपाय भी सोचने चाहिये, उन्हें देखना चाहिये कि पाठशाला एक सामाजिक पाठशाला के विचार से इस विषय में हमारी क्या सहायता कर सकती है। आज तो वह शिक्षा व्यक्तित्व को कुचलती है, इसलिए कि सब के लिये वह मार्ग निश्चित करती है जो बहुत कम के लिए ठीक मार्ग हो सकता है। बनाने और उत्पन्न करने के लिए बेचैन बच्चों को पुस्तकों पर झुकाती है, उन औजारों के स्थान पर जिन की ओर बच्चों की ललचाई नजरें तकती हैं, उन्हें कलम और दवात देती है, उछलने-कूदने के लिए बेचैन बच्चों को घंण्टों चुपचाप बैठने पर लाचार करती है। एक ओर तो व्यक्तित्व के साथ यह रूखापन, दूसरी ओर स्वार्थ के मार्गों पर इन्हें चलाने हेतु यह प्रबन्ध कि जिस से आश्चर्य होता है। अपनी पाठशाला के पाठ्यक्रम पर, इन के कार्यों पर तनिक होशियारी से ध्यान

दीजिये और जरा गंभीरतापूर्वक विचार कीजिये तो ज्ञात होगा कि इन में शायद एक ही कारोबार होता है, वह यह कि व्यक्तित्व के मस्तिष्क, इस की स्वतन्त्रता को शक्ति, कुशलता सब का व्यक्ति के लिए विकास हो। सामाजिक गतिविधियों के प्रयोग के लिए न अवसर मिलता है न वे उभरतो हैं न उनकी शिक्षा होती है। मस्तिष्क में चेतना आती है, मन को सुलाया जात है, अधिकार याद रहते है, कर्त्तव्य भुलाये जाते हैं। व्यक्तिगत स्वार्थ के ढालू पथ पर बच्चे ढकेले जाते हैं। निःस्वार्थता ग्रार सेवा के द्वार बन्द रहते हैं। दूसरे को कोहनी मार कर बढ़ जाने का हरदम अभ्यास, सिद्ध है, साथी को सहारा देकर आगे बढ़ने का कहीं नाम नहीं। सब अपने-अपने लिए हैं, सब के लिए कोई नहीं। हां, जबान से कभी-कभी कौम सेवा, पड़ौसी के अधिकार, आपसी सहायता की शिक्षा हो जाती है। परन्तु करने के कार्य बातों से पूरे नहीं होते। कार्यकर्त्ता की आदतें बातों से नहीं बनतीं। जोवन से वास्तविक सम्बन्ध की माँग विचारों, अनुभूतियों के अतिरिक्त कार्य क्षेत्र से भी है। समाज की अपनी योग्यतानुसार कुछ सेवा करने में इस के लालन-पालन और विकास का भेद है। अच्छा समाज अपने व्यक्तियों को इस का अवसर देता है कि वे मिल कर इस के लिए कुछ करें और इस पर खुश हो सकें। अच्छी पाठशाला भी सामाजिक काम की खुशी के अवसर निकालती है। कार्य के सफल होने से खुशी तो व्यक्तिगत प्रयास से भी होती है, परन्तु वह सामाजिक उद्देश्यों से सम्बन्धित होती है। कार्य का इस व्यक्तिगत प्रसन्नता को जो कि स्वार्थ पूर्ण इंजन है, सामाजिक उद्देश्य की पाटरी पर डाल देना चाहिये। व्यक्तिगत कार्य की खुशी को सामाजिक कार्य की लगन और इस पर गौरव में बदल देना चाहिये। यूँ समाज से व्यक्ति का सम्बन्ध व्यक्ति के लिए खुशी और गौरव का कारण बन जाता है और व्यक्ति और समाज की गुत्थी वाद-विवाद बिना खुल जाती है।

रुचि के अनुसार काम

अब देखना यह है कि काम की खुशी किस प्रकार के कार्य से प्राप्त हो सकती है। मैं समझता हूँ कि यह उस समय मिलती है जब काम, काम करने वाले की योग्यता, इस की रुचियों, इस की तबीयत के झुकाव के अनुसार हो और सज्जनों, आप से बेहतर कौन जानता है कि यह योग्ययता क्या होती है और यह झुकाव किधर होता है, पुस्तकों की ओर होता है या कार्य करने की ओर। इसलिए यह व्यक्तिगत रुझान और कौमी समस्या दोनों की माँग है कि हमारी पुस्तकीय पाठशालाओं को कार्य करने की पाठशालाएं बनाया जाये।

चार जरूरी कदम

इस पहले कदम से पूरा लाभ उठाने के लिए दूसरा कदम यह आवश्यक है कि प्रयोगिक कार्य की व्यक्तिगत इच्छा को सामाजिक कार्यों में लगाने का प्रबन्ध किया जाये और पाठशाला के कार्य को समाज के काम का रूप दे दिया जाये और जब स्वार्थ पूर्ण कार्य की भावना सामाजिक सेवा में परवर्तित हो जाये, दूसरों को सहायता करने, दूसरों से सहायता लेने की आदत पड़ने लगे और उत्तरदायित्व का विचार पैदा हो जाये तो तीसरा कदम यह है कि आदतों को बुद्धि में अर्थात् योग्यताओं में बदल दिया जाये। इस प्रकार व्यक्तिगत और सामाजिक उद्देश्यों के साथ-साथ पूरा हो सकने की

सम्भावनाएँ प्रकाश में लाई जायें और चौथा कदम यह है कि अध्यापकों के प्रबन्ध स्वयं इन के हाथ में दे दिये जायें । उत्तरदायित्व का अहसास और अपने काम को अपने बस भर अच्छे ढंग पर संपन्न करने की रुचि स्वतन्त्रता और लगातार कार्य करते रहने से पैदा होती है । पाठशाला के समान और एक उद्देश्य वातावरण में सहानुभूतिपूर्ण निगरानी और परामर्श के साथ ये सब मंजिलें सरलता से तय हो सकती हैं और पाठशाला इस लोकतन्त्रीय राज्य का जो इसे चलाता है, सब से लाभ दायक केन्द्र बन सकती है तथा इस राज्य को उत्तम राज्य बनाने में सब से प्रभावशाली शक्ति सिद्ध हो सकती है ।

सज्जनों ! मैंने आप का बहुत समय लिया । परन्तु मैं समझता हैं कि अपनी बुनियादी पाठशालाओं में अर्थात् अपनी कौमी तालीम के सब से आवश्यक भाग में यदि हमें कुछ करना है तो बस करने की वस्तु यही है कि इन पाठशालाओं को सूचनात्मक शिक्षा केन्द्रों के स्थान पर अनुभवी शिक्षा की पाठशालाएँ बनाया जाय । पुस्तको की पाठशाला के स्थान पर प्रायोगिक पाठशाला बनानी चाहिये । व्यक्तिगत स्वार्थ के स्थान पर निःस्वार्थ सामाजिक सेवा के शैक्षणिक केन्द्र बनाने चाहियें । यह कठिन कार्य है परन्तु आवश्यक कार्य । हमारा भविष्य इन उद्देश्यों की सफलता के साथ-साथ बँधा हुआ है । इस कार्य में आप के बहुत से सहायक होंगे और इस से अधिक रुकावट डालने वाले । परन्तु यह कार्य उसी समय सम्पन्न हो सकता है जब अध्यापक अपने कर्तव्य को जाने और शिक्षा के विषय में अपने उत्तरदायित्व को पहचाने । मुझे यकीन है कि "न्यू एजूकेशन फैलोशिप" के कार्यकर्ता इस क्षेत्र में सब से आगे होंगे ।

किफायतशारी जरूरी

आज की तकलीफें हमारी आर्थिक व्यवस्था को किसी आन्तरिक कमी के कारण से नहीं हैं । ये तो ऐसे प्रतिकूल कारणों से हैं जिन पर हमारा वश नहीं—एक कारण यह भी है कि हम तेजी से विकास करने को लालायित थे । आज सब से बड़ा काम 'स्फीति' रोकना और औद्योगिक उत्पादन तथा निर्यात बढ़ाना है । इसलिए सरकारी, गैर-सरकारी सभी क्षेत्रों में सख्त किफायतशारी की जरूरत है ।

—डा० जाकिर हुसैन

भारत में शिक्षा का पुनर्निर्माण (१)

[नई दिल्ली में १२ दिसम्बर, १९५८ को सरदार पटेल स्मारक व्याख्यान माला के अन्तर्गत डा० जाकिर हुसैन का भाषण]

सब से पहले मैं सूचना तथा प्रसारण-मन्त्रालय को धन्यवाद देना चाहता हूँ कि उसने पटेल-स्मारक व्याख्यान माला के अन्तर्गत तीन व्याख्यान देने के लिए मुझे आमन्त्रित किया। दिल्ली में मैंने अपने कार्यकारी जीवन का अधिकांश समय बिताया है, इसलिए यहाँ आने के लिए मुझ पर अधिक ज़ोर देने की ज़रूरत नहीं पड़ती। जब मैं यहां आता हूँ, मुझे घर लौटने-जैसे आनन्द का अनुभव होता है। किन्तु मैं इस अवसर पर इसलिए खास तौर से खुश हूँ कि मुझे उस व्यक्ति की स्मृति से अपने को सम्बद्ध करने का मौका मिल पाया है, जिसे मैंने देश की आजादी के लिए बहादुर सेनानी के रूप में आदर के साथ देखा था, जिसने देश के भावी गौरव को सुसंघटित राजनीतिक ढाँचे की मजबूत नींव पर खड़ा किया था। यह महान् सरदार की बुद्धि और ताकत से ही सम्भव हो सका कि ५५० से भी अधिक देशी रियासतों की बेमेल प्रशासकीय इकाइयों का समस्त देश के साथ इस प्रकार संघटन किया गया है कि उन्हें एक सन्तुलित रूप प्राप्त हुआ। दृष्टि की सूक्ष्मता, व्यवहार की दृढ़ता, हर बात को अच्छी तरह समझने की खूबी, दृढ़ग्राहिता, आदमियों और कामों की जानकारी तथा साधनों में महान् साध्य की शक्ति डालने की विलक्षण क्षमता—ये तथा इसी तरह के अन्य गुण उस महान् राजनेता के उन कठिन कामों को सफल बनाने में ज़ाहिर होते हैं, जिनमें वह लग जाता था। आज हमारे राष्ट्रीय जीवन के महान् निर्माताओं में उसका स्थान अमर हो गया है। आइए, उस महान् पुरुष की याद में हम कृतज्ञता और प्रशंसा के अर्घ्य चढ़ायें।

लेकिन अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए हमें भूलना नहीं चाहिए कि राष्ट्रीय जीवन की इमारत कभी पूरी नहीं होती। वह हमेशा बनती ही चलती है। उसका विकास और विस्तार होता रहता है। उसकी बनावट के नक्शे की तफसील में हमेशा विस्तार की माँग होती है। उसके अगणित तत्त्वों का पारस्परिक सन्तुलन आवश्यक होता है, क्योंकि उनमें से प्रत्येक एक-दूसरे को प्रभावित करता है। प्रशासनिक इकाइयों के एकीकरण के साथ ही एकीकरण की पद्धति समाप्त नहीं हो जाती। वह तो स्थायी पद्धति है। हमने अपने राष्ट्रीय विकास के लिए जो सामान्य रूपरेखा अपनाई है, उसमें यही निरन्तर पद्धति हमारे राष्ट्रीय अस्तित्व का मूल आधार है; क्योंकि हम अपने जन-जीवन को धर्म-निरपेक्ष लोकतन्त्र के रूप में सयोजित करने का निश्चय कर चुके हैं। साथ ही, चूँकि अपने लिए हम एक समाजवादी ढाँचे के समाज का विकास करने का निश्चय कर चुके हैं, हम एक सामाजिक लोकतन्त्र भी कायम करने को कटिबद्ध हैं। सच्ची शिक्षा ही इस तरह के लोकतन्त्र की जीवन-शक्ति है।

सम्भव है, यह बात थोथी दलील मालूम पड़े। किन्तु थोड़ा विचार करने पर मालूम होगा कि यह बिलकुल ठीक है। दूसरे प्रकार के सामाजिक संगठनों से भी काम चल सकता है तथा चला भी है, जिसमें केवल शिष्ट-समुदाय की शिक्षा की व्यवस्था रहती है और बाकी लोगों को अपना प्रबन्ध आप करने के लिए छोड़ दिया जाता है। अथवा विभिन्न श्रेणियों और विभिन्न वर्गों के लिए तरह-तरह की शिक्षा की व्यवस्था हो सकती है और होती भी रही है। सामंतों और नागरिकों तथा भद्रपुरुषों, रईसों या व्यापारियों के अथवा शिल्पियों के अपने बहुत कुछ स्पष्ट शैक्षिक आदर्श होते थे। परन्तु अक्सर, इन विभिन्न आदर्शों का आधार किसी सामान्य धार्मिक विश्वास में ही होता था। शैक्षिक आदर्शों की विभिन्नता धार्मिक एकता का रूप ले लेती थी, किन्तु धर्म-निरपेक्ष समाज में यह सम्भव नहीं है। विभिन्न विभागों, जातियों तथा व्यवसायों वाले व्यापक समाज में धार्मिक एकता नहीं हो सकती। पुरानी तरह का ऐसा शैक्षिक आदर्श गढ़ना, जिसके साँचे में हर नागरिक का दिमाग ढाला और परिवर्तित किया जा सके, और जो सब के लिए मान्य समझा जाए, बिलकुल विफल प्रयास होगा। किसी लोकतान्त्रिक समाज में इस किस्म का प्रयास करना मूर्खता ही होगी; क्योंकि ऐसी समाज-व्यवस्था में व्यक्ति की अनगिनत प्रवृत्तियाँ विकसित हो कर तथा स्वतन्त्र बढ़ कर, नैतिक रूप से स्वच्छन्द तथा व्यक्तित्व के रूप में बदल जाना चाहती हैं।

यह स्थिति, जो यूं तो विषम कठिनाइयाँ प्रस्तुत करती दिखाई देती है, वास्तव में शिक्षा के सामने एक सुअवसर प्रदान करती है; क्योंकि इसी के द्वारा लोकतन्त्र में शिक्षक इस योग्य बन पाता है कि वह शिक्षा-सम्बन्धी कुछ भ्रान्तियाँ दूर करे, जैसे यह भ्रान्ति कि शिक्षा का अर्थ है किसी मानी हुई वर्गगत पद्धति के अनुसार, किसी बने-बनाए शैक्षिक आदर्श के अनुकूल, स्पष्ट रूप से वर्णित विषयों की सहायता से, शिक्षार्थी को एक साँचे में ढाल लिया जाए। शिक्षक यह अनुभव करने में समर्थ हो पाता है कि शिक्षा वास्तव में व्यक्तित्व गढ़ने वाला कोई चाप-यन्त्र नहीं है, बल्कि स्वच्छन्द तथा उन्मुक्त करनेवाली वह क्रिया है, जिससे शिक्षार्थी के निजी विशिष्ट व्यक्तित्व को मान्यता मिलती है। इससे उसे एक सुयोग प्राप्त होता है—एक चुनौती मिलती है कि वह शिक्षा-सम्बन्धी कोई ऐसी विचारधारा प्रस्तुत करे, जो धर्मनिरपेक्ष सामाजिक लोकतन्त्र में शिक्षा के पुनर्निर्माण का आधार बन सके, क्योंकि हमारे राष्ट्रीय जीवन का भविष्य बहुत-कुछ उन विचारों और सिद्धान्तों पर निर्भर करेगा, जिनसे

भारतीय शिक्षा को प्रेरणा मिलती है। यह इस पर निर्भर करेगा कि शिक्षा किस प्रकार प्रजातान्त्रिक जीवन की वृद्धि और विकास में योग देती है, किस प्रकार व्यक्तित्व के पूर्ण विकास और वृद्धि में सहायता पहुँचाती है, किस प्रकार सामाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए शिक्षा, सामंजस्यपूर्ण विकसित व्यक्तित्व को सन्नद्ध करती है, किस प्रकार यह आत्मरहस्यों का दर्शन कराती है और किस तरह निःस्वार्थता के रहस्यों का अर्थ समझने में हमारी सहायक होती है।

यदि शिक्षा का महत्व इतना अधिक है—और मैं समझता हूँ कि आप भी मानते हैं कि उसका महत्व बहुत अधिक है, तो केवल प्रशासनिक विवरणों में थोड़ा-बहुत हेर-फेर करना ही काफ़ी नहीं होगा, किसी क्रम-स्थल पर एक साल जोड़ देने या घटा देने से, यहाँ-वहाँ एकाध विषय जोड़ देने से, या खराब पाठ्य-पुस्तकों के स्थान पर, यदि सम्भव हुआ तो, और भी खराब पुस्तकें लाकर, या स्कूलों का वर्त्तमान नाम बदल लेने से तथा इसी तरह के ऊपरी कामों से हम शिक्षा के पुनर्निर्माण के सामने आई बड़ी चुनौती का सामना नहीं कर पाएँगे।

शिक्षा-सम्बन्धी उपकरणों की वृद्धि-मात्र से भी इस चुनौती का सामना नहीं किया जा सकता, जब तक कि इसके वास्तविक लक्ष्यों तथा उद्देश्यों का पूर्ण तथा सक्रिय बोध न हो और जब तक इनकी प्राप्ति के लिए अपनाए गए साधनों और साध्य में घनिष्ठ सामंजस्य न हो। हमारी शिक्षा की इमारत के उपयुक्त पुनर्निर्माण के लिए शिक्षा के रूप तथा लोकतांत्रिक समाज की वृत्तियों की गहरी तथा अधिक विस्तृत जानकारी आवश्यक है।

पहले शिक्षा को लीजिए। सबसे पहले हमें इस आम धारणा को दूर करना चाहिए कि शिक्षा का काम इन्सान के खाली दिमाग में सूचनाएँ भरना है। नहीं, शिक्षा का अर्थ प्रसाधन करना नहीं है, न ही इसका अर्थ किसी साफ-सुथरे स्लेट पर लकीरें खींचना है। इसका अर्थ यह भी नहीं कि किसी ऐसी प्रशिक्षण या प्रसाधन-व्यवस्था को थोपा जाए, जो किसी औद्योगिक अथवा आर्थिक सर्वेक्षण या किसी विशेष राजनीतिक विचारधारा को सामने रख कर स्वेच्छाचारी ढंग से निश्चित की गई हो। लोकतन्त्र में शिक्षा का मूल सिद्धान्त बच्चे के व्यक्तित्व के प्रति सम्मान की भावना रखना है। उस बच्चे के प्रति जो बड़ा होकर कल का नागरिक बनने वाला है। लोकतन्त्र का भविष्य ही उसके पूर्ण विकास पर निर्भर करता है, तथा इस पर निर्भर करता है कि लोकतन्त्र को अधिकाधिक न्यायपूर्ण बनाने में, अधिकाधिक इसे एक नैतिक रूप से सम्पूर्ण सामाजिक संगठन बनाने में नागरिकों का कुशल तथा हार्दिक सहयोग मिले। कारण, प्रत्येक नागरिक-द्वारा यथाशक्ति अपने एवं समाज के प्रति यथोचित कर्त्तव्य के पूर्ण निर्वाह से ही लोकतन्त्र सफल होता है। शिक्षा द्वारा प्रतिभाओं की खोज तथा उनके पूर्ण विकास के परिणामस्वरूप ही कर्त्तव्य सम्बन्धी ऐसी योग्यता हासिल हो सकती है।

यह कैसे हो सकता है? शिक्षा किस प्रकार सम्भव हो सकती है? मैं अपना विचार संक्षेप में व्यक्त करूँगा। शिक्षा की पद्धति या बुद्धि का संस्कार, मेरे विचार में, मानव शरीर के उत्तरोत्तर विकास पद्धति के बहुत समान हैं। जिस प्रकार शारीरिक एवं रासायनिक नियमानुसार, अनुकूल सुपाच्य भोजन, घूमने-फिरने एवं कसरत के सहारे शरीर भ्रूणावस्था से विकसित होकर पूर्ण आकार

में आ जाता है, उसी प्रकार मानसिक विकास के नियमानुसार, मानसिक भोजन एवं कसरत के द्वारा मस्तिष्क भी अपनी मौलिक अवस्था से पूर्ण विकसित अवस्था तक वृद्धि पाता एवं विकसित होता है।

हमें इस मूल तथ्य को नहीं भूलना चाहिए कि शिक्षित किया जाने वाला दिमाग विशिष्ट होता है। जिस भोजन पर उसे समृद्ध तथा विकसित होना है, उनमें उसके वातावरण की संस्कृति का प्रभाव है, जो प्राय: अन्य सभी प्रकार के मस्तिष्कों के ठोस मानसिक प्रयास का परिणाम है। इस पारस्परिक सम्बन्ध के प्रथम तत्व को समझने के लिए हमें, मोटे तौर से, विशिष्ट मानव-मस्तिष्क के विकास को, उसकी शिशु-अवस्था से समझना होगा।

यहाँ आपको यह ध्यान दिलाना अनावश्यक है कि किसी व्यक्ति का मस्तिष्क मूल प्रवृत्तियों का संग्रह होता है। शुरू में शारीरिक प्रेरणा के फलस्वरूप वह शारीरिक कार्य करता है। इसके बाद ही मानसिक प्रेरणा एवं प्रवृत्तियों के फलस्वरूप मानसिक कार्य होते हैं।

इन शारीरिक एवं मानसिक कार्यों के करने में, बच्चा अपने प्रथम आनन्दों एवं प्रथम निराशाओं का अनुभव करता है। वस्तुओं और कार्यों को पसन्द करने, उन्हें आँकने तथा उनका मूल्यांकन करने लगता है। मूल्यांकन की यह पद्धति अपने अनुभव के साथ सार्थक अथवा नकारात्मक मान्यताओं को मिलाने की पद्धति जितनी किसी अन्य बात के लिए, उतनी ही मानसिक विकास के लिए आवश्यक है। ये मूल्यांकन बच्चे की स्मृति में संचित होते हैं और बच्चे का मानसिक जीवन आगे बढ़ता है—उद्देश्य और साधन की चेतना जाग पड़ती है।

वह उन वस्तुओं और कार्यों की ओर लक्ष्य करना शुरू कर देता है, जिन्हें वह पसन्द करता और जिनकी कद्र करता है। वह अपने सौम्य, किन्तु लगातार विकसित होने वाले अनुभव के प्रसंग में उन लक्ष्यों की ओर पहुँचने का साधन अपनाता है तथा उन से संलग्न मूल्यों का अनुभव करने लगता है। धीरे-धीरे ऐसे महत्वपूर्ण उद्देश्य संख्या में बढ़ते जाते हैं। मूल्यांकित लक्ष्यों की प्राप्ति में ये साधन यदि सफल हुए तो इन साधनों के प्रति बच्चे की रुचि दृढ़ होती है। मूल्यांकित उद्देश्य की पूर्ति के कारण ये साधन भी मूल्यवान् हो जाते हैं। मूल्य-लक्ष्य और रुचि की एक पद्धति का विकास होता है और यही विकसित होते हुए व्यक्तित्व को विशिष्ट मानसिक बनावट प्रदान करती है।

विकास की आरम्भिक अवस्था में अनुभूत मूल्य प्राय: वासनायुक्त पार्थिव मूल्य होता है। मूल्यांकन-मापक में केवल सुखद, एवं दुखद, आरामदेह और तकलीफ़देह शारीरिक स्वच्छन्दता एवं बन्धन तथा ऐन्द्रिक सुख या खीज दर्ज होते हैं। एक तरह से कहा जाय तो मूल्य लक्ष्य और रुचि की पूरी पद्धति ऐन्द्रिक स्तर पर कायम रहती है। यह वह स्तर है जिस पर सूक्ष्म भेदों में मनुष्य तथा उच्चतर पशु कायम हैं।

किन्तु मानव-व्यक्तित्व एक तीसरे प्रकार के कार्यों का विकास करता है, जिन्हें हम लोग बौद्धिक तथा आध्यात्मिक कह सकते हैं। उन कार्यों की सन्तुष्टि से भी हमें मूल्य का अनुभव होता है, किन्तु ये मूल्य उन मूल्यों से बिलकुल भिन्न हैं, जिनका अभी मैंने उल्लेख किया। इन दो प्रकारों के

बीच कितना बड़ा अन्तर है, यह केवल उनके नामों के उल्लेख से हो स्पष्ट है, जैसे—सत्यं, सुन्दरं, शिव तथा पावन को शारीरिक स्वास्थ्य, विषय-सुख, भौतिक लाभ तथा वासनामय प्रेम। इन से स्थायित्व की भावना की विशेष सन्तुष्टि और पूर्ण श्रेष्ठता तथा न्याय संगत स्थिति की भी प्राप्ति होनी है। वे बाध्यता के लिए ज़ोर देते हैं। वे अनुभूति कराने के लिए आग्रह करते हैं। जैसे ही वे हमें अपने अधिकार में कर लेते हैं, वे हमारे मूल्य की माप निश्चित करने में प्रधान एवं निश्चित तत्व बन जाते हैं। विषयात्मक मूल्य सहज ही गौण बना दिए जाते हैं। वे रूप बदलते तथा आकार परिवर्तित करते हैं। शिक्षा सच्चे अर्थ में शिक्षार्थी के मस्तिष्क को इन चरम नैतिक और बौद्धिक मूल्यों का अनुभव कराने में सहायता कर रही है, ताकि वे बदले में उसे इस योग्य बना सकें कि वह अपने काम और जीवन में यथा सम्भव इन मूल्यों को प्राप्त करने के लिए प्रेरित हो सके। जिस प्रकार आदमी के अन्दर का स्थूल प्राणी, क्षणिक वैयक्तित्व मूल्यों की प्राप्ति में प्रकट होता है, उसी प्रकार उसका नैतिक और आध्यात्मिक अन्तर उसे स्थायी और बाह्य मूल्यों की पहचान और प्राप्ति के लिए, प्रेरित करता है। वे उस के अस्तित्व को अर्थ और उद्देश्य प्रदान करते हैं। पशु के लिए न तो जीवन का अर्थ है, न महत्व, उस के लिए आत्मानुशासित उद्देश्य नहीं है। वह सिर्फ जिन्दा रहता है, जैसे उसे रहना है। दूसरी ओर मनुष्य, जब वह एक बार इन नैतिक चरम मूल्यों का अनुभव कर लेता है, तो उनके प्रति उसकी बाध्यता उसके जीवन को महत्व एवं उद्देश्य प्रदान करती है, अर्थात् इन चरम मूल्यों की सेवा, निर्वाह तथा प्राप्ति। वे उसके क्षणों को अनन्तता प्रदान करते हैं।

इन चरम मूल्यों का अनुभव, मस्तिष्क सांस्कृतिक सामग्री द्वारा करता है जो उसके सामने आती है और जो स्वयं किसी ऐसे व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के ऐसे सम्प्रदाय के मानसिक प्रयास की उपज होती है, जिन्होंने स्वयं में इन मूल्यों को रूप दिया हो। समाज के इन सांस्कृतिक अवदानों का, विज्ञान, कला, तकनीक, धर्म, रीति-रिवाज, नैतिक एवं वैधानिक संहिताओं, सामाजिक गठन, व्यक्तित्व विद्यालयों, संस्थाओं आदि द्वारा प्रतिनिधित्व होता है। अन्तिम विश्लेषण में वे सब के सब सामूहिक मस्तिष्क या व्यक्ति की बौद्धिक एवं नैतिक शक्ति की उपज हैं। वे मस्तिष्क के बौद्धिक एवं नैतिक मूल्य हैं। वे मनुष्य की नैतिकता और आध्यात्मिकता के द्योतक हैं।

संस्कृति के ये लाभ शैक्षिक पद्धति की कार्यान्विति के एक मात्र साधन हैं। मानव मस्तिष्क के पोषण के लिए वे ही एकमात्र भोजन हैं। इन सांस्कृतिक लाभों के साथ जो सामना होता है, उसमें घर, स्कूल, उच्च शिक्षा की संस्थाओं, सार्वजनिक संगठनों और जन-जीवन के सर्वव्यापी लोककार्यों तथा उदाहरणों द्वारा मध्यस्थता होती है। विकसित मस्तिष्क पहले तो अनजाने, पर बाद में अधिक से अधिक जान-बूझ कर, उनका अनुसरण करता है तथा विशेष मानवीय विकास के लिए उसका उपयोग करता है। जब संस्कृति के इन लाभों का ऐसा उपयोग होता है तब वे शैक्षिक लाभ बन जाते हैं। वे पहले संस्कृति की उपज थे। उर्वर मस्तिष्क ने उन्हें पैदा किया था। वे अब मस्तिष्क को उर्वर बनाते तथा उन्हें शिक्षित करते हैं।

फिर भी यह याद रखना आवश्यक है कि प्रत्येक मस्तिष्क अपनी उर्वरता के लिए एक ही सांस्कृतिक लाभ का उपयोग नहीं कर सकता। प्रत्येक व्यक्ति का जन्म से ही अपने विचारों और चीजों

की ओर, आदमियों की दुनिया के प्रति प्रतिक्रिया का अपना-अपना विशेष तरीका होता है। इसका कारण है, उसकी शारीरिक और मानसिक प्रवृत्तियों का विलक्षण ढांचा। प्रतिक्रया के इस विशेष ढंग का, जो अनुभूति, प्रवृत्ति एवं क्रिया में प्रकट है, हम जन्मजात व्यक्तित्व का नाम देते हैं। इस मौलिक व्यक्तित्व के आधार पर, जिसमें शायद ही कोई बड़ा परिवर्तन सम्भव होता है, अधिक विकसित व्यक्तित्व का निर्माण होता है। उसे ही स्प्रेन्जर ने जीवन-स्वरूप की संज्ञा दी है। ऐसे विकसित व्यक्तित्व के निर्माण में बाह्य संस्कृति, जिनमें उसका विकास, गति एवं अस्तित्व है, द्वारा सहायता मिलती है। बाह्य संस्कृति के वैयक्तिक आन्तरिक पुनरुत्थान का नाम शिक्षा है। बाह्य मस्तिष्क से आन्तरिक मस्तिष्क के रूपान्तर को ही शिक्षा कहते हैं। वह विशेष संगठित मूल्य को भावना है। संस्कृति के लाभों से यह जाग्रत होती है। ये लाभ व्यक्ति के अनुभव के दायरे में आनेवाले मूल्यों का मूर्त्त रूप हैं।

अगर इसी को शिक्षा कहा जाय, या यही शिक्षा होनी चाहिये तो दो प्रकार के विचारों की ओर हमारा ध्यान जाना चाहिए।

(१) ऐसे विचार, जो मेरे खयाल में सभी प्रकार की शिक्षा के लिए लागू हैं, तथा (२) ऐसे विचार, जो उस प्रकार की शिक्षा के लिए लागू हैं, जो समाज अपने सदस्यों के लिए स्थापित करता है। मैं पहले प्रथम श्रेणी, अर्थात् सभी प्रकार की शिक्षा पर लागू विचार को लूंगा।

शिक्षा-सम्बन्धी जितने विचार हमने निर्धारित किए हैं, उनसे उत्पन्न सभी सिद्धान्तों में लोकतन्त्र के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण दीखने वाला तथा साथ ही, सभी शिक्षण-संस्थाओं द्वारा सम्भवतः सामान्यतया उपेक्षित होने वाला, व्यक्ति का ही सिद्धान्त है। यह सिद्धान्त हमें जो कुछ बताता है, वह शैक्षिक प्रणाली की आधारभूत स्वयं सिद्धि के रूप में एक प्रकट बात है, अर्थात् यह कि व्यक्ति के मस्तिष्क की शिक्षा अथवा उसे उर्वर बनाना ऐसे सास्कृतिक लाभों द्वारा ही सम्भव है, जिनकी मानसिक बनावट पूर्णतः या कम से कम अंशतः व्यक्ति के मानसिक उभार से मेल खानी चाहिए। शिक्षार्थी की विशेष मानसिक बनावट, अर्थात् उसका व्यक्तित्व, मूल्यों—उद्देश्यों और हितों—की अपनी मौलिक प्रणाली को निर्धारित करती है। संस्कृति के उत्कर्षों की ओर वे प्रेरित होते हैं, जो अनुरूप मानसिक बनावट, अनुरूप मूल्यों के प्रतीक, अनुरूप उद्देश्यों तथा हितों की प्राप्ति के परिणाम हैं। मूल्यों उद्देश्यों और हितों की इस पद्धति में, जो प्रत्येक व्यक्ति का चरित्र चित्रित करती है, उस व्यक्ति के जीवन का पूर्ण प्रतिनिधित्व कहा जा सकता है और इसलिए उन हितों को खोज की क्रिया में, व्यक्तित्व के सभी पक्षों का मानो व्यायाम हो जाता है और वे विकसित होने लगते हैं। इसके बाद और भी ऊंचे तबके के अनुरूप सांस्कृतिक लाभ को दृढ़ता होती है तथा मस्तिष्क अपने विकास को शक्ति को मजबूत से मजबूत बनाता जाता है और, जो बिलकुल स्वभाविक है, ये हित अथवा स्वार्थ प्रायः नये-नये तथा ताजे-ताजे अन्तःस्वार्थों में विभक्त हो जाते हैं और कभी-कभी तो ये नये स्वार्थ पुराने स्वार्थों से ही महत्व और उग्रता में प्रतिस्पर्धा करने लगते हैं तथा व्यक्ति की मानसिक बनावट के अन्य उपकरणों की वृद्धि एवं विकास के लिए जिम्मेवार भी वे ही हैं। किसी भी स्फूर्तिशाली बालक का मूल तकनीकी व्यावहारिक स्वार्थ बदल कर सैद्धान्तिक और सौन्दर्य सम्बन्धी तथा धार्मिक स्वार्थों में भी वृद्धि पा सकता है। किन्तु, अधिकतर सैद्धान्तिक झुकाव वाले बालक बालिकाओं को सैद्धान्तिक सांस्कृतिक लाभ के माध्यम के सिवा अन्य तरह से आप शिक्षित नहीं कर सकते। आप उसे न्यूनाधिक रूप में प्रथमतः सैद्धान्तिक लाभ के द्वारा अन्य सांस्कृतिक क्षेत्रों की विशेष समझ

और मूल्यांकन की ओर ला सकते हैं। सौन्दर्यानुभूतिमूलक लाभ के द्वारा ही सौन्दर्याभूतिपरक विद्यार्थी के मस्तिष्क का सच्चा संस्कार सम्भव है, सैद्धान्तिक या व्यवहारिक मानसिक बनावट के उत्कर्षों द्वारा ऐसे विद्यार्थी को शिक्षा देना बेकार है। उसके लिए केवल सौन्दर्यानुभूतिपरक ढंग के लाभों के जरिये ही संस्कृति का द्वार खुल सकता है। जब एक बार किसी विद्यार्थी के लिए उसको मनोनुकूल कुंजी से संस्कृति का दरवाजा खुल जाता है तब उसके अन्तर के अनेक मार्ग खुल जाते हैं। क्योंकि, संस्कृति के क्षेत्र एक-दूसरे से बिलकुल पृथक् नहीं है, वे हजारों सूत्रों द्वारा एक-दूसरे से सम्बद्ध हैं। कला से विज्ञान और तकनीक, विज्ञान से कला और तकनीक, तकनीक से विज्ञान और कला के हजारों परिवर्तन हजारों-हजार सूक्ष्म भेदों के साथ सम्भव हैं, किन्तु यदि मानसिक बनावट के कुछ रूप किसी मस्तिष्क में बिलकुल नहीं हैं तब उनसे मिलते जुलते-सांस्कृतिक लाभ ऐसे मस्तिष्क को उर्वर बनाने के साधन नहीं हो सकते। संगीत के प्रति नीरस व्यक्ति को किसी महान संगीत के वास्तविक सौन्दर्य की अनुभूति करा कर उससे उसका आध्यात्मिक पोषण नहीं करा सकते। रंगों का भेद न पहचानने वाले व्यक्ति के मस्तिष्क को उच्च कोटि की चित्र-कृतियों द्वारा उर्वर बनाने की आशा हम नहीं कर सकते। व्यावहारिक कार्यों में तत्पर रहने वाले अपने अधिकांश बच्चों के मस्तिष्क को, हम सैद्धान्तिक विचारों की सहायता से उर्वर बनाने की व्यर्थ चेष्टा करते हैं। सहानुभूति, प्यार, विश्वास और आदर जैसी सामाजिक मानसिक रचना की मूल प्रवृत्ति के द्वारा ही वह अत्यन्त मूल्यवान सांस्कृतिक उत्कर्ष, अर्थात् कोई महान् व्यक्तित्व, दूसरे के मस्तिष्क को उर्वर बनाने में योग दे सकता है। व्यक्तित्व भी केवल हमारी भाषा में ही हमसे सम्भाषण कर सकता है——हमारी आत्मा की भाषा में जो हमारी विशिष्ट मानसिक रचना की भाषा है। व्यक्तित्व में पाई जाने वाली बिलकुल बाहरी रचनाएँ हमारी समझ के बिलकुल परे है। ऐसे व्यक्तित्वों को हम आसानी से छोड़ भी सकते हैं, हम उनका लाभ भी नहीं उठा पाते। हम लोगों के समान ही——मानसिक बनावट-वाले व्यक्तित्व जितना हमें आकर्षित कर सकते हैं, उतना कम ही चीजें कर सकती हैं। वैसे व्यक्तित्व हमारे बौद्धिक, नैतिक और आत्मिक विकास में सहायक होते हैं। शिक्षा की आधारभूत स्वयं-सिद्धि शिक्षार्थी के मन की मानसिक नैतिक रचना में तथा मस्तिष्क को शिक्षित, उर्वर तथा विकसित बनाने-वाले संस्कृति के लाभ या लाभों की रचना में समान तथा अनुरूपता में है। सिमल ने ठीक ही कहा है कि 'संस्कृति, मस्तिष्क के क्षणिक विश्राम का वह रास्ता है, जो एक खुलनेवाली, विकसित होनेवाली विभिन्नता के जरिये एक सँकीर्ण बन्द इकाई से होते हुए एक विकसित, संवर्द्धित इकाई तक जाता है।'

व्यक्ति के मानसिक ढाँचे के वर्गीकरण पर किए गए अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं सुरुचिपूर्ण कार्य की विशेष चर्चा करके में आपका समय नहीं लेना चाहता। उसमें बहुत समय लगेगा और भाषण में लम्बाई इसकी दिलचस्पी को कम से कम ऊब में तो बदल ही सकती है। जर्मनी के महान् शिक्षाविद् जार्ज कर्सेन्स्टाइनर ने वर्गीकरण का जो सुझाव दिया है, उसका मैं आपके साथ ही समर्थन करना चाहता हूँ। मै विशेषकर ऐसा ही चाहता हूँ कि मैं उनके कुछ पारिभाषिक शब्दों का व्यवहार आगे चलकर अपने भाषणों में करूँगा और इसलिए भी कि उनकी कृति इस देश में उतनी अधिक प्रचलित नहीं है और यदि एक निजी बात कहूँ तो वह यह है कि मेरे शिक्षा-सम्बन्धी चिन्तन का प्रायः सम्पूर्ण ढांचा उन्हीं के विचारों पर अवलम्बित है। बाद में चलकर गांधीजी के चरणों में बैठने और उनके शिक्षा-सम्बन्धी विचारों के अनुसार काम करने के फलस्वरूप शिक्षा सम्बन्धी मेरा चिन्तन, दृढ़, गंभीर तथा समृद्ध हुआ, एवं उससे मेरा अस्थिर सैद्धान्तिक ढांचा——मेरे जीवन के स्थायी अंश में बदल गया; क्योंकि अब शब्द

कार्यरूप में परिणत हो जाते थे। कसन्स्टाइनर व्यक्ति की जिन मौलिक मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों को देख कर चलते हैं वे दो हैं —मननशील प्रवृत्ति एवं क्रियाशील प्रवृत्ति। शुद्ध मननशीलता का सम्बन्ध बाह्य दुनियां में किसी काम को करने या कोई चीज तैयार करने से नहीं रहता। किन्तु उस कारण निष्क्रियता, जड़ता या सुस्ती से उसकी तुलना नहीं की जा सकती। हाँ, बाह्य दुनिया से जो कुछ वह ग्रहण करती है, उसका विकास भी करती है। शुद्ध मननशीलता का काम चुपचाप केवल ग्रहण करना नहीं है। इसमें देखने, गौर करने, चिन्तन-मनन करने और औचित्य पर विचार करने एवं विवेक के तत्व का अर्थ बतलाने की आन्तरिक मानसिक क्रिया निहित है। यह एक महत्वपूर्ण तथा अर्थपूर्ण बोध की क्रिया अथवा प्रवृत्ति है, जो ज्ञान के क्षेत्र में निर्माण, आकार तथा रचना का कार्य सम्पन्न करती है। वास्तव में इसमें बहुत कुछ मानसिक क्रिया निहित है। किन्तु उस दूसरी मूल प्रवृत्ति के अर्थ में यह क्रियाशील नहीं है, जो व्यक्तियों में फैली है, जिसे कर्सेन्स्टाइनर ने क्रियाशीलता की संज्ञा दी है यानी इस अर्थ में कि प्राकृतिक विषयों की दुनिया में, बाह्य वास्तविक सम्बन्धों के ज्ञान की ओर इसका निर्देश किया जाए। मननशील प्रवृत्ति की इस क्रियाशीलता के साथ ही, सक्रिय प्रवृत्ति की क्रियाशीलता भी या मुख्यतः अनुकरणात्मक या मुख्यतः रचनात्मक हो सकती है। अनुकरणात्मक क्रिया शुद्ध रूप से यान्त्रिक हो सकती है या जिस वस्तु का अनुकरण करना चाहती है, पहले उसे समझ कर एवं उसका मनन कर अनुकरण करती है।

फिर मनन तथा क्रिया, इन दोनों में से प्रत्येक अपने लक्ष्यों, फलों तथा उद्देश्यों की दृष्टी से दो प्रकार की हो सकती है। ऐन्द्रिक अनुभवों के क्षेत्र में, हम किसी वस्तु या उसके कुछ पक्षों के प्रत्यक्ष बोध से चिन्तन की स्थिति में प्रवेश कर सकते हैं, अथवा तब, जब कि ऐसी वस्तुओं का सम्बन्ध किसी ऐसी चीज से हो, जो हमारे अनुभवों के परे हो—फल या उद्देश्य, या तो विश्वव्याप्य है, या अतिश्रेष्ठ। पहली स्थिति में इसकी रुचि वस्तुस्थिति और सच्चाई में रहती है, यथा उनके रहने और होने में, वे कैसे आते हैं और समाप्त हो जाते हैं, इसमें अथवा यह उनके कार्य मूल्य एवं महत्त्व में अभिरुचि रखता है। चिन्तन की इन दोनों प्रवृत्तियों को सैद्धान्तिक कहा जा सकता है। प्रथम शुद्ध सैद्धान्तिक, दूसरा उद्देश्यवादी सैद्धान्तिक। संस्कृति को वैज्ञानिक उपयोगिता इन दोनों प्रवृत्तियों के प्रत्यक्षीकरण के फलस्वरूप है। इन दोनों में पार्थक्य का ज्ञान है—अन्तर और बाह्य के बीच ही नहीं, चिन्तन करनेवाले और चिन्तन की वस्तु के बीच ही नहीं बल्कि दूसरी प्रवृत्ति के रूप और विषय वस्तु में भी।

जहाँ चिन्तन और वस्तुओं के औचित्य तथा वास्तविकता से सम्बद्ध नहीं है, बल्कि बाह्य या आन्तरिक दिखावट से सम्बद्ध है, वहाँ यद्यपि अन्तर तथा बाह्य का भेद रहेगा, पर आकार और विषय वस्तु के बीच भेद मिट जाता है। ऐसी अवस्थाओं में विषय वस्तु की पहचान कल्पना-द्वारा नहीं, बल्कि प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा होती है। इसी का नाम सौन्दर्यात्मक प्रवृत्ति है। इसके प्रत्यक्षीकरण से संस्कृति की सौन्दर्यात्मक, कलात्मक अच्छाइयों की उत्पत्ति होती है।

वह मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति, जिसे सर्वश्रेष्ठ मूल्यात्मक सम्बन्ध के चिन्तन से सन्तोष प्राप्त होता है, धार्मिक प्रवृत्ति कही जाती है। इसकी कुछ चरम प्रकट अवस्था में जैसे आध्यात्मिक एकता में, केवल विषय-वस्तु और रूप की भिन्नता ही नहीं, बल्कि विषय और वस्तु की भिन्नता मिट जाती है, जैसे हर्षातिरेक की स्थिति में। इस प्रवृत्ति के प्रत्यक्षीकरण से संस्कृति की धार्मिक उत्कृष्टता की उत्पत्ति

होती है, इसके धार्मिक प्रतीक और नियम तथा रीतियां तथा इसके धार्मिक व्यक्तित्व की जो कम महत्व-पूर्ण नहीं, उत्पत्ति होती है। क्योंकि, वास्तविक आध्यात्मिक या धार्मिक अनुभव एक ऐसे प्रकाश को प्रज्जवलित कर देता है, जो जीवन-भर जलता रहता है, और जो इसके निकट आता है, उसे गर्मी तथा प्रकाश प्रदान करता है।

अब चिन्तक प्रवृत्ति से क्रियात्मक प्रवृत्ति की ओर आयें। यह प्रवृत्ति वास्तविक सम्बन्धों को अंगीभूत करती है। यह भी अपने लक्ष्य की प्रकृति या कार्य के अनुसार दो प्रकार की हो सकती है। किसी क्रिया का लक्ष्य या कार्य, उस कार्य के द्वारा आकाँक्षित मूल्य से निर्धारित होता है। क्रिया से जो सन्तोष प्राप्त होता है, वह या तो उस मूल्य के कारण, जो कर्त्ता के लिए क्रिया प्रत्यक्ष रूप से लगती है अथवा उस मूल्य के कारण, जो दूसरों को सन्तोष पैदा कर प्राप्त किया जाता है। दूसरे शब्दों में यही कह सकते हैं कि क्रियात्मक प्रवृत्ति या तो आत्मश्लाघी, आत्मकेन्द्रित या बहुकेन्द्रित एवं अन्यकेन्द्रित है। आत्मश्लाघी क्रियात्मक प्रवृत्ति, पुनः जीवन के भौतिक उपकरणों के विस्तार या उपार्जन एवं रक्षा के हेतु लक्ष्य कर सकती है या किसी के नैतिक व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा एवं समृद्धि की प्राप्ति की दिशा में चेष्टा कर सकती है। पहली स्थिति में इसे हम आत्मश्लाघी भौतिक प्रवृत्ति कहेंगे, दूसरी स्थिति में इसे आत्मश्लाघी आदर्श की प्रवृत्ति कहेंगे। आत्मश्लाघी क्रिया की जड़ें आत्मरक्षा एवं आत्मदृढ़ता में स्थित हैं, उधर बहुकेन्द्रित क्रियात्मक प्रवृत्ति का लक्ष्य (क) कर्ता के नहीं, किसी दूसरे के सन्तोष में निहित है, या किसी ऐसे दल के सन्तोष में, जिसका सदस्य कर्त्ता नहीं है, अथवा (ख) उस दल, जिसका कर्त्ता भी सदस्य है, के सन्तोष को भी वह लक्ष्य कर सकता है। पहले में परोपकारी भावना है और दूसरे में सामाजिक भावना, तथा (ग) एक तीसरी क्रिया भावना वह है, जिसमें कर्त्ता के लिए काम का मूल्य, किसी व्यक्ति या दलगत सन्तोष में न होकर स्वयं कर्म में ही निहित है। यही सक्रिय सामाजिक अथवा प्रयोजनीय भावना है।

परिणाम के स्वरूप में कर्सेन्स्टाइनर ने इस प्रकार तीन मूल चिन्तक आदर्शों को माना है—सैद्धान्तिक चिन्तक, सौंदर्यमूलक चिन्तक और धार्मिक चिन्तक—और तीन मौलिक क्रियात्मक आदर्श—सैद्धान्तिक, सौंदर्यमूलक और धार्मिक—इनमें से प्रत्येक के चार प्रभेद हैं : (१) आत्मश्लाघी, (२) सामाजिक, (३) परोपकारी और (४) प्रयोजनीय। विशुद्ध आदर्श तो विरल है। व्यक्तित्व का ढांचा केवल इन एक या अनेक मौलिक रूपों की प्रधानता पर निर्भर नहीं है, बल्कि गहनता के विभिन्न परिणामों पर, जिसमें विभिन्न प्रकार की प्रवृत्तियां उनके निर्माण में प्रवेश करती हैं।

मुझे भय है कि एक प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री द्वारा किए गये व्यक्तित्व के वर्गीकरण का मेरा यह संक्षिप्त स्पष्टीकरण न्यूनोक्ति के अर्थ में कहें, तो कुछ नीरस हो गया है। किन्तु मुझे विश्वास है कि ऊबे हुए श्रोताओं को यह जानकर कुछ राहत मिलेगी कि उन्हें उबा डालने वाला व्यक्ति अपने अपराध के प्रति सजग है। क्योंकि स्थिति तब दुर्वह हो जाती है, जब वह अपने-द्वारा किये गये अपराध से निरा अपरिचित रहता है। सान्त्वना के तौर पर मैं आप से कहूँ कि इसी तरह की परिस्थितियों का कुछ जँभाइयों को छोड़, जिन पर मेरा कोई काबू न था—मैंने भी वीरतापूर्ण आत्मसंयम के साथ सामना किया है और आपने भी इसी संयम का परिचय दिया है, मैं इस बात का साक्षी हूँ।

खैर विनोद की बात छोड़िए। मैं सोचता हूँ कि वैज्ञानिक शिक्षा और सांस्कृतिक मनोविज्ञान का एक अत्यन्त उपयोगी काम यह होना चाहिए कि वह एक ओर तो विभिन्न प्रकार की मानसिक बनावटों तथा मूल्य-लक्ष्यों—हितों की प्रणाली का अनुसंधान करे, और दूसरी ओर विभिन्न प्रकार की सांस्कृतिक उपादेयता में निहित शैक्षिक मूल्यों का अनुसंधान करे। इन क्षेत्रों में अभी तक बहुत काम हो चुका है और यद्यपि भारतीय शिक्षाशास्त्रियों और मनोवैज्ञानिकों से यह आशा की जाती है कि इन क्षेत्रों में ज्ञान की सीमा का वे विस्तार करेंगे, तथापि शिक्षा के नीतिनिर्धारक एवं शिक्षाविद् अपेक्षाकृत साधारण और आडम्बर-रहित, किन्तु शायद अधिक आवश्यक काम में अपने को लगा सकते हैं, वह जरूरी काम है, उपलब्ध परिज्ञान का उपयोग।

अब मैं दूसरे सिद्धान्त की बात करूंगा। शिक्षा में व्यक्तिवादी सिद्धान्त के उपसिद्धान्त-स्वरूप, शिक्षार्थी के विकास की अवस्था भी विचारणीय है। शिक्षा की प्रक्रिया वह निरन्तर प्रक्रिया है, जिसमें यात्रा मंजिल से कम महत्वपूर्ण नहीं, क्योंकि, सचमुच कोई मंजिल पूरी नहीं कर पाता है। इसमें हर अवस्था का अपना महत्व और गौरव है। इसकी विभिन्न अवस्थाओं को केवल अन्तिम लक्ष्य प्राप्त करने का साधन मानना बिल्कुल भूल है। शिक्षा के विकास को एक तरह से आरम्भिक और प्राथमिक अवस्था, जैसे स्नातक होने या 'डॉक्टरेट' प्राप्त करने को ही अन्तिम लक्ष्य मान लिया जाता है, जो कि अनुचित है; क्योंकि वहाँ व्यक्ति रुक जाता है और जिन्दगी भर के लिये शिक्षा के कारनामों को निरर्थक बना बैठता है, और प्रारम्भिक अवस्था में की जानेवाली उस सुन्दर तथा स्फूर्तिदायी यात्रा को पूर्णतया खराब कर बैठता है, जिसके कारण भविष्य में इसी तरह की या इससे भी आनन्दोत्पादक यात्रा के लिए उसे काफी शक्ति मिल सकती थी। शिक्षा में, यदि हम अन्तिम की प्राप्ति के लिए तात्कालिक का बलिदान करें, तो शिक्षा का ही अहित होगा। जर्मनी के महान् शिक्षा-मनीषी श्लाइरमेखर ने ठीक ही कहा है कि सभी तैयारियां सन्तोषजनक अनुभव हों, तथा सभी सन्तोषजनक अनुभवों में तैयारी निहित रहनी चाहिए। प्रत्येक सुसंगठित शिक्षा प्रणाली का यह काम होना चाहिए कि वह विद्यार्थी के मानसिक विकास की गति को हस्तक्षेप द्वारा प्रभावित नहीं करे। अगर विद्यालय, वह कारखाना नहीं है, जिसमें पूर्व-निर्धारित कार्य करने के लिए यन्त्रस्वरूप प्रशिक्षित मनुष्य तैयार किए जाते है और अगर वह शिक्षा का स्थान है, जो यह होना भी चाहता हो, तो उसमें विद्यार्थी के विकास की प्रत्येक अवस्था की विकसित परिष्कृति की व्यवस्था होनी चाहिए, और उसे सावधान और सतर्क भी रहना चाहिए, ताकि ऐसा न हो कि वह अगली अवस्था के आगमन के लक्षणों को न पहचान पाए। क्योंकि, खींचने और धकेलने—दोनों का शिक्षा पर बहुत भयंकर असर पड़ सकता है।

कर्सेन्स्टाइनर ने अपने 'बनावट-सिद्धान्त' (थ्योरी डर-बिल्डुंग), में जीवन की प्रारम्भिक अवस्था के विकास की तीन मुख्य अवधियों का प्रतिपादन किया है। प्रत्येक का काल सात वर्षों का है। सात वर्षों तक उम्र की पहली अवधि को वे खेल की उम्र मानते हैं। दूसरी सात से चौदह वर्ष तक की उम्र स्वकेन्द्रिक (इगोसेन्टिक) की है, और तीसरी चौदह से इक्कीस वर्ष की उम्र में काम की बहुकेन्द्रिक अभिरुचि होती है। प्रत्येक अवस्था का सम्मान अपने आप में होना चाहिए तथा बाद में आनेवाली अवस्थाओं के अधीन नहीं माना जाना चाहिए।

कुशलता-प्राप्ति में प्रशिक्षित करने के लिए खेल की इच्छा तथा उसकी स्वच्छन्द निरपेक्षता को नष्ट नहीं करना चाहिए। खेल का अपना ही लक्ष्य होता है। खेल की उम्र में बच्चा अपने खेल के बाहर अपना कोई उद्देश्य नहीं रखता। खेल को अच्छी तरह खेलने की कुशलता के विकास का भी लक्ष्य उसके सामने नहीं रहता, केवल बड़े न होकर हम लोग अधिक बुद्धिमान् भी हों तो उसके खेल का इस प्रकार निर्देश कर सकते है कि अपनी आनन्ददायक क्रिया के अन्तगत बार-बार एक ही कार्य को करने या अन्य उपायों से, बच्चा अपने कार्य में विशेष कुशलता का विकास कर सकने में समर्थ हो सकता है। बाद के कार्य काल में उसके आत्मनिर्धारित लक्ष्य की पूर्ति में उसका सहारा लिया जा सकता है और तब वह जान बूझ कर उसे ही अपना लक्ष्य मानकर उसके आगे विकास कर सकता है। बालक के लिए खेल के उद्देश्य को समस्या बना कर भ्रष्ट नही करना चाहिए।

स्वकेन्द्रिक कार्य की उम्र जो खेल की उम्र से ही निकलती है, क्रियात्मक होती है। किन्तु अब उसकी उद्देश्यपूर्ण, व्यावहारिक स्थिति होती है, जो आंशिक रूप से तकनीकी तथा सामाजिक है। अत्यन्त विरल स्थिति को छोड़कर, सैद्धान्तिक और सौन्दर्यात्मक चिन्तन अब भी दूर होते हैं। सात से चौदह वर्ष की उम्र वालों के लिए विद्यालय को क्रियात्मक व्यावहारिक उत्तेजनाओं की तृप्ति की व्यवस्था करनी चाहिए। विद्यालयों को इस प्रकार अपनी-अपनी कार्य-योजना व्यवस्थित करनी चाहिए कि अपनी व्यावहारिक, तकनीकी और सामाजिक प्रेरणाओं के प्रयोग से मिलने वाले सन्तोष से विद्यार्थी वंचित न रह जाए। साथ ही बाद में आनेवाली सैद्धांतिक तथा चिन्तन-क्रिया की नींव भी शायद पड़ जाए। बहुत सी स्कूली व्यवस्थाओं में कुछ प्रतिकूल प्रवृत्तियां देखी जाती हैं, यानी यह कि प्रतिभाशाली विद्यार्थी पर पूर्व-सामयिक दबाव डाला जाता है। वे अपने बच्चों को प्रतियोगिता-परीक्षाओं में बार-बार बैठाना चाहते है, तथा नौकरशाही एकता का कल्पनाहीन प्रयोग, जिसके द्वारा खरहे को कछुए के साथ समान गति से चलाने की बात सोची जाती है। बच्चे के वास्तविक विकास के हित में ये दोनों ही स्थितियां समान रूप से घातक हैं।

अब मैं तीसरे विचार पर आता हूँ। हम लोगों ने पहले जिन दो विषयों पर विचार किया है, वे शिक्षा के कुछ रूप से विकसित हुए, जिसके अनुसार शिक्षा अन्तर्निर्माण करती है, बाह्य वृद्धि नहीं। आपको स्मरण होगा कि शिक्षार्थी के प्राकृतिक व्यक्तिमूलक गठन के तथा उसके विकास की विशेष अवस्था, दोनों का, किसी व्यवस्था के अन्तर्गत स्कूलों के निर्माण, संगठन तथा वर्गीकरण में, मौलिक महत्व है।

तीसरा तथा चौथा विचार, जिन्हें मैं अब आपके सामने रखूंगा, शैक्षिक कार्यों के संचालन से सम्बन्धित हैं। ये समग्रता (टोटेलिटी) और क्रियात्मकता के सिद्धान्त हैं। मैं समझता हूँ मुझे आज इतना ही समय है कि मैं इन दोनों में से प्रथम सिद्धान्त समग्रता के विषय में संक्षेप में कहूँ। मैं अपने दूसरे भाषण में क्रियात्मकता की, शैक्षिक सिद्धान्त के रूप में चर्चा करूंगा।

समग्रता के सिद्धान्त के अनुसार शैक्षिक कार्य का पूर्ण प्रभाव शिक्षार्थी पर पड़ना चाहिए। शैक्षिक योजनाएं पूर्ण मानसिक बनावट के विकास की ओर पूर्ण निर्दिष्ट होनी चाहिएं, उसके केवल एक पक्ष या एक अंश की ओर नहीं। यह पेस्तालोजी—जैसे महान् शिक्षा-

शास्त्री ने शैक्षिक क्रिया की क्रमिक एकता पर विशेष जोर देकर लोगों को इसका महत्व समझाने की भरपूर चेष्टा की है। साथ ही शैक्षिक क्रिया का सम्बन्ध उससे है जिसे उन्होंने बच्चे की मूल बौद्धिक, नैतिक तथा शारीरिक शक्ति कह कर बताया है या जिसे साधारण शब्दों में बुद्धि, हृदय और हाथ की शक्ति कहते हैं। हमारे देश में ही गांधीजी ने बच्चों की प्रकृति के सम्बन्ध में अपने विस्तृत एवं प्रेमपूर्ण अनुभव, बच्चों के साथ एकता का अनुभव करने की मुक्त सामर्थ्य तथा उनकी सम्भावनाओं में अपनी गम्भीर अन्तर्दृष्टि-द्वारा, उन्होंने अपने महान् व्यक्तित्व से शैक्षिक क्रिया को प्रभावित किया, तथा कार्य के सिद्धान्त पर भी शिक्षा के एक प्रभावशाली साधन के रूप में जोर दिया। तो भी सारे विश्व के विद्यालय तथा हमारे देश के लाखों विद्यालय मस्तिष्क को सूचनाओं से भरने की गलतफहमी में, या बुद्धि के स्वतन्त्र विकास की महत्वाकांक्षी चेष्टाओं के साथ इस तरह काम कर रहे हैं, मानो गाँधी और पेस्तालीजी महोदय कभी थे ही नहीं। उन्होंने ऐसा इसलिए किया है कि वे निदेश से सन्तुष्ट हैं और वास्तविक शिक्षा की जरा भी परवाह नहीं करते। वे विद्यार्थियों की योग्यता किसी खास कार्य एवं किसी वस्तु की निपुणता में बढ़ाने में सन्तुष्ट हैं किन्तु वह आगे चलकर किस प्रकार का आदमी होगा, इस बात को मामूली बात समझकर, आसानी से इसकी उपेक्षा करते हैं। इसमें उनका यह विचार निहित मालूम पड़ता है कि किसी विद्यालय ने किसी को लिखना सिखाया है तो वह अपना इस बात से कोई सरोकार नहीं समझता कि जिस आदमी ने निपुणता प्राप्त कर ली है क्या वह इस योग्य बना दिया गया कि एक अमर काव्य-कृति की सृष्टि कर सके, या वह इस योग्य हो गया कि कुछ पैसे कमाने के लिए किसी दस्तावेज की जालसाजी कर सके। अगर उसे पढ़ना सिखाया गया है तो विद्यालय को इस बात की चिन्ता नहीं है कि वह महाग्रन्थों का पाठक बनेगा या रद्दी साहित्य में रुचि लेगा। अगर उसे केवल परीक्षा में उत्तीर्णता प्राप्त करने के लिए समुचित ढंग से शिक्षा दी गई है-जो परीक्षा न न्याय- सिद्ध है और न विश्वसनीय, तो यह शिक्षा का काम नहीं होता कि उससे पूछे कि वह ईमानदार एवं सच्चा समाज का सहयोगी एवं सहायक बना है या नही, वह कला और प्रकृति में कोई सौन्दर्य देख सकता है या नहीं, जिस पूर्ण इकाई का वह एक अंश-मात्र है, उसके हित के लिए वह अपने क्षुद्र स्वार्थों का बलिदान करने में समर्थ हो सकेगा या नहीं।

किन्तु जैसा कि हम लोगों ने देखा, शिक्षा का सम्बन्ध इस बात से है कि आदमी आगे चलकर क्या बनेगा, साथ ही इससे कि वह क्या कर सकता है। सचमुच, उसका सरोकार है। शिक्षार्थी के व्यक्तित्व की सम्पूर्णता को रूप देना होगा। इसलिए, जो विद्यालय विकसित होते हुए नैतिक और बौद्धिक व्यक्तित्व की ओर अपना लक्ष्य रखते हैं, वे इस उद्देश्य की प्राप्ति की आशा तभी रख सकते हैं, जब विकसित होनेवाले सम्पूर्ण व्यक्तित्व के प्रत्येक मोड़ की पकड़ की ओर सतर्क रहें, अर्थात शिक्षार्थी के मूल्य-लक्ष्य एवं अभिरुचि की समस्त पद्धति की ओर सचेष्ट रहें। वे जितना अधिक और जितनी बार इसके लिए प्रयास करेंगे, उतना ही प्रभावकारी रूप में विद्यार्थियों के विकास पर पूरा असर पड़ेगा। यह सम्भव करने के लिए विद्यार्थियों को, उसे विद्यार्थियों को कुछ देने की जगह बनाने के अतिरिक्त, विद्यार्थियों को बुद्धिमत्ता से मनन करने एवं उन्हें समझने का स्थान बनाना चाहिए। विभिन्न प्रकार के विद्यालयों के लिए शिक्षकों के प्रशिक्षण में, उन्हें इस प्रकार के सफल पर्यवेक्षण की प्राविधिक शिक्षा देनी चाहिए, जिससे वे अपने विद्यार्थियों को समझ सकें—और अपने शिक्षण-कार्य का इसी समझ के आधार पर निर्देशन कर सकें। परन्तु, किसी प्रकार का प्रशिक्षण, इस कार्य को विशेष रूप से प्रभावित करने में उतना सहायक

नहीं होगा जितना शिक्षकों तथा विद्यार्थियों के बीच, खेल के मैदानों तथा पर्यटनों में बुद्धिपूर्ण, सहानुभूतिपूर्ण तथा स्नेहपूर्ण विनिमय सहायक होगा, तथा जितना कर्म तथा जीवन के समुदाय-स्वरूप स्कूल में तथा बहार किए गए पारस्परिक सहायक रचनापूर्ण काम सहायक होंगे। अगर विद्यालय अपने संगठन में विभिन्न प्रकार की अभिरुचियों के साथ हो विशेष आयु-वग के लिए सामान्य अभिरुचि के प्रसार का ध्यान रखें, केवल तभी हम इस अर्जित ज्ञान का, विद्यार्थियों के हित में, शिक्षा के सफल उपयोग के लिए लाभ उठा सकेंगे।

मेरा खयाल है, आज का भाषण मैं यहीं समाप्त करूं, क्योंकि यदि अब तक मैं आपको थका डालने में सफल न हुआ, तो अब थकाने की कोशिश करना बेकार है, काफी देर हो चुकी है। कल मैं फिर कोशिश करूंगा। ●

सभी हाथ बंटाएं

देश के इतिहास में पहली बार करोड़ों व्यक्तियों के हाथ में राष्ट्र जीवन है—किसी एक व्यक्ति के हाथ में नहीं। अत: उन करोड़ों व्यक्तियों को ऊंचा उठाने से राष्ट्र ऊंचा उठेगा। इसके लिए भावी नागरिकों को अच्छी से अच्छी शिक्षा की व्यवस्था करनी होगी।

भारत को नमूने का देश बनाने के लिए हर नागरिकों को यह महसूस करना पड़ेगा कि यह उसका देश है और अपने देश को हर तरह से अच्छा बनाना उसका कर्त्तव्य है। परन्तु यह काम केवल बातें करने से नहीं होगा, बल्कि इसके लिए मिल-जुल कर काम करना होगा। क्योंकि एक व्यक्ति छप्पर नहीं उठा सकता और राष्ट्र का छप्पर उठाने के लिए तो हम सबको मिलजुल कर हाथ बंटाना होगा।

डा० जाकिर हुसैन

भारत में शिक्षा का पुनर्निर्माण-(२)

[नई दिल्ली में १३ दिसम्बर, १९५८ को सरदार पटेल स्मारक व्याख्यान माला के अन्तर्गत डा० जाकिर हुसैन का दूसरा भाषण।]

अपनी दो पूर्व-निश्चित धारणाओं के साथ में यह वार्त्ता शुरू कर रहा हूँ, जिसके लिए क्षमा चाहता हूँ, क्योंकि मेरी इन धारणाओं से असहाय आशावादिता तथा दिल पसन्द विचार प्रकट होते हैं। मेरी पहली धारणा यह है कि आप में से कुछ लोग मेरे प्रथम व्याख्यान को सुन लेने के बाद अब मेरा दूसरा व्याख्यान सुनने का खतरा उठाने जा रहे हैं। मेरी आशावादिता, आपके हठाग्रह एवं धर्म का मुकाबला करना चाहती है। दूसरी ओर शायद उससे भी अधिक तीव्र यह धारणा है कि जो कुछ मैंने पिछली बार कहा, उसे आपने याद रखा होगा। मैं आपको याद दिला दूँ कि शिक्षा के विषय में अपने विचार आपके सामने रखने के बाद, मैंने कुछ विचारों का विवेचन आरम्भ किया था, जो मुझे शिक्षा के रूप से निकलते-से लगे। मैंने व्यक्तिगत तीन महत्वपूर्ण सिद्धान्तों, उस व्यक्तित्व के विकास की अवस्था और शिक्षा द्वारा निर्मित अविभाज्य सर्वांगीणता के सम्बन्ध में विचार किया था। मैं क्रियात्मकता के सिद्धान्त का भी उल्लेख कर चुका था और आज का अपना व्याख्यान उस सिद्धान्त के स्पष्टीकरण एवं व्याख्या मे आरम्भ करना चाहता हूँ।

एक प्रकार से, किसी भी युग में कोई भी विद्यालय, विद्यार्थियों की किसी स्वक्रिया के बिना नहीं रहा है। पढ़ने-लिखने और हिसाब की कठोरतम कसरत में भी, तथा दूसरे की कृपा से किसी के मस्तिष्क में सूचनाओं का अम्बार भर कर स्मृति में केवल उन्हें जमा रखने में भी कुछ स्वक्रिया रहा करती थी। किन्तु, यह अधिक से अधिक एक आकस्मिक संसर्ग था, क्योंकि इसे न लक्ष्य माना जाता और न विशेष शैक्षिक महत्व का समझा जाता था। मैं समझता हूँ कि स्विट्जरलैंड के महान्

शिक्षाशास्त्री पेस्तालीजी के कारण, शैक्षिक चिन्तन और व्यवहार में, स्वक्रिया के सिद्धान्त को अभिन्न अंग माना गया और उचित ढंग से इसे स्वीकार किया गया। अब तक प्रायः इसने सार्वभौम मान्यता प्राप्त कर ली है, किन्तु, अपने रोज के अनुभव पर आप भी कह सकते हैं कि किसी सिद्धान्त को मान लेना अक्सर सिद्धान्त के लिए बहुत बुरी चीज होती है। अन्युत्साही समर्थक मूल-सिद्धान्त के पीछे निहित भावना का हनन कर देते हैं। छिपे स्वार्थों के कारण सिद्धान्तों को मानने वाले कुशल संशयवादी, सिद्धान्तों की कायापलट करना भी जानते हैं। उनको नष्ट करने के लिए यह उनके पास सबसे आसान तरीका है। 'केवल नाम रखो, सार की चिन्ता छोड़ो' यही उनका गुप्त प्रण है। हमारे देश में ही अनेक अच्छे सिद्धान्तों का नतीजा ऐसा ही हुआ है। खैर, पिछली शताब्दी में यूरोप तथा अमेरिका के विद्यालयों में इस स्वक्रियात्मकता के सिद्धान्त का प्रादुर्भाव हुआ, यद्यपि मुख्य काम अर्थात् निष्क्रिय ग्रहणीयता की तुलना में यह क्रियात्मकता प्रायः काफी साधारण अंशों में ही रहती थी। निष्क्रिय ग्रहणीयता विद्यालयों का मुख्याधार थी। स्वक्रियात्मकता की यह साधारण खुराक भी बाहर से ही सक्रिय रूप में दी गई है। साधारणतः यह नहीं माना जाता था कि बच्चे या शिक्षार्थी में समझने, बोध होने, काम करने और सिद्धि प्राप्त करने की जन्मजात प्रवृत्ति होती है, अपनी मानसिक बनावट द्वारा निर्धारित तरीकों से अपने को संलग्न रखने की सहज प्रवृत्ति। विद्यालय के लिए यह भी मानना बहुत कठिन रहा है और अब भी है कि शिक्षा, छाप छोड़ने या बाहर से प्रणिधान करने की वस्तु नहीं है। सच्ची शिक्षा वास्तव में स्वशिक्षा है। किन्तु, यही बात तो पेस्तालीजी के ध्यान में थी। वस्तुतः उनके प्रसिद्ध जीवनी लेखकों में से एक, प्रसिद्ध चिन्तक पाल नेटोर्प ने उनके 'क्रिया-सिद्धान्त' को, 'स्वच्छन्दता का सिद्धान्त' कहा है।

फिर भी इधर एक प्रतिक्रिया ध्यान देने योग्य हुई है। यहां तक कि 'ग्रन्थ-प्रधान' विद्यालय से 'कार्य-प्रधान' विद्यालय या 'जनता-विद्यालय' की ओर जाने की मूल स्वस्थ प्रवृत्ति भी कभी-कभी विवेक-रहित अतिशयोक्ति-सी लगने लगती है। उदाहरणार्थ, मैंने ऐसे बुनियादी विद्यालयों को देखा है, जिनके कार्यों का प्रधान केन्द्र दस्तकारी के कार्य को माना जाता है, पर जहाँ उस अर्थ में किसी प्रकार का कोई कार्य नहीं होता और मैं ऐसे बुनियादी विद्यालयों के शिक्षकों से भी मिल चुका हूँ, जिन्होंने बहुत उत्सुकता तथा कुछ गौरव से कहा कि वे अपने विद्यालयों में कोई पुस्तक नहीं रखते, क्योंकि उनका विद्यालय तो वस्तुतः सक्रियता तथा कर्म के लिए है। मैंने उनसे यह नहीं पूछा कि किस प्रकार के काम वे अपने विद्यालय में लेते हैं—और मुझे विश्वास है, मेरी इस स्वीकारोक्ति पर आप मेरे प्रति हमदर्द होंगे। प्रथम महायुद्ध के बाद होने वाले शिक्षा सम्बन्धी प्रयोगों की अवधि में मैंने एक प्रसिद्ध जर्मन शिक्षाशास्त्री को अपने स्कूल के सम्बन्ध में यह कहते पाया "मेरे स्कूल में छात्राएं ही सब कुछ करती हैं, शिक्षक कहीं सामने नहीं आते।" मैं शिक्षा के सभी चरणों में प्राकृतिक स्व-सक्रियता की माँग करता हूँ—उद्देश्य के निर्धारण में, कार्य के संगठन तथा कार्यविधियों के निरीक्षण में, निर्णय-योग्य सभी प्रश्नों में, आवश्यक संशोधनों में, प्रक्रिया के मूल्यांकन एवं उसके फलों में, प्रत्येक विषय में उन्हें स्वतन्त्रता देता हूँ। मेरा अपना अनुमान है कि इन वीरोचित अतिशयोक्ति की मनोदशाओं में मनुष्य यह भूल सकता है कि वास्तविक स्वतन्त्रता की राह बहुत ज्यादा निर्देशित प्रयास के क्षेत्रों से होकर जाती है। बिना किसी निर्देश या अधिकार वाला स्कूल एक बुद्धिहीन, तथा उससे भी खराब, एक निष्फल प्रयास होगा। नहीं संसार भर की सारी स्वच्छन्दता के बावजूद शिक्षा की ओर जाने का कोई ऐसा मार्ग नहीं है जो स्वत्व के ही चारों ओर घूमता रहे। सम्भावित से लेकर पूर्ण मानवीय व्यक्तित्व तक में कोई ऐसा नहीं, जो समाज

तथा उसकी संस्कृति के उपकरणों से होकर न गुजरे। केवल धीरे-धीरे और उचित चुनाव के साथ इनके साथ किए गए सम्पर्क में, और इन्हें ग्रहण करने की क्रिया में व्यक्ति का मस्तिष्क जाग्रत् होता है और अपने अस्तित्व के नियम को जानने में समर्थ होता है। बच्चे की रचनात्मक तथा स्वक्रियात्मक प्रवृत्तियों का पालन-पोषण पूर्व उपलब्धियों तथा उदाहरणों से प्राप्त, अनुशासन तथा शिष्टता के पालन-पोषण के साथ-साथ चलता है।

इस स्थल पर मुझे ऐसा लगता है कि स्वक्रिया-सम्बन्धी विचार के प्रति सम्भावित गलतफहमी और अतिशयोक्ति का निर्देश करने में मैं जरा जल्दी कर गया। पहले मुझे यह स्पष्ट करना चाहिए था कि एक शैक्षिक सिद्धान्त के रूप में मैं 'स्वक्रियात्मक प्रवृत्ति' का क्या अर्थ समझता हूँ।

चार प्रकार की क्रियाएं मेरे ध्यान में आती हैं:—खेल की क्रिया, दौड़-धूप या क्रीड़ा की क्रिया, यदा-कदा की व्यावसायिक क्रिया और कार्य की क्रिया। खेल एक ऐसी क्रिया है जिसका उद्देश्य स्वयंसिद्ध है, इसके बाहर कोई उद्देश्य नहीं है। खेल, खेल के लिए है। बच्चे के बाहर किसी वस्तु या उसके अन्दर किसी गुण की उत्पत्ति इसका लक्ष्य नहीं है। अपना प्रतिफल वह आप ही है। जब भी वह क्रिया मृगमरीचिका के आगे बढ़ती और कुछ धुंधले प्रकार के लक्ष्य अपनाती देख पड़ती है, तब भी वह लक्ष्य वास्तविक रूप में प्राप्त नहीं हो पाता। खेलते हुए बच्चे की कल्पना वस्तु के नियमों को नहीं मानती। वह किसी वस्तु को कुछ भी मान बैठता है, छड़ी को घोड़ा, कागज के टुकड़े को फूल, दूसरे टुकड़े को फूल-दानी, अपने को शिक्षक, मां को विद्यार्थी और दियासलाई को गुरूजी की छड़ी मान लेता है और काम चलता है, बच्चा खुश रहता है।

दूसरी ओर दौड़-धूप या क्रीड़ा की क्रिया कुछ उद्देश्य लेकर होती है। वह उद्देश्य किसी कार्य या गति की योग्यता-वृद्धि या सुविधा का होता है। किन्तु, क्रीड़ा भी अपने-आप से बाहर किसी वस्तु की उत्पत्ति नहीं करती। उसका उद्देश्य उसमें निहित होता है, और खेल-कूद में चैम्पियन बनने तथा रेकार्ड स्थापित करने में, उत्कृष्ट निपुणता का बोध होता है। अगर क्रीड़ा को अन्य उद्देश्यों की ओर लगाया जाए, उदाहरणार्थ धन प्राप्ति के लिए, तब वह पेशा बन जाता है, या यदि स्वास्थ्य के लिए इसका प्रयोग किया जाए तो वह क्रीड़ा नहीं रह कर, शारीरिक व्यायाम बन जाता है।

इन दोनों के अतिरिक्त, दूसरी दो प्रकार की क्रियाएँ, यदा-कदा की वृत्ति तथा कार्य, अपने से बाहर प्राप्त किए जाने वाले स्पष्ट निश्चित उद्देश्यों को रखती हैं। वे अपने आप में अभी उद्देश्य नहीं हैं। वे कुछ विचारकों की साकार वस्तुनिष्ठ प्राप्ति की ओर लक्ष्य करते हैं। वस्तुनिष्ठ साकारता की पूर्णता तथा सम्बद्ध क्रिया में ही, यदा-कदा की वृत्ति तथा व्यसन (हाबी) के उद्देश्य होते हैं। लेकिन उद्देश्य की पूर्ण तथा उत्तम प्राप्ति में, इसकी कोई अत्यधिक अथवा अति गहरी दिलचस्पी नहीं है। क्रिया की आनन्ददायक स्थिति जब समाप्त हो जाती है या जैसे ही काम किसी एक या अन्य रूप में पूरा होने पर होता है, यह क्रिया भी रुक जाती है—जो क्रिया खेल में उत्पन्न हो, और केवल आकस्मिक वृत्ति से रुक जाए, वह नए कला-प्रेमियों के लिए एक विकास-साधन है। शैक्षिक प्रक्रिया का मुख्य उद्देश्य इस क्रिया को, चौथे प्रकार की क्रिया अर्थात् 'कार्य' की ओर ले जाना है।

मुझे भय है, कुछ देर के लिए मैं यह बताऊँगा कि कार्य, यदि शिक्षा का एकमात्र यन्त्र नहीं, तो एक अत्यन्त आवश्यक यन्त्र है। 'अत्यन्त आवश्यक यन्त्र' कहना भी आपको सम्भवतः एक विशेष अतिशयोक्ति लगे। किन्तु, आशा है कि इससे आपका यह सन्देह दूर होगा कि मैं बिना सोचे-समझे सभी कामों को शिक्षाप्रद ही मानूँगा। हमारे देश के अधिक से अधिक लोगों के भाग्य में काम, कठिन और दुरूह शारीरिक परिश्रम का काम बदा है, फिर भी दुर्भाग्यवश कोई भी यह नहीं कह सकता कि उनको अच्छी शिक्षा दी गई है, यह और बात है कि उनमें से कुछ लोग बिना साक्षरता की छलावापूर्ण कुशलता प्राप्त किए ही अनेक शिक्षित कहानेवालों से कहीं अच्छी तरह शिक्षित हैं। हां, सभी काम शिक्षाप्रद नहीं होते, यद्यपि शिक्षाप्रद कार्य, वास्तविक शिक्षा के सबसे बड़े साधन हैं। मेरे इस परस्पर-विरोधी कथन के बाद यह आवश्यक हो जाता है कि मैं यह बताऊँ कि शिक्षाप्रद कार्य से मेरा क्या तात्पर्य है, अर्थात् वह कार्य जो व्यक्तित्व और चरित्र के निर्माण में तथा मस्तिष्क को सुसंस्कृत बनाने में सहायक हो।

इस सम्बन्ध में सबसे पहले हमें यह समझना है कि शारीरिक श्रम, चाहे वह कितनी उत्सुकता दिलचस्पी और मेहनत से किया जाए, तब तक शिक्षाप्रद कार्य नहीं बन सकता, जब तक वह किसी प्रारम्भिक क्रिया से उत्पन्न नहीं होता। कार्य की दिशा में यह मानसिक क्रिया, एक आवश्यक तथा निर्णयात्मक कदम है। कुछ शारीरिक कार्यों में यही वह आवश्यक उपकरण है, जो उन्हें शिक्षाप्रद कार्यों का रूप देने में सहायता पहुँचाता है। हस्तकार्यों के विकास के साथ ही, उस प्रथम बौद्धिक निर्णयात्मक कदम में संशोधन, परिष्कार या परिवर्त्तन की आवश्यकता आ सकती है किन्तु यह प्रारम्भिक बौद्धिक कदम हमेशा समस्त शिक्षाप्रद कार्य-कर्त्ताओं के मानसिक हस्तकार्यों से पहले आएगा। जीवन से अलग शुद्ध यान्त्रिक कार्य कभी शैक्षिक नहीं हो सकते। निपट अनुकरण भी शैक्षिक नहीं हो सकता, जब तक कि कम से कम जिस चीज का अनुकरण करना है, उसकी समझ-बूझ पहले न हो जाए।

शैक्षिक कार्यों की साधारणतः चार अवस्थाएँ हैं:– १. वस्तुतः क्या करना है, इस समस्या का स्पष्ट ज्ञान, २. कार्य की योजना की तैयारी के उपयुक्त साधनों का चुनाव, विभिन्न अवस्थाओं का जिनमें कार्य का, सम्पादन होना है, चिन्तन; ३. कार्य का वास्तविक कार्यान्वयन और ४. वास्तव में क्या करना है, इस प्रश्न के समक्ष, किए गए कार्यों के फल की स्वयं-समीक्षा। इन्हें प्रत्यक्षीकरण की चार अवस्थाएँ कहा गया है।

शैक्षिक प्रकृति वाले हस्तकार्य में, केवल तीसरी अवस्था, कार्यों का वास्तविक कार्यान्वयन हस्तात्मक है, अन्य तीन मानसिक उद्यम से सम्बद्ध हैं। जो कार्य हस्तात्मक नहीं हैं उनकी चारों अवस्थाएँ, मुख्यतः मानसिक क्रियाओं से सम्बद्ध हैं। इस मानसिक क्रिया का, जो किसी हस्तात्मक कार्य के साथ होती है, या निश्चित चुनाव-द्वारा किसी नैतिक समस्या के समाधान या सैद्धान्तिक समस्या के समाधान के साथ आती है, विशेष मूल्य है; क्योंकि यह क्रिया मस्तिष्क को प्रशिक्षित कर देती है, ताकि बाद में भी जब ऐसे अवसर आएँ, तब मस्तिष्क इस प्रकार की समस्याओं का समाधान आसानी तथा अधिक विश्वास के साथ कर सके। यह क्रिया तार्किक विचार-प्रणाली में निपुणता तथा प्रणाली का विकास प्रदान करती है। यह यद्यपि शिक्षा की पूर्णता नहीं है, फिर भी इसकी ओर प्रगति का यह एक महान् कदम है। क्योंकि, चिन्तन की प्रक्रियाएँ उसी स्तर पर स्थित रहने नहीं दी जा सकतीं, जिस पर वे बचपन की प्रारम्भिक अवस्थाओं में अपने को प्रकट करती

हैं। बच्चा, अपनी शिशु-अवस्था में ही अपने सदा विकसित होने वाले अनुभव-भण्डार में एक प्रकार की व्यवस्था लाना शुरू कर देता है। बच्चे के बोलने और विचारों तथा वस्तुओं के शब्द-रूपों का व्यवहार करने के बहुत पहले ही सादृश्य, भेदकरण और पहचान की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। जैसे ही वह अपनी स्वतः क्रियात्मकता के लक्ष्य से अभिज्ञ हो जाता है और साध्य तथा साधन के भेद की जानकारी प्राप्त कर लेता है, वह केवल साध्य साधन के उचित सम्बन्ध की स्थापना की आवश्यकता ही अनुभव करना नहीं शुरू करता, बल्कि कारण और प्रभाव, वास्तविकता और बाह्य रूप, पूर्णतया एवं अंश इसी प्रकार के स्पष्ट सम्बन्धों की स्थापना की खोज करना आरम्भ कर देता है। अनुभव के आधार पर स्थापित ये सम्बन्ध सत्य हैं कि नहीं, सम्बद्ध विचारों के प्रतीक सन्दिग्ध हैं या नहीं, तथा उसी प्रकार के अन्य विचार, अभी तक बच्चे को परेशान नहीं करते। क्या और कब, क्यों और कहाँ-से, जैसे उसके प्रश्नों की बौछार बिलकुल छिछले उत्तरों से भी कुछ समय के लिए बन्द हो सकती है। वह केवल उत्तर के लिए जिद्द करता है; क्योंकि उसके द्वारा स्पष्ट और तार्किक सम्बन्ध का स्थापन हो जाता है, जिसकी उसे तलाश होती है। बच्चा निष्कर्षों पर पहुँचने की कोशिश करता है, और उनको संयुक्त कर अपने नियमित फैसले तैयार करता है, बिना इसकी परवाह किए हुए कि उसके निष्कर्ष संगत और न्यायोचित हैं या नहीं? बिना किसी उचित अनुशासन के, बिना प्रक्रिया को विशेष विश्वस्त बनाने की चेष्टा किए ही, उसका एक प्रकार तर्कपूर्ण चिन्तन होता है।

इसके विरुद्ध शुद्ध तर्कशास्त्र और गणित में तार्किक प्रक्रिया का व्यवहार विधिवत् होता है। यहाँ चिन्तन कठिन समस्याओं का, जो अनिवार्य रूप से निश्चित प्रस्तावनाओं से उद्भूत समाधान करता है। ये या तो स्वयंसिद्ध होती हैं या पहले ही इनकी सत्यता सिद्ध हो चुकी होती है। गणित और तर्कशास्त्र, ये दोनों प्रमाणित स्वयंसिद्धि से, आगे बढ़ते हैं, और स्पष्ट विचारों से काम लेते हैं जिनका प्रतिनिधित्व निश्चित प्रतीकों-द्वारा किया जाता है। अपना विचार वास्तविकता से उधार नहीं लेता, बल्कि अपने आप में से उन्हें पैदा करता है।

किन्तु, मनुष्य को अनन्त तथा विविध वास्तविकताओं का सामना करना पड़ता है, जिन्हें वह अपने मस्तिष्क से नहीं उत्पन्न करता, और जिनका अनुभव वह धीरे-धीरे अपने कार्यों और व्यवहारों में करता है। इस बाहरी वास्तविकता का उपयोग करने के लिए, उसे इसको भेदना होगा। इसके लिए उसे तार्किक चिन्तन के औजार की आवश्यकता पड़ती है, जो स्पष्ट सम्बन्ध स्थापित करने के अतिरिक्त संश्लेषणात्मक तथा विश्लेषणात्मक निर्णय करने में भी सहायक होता है। उसे निष्पक्ष चिन्तन की आदत की आवश्यकता है, जिसके लिए सावधानी पूर्ण प्रशिक्षण होना चाहिए। बच्चे की प्राकृतिक और आसानी से सन्तुष्ट होने वाली तार्किक प्रक्रिया को एक सुव्यवस्थित तथा आत्म-आलोचनात्मक प्रक्रिया के रूप में विकसित करना होगा, क्योंकि, चिन्तन की आदत किसी भी हालत में बनेगी ही। अगर सतर्क चिन्तन की आदत विकसित न की जाए, तो बिलकुल छिछली और जल्दबाजी के चिन्तन की आदत पड़ जाएगी। अगर सत्यता की जाँच के लिए निर्णय को रोक रखने की आदत नहीं डाली जाती, तो किसी बात को सुनते ही सच समझ लेने की, या सन्देहास्पद अविश्वास की आदत पड जाएगी। गुणों की निश्चितता चिन्तन-क्रिया में सावधानी दृढ़ता और परिपूर्णता जैसे गुणों की प्राप्ति के लिए, उनके व्यवहार का अवसर प्रदान करना आवश्यक है। इस मानसिक क्रिया की कार्यान्विति की शर्तों की, बुद्धिजीवी ग्रन्थ-प्रधान

विद्यालयों, साथ ही, व्यावहारिक कार्य-प्रधान विद्यालयों-द्वारा उपेक्षा की जा सकती है और की जा रही है। कोई भी स्कूल, उसके कार्यक्रम में चाहे जिस पर भी जोर दिया जाए, वह शिक्षा का स्थान तब तक नहीं बन पाएगा, जब तक वह इस प्रकार की मानसिक क्रिया, इस प्रकार के कार्य के लिए पर्याप्त सुविधाएं न प्रदान करे।

वे विद्यालय को जानकारी हासिल कराना और कौशल के विकास की शिक्षा देना अपना कर्त्तव्य समझते हैं। अगर बराबर नहीं तो अक्सर, इस आवश्यक मानसिक कार्य को अपना प्रधान कर्त्तव्य न मान, इसकी उपेक्षा करते हैं। शैक्षिक संस्थाओं से सम्बद्ध कुछ व्यक्ति मेरे इस विचार को जान कर, जिसका मैंने पहले ही प्रतिपादन किया है, चौंकेंगे कि जानकारी और कौशल, शिक्षा के पर्याय नहीं हैं। और फिर भी, आपको चौंकाने का जोखिम अपने ऊपर ले लूंगा, क्योंकि जो कुछ मैंने कहा है, उसमें मेरा विश्वास है। दरअसल, जानकारी और कौशल तो शिक्षा के विश्वसनीय मान-दण्ड भी नहीं हैं। उन्हें इस प्रकार सेवा-योग्य बनाने के लिए हम लोगों को एक विभाजक रेखा खींचनी होगी। जानकारी, जैसा आप साधारणतया जानते हैं दो प्रकार की हो सकती है, यह किसी दूसरे के मानसिक श्रम द्वारा प्राप्त ज्ञान हो सकता है जो हम लोगों को तैयार जानकारी के रूप में दिया जा सकता है, अथवा ज्ञान जो हम लोगों के अपने अनुभव-द्वारा प्राप्त होता है, ज्ञान जो निजी प्रयासों-द्वारा हम लोगों के मस्तिष्क में उत्पन्न होता है। उसी प्रकार, कौशल भी दो प्रकार के हो सकते हैं। यह यान्त्रिक कौशल हो सकता है। इसकी प्राप्ति उस अनुकरणात्मक परिश्रम-द्वारा होती है, जिसके फलस्वरूप, वर्तमान मूल्यों की आवृत्ति होती है। अथवा वह स्वभाविक प्रवृत्तियों पर आधारित अयान्त्रिक कौशल भी हो सकता है, जो नए मूल्यों का निर्माण करता है। प्रथम प्रकार को जानकारी और कौशल, वाह्ययोग हैं। दूसरे प्रकार की जानकारी और कौशल आन्तरिक रूपान्तर और सम्पन्नता है। प्रथम प्रकार, बाहरी वृद्धि का प्रतिनिधित्व करता है, दूसरा, आन्तरिक विकास का द्योतक है। प्रथम निर्देश है, दूसरा शिक्षा। प्रथम ऊपरी चमक है, दूसरी अनिवार्य संस्कृति। प्रथम और द्वितीय प्रकार के विद्यालयों में प्रधान अन्तर, उस प्रकार के मानसिक कार्यों की सहज अनुपस्थिति या फिर अति स्पष्ट व्यवस्था है, जिनके स्वतः स्वीकार किए जाने पर, सतर्क और सम्पूर्ण चिन्तन की प्रवृत्ति का विकास होता है।

आपको याद होगा कि मैंने शिक्षा के चौथे सिद्धान्त, अर्थात् प्राकृतिक क्रिया की व्याख्या के आरम्भ में कुछ अतिशयोक्तियों की जो इस सिद्धान्त के साथ सुनी जा सकती हैं, चर्चा की। इन अतिशयोक्तियों में से एक की माँग यह है कि अच्छे विद्यालय में प्राकृतिक क्रिया ही एकमात्र क्रिया हो, और यान्त्रिक कौशल तथा परम्परागत ज्ञान का निषेध किया जाता है। मेरी समझ में यह अतिशयोक्ति पूर्णतः गलत है और इस तथ्य की उपेक्षा करती है कि प्रत्येक बच्चा एक सुसंस्कृत समाज में उत्पन्न होता है। स्वेच्छापूर्ण स्वाभाविक कार्य के उद्देश्य, मानो मनुष्य के सम्पूर्ण अस्तित्व को आच्छादित करते हैं, और स्वाभाविक उद्देश्यों की प्राप्ति के काम में व्यर्थ की शिथिलता को रोकने के लिए वह पर्याप्त परम्परागत ज्ञान और यान्त्रिक कौशल की प्राप्ति की प्रेरणा देते हैं। इसलिए, शिक्षा में, परम्परागत ज्ञान का तथा यान्त्रिक कौशल का हमेशा अपना स्थान रहेगा, लेकिन तभी, जब कि प्रत्यक्ष अनुभवों द्वारा-प्राप्त किए गए अथवा प्राप्त किए जाने वाले ज्ञान की खाई पाटने में आएं या जब रचनात्मक कार्यों द्वारा प्राप्त हुए अथवा प्राप्त होने वाले कौशल की खाई पाटने आएं। परम्परागत ज्ञान और यान्त्रिक कौशल के द्वारा शैक्षिक कार्य को निरन्तर दृढ़ करना आवश्यक है।

मैं यहाँ पर कार्य के शैक्षिक मूल्य, जैसे मैंने इसके वर्णन की चेष्टा की है, के विषय में एक महत्वपूर्ण और अनिवार्य प्रश्न उठाना चाहता हूँ । इसके सम्बन्ध में मैंने जो सबसे अधिक दावा किया है– और यह कोई छोटा दावा नहीं है—कि यह मानसिक क्रिया का सुअवसर प्रदान करता है, केवल जिसकी सहायता से ही शिक्षार्थी में सावधानीपूर्ण, फलप्रद तथा तार्किक चिन्तन की अत्यन्त आवश्यक आदतें डाली जा सकती हैं । कुछ मानसिक क्रियाओं का यह विधिवत् प्रशिक्षण है । यह मानसिक एवं बौद्धिक कौशल उत्पन्न करता है । यह फल उत्पन्न करने वाले काम को, चाहे फल कितना भी महत्त्वपूर्ण क्यों न हो, क्या सचमुच शैक्षिक कहा जा सकता है ? मुझे भय है, मैं इस प्रश्न का उत्तर 'हाँ' में नहीं दे सकता । कौशल और गुण को वास्तविक शिक्षा का फल केवल उसी हालत में माना जा सकता है, जब वे प्राप्त किए जाएं और जब पदार्थ-विषयक मूल्यों में उनका उपयोग हो । फलतः, दोष-रहित और तार्किक चिन्तन की कुशल आदतें ऐसे आदमी में हो सकती हैं जो कभी अपने बाहर की किसी चीज़ से प्रभावित नहीं हुआ है, जो अपने संकीर्ण दायरे से कभी बाहर नहीं आया हो, जिसमें उच्च विचार कभी न जन्में हों, जो कभी उत्कृष्ट उद्देश्य के प्रति उत्साहित नहीं हुआ हो और जिसने प्रेम द्वारा कभी महानता न पाई हो । ये आदतें उनमें भी हो सकती हैं जो समाज-विरोधी तथा अपराधपूर्ण उद्देश्यों के लिए इनका प्रयोग करें । शिक्षित मनुष्य का विशिष्ट गुण, संस्कृति के उपकरणों की ओर उसकी ठोस प्रवृत्ति में है, अर्थात् चरम निरपेक्षित मूल्यों की ओर उसकी प्रवृत्ति । यह प्रवृत्ति, शैक्षिक तथा निर्देशात्मक क्रिया का इच्छित फल होना चाहिए ।

कर्सेन्स्टाइनर ने, जिनके नाम से अब आप परिचित हो चुके हैं, अपने विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थ (बेग्रिफडर आरबाईटशूले) (BEGRIFF DER ARBEIT SCHULE) में ठीक ही कहा है कि सच्चे अर्थ मे शिक्षित व्यक्ति में पांच स्पष्ट लक्षण होते हैं । मैं उन पाँचों लक्षणों को, अनुवाद में नहीं, बल्कि स्वतन्त्र वाक्य व्याख्या में प्रस्तुत करूंगा । हरेक में मैंने अपनी ओर से नकारात्मक कथन भी जोड़ दिए हैं ।

(१) वस्तुओं और व्यक्तियों से सम्बद्ध मूल्यों के प्रति, शिक्षित व्यक्ति का बौद्धिक क्षितिज विस्तृत होता है । उसकी आंखों पर पर्दा नही होता ।

(२) वह जीवन्त मुक्त विचारो वाला व्यक्ति होता है, और नए मूल्यों और विचारों को ग्रहण कर सकता है । वह जड़वादी नहीं, संस्कृति से बे-रुख नहीं ।

(३) नैतिक विकास की दिशा में उसे अन्तःप्रेरणा होती है, और स्वयं में तथा अपने चारों ओर की दुनिया में, वह पूर्णता की ओर निरन्तर बढ़ता चलता है ।

(४) वस्तुओं के मूल्य सम्बन्धों के प्रति उसका रवैया नम्र तथा बहुग्राही है, रूढ़िवादियों या नौकरशाही वाले सख्त तथा कठोर रवैये जैसा नहीं । वह लकीर का फकीर नही ।

(५) चूंकि उसका मूल्य-सम्बन्धी अनुमान, बिल्कुल निरपेक्ष मूल्यांकन के आधार पर होता है, वह इस बात का स्पष्ट प्रमाण देता है कि उसमें एक केन्द्रीय मानसिक प्रकाश है, जो उसके सारे कार्यों, विचारों तथा भावनाओं को प्रकाशित कर देता है । वह अन्दर से खोखला तथा दूसरों के कामों में टाँग अड़ाने वाला व्यक्ति नहीं ।

कर्सेन्स्टाइनर ने इन गुणों का सारांश, शिक्षा की एक सुथरी परिभाषा में दिया है, जो इस तरह है—'संस्कृति के उपकरणों द्वारा जाग्रत्, व्यक्तिगत रूप से संगठित मान्यों की भावना।' जैसा आप देखेंगे मुख्य जोर संस्कृति के उपकरणों पर दिया गया है, क्योंकि उन्हीं में ये निरपेक्ष मान्यताएं सम्मिलित और संचित की जाती हैं। इन्हीं के द्वारा विकसित होता हुआ मस्तिष्क इन मान्यताओं का अनुभव कर सकता है, और संस्कृति के उपकरणों में सोई हुई संचित शक्ति परिवर्तित होकर चेतन मानस की चलायमान शक्ति बन जाती है। इन मूल्यों का अंगीकरण तथा पालन ही 'निरपेक्षिता' है. व्यक्ति के आत्मिक मूल्यों को, उचित निरपेक्षित मान्यताओं के अधीन करने की स्वीकृति। संक्षेप में हम यों कहें, हाथ या मस्तिष्क का ऐसा कोई भी कार्य, जिसमें कार्यकर्त्ता निरपेक्ष रहना चाहता है शैक्षिक कार्य है। ठीक ही कहा गया है कि निरपेक्षता नैतिकता है क्योंकि नैतिक आचरण इसके अलावा और क्या है कि मन के निजी झुकाव तथा हितों से ऊपर, निरपेक्ष मूल्यों को माना जाए? निरपेक्षता का उद्देश्य है मान्यताओं की सम्पूर्ण प्राप्ति। निरपेक्षता का दूसरा नाम अवैयक्तिकता है।

किन्तु व्यक्ति अपनी क्रिया में किस तरह इस निरपेक्ष प्रवृत्ति को अपनाता है? किस तरह कोई सच्ची शिक्षा की राह पर खड़ा किया जाता है? आपको शायद याद हो, इस बातचीत के सिलसिले में कुछ पहले हम लोगों ने चार प्रकार की क्रियाओं का भेद माना था (१) खेल, (२) क्रीड़ा (दौड़-धूप), (३) आकस्मिक अथवा अनियमित कार्यवृत्ति तथा (४) उद्योगपूर्ण कार्य। इन सभी प्रकारों में कर्त्ता किसी न किसी तरह के अनुरूप अथवा प्रतिरूप मूल्यों का अनुभव करता है। ये सभी, कर्त्ता में किसी न किसी प्रकार के कार्य के विकास की चेष्टा करते हैं। किन्तु यदि आपको इन चारों क्रियाओं की निजी विशेषताएं याद हों, तो आप मेरी इस बात से सहमत होंगे कि उन सभी में केवल 'काम' ही है, जो कुछ परिस्थितियों में, शिक्षात्मक मूल्य रख सकता है। क्योंकि, केवल उद्योगपूर्ण कार्य में ही कार्यकर्त्ता न केवल फल-प्राप्ति का लक्ष्य रखता है, बल्कि लक्षित फल को यथासम्भव सम्पूर्ण तथा उत्तम भी बनाना चाहता है। अपूर्ण, असावधानीपूर्ण बेतरतीब काम, और चाहे कुछ भी हो, शैक्षिक तो कदापि नहीं है। मैंने 'सम्पूर्ण लक्ष्य' की बात कही है—दोष-रहित लक्ष्य की, और सम्पूर्णता अथवा दोषहीनता स्वयं ही सर्वोच्च विधिवत् मूल्यों में है। और कार्यों की अपेक्षा कुछ कार्य, सम्पूर्णता के मूल्य के अनुभवों को धीरे-धीरे प्राप्ति कराने के लिए, अधिक उपयुक्त हैं। ऐसे कार्यों में यह आसान है, जिनके फलों के समक्ष कर्त्ता आसानी से अपनी सफल आलोचना कर सकता है। उदाहरणार्थ, टेकनिकल कार्यों को यह लाभ असाधारण रूप में प्राप्त है।

जो स्कूल कार्य को शिक्षात्मक बनाना चाहता है, उसके किसी भी ऐसे काम को अति पर्याप्त नहीं कहा जा सकता, जिसके अन्तर्गत वह अपने विद्यार्थियों को, सम्पूर्णता के मूल्य-सम्बन्धी सुखद तथा स्फूर्तिदायक अनुभवों की प्राप्ति के बहुत काफी अवसर देता है, किसी चीज में, किसी काम में चाहे वह कितना भी छोटा हो, यथासम्भव सम्पूर्णता लाने, और जब तक सम्पूर्णता प्राप्त न हो जाए, काम न छोड़ने की प्रेरणा देता हो। कई मामलों में सम्पूर्णता की यह प्रवृत्ति, निरपेक्ष उद्देश्यों में नहीं, बल्कि स्वकेन्द्रिक उद्देश्यों में आरम्भ होगी। किन्तु सम्पूर्णता की प्राप्ति के अनुभवों की बहुधा पुनरावृत्ति के कारण, इस प्रवृत्ति का भी रूपान्तर हो जायगा। ज्यों ही ऐसा होता है, सम्पूर्ण अथवा शुद्ध फलों की प्राप्ति के प्रत्येक साधन की प्रकृति जानने की प्रेरणा बड़ी प्रबल हो जाती है। इन साधनों में क्या-क्या है? साधारणतया ये चीजें हैं, संस्कृति के विविध उपकरण, कोई टेकनिकल (तकनीकी) प्रयोग अथवा कोई विदेशी भाषा, या विज्ञान

की कोई शाखा या कुछ व्यक्तियों की जीवनी या किसी कवि की कृतियों का अध्ययन; इत्यादि-इत्यादि। इन साधनों पर अधिकार पाने की प्रवृत्ति के द्वारा विद्यार्थी इनके निकट सम्पर्क में आ जाता है। अब वह उन मान्यताओं को, जो इन उपकरणों में मौजूद हैं, अनुभव करता है। वे मूल्य जो उसके निजी मानसिक ढांचे के अनुरूप हैं, मानों उसके मस्तिष्क के संसर्गीय क्षेत्रों को जगाकर क्रियारत कर देते हैं, तथा उसे इस उद्देश्य की ओर आगे बढ़ाते हैं कि अपने काम में वह इनमें से कुछ मूल्यों को प्राप्त करे, तथा फिर, उन्हें यथासम्भव परिपूर्णता के निकट लाए। क्योंकि, जैसा इस बातचीत में हम पहले भी जान चुके हैं, चरम मूल्यों का एक आवश्यक गुण यह है कि वे प्राप्ति तथा परिपूर्णता के लिए प्रेरणा पैदा करते हैं। इस आनन्दमय अनुभव में संलग्न मूल मानसिक स्वकेन्द्रिक उद्देश्य, विभिन्न मूल्यों तथा उनके सन्दर्भ में परिपूर्णता के साकार मूल्य के पूर्ण पालन में दब जाता है।

मुझे भय है, मैंने इस चौथे सिद्धान्त की मीमांसा में कुछ अधिक समय ले लिया; क्योंकि शुरू में मैंने शिक्षा का जो प्रारूप बताया था, यह सिद्धान्त उसी से निकलता हुआ-सा लगा। लेकिन मेरा यह विचार बनता जा रहा है कि हम, जो पूरे दो दशाब्दों से यह सोचते आए हैं कि कार्य-प्रधान विद्यालय हमारी राष्ट्रीय शिक्षा की इमारत का आधार बने, शिक्षा के इस विशेष पक्ष के प्रश्न पर जरा और ध्यान से सोचें, ताकि प्रभावहीन कार्यों को जन्म देने वाले अस्पष्ट विचारों तथा धुँधली धारणाओं को परे रखा जाए, तथा चिन्तन तथा व्यवहार में पहले की अपेक्षा कुछ अधिक दृढ़ता लाकर, समस्या का सामना किया जाए। यदि इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर हम गम्भीरता से विचार करें, तो हम उस कथन से सहमत हो सकते हैं, जिससे मैंने आज का यह व्याख्यान शुरू किया, अर्थात् यह कि 'कार्य, शिक्षा का सबसे जरूरी औजार है।' कार्य में, हस्तकार्य में भी, कार्य-सम्बन्धी मानसिक क्रिया शिक्षात्मक है, जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती, वरना कार्य के सारे शैक्षिक गुण समाप्त हो जाएँगे, क्योंकि कार्य शिक्षात्मक है, क्योंकि सतर्क तथा व्यवस्थापूर्ण चिन्तन की आदत के विकास में इसका प्रयोग हो सकता है। यह शिक्षात्मक तब हो, जब निरपेक्ष हो, यथासम्भव परिपूर्णता तक लाने की प्रेरणा से उद्भूत हो, क्योंकि इसके शैक्षिक उद्देश्य का महत्व, काम के फल के समक्ष आत्म-आलोचना के अवसर से बहुत बढ़ जाता है। यह अवसर हस्तकार्य तथा टेकनिकल कार्यों में, यद्यपि ये दोनो इसके एकमात्र साधन नहीं, सबसे आसानी से पूर्ण होता है।

मैं अब संक्षेप में दो और सिद्धान्तों की चर्चा और व्याख्या कर दूँ जो सभी प्रकार की शिक्षा के लिए लागू हैं। इनमें से पहला, शिक्षा का सामाजिक दायित्व है। अभी तक हम लोगों ने जिन सिद्धान्तों की चर्चा की है, उनमें मुख्यतः व्यक्ति को ही सामने रखा गया है, समाज के साथ व्यक्ति के सम्बन्ध की पूर्ण मान्यता का ध्यान नहीं रखा गया। व्यक्ति के मस्तिष्क का मानसिक तथा नैतिक विकास, व्यक्ति के समाज के सांस्कृतिक उपकरणों के उसके सम्बन्धों तथा अंगीकरण से उत्पन्न होता है, और निःसन्देह इस आश्वासन के कारण हमने व्यक्ति तथा समाज के बीच एक रेशमी सूत्र की स्थापना कर ली है, पर तो भी अब तक व्यक्ति के मस्तिष्क के विकास तथा एक स्वतन्त्र नैतिक व्यक्तित्व की वृद्धि पर ही जोर दिया गया है। जिस सिद्धान्त पर हम अभी विचार कर रहे हैं, उसके अनुसार शिक्षा का एक उद्देश्य, अधिक उन्नत, अधिक न्यायपूर्ण तथा अधिक शालीन जीवन-शैली की ओर समाज की निरन्तर बढ़ती हुई प्रवृत्ति है। हमें निश्चय ही यह मानना पड़ेगा कि व्यक्ति का मस्तिष्क अपनी सम्पूर्ण सम्भावनाओं को

प्राप्ति तब तक नहीं कर सकता, जब तक, साथ-साथ सामूहिक रूप से समाज की भी प्रगति नहीं होती। जो कोई व्यक्ति में श्रेष्ठता पाना चाहता है, उसे प्रायः हमेशा इसका लक्ष्य और इसकी तलाश, समाज में करनी चाहिए। प्लेटो जैसे महान् दार्शनिक को भी, व्यक्ति के गुण की खोज में समाज के पूरे ढांचे और विकास की छानबीन करनी पड़ी थी। समाज का भण्डार—जिसमें और कई उपयोगी चीजों के अलावा, लोगों के शैक्षिक उपयोग के लिए विगत मानवीय प्रयासों से निर्मित संस्कृति के उपकरण भी होते हैं—अपनी पूर्ति तथा विकास के लिए समाज के लोगों पर निर्भर है। समाज के लोग इस भण्डार की रक्षा करते हैं, पोषण करते हैं, इसके नष्ट प्राय तथा जीर्ण द्रव्यों को दूर हटाते हैं, और इसकी समृद्धि के लिए ताजे तथा मूल्यवान् उपकरण जुटाते हैं। यदि व्यक्ति अपने ही मानसिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक विकास तक अपने को सीमित रखता, और अपने निजी अस्तित्व को ही सांस्कृतिक उन्नति में लीन रहता, यदि उसे इसकी चिन्ता न होती कि समाज का क्या होगा, यदि उसे यह फिक्र न होती कि सामाजिक संगठन में किस हद तक और कितनी सफलता के साथ चरम मूल्यों की प्राप्ति हो रही है, तो सम्भवतः वह अपनी आत्मिक दशा सुधार लेता। किन्तु यदि उसका उदाहरण सामान्यतः मान लिया जाए, तो शिक्षा और संस्कृति के सारे रास्ते—व्यक्ति की शिक्षा और संस्कृति के रास्ते भी—अन्धकारपूर्ण तथा शून्य गलियों में बदल जाएँगे, जिनकी मंजिल होगी एक बंजर प्रान्त। फिर तो आत्मकेन्द्रितों उच्च आध्यात्मिकों नैतिक रूप से स्वेच्छाचारियों तथा स्वतन्त्र व्यक्तियों को शायद उसी बंजर भूमि की किसी ऊँची और सूखी चट्टान पर अपना अड्डा बनाना होगा, जहाँ वे अपने स्वार्थपूर्ण संकीर्ण विचारों से बढ़कर, कोई और विषय नहीं पाएँगे। इस प्रकार की पृथक्, किन्तु शुष्क नैतिक प्रसिद्धि के अवसर बहुत सी सामाजिक व्यवस्थाओं में, जनतान्त्रिक समाजों में भी उपलब्ध, हैं, क्योंकि जो समाज बहुत गरीब नहीं हैं, वे इस प्रकार के शुष्क गुणों को सह सकते हैं, बल्कि प्रोत्साहन और समर्थन प्रदान कर सकते हैं। क्योंकि, सम्भवतः ऐसे समाजों यह विचार उत्पन्न होता है कि इस प्रकार का अलग-अलग वाला अच्छा जीवन मात्र भी, अपने अस्तित्व के कारण एक शैक्षिक शक्ति का काम कर सकता है। किन्तु ऐसा केवल अपवादों तथा बहुत थोड़े-से मामलों में सम्भव है। ऐसा उन समाजों के बहुत-से दलों, मगर छोटे छोटे दलों, के लिए ही सम्भव है, जो स्पष्ट तथा व्यक्त रूप से शोषक समाज हैं, और जिन बहुसंख्यक श्रमिकों के बल पर कुछ थोड़े से आरामतलब लोग सभी प्रकार की उच्चवर्गीय सुख-सुविधाओं के अधिकारी बन बैठते हैं। किन्तु जनतान्त्रिक समाज में तो यह आवश्यक है कि व्यक्ति, जो अपने शरीर, मस्तिष्क तथा आत्मा के पोषण के लिए सहवासी नागरिकों का अनुगृहीत है, समाज के नैतिक तथा भौतिक जीवन को उन्नत बनाने के उत्तरदायित्व में खुशी से हाथ बटाएँ। केवल व्यक्ति के जीवन में ही उच्चतर मान्यताओं के प्रति निष्ठा नहीं होगी, समाज को भी, इसके संगठित सामाजिक जीवन में इसी निष्ठा के प्रति उठाना होगा। संस्कृति के सफल उपकरणों में—जिन्हें अनुभव तथा स्वीकार किए जाने पर, मान्यताओं की एक संगठित व्यक्तिवाचक व्यवस्था का जन्म होता है—अच्छे तथा न्यायपूर्ण समाज, शुद्ध राजनीतिक जीवन, सामान्य हितों में रत सत्य तथा स्पष्ट नेतृत्व की उच्चतम शैक्षिक मूल्योंवाली शक्तियाँ हैं।

हमारे शैक्षिक संगठन में व्यक्ति और समाज की पारस्परिकता पर शायद ही ध्यान दिया जाता है। स्कूल तथा शिक्षण-सम्बन्धी दूसरी संस्थाएँ तथाकथित बौद्धिक प्रगति के काम में इतनी अधिक व्यस्त हैं कि उन्हें इन बातों के लिए—जो उनकी नजर में छोटी बातें हैं—समय नहीं है। सामाजिक उत्तरदायित्व की शिक्षा देने के लिए इन संस्थाओं का संगठन सामूहिक निवास की अच्छाइयों के रूप में

होना चाहिए। पानी में तैरने से ही तैरना आता है, समाज में सेवा करने से ही सेवा भी आती है। जब तक यह सिद्धान्त हमारी शिक्षण संस्थाओं का प्राण नहीं बन जाता, दूसरे सारे सुधार के कार्य छुट-पुट रूप से किए गए ऊपरी या सतही कार्य होंगे। ऐसे संगठन के सदस्य रहने के सिवा भला किसी सुदृढ़ सामाजिक संगठन के नैतिक मूल्य का अनुभव और कैसे किया जा सकता है?

सुदृढ़ सामाजिक जीवन के गुणों के पक्ष में आदमी बहुत-कुछ कह सकता है, इसके सैद्धान्तिक स्पष्टीकरण के लिए अपनी जान लड़ा सकता है, जितना भी इतिहास उपलब्ध है तथा जितना भी नागरिक शास्त्र तैयार किया जा सकता है—, वह सब पढ़ा जा सकता है, पर यह आशा नहीं की जा सकती कि विद्यार्थी एक अच्छे और न्यायपूर्ण समाज का सदस्य बनने का प्राणदायक तथा स्फूर्तिदायक अनुभव प्राप्त करेगा, अथवा उसमें उस तरह की कोई स्पष्टता होगी, जिसकी सहायता से उसमें समाज-सेवा की आवश्यक नैतिक चुनौती जागती है, ताकि समाज के वर्त्तमान सद्गुणों की रक्षा हो सके और इसके भावी गुण उन्नत प्रकार के हों। अच्छे घर में, अच्छे स्कूल-समुदाय में समान विचारने वाले लोगों सामाजिक दल में अनुभव प्राप्त कर, नगर, राज्य तथा मानव-जाति के लिए भी आजीवन समर्पण हो सकता है। सामान्य मूल्यों तथा सामान्य सांस्कृतिक उपकरणों पर आधारित स्कूल-समुदाय, जैसे इंगलैण्ड के 'पब्लिक स्कूल', यूरोप, संयुक्त राज्य अमरीका तथा फिलस्तीन में बहुत से प्रयोगात्मक स्कूल तथा स्कूल-समुदाय तथा निकट भविष्य में सोवियत गणतन्त्र में इस प्रकार के बहुत-से-समुदायों की स्थापना की योजना विभिन्न वातावरणों के तथा विभिन्न उद्देश्यों और मान्यताओंवाले प्रगतिशील शैक्षिक विचारों की द्योतक है। किन्तु ये उदाहरण इने-गिने हैं, नक्कारखाने में तूती की आवाज़ की तरह है। इनकी महीन आवाज़ लाखों शिक्षण-कारखानों के शोर में खो जाती है। किन्तु फिर भी, यह विचार अब प्रबल होता दीख रहा है कि सामाजिक उत्तरदायित्व की शिक्षा के लिए, तथा की दशा उन्नत बनानेवाले साधन के रूप में इसके व्यवहार के लिए भी किसी स्कूली समुदाय में रहकर सामाजिक रहन-सहन का वास्तविक अनुभव प्राप्त करना आवश्यक है। हर जगह सभी बच्चों के लिए आवासीय स्कूल-समुदायों की इच्छा करना आसमान के तारे तोड़ने की इच्छा के समान होगा। किन्तु मैं मानवीय बुद्धि और सूझ-बूझ के भरोसे यह छोड़ना चाहूँगा कि वह ऐसे उपाय और साधन ढूँढ़ निकाले कि स्कूल, कार्यों के समुदायों में सन्गठित हो जाएँ, जिनके उद्देश्य समान हों, साथ ही यह भी ज़रूरी न हो कि उन्हें बोर्डिंग या आवासीय स्कूल बनाना हो पड़े। मुझे ऐसा लगता है कि यह कदम पहले और भी वह शायद जल्दी अधिकेन्द्रित सम्पूर्ण सत्ताधारी देशों (टोटेलिटेरियन) में उठाया जायगा, और जैसा बहुत-सी बातों में हुआ, है, जनतन्त्रीय देश कुछ दिनों बाद जानेंगे कि उन्होंने क्या खो दिया है. और दूसरों की अपेक्षा उन्हें, अपनी जीवन-शैली की रक्षा के लिए किस चीज की सख्त जरूरत है। अधिकेन्द्रित सम्पूर्ण सत्ताधारी देश तो सारी जनता को जबरदस्ती सेवा ले सकते हैं, किन्तु जनतन्त्रीय देशों को इसके लिए प्रतीक्षा करनी होगी कि लोगों में सामाजिक उत्तरदायित्व की स्वाभाविक भावना जगे, व्यक्ति तथा समाज के पारस्परिक रचनात्मक, स्फूर्तिदायक अनुभवों को प्रदान कर, एक उन्नत समाज के निर्माता का साधन बनने की प्रेरणा जगे। व्यवस्थाहीन ढंग से जनतन्त्र यह काम परिवारों में कर सकता है, जो इसकी औद्योगिक प्रगति के कारण शीघ्रता से कमज़ोर पड़ने जा रहे हैं, तथा यह काम, व्यवस्थापूर्वक स्कूली समुदायों में हो सकता है, जिन्हें बहुत आवश्यक मानकर शीघ्र स्थापित करना चाहिये। इन दिशा में शीघ्रता की आवश्यकता तो इसी स्पष्ट तथ्य से प्रकट हो जायेगी कि जनतन्त्रीय जीवन-शैली अथवा समाज-व्यवस्था का भविष्य स्कूलों में बनता या बिगड़ता है।

अब, जब कि वार्त्ता खत्म होने को है, मैं एक अन्तिम प्रश्न आपके सामने विचारार्थ रखना चाहता हूँ। शिक्षा की जो परिकल्पना हमने की है, उसी के कारण यह प्रश्न भी हमारे सामने स्पष्टीकरण की माँग करता है। यह प्रश्न है शिक्षा में स्वातन्त्र्य तथा अधिकार का। यह प्रश्न का महत्व जनतान्त्रिक समाज में और भी बढ़ जाता है, जो—यदि सच्चे अर्थों में जनतान्त्रिक है—व्यक्ति का आदर करता है, मनुष्य को साध्य मानताहै, केवल साधन नहीं है, और संस्कृति के उपकरणों के माध्यम से, मानव-मष्तिक की मूल्यों-लक्ष्यों-हितोंवाली व्यवस्था का पोषण तथा विकास कर, इसे नैतिक रूप से स्वतन्त्र व्यक्तित्व की प्राप्ति की शिक्षा देता है। व्यक्ति पर बल दिये जाने पर बल दिए जाने से तथा केवल उसके विशेष जीवन-रूप के आधार पर ही व्यक्ति के विकास की सम्भावना की विशेष मान्यता से यह प्रतीत होगा कि जनतन्त्र की सम्पूर्ण शैक्षिक व्यवस्था में, शासकीय अधिकार को परे रखकर, अनिमियत स्वच्छन्दता रखी जायगी। इस प्रकार की धारणा केवब सैद्धान्तिक अनुमान नहीं, बल्कि पूर्ण विकास के लिए तथा बाधापूर्ण प्रभावों को दूर करने के लिए अवसर प्रदान करने वाली शिक्षा की गम्भीरता से एक रूप भी माना गया है। 'वाखजेन लास्सेन' अथवा 'बढ़ने दो' की भावना रर आधारित एक सम्पूर्ण दर्शन ही तैयार हो गया है।

चूंकि अपने इस सुरक्षित देश में हम अपनो समस्याओं को व्यवस्थित ढंग से सुलझाने के आदी रहे हैं (क्योंकि, हमें इस अमिट तथ्य की आश्वासनपूर्ण याद आती है कि हमारे पूर्वजों ने विचारा और चिन्तन किया है, और हम सहज ही यह भी जानते हैं कि अब भी कहीं कोई हमारे लिए सोचने का परिश्रम कर रहा है, इसमें आरामदेह, बेपरवाही की एक निश्चिन्त और सुखद भावना पैदा हो जाती है। और, चूंकि हम मूल समस्याओं से खास तौर से शिक्षा के क्षेत्र में, विशेष परेशान नहीं होते, इसलिए सम्भव है हमारी इस वार्त्ता में कोई अर्थ, कोई वास्तविकता हमें न दीख पड़े। किन्तु मैं इस पलायनवादी विचार को नहीं मानता। हमें इन समस्याओं का सामना आज नही तो कल, करना ही पड़ेगा, बल्कि शीघ्र ही करना पड़ेगा। संघर्ष जारी है, इसका समाधान, इसकी प्रकृति की उचित समझ के अतिरिक्त और किसी उपाय से नहीं हो सकता। बौद्धिक मान्य शक्तियों, आलोचनात्मक स्वीकृति, निःशंक अनुसरण की पुरानी परम्परा जिसे शिक्षा-सम्बन्धी इस प्रचलित विचार से वल मिलता है कि शिक्षा, सूचना-सम्बन्धी तैयार माल को लेने तथा देने का एक साधन है, परीक्षा की सफलता सोपानों में हमारी धार्मिक-जैसी आस्था इसका प्रतीक है), तथा यन्त्रवत् प्राप्त किए जाने वाले ज्ञान की शिक्षा, बच्चे को न मारने से उसचे बिगड़ जाने का भय, अथवा, इसके विपरीत, बच्चे पर हाथ न उठाने की अति प्रबल भावना—इन सबसे यही पता चलता है कि हमारी शैक्षिक त्रियाओं में अधिकारी शक्ति ही मूल सिद्धान्त हैं, और इसमें स्वच्छन्दता का कोई स्थान नहीं। लेकिन तस्वीर का दूसरा पहलू भी है। अपने कृत्यों- अकृत्यों में विद्यार्थी जो मनमानी कर रहे हैं, जो छूट ले रहे हैं, अपने व्यवहारो में वे जिन अनियन्त्रित आवेशो, व्याकुलता तथा अपव्यय को अक्सर प्रकट कर रहे हैं, और जिनके प्रति शिक्षकों की दयनीय उपेक्षा, बेरुखी अथवा बेपरवाही है, एक ओर क्रुद्ध नौजवान तथा अतिक्रुद्ध तरुण हैं, तो दूसरी ओर उदासीन, बेपरवाह अथवा निराश या पस्त शिक्षक हैं (जब वे स्वयं क्रुद्ध नौजवानों की श्रेणी में नहीं गिने जाते)—तो इन सारे लक्षणों से यही मालूम होता है कि हमारी इस स्वतन्त्र भारत भूमि में शिक्षा, 'वाखजेन-लास्सेन' अथवा 'बढ़ने देने' के सिद्धान्त का अतिशय सम्पूर्णता के साथ पालन कर रही है। इस सिद्धान्त के अनुसार, यदि हम उन्हे बढ़ा कर फल-फूल नहीं बना सकते, तो घास-फूस ही बनने दें।

इस उलझी हुई परिस्थिति में राष्ट्रीय शिक्षा की किसी सफल व्यवस्था के संगठन की आशा हम नहीं कर सकते। मैं इस प्रश्न पर अपने विचार संक्षेप में रखूंगा। मैं समझता हूँ कि शिक्षा में स्वच्छन्दता तथा अधिकारी शक्ति, दो विपरीत चीजें नहीं हैं। क्योंकि, शिक्षा में ऐसी कोई अधिकारी शक्ति नहीं, जिसमें वह आन्तरिक स्वतंत्रता न हो, जो शिक्षा को मान्यता देती है, साथ ऐसी कोई स्वतन्त्रता नहीं है, जो नियम तथा व्यवस्था के, जो अधिकारिक माने जाते है, बगैर हो। यदि अधिकारी शक्ति से अनिवार्य बाध्यता का बोध हो, और स्वतन्त्रता का अर्थ उच्छृंखलता तथा स्वेच्छाचारिता माना जाय, तो बेशक, ये अधिकार तथा स्वतन्त्रता, दो विपरीत चीजें होंगी। पर ऐसा कोई समुदाय नहीं--चाहे वह परिवार स्कूल तथा राज्य हो और जो स्वतन्त्रता को चाहे जितना भी चाहता हो--जहां ऐसे नियम और व्यवस्था न हो, जो उसके सदस्यों पर लागू, हैं तथा इसलिए अधिकार नियम हैं। ऐसे स्वतन्त्र व्यक्ति की कल्पना नहीं की जा सकती, जो कुछ ऐसे नियमों से नहीं बंधा है, जिसके द्वारा उसकी पाशविक प्रवृत्तियों और भावनाओं पर नियन्त्रण होता है ताकि मानव-मस्तिष्क स्वतन्त्रता के साथ अपने उच्चतर कार्यों को सम्पन्न कर सके। इस प्रकार के नियन्त्रक सिद्धान्तों के बगैर, समाज में विप्लव तथा अव्यवस्था पैदा हो जाएगी, और व्यक्ति पाशविक वासनाओं और भूख का गुलाम बन जायगा।

बचपन से ही किसी आदमी को बिना किसी निर्देश के छोड़ दिया जाय तो सम्भव है, वह अपने ही ऐसे नियंत्रक सिद्धान्तों तक पहुंच सकता है। मस्तिष्क के विधान की व्यापकता सम्भवतः ऐसी सम्भावना को पूर्णतः अस्वीकार नहीं करती किन्तु यह रास्ता बड़ा लम्बा और बेतरह कठिन होगा और उसके पास इतना काफी समय भी नहीं बच रहेगा कि वह इन सिद्धान्तों का उपयोग कर सके। व्यक्ति के सच्चे स्वशासन तक पहुंचने के पहले, समाज उसे वाह्य अधिकारिता की अवस्था से गुजरने में उसकी सहायता करता है। स्वतन्त्रता के पथ का निर्माण अधिकारी शक्ति द्वारा होता है। अधिकारी शक्ति को पूर्णतया काट देगा तथ को काटना होगा। शिक्षा सम्बन्धी वास्तविक प्रश्न यह अथवा वह का नहीं बल्कि यह फैसला करने का है कि स्वशासन की स्वीकृत मंजिल पर पहुंचने के लिए बाहरी निर्देश तथा अधिकार कब तक जरूरी है। कब तक अधिकारी व्यवस्था रहेगी कितनी जल्द स्वतन्त्रता उसकी जगह लेगी। क्योंकि वह जगह तो इसे लेनी है, यदि नैतिक रूप से स्वतन्त्र व्यक्तित्व का विकास हमारा ध्येय हो। शिक्षा के आदि और अन्त दोनों अवस्था में अधिकारी व्यवस्था है। आदि अथवा प्रारम्भ में उम्र तथा अनुभव का अधिकार है, स्नेहपूर्ण प्रदर्शन तथा संवेदनशील निदेशन का अधिकार हैं। जिनके साथ अभाग्यवश सम्भवतः कुछ अरुचिकर सुविधायें हैं जो उच्चतर शक्ति को मिली होती है और जिन्हें कोई भी अच्छा स्कूल पृष्टभूमि में रखने की भरसक चेष्टा करता है। शिक्षा के अन्त में आने वाला अधिकार उन मान्यताओं का अधिकार है जिनका स्वच्छन्द अनुभव आत्मिक तथा अनात्मिक सांस्कृतिक उपकरणों में किया जाता है। यदि समस्या को संयोग पर न छोड़ा जाए तो काफी प्रारम्भिक अवस्था में ही इस बात को सामान्य रूप से मान लिया जा सकता है कि शैक्षिक संगठन में अधीनता तथा एकीकरण की आवश्यकता है। शिक्षा तथा शिक्षक जिन मान्यताओं के प्रतीक हैं उनके प्रति समाज में आदर की भावना पैदा करना कठिन लग सकता है, किन्तु जब तक ऐसा किया जाता हमें लेना चाहिये कि शिक्षा नहीं हो रही है। शिक्षक को तथा शैक्षिक समुदायों के रूप में स्कूल और कालेज का कर्त्तव्य तथा सुविधा यह है कि वे अपने अधीनस्थ युवाओं को इस प्रकार, सहायता दें, उनका पथ प्रदर्शन

करें कि उनसे अपने कामों और खामियों के प्रति जिम्मेदारी की भावना बढ़े उनमें आत्मिक के लिए प्रबल प्रेरणा जगे, और जिस हद तक वे इस दिशा में सफल हों, उनकी सफलता के अनुसार उन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता तथा स्वशासन प्रदान कर सकें। कहना तो आसान है, पर पीढ़ियों तक आने वाले अच्छे शिक्षकों के लिए यह कठिन काम होगा। मुझे आशा और विश्वास है, ऐसे शिक्षक अवश्य आएंगे। ●

काम का महत्व

कोई काम बड़ा या छोटा नहीं होता। प्रत्येक को अपने काम में श्रेष्ठता लाने का उद्देश्य रखना चाहिए। यही एक जरिया है जिससे कोई भी अधिक अच्छा व्यक्ति बन सकता है।

सभी लोगों को भरसक अच्छा काम करना चाहिए, क्योंकि काम मनुष्य के जीवन में सकल्प और एक महान सुअवसर है तथा इसका एक अंग है। यदि हम अच्छा काम करते हैं तो इसके परिणाम स्वरूप देश का हित सम्पादन होगा।

डा० जाकिर हुसैन

भारत में शिक्षा का पुनर्निर्माण—(३)

[नई दिल्ली में १४ दिसम्बर, १६५८ को पटेल स्मारक व्याख्यानों के अन्तर्गत डा० जाकिर हुसैन का तीसरा भाषण]

इस वार्त्तामाला की प्रथम दो वार्ताओं में मैंने कोशिश की कि आपके सामने अपने शिक्षा-सम्बन्धी विचार रखूं कि अपनी सम्भावित पूर्णता की ओर मस्तिष्क के विकसित होने के अर्थ में शिक्षा का क्या महत्व है, और मैंने संक्षेप में उन छः सिद्धान्तों की व्यवस्था की, जिनका निर्वाह शिक्षा के सभी प्रकार के आयोजनों में किया जाना चाहिये। वे सिद्धान्त ऐसे थे कि जो मुझे सभी प्रकार की शिक्षा के लिए उचित लगे; क्योंकि मेरे विचार में वे शैक्षिक प्रक्रिया के मूल तत्व से ही निलकले हैं। किन्तु 'सम्पूर्ण शिक्षा' का अर्थ 'सब के लिए शिक्षा' नहीं है, सम्पूर्ण शिक्षा अथवा सब प्रकार की शिक्षा की व्यवस्था राजनीतिक रूप से संगठित समाज या देश नहीं करता। इस पर होनेवाले साधनिक व्यय में सभी नागरिकों का योग नहीं होता। 'सम्पूर्ण शिक्षा' एक व्यापक श्रेणी है, और इसमें बहुत-सी ऐसी शैक्षिक प्रक्रियाएं तथा शैक्षिक सस्थाएं आ जाती हैं, जो समाज के कुछ विशेष व्यक्तियों अथवा व्यक्ति-समुदायों के लिए बनी हैं। मानव-जाति ने अपने इतिहास के दौरान में हमेशा किसी न किसी प्रकार की शिक्षा पाई, किन्तु उसकी प्रारम्भिक आदिम अवस्था को छोड़ जब कि शिक्षा, जीवनयापन का एक ही रूप थी, और वह किसी विशेष तथा अलग संस्था के सुपुर्द नहीं थी, मेरे विचार में शिक्षा ने शायद ही कभी सार्वजनिक रूप ग्रहण किया। यह हमेशा कुछ लोगों के लिए रही—ऐसे कुछ लोगों के लिए जिनके पास अवकाश था, या धन था, या जो शासक थे, अथवा (जीवन में मानवीय बन्धुत्व के धार्मिक विचारों के समावेश के साथ) जो दाता-दानियों की सहायता से विद्या-अर्जन कर अपने मस्तिष्क को समृद्ध करने के विलक्षण कार्य में लगे थे। उन युगों की समस्या थी व्यक्तियों के ऐसे वर्ग को शिक्षित करना जो समाज में

बहुसंख्यक कदापि नहीं थे, अर्थात् शासक-वर्ग, पेशेवर लोग या ऐसे लोग, जिन्हें जीवन-यापन के लिए काम नहीं करना पड़ता था। साधारणतया इस समस्या का समाधान अपने लिए यह वर्ग स्वयं कर लेता, सम्पूर्ण समुदाय नहीं। आधुनिक राज्य अथवा राष्ट्र की समस्या है अपने सभी नागरिकों को राष्ट्रीयता की भावना की शिक्षा देना तथा उन्हें इस योग्य बनाना कि वे योग्य होकर राष्ट्र में अपना उचित स्थान ले सकें। वर्त्तमान युग की आमूल परिवर्तित परिस्थितियों के कारण सामाजिक संगठन तथा औद्योगिक जीवन की बढ़ती हुई जटिलताओं के कारण, जनता में एकता और निपुणता लाने के लिए नए सामाजिक संगठनों के निर्माण की नितान्त आवश्यकता के कारण इस नए तथा, निश्चय ही, विलक्षण शैक्षिक कार्य—सार्वभौमिक शिक्षा—की जरूरत हुई। सभी लोगों के लिए शिक्षा, सभी लोगों के सभी बच्चों के लिए शिक्षा, और साथ ही यह है कि यह कार्य केवल बच्चों को शिक्षा तक ही सीमित नहीं। फिर कोई आश्चर्य नहीं कि देश की ओर से बच्चों को मिलनेवाली शिक्षा तथा उसके अनिवार्य रूप का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। पहले-पहल शायद यह व्यवस्था जर्मनी में लागू की गई थी, जिसे केवल करीब २५० वर्ष हुए हैं। संयुक्त राज्य अमरीका के कुछ राज्यों में अनिवार्य शिक्षा-सम्बन्धी कानूनों को बने लगभग सौ साल से कुछ ऊपर हुए हैं। बहुत से दूसरे देशों में तो अभी और कम ही समय बीता है। यह बात आप को दिलचस्प लगेगी कि उन्नीसवीं सदी के पिछले तीन दशाब्दों में, जब अमरीकी संघ के राज्य अनिवार्य शिक्षा-सम्बन्धी कानूनों को पास करने की क्रिया में संलग्न थे, कानून के विरोधियों ने कुछ वर्गों को यह विश्वास दिला दिया कि अनिवार्य शिक्षा-कानून न केवल प्रशा देश से आए हैं, बल्कि स्वेच्छाचारी तथा निष्ठुर राज्य-प्रणाली के साधन भी हैं, जिनका किसी जनतान्त्रिक स्वतन्त्र सरकार में कोई वैधानिक स्थान नहीं होना चाहिए। उन्नीस सौ तीस के दशक के उत्तरार्द्ध में, सार्वजनिक तथा अनिवार्य बुनियादी शिक्षा-योजना पर विचार करने के लिए बनी एक समिति में, मुझे स्वयं उस लम्बी बातचीत का निजी अनुभव है, जो मेरे तथा एक प्रसिद्ध शिक्षा-निर्देशक के बीच हुई थी, 'व्यापक तथा अनिवार्य शिक्षा क्यों'? —एकाएक यह क्रोधपूर्ण सवाल मुझसे पूछा गया। और इसके पहले कि मैं तथा मेरे सहयोगी इस आकस्मिक आघात से आश्वस्त हों, शिक्षा-निर्देशक महोदय ने सच्ची घृणा के स्वर में आक्षेप करते हुए कहा—'ये लोग ऐसे देश में अनिवार्यता का प्रारम्भ करना चाहते हैं, जो स्वतन्त्र होने की बाट जोह रहा है।' मैंने इस द्वन्द्व में जो बराबरी का न था, उनसे काफी बहस की। बराबरी का मेरे लिए न था; क्योंकि निर्देशक मुझसे बहुत अधिक चतुर थे, और बराबरी का उनके लिए भी न था; क्योंकि वह ऐसी समिति में थे, जो उनसे सहमत न थी। मुझे याद है, वह निर्देशक, जो एक योग्य, विद्वान्, ईमानदार प्रशासक तथा पक्के देशभक्त थे, अन्त तक असन्तुष्ट, क्षुब्ध तथा उच्च शिक्षित बुद्धिजीवी एकाकी विरोधी बने रहे उनकी पीढ़ी के तथा वर्ग के बहुत-से लोग, 'सभी लोगों के, सभी बच्चों के लिए शिक्षा' के अजीबोगरीब विचार से मेल न कर पाए। साक्षरता को शायद वे स्वीकार कर लेते थे, किन्तु व्यापक शिक्षा का विचार बिना गहरे संशयों तथा आशंकाओं के स्वीकार नहीं किया जाता था। पर मैं समझता हूं, यह बताने के लिए इस बहस की ज्यादा जरूरत नहीं है कि पिछले दशकों में जो सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक परिवर्त्तन हुए हैं, और जो बड़ी तेजी से हमारी आंखों के सामने ही होने लगे तथा हैं, तथा इससे भी और अधिक तेजी से निकट भविष्य में होंगे, उनके कारण राष्ट्र के लिए यह अनिवार्य हो गया है कि वह प्रत्येक नागरिक को शिक्षा दे, और हर नागरिक के लिए अनिवार्य होगा कि वह शिक्षा ग्रहण करे। विशेष रूप से हमारे देश की विशेष परिस्थिति में, जब कि एक धर्मनिरपेक्ष, जनकल्याण-राज्य में जनतान्त्रिक जीवन का ढांचा तैयार कर रहा है, सार्वजनिक शिक्षा की आवश्यकता नितान्त अनिवार्य

है। क्योंकि, जनतान्त्रिक समाज दूसरों के बताए हुए विचारों और योजनाओं की पूर्त्ति के लिए ही काम नहीं करता, बल्कि इसका प्रत्येक नागरिक, राष्ट्रीय मंच के एक छोटे हिस्से की हैसियत से राष्ट्र के जीवन के नक्शे की बनावट में योग देता है। यह याद दिलाने की जरूरत नहीं कि जनतन्त्र को व्यक्तिगत प्रयास पर, ऊपर से आनेवाले निर्देश पर नहीं, निर्भर करना पड़ता है। इसका अनुशासन है, ऊपर से लादा गया अनुशासन नहीं। अनुशासित प्रयास में सहयोग (अस्था तथा उपयोग) आपसी समझ-बूझ और उदार सहनशीलता पर, जो जनतन्त्र की आवश्यक शर्तें हैं, निर्भर करता है। इसका एक अत्यन्त कठिन काम है प्रत्येक नागरिक को इस तरह शिक्षित करना कि उसमें एक समान राष्ट्रीय चरित्र की भावना विकसित हो जाए। यह एक ऐसी समस्या है, जिससे कोई गणतान्त्रिक समाज अपने विधान के मूल सिद्धान्तों के कारण, अपने रहन-सहन के विशिष्ट ढंग के कारण, बच नहीं सकता। क्योंकि इन मूल सिद्धान्तों के चुनाव से ही केन्द्र से दूर हटनेवाली (विकेन्द्रीकरण) वे शक्तियाँ पैदा हो जाती हैं, जो आसानी से जनतन्त्रीय सामाजिक व्यवस्था को छिन्न-भिन्न करने लगती हैं, इसलिए अपने को संगठित रखने के लिए जनतान्त्रिक राष्ट्र को कुछ करना पड़ेगा। इसके पास इस कार्य के लिए सबसे प्रबल अस्त्र शिक्षा है। फिर भी हमें याद रखना चाहिए कि किसी राष्ट्र का उद्देश्य अदूरदर्शी भी हो सकता है, दूरदर्शी भी, वह अपनी प्रत्यक्ष समस्याओं में ही तल्लीन रह सकता है, या अन्त की भी कल्पना कर सकता है, वह नैतिक स्वातन्त्र्य के विकास को ध्येय बना सकता है, इसके विनाश का भी लक्ष्य रख सकता है।

यदि कोई पूर्ण सर्वसत्ताधारी, अत्याचारी राष्ट्र सार्वजनिक शिक्षा-व्यवस्था का उद्देश्य स्थापित करे और किसी निश्चित उम्रवाले अपने सभी नागरिकों के लिए अनिवार्य शिक्षा लागू करे और जिस तरह वह उनके जीवन-क्रम का निर्धारण करता है, उसी तरह उनके पाठ्यक्रम का निर्धारण करे, तो स्कूलों के लिए इसके द्वारा स्थापित किए गए उद्देश्यों और लक्ष्यों से हमें ऐसी कोई चीज नहीं मिल सकती, जो उनका वास्तविक शैक्षिक महत्व बनाने में सहायक हो। किसी कर्त्तव्यपरायण सजीव व्यक्ति को चाहे कितनी ही उच्च कोटि की शिक्षा क्यों न प्राप्त हो, यदि वह मनमाने ढंग से लाद दी जाए, तो वह उस अर्थ में शिक्षा नहीं होगी कि जिसकी हम लोगों ने परिभाषा की है। पर यदि कोई राष्ट्र नम्रतापूर्वक तथा उचित ही एक सम्पूर्ण कर्त्तव्यपरायण राष्ट्र बनने की दिशा में अपने को एक विकासशील अवस्था मानता है, जिसका सतत प्रयास अपने नागरिकों के लिए एक स्वतन्त्र नैतिक व्यक्तित्व के विकास की राह तैयार करना है, और नागरिकों के परम वैयक्तिक विकास, तथा उनके सक्रिय और इच्छापूर्ण सहयोग के द्वारा जो स्वयं एक वास्तविक तथा न्यायपूर्ण राष्ट्र बनता है, तब अवश्य वह उचित रूप से अपने स्कूलों का ध्येय निश्चित कर सकता है।

जो राष्ट्र नैतिक आदर्श को अपनाता है, वह स्वयं एक सर्वोच्च नैतिक अस्तित्व है। क्योंकि तब हर नागरिक के लिए एक पूर्ण विकसित कर्त्तव्यपरायण व्यक्ति बनने के लक्ष्य की दिशा में राष्ट्र आवश्यक पूर्वावस्था बन जाता है। राष्ट्र और नागरिक परस्पर सार्थक होने लगते हैं। राष्ट्र को उसके नैतिक आदर्श की ओर बढ़ाने की चेष्टा करने में नागरिक स्वयं अपनी पूर्णता प्राप्त करने के सुअवसर का लाभ उठा लेता है। मैं जानता हूँ कि यह बात सभी राष्ट्रों के लिए सच नहीं है। कुछ राष्ट्र तो स्वतन्त्र नैतिक व्यक्तित्व की प्राप्ति में निश्चित तथा प्रबल रूप से बाधक हैं। तब राष्ट्र जैसा कुछ महान् लोगों ने कहा है, परम दुष्ट का रूप धारण कर लेता है। पर मानव-जाति के भविष्य के प्रति

यह इन्कार कर, आशा रखने की जरूरत नहीं कि ऐसे राष्ट्र भी सामुदायिक जीवन की एक ऐसी सामाजिक तथा राजनीतिक व्यवस्था बनाएंगे, जो एक न्यायपूर्ण तथा निरपेक्ष, अच्छे तथा उदार राष्ट्र के आदर्शों में हिस्सा लेगी। किसी व्यक्ति को एक सच्चे नागरिक के रूप में शिक्षित करने का अर्थ है उसे वह साधन बनाना, जिसके द्वारा उसका राष्ट्र, एक न्यायपूर्ण राष्ट्र के नैतिक आदर्शों को प्राप्त कर सकता है। असली शिक्षा वह नहीं है, जिससे नागरिक ऐसी आदतों, विचारों, कर्मों और प्रतिक्रियाओं का गुलाम हो जाए कि वर्त्तमान अपूर्ण राष्ट्र अपनी विकासशील वृत्ति से उदासीन या उसके विरुद्ध हो जाए, अपनी वर्त्तमान खामियों से सन्तुष्ट रहे, अपनी जीवन-प्रक्रिया में अपने विधान की सारी अच्छी चीजें खत्म कर दे तथा चरम दोष की ऐसी गन्दी और काली तलछट छोड़ दे, जिसमें किसी भी अच्छी चीज की जड़ें नहीं पनप सकतीं।

एक अच्छा राज्य, जो अपने भविष्य के प्रति सजग है दो प्रकार के उद्देश्य रखता है (१) आन्तरिक शान्ति तथा सुरक्षा, अपने स्थायी अस्तित्व के लिए आक्रमण के विरुद्ध सुरक्षा, तथा अपने नागरिकों के भौतिक और नैतिक कल्याण की चिन्ता—ये सभी उसके आत्मकेन्द्रित उद्देश्य हैं, और (२) एक मानव संसार अथवा मानव जाति-संघ की स्थापना। वह स्वयं अपना नैतिक विकास कर तथा समान विचार वाले राज्यों के सहयोग से, ऐसे संघ की स्थापना में एक सफल साधन बनता है। यदि कोई अच्छा राज्य अपने सारे नागरिकों के सारे बच्चों की शिक्षा का भार ग्रहण करता है, तो उससे यह आशा रखना तो ठीक ही है कि वह उन्हें ऐसी शिक्षा देगा कि वे अपने स्वाभाविक सामर्थ्य के अनुसार इन उद्देश्यों की प्राप्ति में योग दें। वरना और किस लिए राज्य सारे लड़के-लड़कियों को पढ़ाने की जिम्मेदारी ले, और किस लिए शिक्षा को इन लड़के लड़कियों के लिए अनिवार्य बनाए? राज्य इसलिए शिक्षा प्रदान करता है कि इसके दोनों उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अच्छे तथा उपयोगी नागरिक तैयार हों। इसके शिक्षण का दृष्टिकोण है—उपयोगिता तथा नैतिकता।

राज्य के इस द्विमुखी उद्देश्य की दृष्टि से हम कह सकते हैं कि अनिवार्य सार्वजनिक स्कूलों के तीन लक्ष्य होंगे।

इसका पहला लक्ष्य होगा नागरिक को किसी उपयोगी काम की शिक्षा देना, ताकि सामर्थ्य और रुझान के अनुकूल समाज में वह अपना निश्चित कर्त्तव्य निभा सके। इसका पहला ध्येय है व्यावसायिक या पेशा-सम्बन्धी शिक्षा प्रदान करना, अथवा अनिवार्यता के लिए निर्धारित उम्र के अनुसार, इस प्रकार की शिक्षा की यथासम्भव तैयारी कराना। उपयोगितापूर्ण लक्ष्य है, पर साथ ही स्कूल के नैतिक और शैक्षिक कार्य का यह आधार भी है।

दूसरा लक्ष्य होगा व्यावसायिक शिक्षा को एक नैतिक अनुभव का रूप देना और विद्यार्थी को यथासम्भव स्पष्ट रूप से यह समझाना कि कोई व्यवसाय केवल जीविकोपार्जन का साधन न हो, बल्कि वास्तव में एक संगठित सहयोगी समुदाय में जनसेवा का कर्त्तव्य है, और नैतिक सामाजिक व्यवस्था की वृद्धि तथा विकास में इसका उपयोग होना चाहिए।

अनिवार्य सार्वजनिक स्कूल का तीसरा लक्ष्य होगा समाज के विकसित होते हुए सदस्य (विद्यार्थी) में यह इच्छा जगाना और इसके लिए उसमें शक्ति बढ़ाना कि वह अपने निजी नैतिक व्यक्तित्व को तैयार करनेवाली लम्बी तथा सुन्दर यात्रा शुरू करे और इस व्यक्तित्व को अपने समाज की नैतिक सम्पूर्णताओं के लिए लागू करे। इससे वह यह समझ पायगा कि नैतिक रूप से एक पूर्ण समाज बनाने का आकांक्षित आदर्श तभी प्राप्त किया जा सकता है, जब नैतिक रूप से स्वतन्त्र व्यक्ति पूर्ण समन्वय के साथ मिलकर काम करें।

आइए, अब हम लोग उन स्कूलों की बात सोचें, जिनकी स्थापना से ये तीनों लक्ष्य प्राप्त हो सकेंगे। पहला लक्ष्य था विद्यार्थियों को ऐसी शिक्षा देना कि वे आगे चलकर अपने जीवन में कुछ कर सकें तो स्कूल यह काम किस तरह करेगा? यदि समाज का संगठन उस समाज की तरह करें जैसा पेस्तालोजी के काल में स्विट्जरलैण्ड में था, या उस ग्राम-समाज की तरह जिसकी ओर गांधीजी का अति विशेष ध्यान गया, तो विद्यार्थियों को उनके व्यवसाय के लिए तैयार करने में स्कूल बहुत कुछ कर सकता है। देश से औद्योगिक विकास के बढ़ते हुए वेग के कारण काम और जटिल हो गया है। लेकिन इस जटिलता के कारण हमें गुमराह नहीं होना है। कोई भी स्कूल, शायद, सात या आठ वर्षों में, यद्यपि हम केवल इसी सम्भावना पर विचार कर सकते हैं, अपने विद्यार्थियों को व्यावसायिक जीवन-सम्बन्धी सारी आवश्यक शिक्षाएं नहीं दे सकता। तब इसे उस स्थिति में होना चाहिए कि मानसिक और हस्तकार्यों से उन्हें उतनी प्रारम्भिक दक्षता दे दे, जितनी उन्हें समाज में कुशलतापूर्वक तथा सफलता से काम करने के योग्य बना सके। अधिकतर इन स्कूलों से निकलने वाले अधिकांश विद्यार्थियों को उन्हीं स्थानों को भरना होगा जहाँ हस्तकार्य सबसे मुख्य क्रिया है।

केवल किताबी शिक्षा वाले स्कूल, जैसा अब अत्यन्त स्पष्ट हो गया हमारे बहुसंख्यक छात्र-छात्राओं के जीवन में सहायक होने वाले स्कूल नहीं है। उनके लिए तो वह स्कूल होना चाहिए, जहाँ शैक्षिक क्रिया का मुख्य साधन हस्तशिल्प हो। और उनके लिए जिन्हे बौद्धिक कार्यों को करना है जिनकी संख्या अपेक्षाकृत कम होगी, दूसरी तरह की पढ़ाई की व्यवस्था की जा सकती है। बुद्धिवादियों की इस अभिमानपूर्ण धारणा के परे कि उनकी सन्तानें भी अवश्य बुद्धिवादी होंगी, कोई आसान उपाय भी नहीं, जिससे बच्चों के आधार समूह में से, जो निश्चित रूप से अपनी सक्रिय व्यावहारिक रुचि व्यक्त कर रहा हो, इन बुद्धिवादी बच्चों को छांट लिया जाए।

इसलिए, जो स्कूल हम स्थापित करना चाहेंगे कार्य वाला स्कूल होगा, मानसिक या हस्तकार्य, तथा जब तक वह समय नहीं आता कि उस उम्र में ही किताबी बुद्धिवादियों की शुद्ध नस्लों को निश्चित रूप से छाँटा जा सके, इस स्कूल में हस्तकार्य, शैक्षिक क्रिया का केन्द्र होगा। आशा है, मैंने अपने दूसरे व्याख्यान में स्पष्ट कहा है कि शैक्षिक हस्तक्रिया का एक आवश्यक तथा अत्यन्त प्रमुख भाग मानसिक क्रिया है। इसलिए हस्तशिल्प का यह स्कूल वह सफल आधार बन सकता है, जो मानसिक तथा हस्तशिल्पीय दोनों प्रकार की व्यावसायिक शिक्षा में उपयोगी हो। अच्छी तरह संगठित किए जाने पर यह स्कूल ग्रामीणों और नागरिकों, दोनों के लिए, कृषि और औद्योगिक, दोनों प्रकार के व्यवसायों के लिए, तथा

अन्त में हस्तशिल्पीय और बौद्धिक, दोनों प्रकार के कामों के लिए अच्छा साबित होगा। यहाँ से शिक्षित होकर विद्यार्थी जब निकलेंगे, तब उन्हें काम की आदत पड़ चुकी होगी, वे सीख चुके होंगे कि अपने बहुत से समस्या-समाधानवाले कामों में वे किस तरह तार्किक चिन्तन के सहारे अपनी कार्य-योजनाएँ बना सकते हैं, अपने काम के सम्भव साधनों पर सावधानीपूर्वक विचार करना उन्हें आ गया होगा, वे यथा-सम्भव सावधानी से अपने जिम्मे आये काम को करना सीख चुके होंगे, वे यह भी जान चुके होंगे कि किस तरह अपने आत्मगत विचार को अनात्म के तर्क के अधीन किया जाता है, वे सम्पूर्णता को लक्ष्य मानकर उसकी प्राप्ति का आनन्द व्यक्त करना भी जान चुके होंगे, और अन्त में, उन्हें यह रहस्य भी मालूम हो चुकेगा कि और अधिक सफलताओं की प्राप्ति का निश्चित उपाय अपनी सफलताओं पर स्वयं समीक्षात्मक नजर डालना है। हममें से अधिकाँश लोगों ने स्कूलों में अपेक्षाकृत अधिक समय बिताकर जितना कुछ पा लिया है, शायद उससे बहुत ज्यादा, कार्य-प्रधान स्कूल के ये विद्यार्थी प्राप्त करेंगे, जबकि उनकी पढ़ाई की अवधि भी अपेक्षाकृत कम होगी। मुझे सन्देह नहीं कि सुचारू रूप से संगठित कार्य-प्रधान स्कूल अपने उद्देश्य में सफल होंगे। यह बात कि अब तक हमने जिन कार्य-प्रधान स्कूलों की स्थापना की है, वे साधारणतया इन उद्देश्यों को न प्राप्त कर सके, केवल इस बात की द्योतक है कि हमारी पीढ़ी कार्य के साधन से शिक्षित नहीं हो पाई।

आशा है, मैंने इसे स्पष्ट कर दिया है कि जिस सार्वजनिक शिक्षा की हमें आवश्यकता है, उसके प्रथम उद्देश्य की प्राप्ति, शैक्षिक हस्तशिल्प को उस शिक्षा का प्रमुख अंग बनाने से होगी। दूसरा उद्देश्य था शिक्षा को एक नैतिक अनुभव और नैतिक प्रशिक्षण बनाना। विद्यार्थी को यह समझना कि कोई पेशा जीविकोपार्जन का निमित्त मात्र नहीं है, लेकिन श्रम के विभाजन पर आधारित एक सहयोग-समुदाय में जनसेवा का कार्य है। मेरा विचार है कि इस उद्देश्य को, हम अपने स्कूलों को कार्य तथा जीवन के समुदायों के रूप में संगठित कर, प्राप्त कर सकते हैं। इस समुदाय को अपने सदस्यों की उम्र के उपयुक्त नैतिक आदर्शों का प्रतीक बनना चाहिए। यह कार्य-प्रधान समुदाय कई आदर्शों का प्रतीक हो सकता है, जैसे—उदार हृदय के बन्धुत्व का, अज्ञात की सक्रिय खोज का तथा प्राकृतिक और ऐतिहासिक सत्यों की प्राप्ति के सौन्दर्य की रचना और समझ-बूझ का, स्वच्छ जीवन के स्तर के समर्थन का, असहायों की सहायता का, साहसपूर्ण स्पष्टवादिता का, आए हुए उत्तरदायित्वों को सर्वश्रेष्ठ ढंग से निभाने का, स्कूल-समुदाय के हित के लिए काम करने को तैयार, अथवा यदि जरूरत पड़ी तो, स्कूल-टीम की ओर से खेलने की तत्परता का। इस प्रकार और भी कई आदर्श समुदाय का आधार बन सकते हैं। इस प्रकार के समुदाय में कार्य, सेवा का रूप ले लेता है तथा उस चीज का निर्माण करता है जिसे चरित्र की संज्ञा दी जाती है।

उसी चरित्र के निर्माण में अत्यन्त बहुमूल्य उपकरण है सामाजिक अनुभूति तथा भावना की कोमलता, जो किसी कार्य-प्रधान समुदाय के इसके विभिन्न तथा विविध फलप्रद सम्बन्धों के कारण, व्यस्त वातावरण में विकसित होगी। एक दूसरा गुण है उत्तरदायित्व। ऐसे समुदाय में उत्तरदायित्व के विकास की भी अत्यन्त प्रचुर सम्भावनाएँ हैं।

जिन बच्चों ने इस प्रकार की व्यवस्था में काम करने का अकथनीय आनन्द और आत्मसन्तोष प्राप्त किया, वे निश्चय ही अपने भावी जीवन के कार्यों में इस आनन्द और सन्तोष की तलाश और प्राप्ति

करेंगे। सारे संसार में इस प्रकार के स्कूल-समुदायों की स्थापना के प्रयोग किये जा रहे हैं। यदि हम शिक्षा को महत्व देते हैं, तो हमें भी ऐसा ही करना पड़ेगा। किन्तु इसके लिए हमें उपाय और साधन ढूंढने होंगे, जो केवल खर्चीले पब्लिक स्कूलों पर ही नहीं, बल्कि सब लोगों के सभी बच्चों के लिए खुलनेवाले स्कूलों पर भी लागू होंगे। हमारे श्रेष्ठ शिक्षाविदों को चाहिए कि वे भारतीय अनिवार्य स्कूलों को वास्तविक समुदाय-स्कूलों में बदल देने का उपाय सोचें।

तीसरा उद्देश्य है स्व-शिक्षा की प्रक्रिया का आरम्भ कराना, विद्यार्थी में निश्चित तेजी के साथ यह इच्छा जगाना कि वह एक स्वतन्त्र कर्तव्यपरायण व्यक्ति बने, और स्वयं जिस समाज का है उसे नैतिक रूप से उन्नत बनाए। बच्चे की विकास-अवस्था की दृष्टि से अधिक से अधिक यही सम्भव है कि इस उद्देश्य पर काम अनिवार्य स्कूल में शुरू किया जाए। चौदह वर्ष की उम्र के पहले विद्यार्थियों को स्कूल से निकलने का मतलब होगा कि इस उद्देश्य की प्राप्ति में स्कूल को बिलकुल मौका न देना।

इस स्वतन्त्र शिक्षा, जिसकी हमें जरूरत है, और जिसके उद्देश्य और प्रणाली पर हम विचार कर चुके हैं, की व्यवस्था का मुख्य प्रश्न यह है कि देश की कुल आबादी में से इसके लिए किन्हें चुना जाए।

यदि हम तीनों उद्देश्यों को ध्यान में रख कर बात करें, तो इस निश्चय पर पहुँचेंगे कि सात वर्ष और उससे कम उम्र वाले बच्चे, जाहिर है, नहीं चुने जा सकते। यह खेल की उम्र है, और जैसा मैंने कहा है, खेल एक स्वयंसिद्ध उद्देश्य है, और उन तीनों में से किसी भी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए इसका उपयोग, ध्यान देने-योग्य मात्रा में, नहीं किया जा सकता।

तो फिर प्रौढ़ (परिपक्व) व्यक्तियों को लें, जिनकी उम्र मान लें, इक्कीस वर्ष की हो, कि वे इस प्रकार के आकांक्षित शिक्षा-स्कूलों में जाएँ? सच पूछें तो इस प्रकार की सम्भावना जितनी अजीब शुरू में लगेगी, उतनी वह सच में नहीं है। फिर भी, आर्थिक जीवन की आवश्यकताएँ इस सम्भावना में बाधक बनेंगी, यद्यपि, उदाहरण के लिए हम कह सकते हैं कि कुशल शैक्षिक निर्देशन में श्रम-शिविरों में इस प्रकार के कार्यों के संगठन में हमें अत्यन्त लाभ होगा। लोग उस चीज को कुछ तो समझ जाएँगे, जिसकी अन्तहीन चर्चा करते वे थकते नहीं। बहुत-से देशों में, कुशल नागरिकता तथा अनुशासित जीवन की शिक्षा देने के लिए प्रभावकारी पूरक साधन के रूप में इस प्रकार की श्रम या सैनिक सेवा की व्यवस्था स्कूलों में लागू की गई है। मगर, हमारा औसत जीवन जितना निम्न है, उसके कारण यदि हम काफी देर से यह काम करें, अर्थात् यदि इक्कीस वर्ष की उम्र के विद्यार्थियों को लें, तो हमारे बहुत-से देशवासी इस आवश्यक आकांक्षित शिक्षा से वंचित रह जाएँगे, तथा उनके पास, जनता के लिए इसके सदुपयोग का काफी समय भी नहीं बना रहेगा।

इसलिए, हमें दो निम्न उम्र वर्गों १४-२१ तथा ७-१४ पर विचार करना होगा। दोनों में कुछ समान विशेषताएँ हैं। १४-२१ उम्र वर्ग की अवस्था, वास्तव में, दूसरे तथा तीसरे उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अधिक अच्छी होगी, जिनकी प्राप्ति के लिए हमने कहा कि इस आकांक्षित शिक्षा की योजना की जरूरत है, और प्रथम उद्देश्य की दृष्टि से यह और भी अच्छी कही जा सकती है। लेकिन इसमें तीन बड़े दोष होंगे। इसके कारण समाज के ऐसे लोग काम से अलग हो जाएँगे जो उत्पादन के लिए बहुत उपयोगी साबित होते। इस शिक्षा की लपेट में कोई नव-विवाहित पत्नि, जिसका छोटा बच्चा भी होगा, आ

सकती है, और शिक्षा की दृष्टि से जो सबसे जरूरी बात है, वह यह कि ऐसे लोगों की शिक्षा इतनी देर से शुरू होगी कि वे बचपन की उन प्रमुख व्यावहारिक प्रवृतियां के लाभ से वंचित हो चुके होंगे जो कार्य-प्रधान जीवन की शिक्षा के लिए प्रेरित करती है, तथा विभिन्न व्यक्तियां के विरूद्ध केन्द्रिक कार्यों में अपनी अति विभिन्न दिलचस्पियों के कारण, शिक्षण-सस्थानों के सामने भी अतिरिक्त झमेले खड़े हो जायेंगे।

इसलिए ७—१४ की उम्र का चुनाव ही अमूमन ठीक जचता है। लेकिन शुरू में ही कोई यह भी कह सकता है कि वह आकांक्षित शिक्षा १४ वर्ष की उम्र तक तो जरूर ही दी जानी चाहिए। यदि हमें उनकी भी सुननी है, जिसका यह विचार है कि जीवन के प्रारम्भिक वर्ष बड़े महत्वपूर्ण होते हैं, और यदि हम ऐसे लोगों को खुश करना आवश्यक समझते हैं, तो हम यह शिक्षा उस प्रारम्भिक अवस्था में शुरू करें, जिस अवस्था से इन लोगों को सन्तोष हो—यदि वे गला फाड़कर चिल्लाएं, तो बच्चे के जन्म से ही शुरू की जाए, या छः वर्ष की आयु से करें, जिस पर लगता है, अब हम सहमत हो चुके हैं। यदि हम बच्चे के जन्म से ही शिक्षा की व्यवस्था करेंगे, तो याद रखें, हमें कम से कम चौदह वर्ष की अवधि-वाली शिक्षा की योजना बनानी होगी, यदि आप ६ वर्ष की उम्र से आरम्भ करें, तो आठ साल की अवधि वाली शिक्षा चाहिए, और इस विचार पर लगता है, देश भी सहमत है। आकांक्षित अनिवार्य शिक्षण की उपयोगिता या कारण के खयाल से मैं समझता हूँ कि शिक्षा को अल्पावस्था में शुरू करने की अपेक्षा कुछ बाद तक इसे जारी रखना ज्यादा महत्वपूर्ण होगा। मुझे इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि यदि हमें आठ वर्षीय अनिवार्य शिक्षण-योजना चालू करनी हो, तो ६ से १४ वर्ष की अवस्था की अपेक्षा ७ से १५ वर्ष की अवस्था अधिक लाभप्रद होगी। लेकिन यह शिक्षण चाहे जिस उम्र से शुरू किया जाए, १४ वर्ष की उम्र से पहले इसका खत्म किया जाना उन उद्देश्यों के लिए घातक सिद्ध होगा, जिनके कारण किसी स्वतन्त्र समाज में अनिवार्य शिक्षा की योजना बनाई जाती है।

अपने मुश्किल वायदों को याद करते रहना भी अच्छी बात होगी। आप जानते हैं, भारतीय संविधान का निर्देश है कि संविधान के लागू होने के दस वर्षों के अन्दर, चौदह वर्ष के बालक-बालिकाओं को निःशुल्क शिक्षा दी जाएगी तथा यह शिक्षा अनिवार्य होगी। होशियारी और दूरदर्शिता की बात है कि निर्देशन में यह नहीं बताया गया कि यह शिक्षा शुरू किस उम्र पर की जाएगी। लेकिन यह स्पष्ट बताया गया कि यह शिक्षा किस उम्र तक दी और ली जाएगी। और आप जानते हैं, मंजिल से अभी हम कितनी दूर हैं। इस लक्ष्य-प्राप्ति की अभी कोई सुदूर आशा भी नहीं दीखती। कहा जाता है कि उसकी प्राप्ति के पर्याप्त साधन नहीं हैं। इस मत को लेकर मैं अभी विवाद खड़ा नहीं करूंगा, पर यह कहूँगा कि मैं इसका समर्थन नहीं करता। बहुत सी ऐसी चीजों के लिए जिनके सम्बन्ध में कोई संवैधानिक निर्देश नहीं है, साधन जुटाए गए हैं, और आगे भी जुटाए जाएँगे। जनतन्त्र में योजना बनाने का अर्थ है जनता की स्वीकृति के साथ योजना बनाना। जनता अपने संविधान-द्वारा अपनी इच्छाओं को, निर्णयात्मक तथा स्पष्ट ढंग से व्यक्त करती है। इसलिए इस बात पर गम्भीरता से विचार करना होगा, हृदय टटोलना होगा, कि इस दिशा में संविधान के निर्देशन का पालन न कर, क्यों किसी और चीज पर जनता के साधनों के व्यय की योजना बनाई जाती है। लेकिन, जैसा मैंने पहले कहा, मै इस बात पर, कि अभी साधन प्राप्त नहीं हैं, झगड़ना नहीं चाहता। मान लिया कि आवश्यक कारणों से द्रव्य-साधन नहीं दिए जा सके, और ६—१४ अथवा ७—१४ वर्षों की आयु-अवधि पर काम न हो सका, फिर भी मेरी समझ में यह नहीं आता कि इस अवधि को बदल कर ६—११ क्यों किया जाए, ६—१४ क्यों नहीं। जो

देश शिक्षा को महत्व देते हैं, उन देशों के अनिवार्य उपस्थिति-कानूनों को देखिए। आपको शायद ही कोई देश ऐसा मिलेगा, जो अपने बच्चों को १४ वर्ष की आयु से पहले ही अनिवार्य निःशुल्क स्कूलों से बाहर निकालता है। अब तो वहाँ आयु-सीमा को १४ वर्ष से ऊँचा करने की प्रवृत्ति देखी जा रही है। कुछ देशों ने तो बढ़ाकर इसे १५-१६ बल्कि १२ भी कर दिया है। कई देश ऐसे मिलेंगे, जो यह शिक्षा देर से शुरू करते हैं—अधिकतर बच्चे को सात वर्ष की आयु में, कई आठवें वर्ष में, और कुछ तो नवें वर्ष में भी शुरू करते हैं। यह बुद्धिहीन विचार कि उच्च आयु-सीमा को काटकर शिक्षण-अवधि कम की जाए, अथवा यह हठ आग्रह कि बालक के प्रारम्भिक वर्षों का बड़ा महत्व होता है (मानो जीवन के और दूसरे वर्ष किसी न किसी रूप में कम महत्वपूर्ण हैं), या सार्वजनिक अनिवार्य शिक्षा के विशिष्ट लक्ष्यों तथा उद्देश्यों के प्रति उदासीनता– ये ही हैं वे कारण, जिनसे हमारे देश में दूसरा विचार अपनाया गया। यदि हमें केवल इतने ही साधन मिल सकते हैं कि हम पाँच वर्षीय अवधि की निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा दें, तो मेरा पक्का विचार है कि यह अवधि ९ से १४ वर्ष की आयु की होनी चाहिए।

मैं सोचता हूँ, मैं उन कोशिशों के बारे में भी बातें करूँ, जो हमारे देश में कार्य-प्रधान स्कूलों की स्थापना, जिसे बुनियादी स्कूल कहा जाता है, के लिए अब तक की गई हैं। मेरी बातें, मेरे काफी विस्तृत प्रेक्षण तथा उनसे उत्पन्न विचारों पर आधारित होंगी, वे किसी नियमित वैषयिक अध्ययन के परिणाम नहीं। वे सारे भारत के सम्बन्ध में भी लागू नहीं हैं। लेकिन, चूँकि मुझे कुछ अनुमान है कि बुनियादी स्कूल के क्या उद्देश्य होने चाहिए, और किन उद्देश्यों को यह सहज प्राप्ति कर सकता है, और चूँकि मैंने ऐसे विद्यालयों के बहुत-से छुटपुट उदाहरण देखे हैं, मैं अपने इस विचार पर आपकी सहमति चाहता हूँ कि सामान्यतः हम लोग उस बीज को न पा सकें जिसकी सहज प्राप्ति सुसंगठित कार्य-प्रधान स्कूलों में हो सकती थी। बहुत-से कारण हैं, अधिकतर संगठन सम्बन्धी, किन्तु एक अत्यन्त महत्वपूर्ण शैक्षिक कारण है और वह यह कि इन स्कूलों में हमने साधारण तौर पर कार्य-सम्बन्धी उन आवश्यक शैक्षिक शर्तों का ध्यान न रखा, जिनकी व्याख्या मैंने अपने पिछले भाषण में की थी। जिस तरह हम किसी तथाकथित बुद्धिजीवी किताबी स्कूल को हम यान्त्रिक स्मृति-प्रशिक्षण-स्कूल में बदल सकते हैं (भगवान् हमारा भला करे, हमने ऐसा लाखों स्कूलों के साथ किया और किसी ने चूँ न की और यह संख्या बढ़ती ही गई) उसी तरह हम यह भी कर सकते हैं (और कई मामलों में किया भी है) कि अपने कार्य-प्रधान स्कूल को, बुनियादी स्कूल को, यन्त्रवत् कार्य (कल्पनाहीन कार्य) की जगह बना दें। काम बाह्य रूप से तथा एक जैसा निर्धारित किया गया है, बच्चे में स्वाभाविक प्रवृति का चिह्न भी नहीं है, उसके काम के पीछे क्या व्यक्तिगत या सामाजिक उद्देश्य है, इसकी उसे कतई खबर नहीं। वह काम शुरू करता है, तो उसकी कोई दिलचस्पी नहीं होती सिवाय इसके कि शायद उसमे कुछ उत्सुकता होती है, अपने हाथों कुछ करने का आकर्षण होता है। जैसा कहा जाता है, वह करता जाता है। किसी समस्या से, जिसका उसे समाधान करना है, वह शुरू नहीं करता। स्वाभाविक ही उसे अपनी समस्याओं के समाधान का चिन्तन नहीं करना पड़ता; क्योंकि समस्याएँ होती नहीं। न रहने वाली समस्या के समाधान के लिए उसे कोई दूसरे सम्भव उपायों को सोचने की भी जरूरत नहीं। किसी निर्धारित तरीके से इसे करने के लिए उसे कहा जाता है। इस प्रकार, वह अपने शिक्षक के साथ मिलकर समाधान प्राप्त करने की अनुप्रेरित खुशी से भी वंचित रखा जाता है। कभी–कभी उससे काम कराया जाता है–आम तौर से नियमित रूप से नहीं–और चाहे जैसा भी फल हो, काम लेने वाले प्रायः सन्तुष्ट हो जाते हैं।

आपको याद होगा यह आकस्मिक अथवा अनियमित काय का लक्षण है, और जैसा मैंने निवेदन किया था, शिक्षा का यह काम है कि इस कार्य को उस वास्तविक काम में बदल दे, जिसमें यथाश्रेष्ठ परिणाम की बल्कि और अधिक अच्छे परिणाम की तब तक अपेक्षा रहती है, जबतक पूर्णता की प्राप्ति न हो जाए। सच पूछें, तो स्कूल में इंसपेक्टर या किसी बहुत बड़े आदमी [वी० आई० पी०] के आने पर अक्सर इन प्राप्तियों अथवा फलों में कोई दिलचस्पी नहीं दिखाते। शिक्षकों को मालूम है कि इन अतिथियों का किस प्रकार वर्गीकरण किया जाना चाहिये। उन्हें पता है कि कौन आदमी बुनियादी शिक्षा को एक सनक समझता है और कौन इसे महत्व देता है। पहले प्रकार के अतिथि महोदय को माला पहनाई जाती है, स्वागत-गान गाया जाता है, रिपोर्ट पढ़ी जाती है और मान्य अतिथि भाषण देते हैं, तत्पश्चात् जाने कब और कैसे लोग चाय की मेज पर इकट्ठे हो जाते हैं। हां 'बेसिक एजुकेशनवालों को तो कुछ काम दिखाना ही पड़ता है, और यह रस्म अदा भी की जाती है। यह अतिथि क्या देखता है? तकलियां नाच रही हैं, चर्खे चल रहे हैं, खासे अच्छे कते हुए सूत का मोटा गोला लिपटा होता है, उन तकलियों या टेकुओं पर, जो अक्सर ऐसे विद्यार्थी चला रहे होते जिनके सूत मोटे और सधे कते नहीं होते, और जबतक अतिथि वहां खड़े देखते होंगे, सूत बराबर टूटता जाएगा। अनियमित क्रिया के आकस्मिक परिणाम को कुछ ऐसे बच्चों या शिक्षकों पर इसे लाद दिया जाना कहेंगे, जो अपेक्षाकृत अच्छा सूत कात सकते हैं। यदि शिक्षक को यह लगता है कि अतिथि वर्त्तमान परिणामों के सन्देहजनक गुणों की अपेक्षा यह देखना पसन्द करेंगे कि पहले किस मात्रा में काम हुआ है (वी० आई० पी० 'बहुत बड़े आदमियों' के बार-बार आते रहने के कारण— जिन्हें और कोई काम साधारणतया होता नहीं — कुछ चालाक शिक्षकों ने इस दिशा में बिजली की तेजी से भांप लेने की समर्थता प्राप्त कर ली है), वे अतिथि को कोने में पड़ी मेज पर रखी बहुत-सी चीजों का ढेर दिखाते हैं जो किसी अच्छे विदेशी कपड़े के कोई मैले से टुकड़े से ढका होता है। यदि अतिथि में उत्सुकता है, या वह केवल यह दिखलाना है कि स्कूल के प्रति उसकी दिलचस्पी समझ-बूझवाली है, और धूल का उस पर अनावश्यक आतंक नहीं है, तो वह क्या करता है? मेज के पास जाकर जादूगर के उस कपड़े को उठाता है। क्या देखता है? कष्टपूर्ण, दारुणपीड़ा से भरी, छिन्न-भिन्न होती हुई, लपेटी न जा सकनेवाली और धूल से भरी वह चीज, जो किसी जमाने में केंचुए जैसी रूई की सूत थी, और अब जो, मानो अपना पाप धोने के लिए कष्टदायक यातनाओं से गुजर रही थी, इसलिए कि वह अपनी मूल पाप-रहित आराम-भरी जिन्दगी में वापस आ सके — कच्ची रूई के एक छोटे से रेशेवाली जिन्दगी में। मैं सोचता हूं, ये रेशे बेचारे सोचेंगे कि लड़के-लड़कियों के अपने शिक्षकों की आज्ञा से उन्हें सुखपूर्ण कोमलता से बिना मतलब, बेकार, करीब-करीब दुष्टता के कारण ही अलग कर दिया था। आखिर क्यों? ये रेशे तो तब खुश होते, जब इनके सुलझने तोड़ने, ऐंठने, मोड़ने और खोलने के बाद से किसी की नंगी पीठ ढकने के लिए बनने वाले कपड़े में बदल जाते। तब बच्चों के काम को महत्व प्राप्त होता। इस प्रकार के कार्य से, जिसका स्कूल ने आयोजन किया है, गुण तथा मात्रा, दो में से किसी की भी प्राप्ति नहीं हुई।

ऐसा काम जो यान्त्रिक अथवा यन्त्रवत् है, ऐसा काम जिसमें मानसिक श्रम नहीं करना पड़ता, ऐसा काम जिसमें हम चाहे जैसे भी परिणाम से सन्तुष्ट हो जाते हैं और जिसमें इसकी सम्पूर्णता प्राप्त करने की कोई निरन्तर प्रेरक शक्ति न हो, ऐसा काम जिसमें स्व-आलोचना न हो, और इसलिए

वास्तविक प्रगति न हो — किसी तरह भी, ऐसे काम शैक्षिक नहीं हैं। ऐसे कामों वाले स्कूल किसी तरह भी कार्य-प्रधान स्कूल नहीं हैं।

व्यवस्था-सम्बन्धी दूसरी समस्याएं भी हैं। मैं केवल दो का उल्लेख कर दूं। अक्सर बुनियादि स्कूलों को भारतीय शिक्षा के शान्त वातावरण में जबर्दस्ती आनेवाली बाधा के रूप में देखा जाता है। बुनियादी स्कूलों से निकलने वाले लड़के-लड़कियां दूसरे उच्च स्कूलों में प्रवेश पाना कठिन, बल्कि कभी-कभी असम्भव, पाते हैं। इसलिए उनकी सुविधा के लिए उत्तर-बुनियादी स्कूलों (पोस्ट-बेसिक) की स्थापना की गई है जो बहुत कम संख्या में और दूर-दूर पर हैं। फिर, लड़का उत्तर-बुनियादी स्कूल से निकलता है, १२ साल की उस पढ़ाई के बाद जो सरकार द्वारा प्रतिभूति स्कूलों में दी जाने वाली सारी प्राथमिक तथा आंशिक माध्यमिक शिक्षा का भावी रूप माना गया है, वह किसी विश्वविद्यालय में नहीं जा पाता; क्योंकि उन्हे भरती करने का आदेश सरकार विश्वविद्यालयों को नहीं दे सकती। विश्वविद्यालय तो, सच में, स्वतन्त्र संस्थाएँ हैं। विश्वविद्यालयों की वास्तविक स्वतन्त्रता के लिए मैं स्वयं बड़ा उत्सुक हूँ। किन्तु, मुझे अब भी यह देखना है कि कोई विश्वविद्यालय हर वर्ष आनेवाले उन लाखों विद्यार्थियों को वापस करदे, जो माध्यमिक तथा इण्टरमीजिएट शिक्षा-बोर्डों-द्वारा उनकी मुहर लगाकर वहाँ भेजे जाते हैं, यद्यपि, स्वयं विश्वविद्यालय के लोगों के कथनानुसार, वे किसी तरह भी उस शिक्षा का लाभ उठाने योग्य नहीं, जो विश्वविद्यालयों में (जिस तरह अभी वह काम कर रहे हैं) उन्हें प्रदान की जाएगी। विश्वविद्यालय चुपचाप उन्हें दाखिल कर लेते हैं; क्योंकि, वास्तव, में वे स्वतन्त्र संस्थाएँ हैं। लेकिन बुनियादी शिक्षण स्कूल से आये हुए विद्यार्थी को जिसकी स्कूली शिक्षा की पूर्व तथा पूर्ण अवधि अपेक्षाकृत एक या कभी-कभी दो साल अधिक होती है, इस सुविधा से वंचित कर दिया जाता है। इससे,शिक्षण-कार्य में शोचनीय कमी का बोध होता है, और वास्तव में शीघ्र ही इस दिशा में कुछ किया जाना चाहिए।

यदि अब भी बहुत से ऐसे बुनियादी स्कूल हैं, जो दूसरे स्कूलों की अपेक्षा समान आयु-वर्ग के विद्यार्थियों के लिए अधिक अच्छे हैं तो कारण यह है कि आस-पास के जीवन से, वातावरण से, उनका सम्बन्ध अपेक्षाकृत कम दूर है, और वे कुछ समान मान्यताओंवाले छोटे-छोटे शैक्षिक समुदायों में संगठित होने लगते हैं। उनका व्यवहारिक कार्य, चाहे उसकी शैक्षिक कमियाँ कुछ भी हों, उस अवस्था में उनके मानसिक व्यक्तित्व में कुछ ठोस गुणों का विकास कर पाता है। लेकिन हमें तब तक सन्तुष्ट नहीं होना है जब तक इन शैक्षिककार्यों द्वारा उन्हें शिक्षण के बीच सच्चे केन्द्र न बनादें। इसके लिए पक्के निश्चय के तथा सम्पूर्णता की मंजिल तक पहुँच जाने की सच्ची लगन की जरूरत होगी। इस दिशा में शैक्षिक कार्यों का शिक्षाप्रद कार्यों का रूप लेने के लिए भरपूर चेष्टा करनी होगी। मैं चाहता हूँ कि शैक्षिक कार्यों में हमारे सामने हमेशा यह आदर्श वाक्य रहे — जो कार्य प्रधान स्कूल के लिए भी एक अति उपयुक्त आदर्श वाक्य होगा — 'चिन्तन और कार्य, कार्य और चिन्तन।' क्या यह अफसोस की बात नहीं है कि गांधीजी जैसे महान् पुरुष द्वारा भारतीय शिक्षा-विचारधारा में बुनियादी शिक्षा के समावेश के करीब दो दशाब्द बाद, आज भी सार्वजनिक शिक्षा तथा सार्वजनिक जीवन में, नीति बनाने वाले और नीतियों को कार्यान्वित करने वाले, दोनों में ही ऐसे महत्वपूर्ण लोग है, जो सम्मेलनों में नहीं बल्कि प्रभावकारी गुप्त वार्त्ताओं में अपनी कही गई बातों से या न कही गई बातों से यह सन्देह पैदा करते हैं कि वास्तव में हमें इन कार्य-प्रधान स्कूलों की जरूरत है या नहीं? यदि बुनियादी शिक्षा की प्रगति इतनी धीमी, इतनी असमतल तथा

शक्षिक रूप से इतनी प्रभावहीन नहीं होती है, जितनी मुझे भय है. हुई है. तो इस प्रकार के सन्देहों को दूर करने के लिए भी कुछ करना होगा।

यदि यह विचार प्रबल है कि इस प्रकार से स्कूल हमारे लिए कोई अर्थ नहीं रखते.योजना ठीक अथवा सम्भव (व्यवहारिक) नहीं, तो बेशक ही ऐसा कह दिया जाए. और इससे छुट्टी पा ली जाए। ऐसा करना अधिक ईमानदारी होगी और मुझे विश्वास है, यदि ऐसा किया गया, ता भारतीय शिक्षण में कार्य-प्रधान स्कूल-व्यवस्था अधिक शक्ति से लौट आएगी, और इसे अधिक लगन में अधिक पूर्णता के साथ, तथा सम्भवत: शीघ्र, लागू किया जाएगा। कार्य प्रधान स्कूल को ज्यादा बड़ा खतरा तो इस बात से है कि इसके सिद्धान्त को मानते समय मन में सैकड़ों निग्रह (संशय) रखे जाएँ और इसके विचारहीन तथा अयोग्यतापूर्ण प्रयोग से बाद में इसे बदनाम किया जाए।

मेरे विचार में कम से कम सात या आठ वर्ष तक बुनियादी शिक्षा दी जानी चाहिए और यदि इसे कम करना ही है, तो हम इसे निम्न आयु-सीमा पर कम करें। लेकिन, जैसा मैंने कहा, अनिवार्य शिक्षा के उद्देश्यों की आंशिक प्राप्ति के लिए भी कम से कम जरूरत यह है कि १४ वर्ष की आयु तक शिक्षा जरूर दी जाए। इससे अधिक की व्यवस्था की शीघ्र आवश्यकता है। शिक्षा को महत्व देनेवाले देशों को इस बात का ज्ञान है कि १४ वर्ष की आयु तक समाप्त होने वाली ८ वर्षों की अवधि वाली अनिवार्य शिक्षा भी इसके लिए कदापि पर्याप्त नहीं है कि युवा नागरिक अपने पेशे में सफल हो, तथा नागिरक के कर्त्तव्य निभा सके। इसके लिए तो बिना उसे, काम से पूरा अलग किए ही उसको शिक्षा को जारी रखना होगा। उन देशों में निरीक्षित व्यवसाय-प्रशिक्षण में धीरे-धीरे कमी आने के कारण, तथा इस बात को स्पष्ट समझने के कारण कि युवा पेशेवर नागिरिकों को शिक्षा देना तथा उनका पथ-निर्देश करना समाज की जिम्मेदारी है; क्योंकि सफल नागिरिकता के लिए उनको सीमित स्कूली शिक्षा काफी नहीं होती, और इसलिए कि जीवन-भँवर में व उसी समय प्रवेश करते हैं, जब वे यौवनावस्था की कठिन घड़ियों में कदम रख चुके होते हैं — वहाँ यह निर्णय अपनाया गया। करीब तीस ऐसे देश हैं, जहाँ इस प्रकार के अवकाश कण्टीन्यूटी (Continuity) स्कूलों की व्यवस्था है। और चूँकि मेरे आँकड़े ताजे नहीं हैं, इसलिए हो सकता है यह संख्या और बड़ी हो। भारत इन देशों में नहीं है। जर्मनी को यह व्यवस्था शुरू किए हुए काफी दिन हो गए। म्यूनिक के जार्ज कर्सेन्स्टाइनर के कार्यों के परिणाम-स्वरूप जर्मनी के फ़ोर्टबिल्डुंगशुलेन (Fortbildungschulen) अथवा, बाद में दिए गए नाम के अनुसार, बेरुफशुलेन (Berufsschulen) शिक्षा के सच्चे केन्द्र बन गए। कर्सेन्स्टाइनर के उदाहरण का अनुकरण यूरोप के बहुत-से देशों तथा अमेरिका संघ के बहुत-से राज्यों ने किया। यह शिक्षा शुरू में उन युवकों को दी जाती थी, जो वाणिज्य या कारखानों में काम करते थे, किन्तु अब कृषि, खान तथा घरेलू कामों लगे हुए व्यक्तियों को भी यह शिक्षा मिल रही है। आम तौर से इनका प्रारम्भ सन्ध्याकालीन क्लासों के रूप में हुआ था, पर अब साधारणतया वे सप्ताह में कुछ निश्चित घण्टों के लिए विद्यार्थियों की उपस्थिति पर जोर देते हैं. और इन अवकाश स्कूलों में विद्यार्थियों द्वारा बिताया गया समय, उनके द्वारा अपने-अपने कामों में बिताए गए समय के रूप में माना जाता है।

भारतीय शिक्षा-व्यवस्था में अभी बहुत-कुछ करने की जरूरत है। लेकिन आवश्यक काम पहले होने चाहिए। कुछ शिक्षा ऐसी है जो सभी बच्चों के लिए है। राष्ट्र का कर्त्तव्य है कि इस उत्तरदायित्व को वास्तविक रूप में पूरा किया जाए। कम से कम सातवर्षीय अनिवार्य शिक्षावाला कार्य-प्रधान स्कूल खोला जाए, जिसका संगठन, उन तीनों लक्ष्यों के साथ, जिनका मैंने उल्लेख किया था, एक समुदाय के रूप में किया जाए। सैद्धांतिक अथवा पुस्तकीय शिक्षा के एकपक्षीय केन्द्र के स्थान पर इसे व्यावहारिक तथा मानवीय शिक्षा का बहु-पक्षीय केन्द्र बनाना होगा, क्रियाहीन किताबी ज्ञान का स्थान न होकर इसे क्रिया-शील, उद्देश्यपूर्ण कार्य का स्थान बनाना होगा--ऐसे कार्य का, जिसकी योजना विचारपूर्ण हो, जिसे ईमानदारी से पूरा किया जाए, जिसकी खरी आलोचना की जा सके, जिसकी उदार ढंग से सराहना की जा सके। १४ साल की आयु पर विद्यार्थी को यह सुविधा दी जाए कि वह अपनी पढ़ाई जारी रखने के लिए किसी अवकाश व्यावसायिक शिक्षण-संस्था (Continuation vocational institute) में जा सके, जहाँ १ वर्ष की आयु तक उसे खण्डकालिक (Part time) अनिवार्य शिक्षा दी जाए। तभी हम न सिर्फ ठीक शिक्षा की, बल्कि मजबूत तथा गतिशील प्रजातन्त्री समाज की भी नींव डाल सकेंगे।

काम की जिम्मेवारी तो सरकार ही सँभालेगी, किन्तु इसकी सफलता अधिकतर शिक्षकों तथा भारत के नागरिकों पर ही निर्भर होगी।

आज मेरे श्रोताओं में कुछ शिक्षक हों, तो मुझे आश्चर्य नहीं; किन्तु मुझे भय है, उनमें प्राथ-मिक या बुनियादी स्कूलों के शिक्षक ज्यादा नहीं होंगे। वे आम तौर से विज्ञान-भवन में नहीं आते। आकाशवाणी को हमारा धन्यवाद कि इसके द्वारा, मेरे शब्द उन बहुत-से शिक्षकों तक पहुँचेंगे, जो विज्ञान-भवन में उपस्थित नहीं हैं, किन्तु फिर भी प्रारम्भिक तथा बुनियादी स्कूल के बहुत-से शिक्षकों तक नहीं पहुँचेंगे। साधारण तौर पर वे अंग्रेजी-प्रसारणों को नहीं सुनते। किन्तु चूँकि अपने अधिकांश जीवन में मैं स्वयं एक शिक्षक रहा हूँ, और परिस्थितियों के अद्भुत संयोग से मेरा शिक्षा-प्रक्रिया की सभी अवस्थाओं से सम्बन्ध रहा है, किंडरगार्टन से लेकर, बुनियादि, और माध्यमिक शिक्षा के जरिए, विश्व-विद्यालय की शिक्षा तक, इसलिए मैंने शैक्षिक वृत्ति की एकता की भावना बना ली है। दुर्भाग्य, जाती-यता के भूत से पीड़ित हमारा समाज इस एकता को तोड़कर, अलग-अलग हिस्से तैयार करना चाहता है। यदि मैं किसी जादू के जोर से शिक्षण-कार्य में संलग्न व्यक्तियों के बीच इस अत्यन्त गहन अन्तःसम्बन्धित क्रिया (शिक्षण-क्रिया) की एकता की भावना पैदा कर सकता, तो मेरा जीवन कुछ सफल होता। किन्तु निराशापूर्ण सम्भावना तो सामने आएगी अवश्य, क्योंकि वह जादू मैं लाऊँगा कहाँ से ?

फिर भी, यहाँ मोजूद अपने शिक्षक-बन्धुओं को तथा उनके द्वारा अपने इस बड़े देश में फैले बाकी दूसरे शिक्षक-बन्धुओं को मैं दो शब्द कहना चाहता हूँ। उन्हें कहने के लिए मेरे पास कोई नई बात नहीं। इन तीस वर्षों से, बल्कि और अधिक समय से मैं शिक्षक-श्रोताओं को यही बात कहता आ रहा हूँ। मैं उन्हें उनके महान् दायित्व को याद दिलाना चाहता हूँ। यह दायित्व वे देश के प्रति रखते हैं, जो कठि-नाई से जीती हुई अपनी स्वतन्त्रता की नींव पर, राष्ट्रीय महानता का भवन खड़ा करने में संलग्न हैं। वे शिक्षित व्यक्ति हैं, जिन्हें स्वतन्त्र और नैतिक व्यक्तित्व की हैसियत से उस समाज की, जिसके लिए वे काम करते हैं, नैतिक उन्नति के लिए चिन्तित होना चाहिए। उन्हें याद रखना होगा कि वे इस नाते, उन

उच्चतम मूल्यों के संरक्षक हैं जिनकी आकांक्षा और रचना जनता करती है, और मानव की संस्कृतियों में जो सबसे अच्छी बातें हैं, उनमें अधिकांश का सुन्दर प्रतिनिधित्व स्वयं शिक्षकों के व्यक्तित्व में है। यदि उनमें से कुछ ऐसे हैं, जिनका मर्म ऐसे कुछ मूल्यों से कभी छू न गया और उन्होंने इनका मीठा दर्द कभी न जाना, तो सच में, उनका स्थान शिक्षकों में नहीं है। जो इस प्रकार कभी द्रवित नहीं हुआ, जो कम से कम कुछ देर के लिए ही किसी भी उच्चतम मूल्य के सम्मोहन का शिकार होने का मजा न ले पाया, जो निस्तेज है, और जो अपने क्षुद्र भौतिक अस्तित्व से आगे किसी भी मूल्य के संबंध में निस्तेज रहने की सम्भावना दिखाता है, ऐसे व्यक्ति को शिक्षक बनने या बने रहने का विचार, वास्तव में, नहीं करना चाहिए। अपने व्यक्तित्व-द्वारा, तथा संस्कृति के उपकरणों-द्वारा, जो उसके औजार हैं, शिक्षक को अपने विद्यार्थियों तक इन उच्चतर मूल्यों को पहुँचाने में सहायक बनना पड़ता है। किन्तु यदि उसने स्वय ही इन्हें नहीं जाना, इनका अनुभव नहीं किया, प्राप्ति के लिए बराबर उठने-वाली कभी उनकी पुकार न सुनी, तो फिर वह इन्हें किस प्रकार विद्यार्थियों तक पहुँचा सकता है, किस ,प्रकार इन्हें उनमें प्रज्वलित कर सकता है? इसके अलावा, एक अच्छे शिक्षक को सामाजिक ढंग का व्यक्ति भी होना चाहिए। इस ढग का उल्लेख मैंने अपने प्रथम व्याख्यान में किया है। शिक्षक के कार्य का सार यह है कि यह विद्यार्थियों की आवश्यकताओं के प्रति सहानुभूति तथा उनकी प्रतिभा को समझ-द्वारा, उनमें इन मूल्यों की प्राप्ति की चेष्टा करे। उसकी मुख्य व्यस्तता विकसित होते हुए अपरिपक्व जीवन से ही है, कलियों-जैसे व्यक्तित्व से है। अपने विद्यार्थी पर वह किस तरह का प्रभाव डालेगा, इस सम्बन्ध में शिक्षक अपने विद्यार्थी की विशिष्टताओं का ध्यान रख अपना निर्णय करेगा। कली के पूर्ण प्रस्फुटन के लिए शिक्षक को उसकी सहायता करनी होगी, अपने मन की लहर पूरी करने के लिए कागज के फूल नहीं बनाने होंगे। उसके प्रयासों का उद्देश्य और लक्ष्य, नैतिक रूप से स्वतन्त्र व्यक्तित्व का विकास है, संस्कृति के उपकरणों का प्रयोग जो उसके कार्य के औजार हैं, तुच्छ नकलें तैयार करने वाले साधन के रूप में नहीं करेगा। सच्चा शिक्षक तो विद्यार्थियों को उनके आन्तरिक नैतिक स्वातन्त्र्य की प्राप्ति की दिशा में ले चलता है जिससे वह उस चिर अपूर्ण समाज के नैतिक उत्थान का प्रयास कर सके, जिसके सदस्य, विद्यार्थी तथा शिक्षक, दोनों हैं। इस लक्ष्य की उपलब्धि के लिए उसे काम करना होगा— और कोई भी अच्छा प्रजातन्त्री समाज इस लक्ष्य की पूर्ति चाहेगा — तो, शिक्षक को काम करना पड़ेगा चाहे इस अनिवार्य नैतिक कर्त्तव्य के लिए उसे अपने अपूर्ण समाज-द्वारा फेंके गए पत्थरों की चोट से जान भी गँवानी पड़े। उसको सोचना होगा कि सुकरात और ख्रीस्ट तथा हुसैन और गांधी व्यर्थ ही पैदा न हुए थे, न ही उन्होंने व्यर्थ ही अपने को बलिदान किया। शिक्षक का काम आज्ञा देना और शासन करना नहीं है, उसका काम हैं सहायता देना और सेवा करना। विश्वास, प्रेम और आदर को समझना और ग्रहण करना। व्यक्ति तथा समुदाय में ठीक सन्तुलन पैदा करने के लिए उसके कार्य में उसके सम्पूर्ण अनन्त प्रेम की तथा उसके अक्षय धैर्य की जरूरत है। जैसा आप जानते हैं, व्यक्ति तथा समुदाय, दोनों में से प्रत्येक का महत्व बढ़ा-चढ़ाकर बताया गया है। अब यह शिक्षक का काम है कि दोनों में सामंजस्य लाए। अन्य लोग तो इस प्रश्न पर कट्टरवादी बन जाते हैं, किन्तु शिक्षक वास्तविकता से परिचित होता है। उसे मालूम है कि व्यक्ति गनती की केवल एक-इकाई नहीं, परिचय पत्र (Identity card) अथवा संख्या नहीं। यदि वे विद्यार्थी जिन्हें वह कार्य तथा ज्ञान और अनुभव के माध्यम से विकसित कराएगा, अपने-अपने विशेष ढंग से अधिक पूर्ण तथा अधिक सन्तोषप्रद जीवन की मांग नहीं करते, तो शायद स्वयं जीवन ही सत्य नहीं,

मिथ्या कथा हो। दूसरी ओर शिक्षक यह भी जानता है कि समूह केवल व्यक्तियों का योग, अथवा संगठन के लिए रचा गया कोई सुलभ सिद्धान्त-मात्र नहीं है। वह जानता है कि व्यक्ति जीवन को समझने और इसको बदलने की शक्ति समूह से पाता है। लेकिन शिक्षक यह भी जानता है कि कितनी आसानी से समूह का विचार गिरकर दमन के साधन के रूप में बदला जा सकता है। आनन्द से थिरकते, चपल पैरों की तालमय गति में तथा आक्रमणकारी सेना के बढ़ते हुए भारी बूटों की आवाज में थोड़ा-सा फर्क है। शिक्षक के लिए यही फर्क यही भेद, महत्वपूर्ण है, और उसे ऐसा अनुभव होता है, कि, अवसर दिये जाने पे, उसे उन व्यक्तियों के विकास में योग देना चाहिए, जो खुश हो, साथ-साथ चलेंगे, और अपने स्वार्थ से परे उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अदम्य उत्साह के साथ मिलकर काम करेंगे।

मेरे शिक्षक-बन्धुओं! आशा करता हूँ, शिक्षकों को बन्धु का सम्बोधन करने का मेरा अधिकार मुझ से छिना नहीं है। रूप चाहे कितना भी बदल गया हो, अब भी मैं अपने को शिक्षक-समुदाय का ही समझता हूँ। मैंने शिक्षक-समाज की सेवा की है इस भावना के कारण तथा मेरे विचार में इसके जो उद्देश्य हैं, उनके साथ अपने मिल जाने की भावना के कारण, मुझे अपने को अब भी शिक्षक-वर्ग में गिनने की शक्ति मिलती है, हाँ तो मेरे शिक्षक-बन्धुओं ! हमें एक महान् चुनौति का सामना करना है। हम लोग वीरता पूर्वक इसका सामना करें। हमें सदा ही उस समय तक बैठे नहीं रहना चाहिए कि दूसरे लोग कार्य-निर्धारण करें, और हम मन्त्रवत्, चेतनाविहीन रूप से उसके पालन को तैयार हो जाएँ। हम एक स्वस्थ व्यवसायिक मत, राष्ट्रीय कर्तव्य की उच्च व्यवसायिक भावना तैयार करे। हम लोग पैसा कमानेवाले वे मजदूर नहीं हैं, जैसा हमारे देश के लाखों-लाख लोग हैं, कि किसी तरह के जीवन-यापन के लिए वे वह काम करते हैं जिसे वह समझ नहीं पाते, ऐसे कामों पर जीतोड़ मेहनत करते हैं जिसका उनके लिए कोई अर्थ नहीं, जो उनके जीवन को कोई अर्थ नहीं प्रदान करता। हाथ के कामों में हमें बुद्धि निरपेक्ष नैतिकता तथा सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना फूंकनी होगी और बौद्धिक कार्यों को स्पष्ट उद्देश्यपूर्ण क्रिया की मजबूत नींव पर आधारित करना होगा।

अन्त में भारतीय स्कूलों की ओर से अपने नागरिक बन्धुओं को दो शब्द कहना चाहता हूँ। दोस्तों, मै आपसे निवेदन करूंगा कि हमारे स्कूलों को आप उनका उचित स्थान प्रदान करें। शून्य में स्कूलों की स्थापना नहीं होती। वह समाज का अभिन्न तथा कोमल अंग है। स्कूल समाज के जीवन में उदाहरण (आदर्श) की तलाश करता है और उससे प्रभावित होता है। इसलिए मैं आप सब लोगों में, जो जीवन के हर तरह के क्षेत्र में हैं, ऐसी सार्वजनिक सहायता तथा सहयोग की भावना चाहता हूँ कि प्रतिदान-स्वरूप स्कूली समुदाय में भी ऐसी ही भावना का पूर्ण विकास हो, कि स्कूलों को भी ऐसी भावना की कमी की शर्म न उठानी पड़े। मै आपमें पारस्परिक सहिष्णुता की याचना करता हूँ, ताकि भविष्य के युवक यह समझें कि वह अपने विकास के लिए जगह बनाकर, तथा अपने ढंग से अपने को व्यक्त कर तथा अपना व्यक्तित्व जता कर, वह किसी अधिकार की माँग नहीं कर रहे, जो समाज के व्यस्क तथा प्रभावशाली सदस्य स्वभावतः एक-दूसरे को नहीं देते। सामाजिक उद्देश्यों में व्यक्तित्व का प्रकाशन, इस सुविधा के अतिरिक्त और कुछ नहीं कि वह कोई सफल ढंग से समाज की सेवा करे। व्यक्तित्व का यह प्रकाशन, किन्तु अनिच्छुक हाथों से छीनी गई सुविधा नहीं बल्कि वस्तुतः एक अधिकार है, जो मुक्त रूप

से दिया और खुशी से लिया जाता है; और सबसे बढ़कर तो यह कि सभी समुदाय मिल-जुलकर काम करें, चाहें वे छोटे हों या बड़े धर्म, या भाषा पर आधारित हों, या जाति अथवा किसी दूसरे प्रकार के दलीय स्वार्थों पर। स्कूल ऐसा भी हो सकता है, जो एक-एक छोटे तथा विशिष्ट समुदाय को लेकर बना हो, और जहां लोग केवल स्कूल के हित में सहयोग देते हों, या ऐसे कौशल सीखते हों, ऐसी आदतें बना लेते हों, जिनका उपयोग वे निजी लाभ के लिए करते हों, समाज की तरफ से पाये अवसर और सुविधाओं के बदले वे समाज को कुछ देते हों हमें ऐसे स्कूल भी नहीं चाहिएँ। यह भी सम्भव है कि किसी स्कूल में छोटे-छोटे लड़के-लड़कियाँ कोई काम सीख लें, पर अपने आगे के जीवन में वे केवल एक छोटे-से दल या समुदाय के हित में लग जाएँ, तथा जान-बूझकर या अनजाने ही, अधिक विस्तृत तथा महत्व पूर्ण मानवीय मूल्यों की उपेक्षा कर बैठें। हमें ऐसे स्कूल भी नहीं चाहिए। महान् मूल्यों से विमुख करा के, हमें क्षुद्र स्वार्थ में विद्यार्थी की आस्था नहीं जगानी चाहिए। यह उचित ही है कि आप ऐसे स्कूल चाहेंगे, जहाँ सभी सदस्य अनुशासन को ग्रहण करें, जो स्कूल के कार्य के लिए आवश्यक हैं, और आप स्कूलों से इस प्रकार की व्यवस्था की अपेक्षा करेंगे कि सम्पूर्ण स्कूल-समुदाय को यह अनुभव हो कि वह जनता की, जनता से परे मानवीय मूल्यों की, तथा—साधारण शब्दों में कहें तो—ईश्वर की सेवा कर रहा है। यह चरम, सर्वव्यापी आस्था सर्वोच्च मूल्य के रूप में सबसे आगे होनी चाहिए। ईश्वर की सेवा हम किस तरह कर सकते हैं—केवल अपने देश की सेवा-द्वारा, अपने पड़ोसी, अपने व्यक्ति-बन्धुओं की सेवा-द्वारा, इसके लिए स्कूल आपकी साहयता चाहेगा। यदि आप जाँच में सफल न हुए, यदि आपने अपने जीवन के उदाहरणों से स्कूल-समुदाय में यह विश्वास न पैदा किया, अपने स्नेह, सेवा, सहानुभूति तथा आस्था में आप व्यक्तिगत तथा पारिवारिक हितों तथा वर्गीय स्वार्थों से ऊपर नहीं हैं, तो बाकी चीजों का अधिक महत्व नहीं होगा। अपने देश के भविष्य के लिए, अपने बच्चों के लिए, जिन्हें आप कुछ भी देने में जल्दी इन्कार नहीं करते, आप स्कूल के बाहर के जीवन में, जिस जीवन का निर्माण आपमें से हर कोई करता है, ऐसा जनमत तैयार करें, सहायता, सहयोग, निरपेक्षता, उच्चतम उद्देश्यों के प्रति सेवा और भक्ति की ऐसी आदतें बनाने में योग दें, केवल जिनमें ही सच्ची मानव-जाति की तरह सच्चा स्कूल भी पनप सकता है। शैक्षिक कार्य का पुनर्निर्माण तथा जनता का नैतिक पुनर्जागरण, दोनों अभिन्न रूप से एक-दूसरे से सम्बद्ध हैं। आइए, इन दोनों में हम हिम्मत से हाथ लगा दें।

अच्छा अध्यापक

[१७ मई १९६५ को गुलाबपुरा स्थित विद्यालय के रजत जयन्ती समारोह में डा० जाकिर हुसैन का भाषण]

मुख्य मंत्री जी, विद्यालय में काम करने वाले शिक्षकों और विद्यार्थी भाइयो तथा बहनो सबसे पहले मुख्य मंत्रीजी का शुक्रिया अदा करता हूँ कि जिन्होंने इस अवसर पर मुझे याद किया। मै अपने जीवन का बड़ा हिस्सा शिक्षा के क्षेत्र में बिता चुका हूँ, इसलिए कुछ ऐसा हो गया हूँ कि जब कभी किसी विद्यालय में जाना होता है चाहे बड़ा हो चाहे चाहे छोटा, जितना छोटा है उतना ही अच्छा होता है, मुझे ऐसा लगता है जैसे कि भटका हुआ मुसाफिर अपने घर में पहुँच गया है। जीवन का बड़ा हिस्सा बिता कर पिछले कुछ सालों में मैं कुछ भटक गया हूँ इसलिए बहुत खुशी होती है जब किसी अच्छे विद्यालय में जाता हूँ। मैने गांधी विद्यालय के बाबत सुना है। जानने वालों से तथा रिर्पोट द्वारा भी जो मालूम हुआ है उसमे मुझे यह अन्दाजा होता है और उम्र भर शिक्षा का काम करने से अटकल भी हो गई है। जब कभी अच्छे विद्यालय को देखता हूँ तो समझ लेता हूँ कि अच्छा है मैं अच्छे विद्यालय में हूँ।

लेकिन मैं यह कहना चाहता हूँ कि अच्छे से अच्छा विद्यालय हो सकता है। कोई विद्यालय ऐसा नहीं है जो यह कहा जा सके कि और अच्छा नही हो सकता। इसलिए इस रजत जयन्ती के अवसर पर इसके काम करने वालों को यह कहता हूँ कि जो कुछ भी कर लिया है, यह अच्छा है जितना कुछ कम है उसके लिए कोशिश करो। इस कोशिश में ढीले मत पड़ जाना कि यहां संख्या बढ़ जायगी तो अच्छा हो जायगा। या कालेज हो जायगा तो अच्छा होगा। बुरे कालेज से अच्छा हाई स्कूल अच्छा होता है और

बुरे हाई स्कूल से मामूली हाई स्कूल अच्छा होता है और बुरे हाई स्कूल से किंडर गार्टन अच्छा होता है एक अच्छा किंडर गार्टन बुरी युनिवर्सिटी से अच्छा होता है। जो काम करे अच्छा करे जो स्कूल हो वह स्कूल अच्छा हो। गांधी विद्यालय को कालेज बनाने से अच्छा नहीं हो जायगा। संख्या बढ़ने से नहीं हो जायगा इससे होगा कि इसके अन्दर काम अच्छा हो।

सुखाड़िया जी ने यह सब कुछ कह दिया जो मुझे कहना था। इमारत बनाने से विद्यालय अच्छा नहीं बनता है अच्छे शिक्षकों से बनता है, और अच्छे विद्यार्थियो से बनता है।

शिक्षक भी बहुत मेहनत करे और विद्यार्थी साथ न दे तो विद्यालय नहीं बनता है। और विद्यार्थी जान खपादे और शिक्षक ध्यान न दे तो भी अच्छा विद्यालय नहीं बनता है। विद्यालय दोनों के योग से अच्छा बनता है। जहाँ अच्छे विद्यार्थी अच्छे शिक्षक जमा हो जाते हैं, वहां बुरा विद्यालय भी अच्छा बन जाता है। इसलिये मुझे उम्मीद है कि आप इस विद्यालय को दिन प्रतिदिन ऊंचा उठाने की कोशिश करेगें।

कहने को तो मैंने कह दिया परन्तु मै यह जानता हूँ कि सोहन सिंह जी के दिल में भी इसका ख्याल पैदा हुआ होगा कि अच्छा हो तो कैसे अच्छा हो। अपनी जानकारी के लिहाज से मै समझता हूँ कि अच्छे विद्यालय में जो चीज होनी चाहिये वह बयान करता हूँ।

पहली बात तो मैं यह समझता हूँ कि हर विद्यार्थी का झुकाव देखना होगा। हर विद्यार्थी के मस्तिष्क की बनावट अलग अलग होती है कोई उससे हटाया नहीं जा सकता। सब विद्यार्थी भेडों की तरह हाँके नहीं जा सकते, एक एक विद्यार्थी को नजर में रखना पड़ता है। आपको परीक्षा के काम हैं और इसके कायदे कानून नियम है उसकी वजह से एक एक विद्यार्थी पर ध्यान देना मुश्किल है लेकिन अच्छे विद्यालय के शिक्षक बराबर इस धुन में लगे रहते हैं कि किसी तरह व विद्यार्थी के लिये वह करे जो उसके लिये जरूरी है, वहां हर वक्त ख्याल नहीं रखा जा सकता इसीलिये हर जरूरी काम को अलग अलग समझना यह शिक्षक का बहुत बड़ा फर्ज है।

दूसरी चीज अच्छे विद्यालय में होती है और होनी चाहिए वह यह जानना है कि हर विद्यार्थी यात्रा में होता है, वह एक जगह से दूसरी जगह जाता है, उसका मस्तिष्क एक जगह से दूसरी जगह जाता है। एक जगह का काम इसलिये किया जावे कि वह आगे जहाँ जाने वाला है मदद दे और उससे इस काम को बढ़ावें उसकी जो परीक्षा होने वाली है केवल रटाई कराई जाती है। १० वर्ष सकारथ है परीक्षा तो अच्छी हो जाती है परन्तु मंजिल को नही पहुँचाती।

कोई जमाना होता है जब बच्चा खेलना चाहता है। उसे खेल से अलग कर काम में लगाना उसकी शिक्षा को खराब करना है। फिर वक्त आता है तब अपने लिए काम करना चाहता है और उसे दूसरे के लिए काम में लगाना उस पर समय खराब करता होता है।

वह यात्रा में जिस जगह है उस जगह को समझना उस जगह का प्रबन्ध करना यह अच्छे विद्यालय का काम है। हर जगह अपना रस होता है और जगह आगे की तैयारी होती है ये दोनो बातें सामने रखनी चाहिये।

तीसरी बात जो अच्छे विद्यार्थी को ध्यान में रखनी चाहिये वह यह है कि विद्यार्थी के जीवन को टुकड़े-टुकड़े नहीं समझना चाहिये। उसकी बुद्धि तो आपने परख ली, पर इससे ऐसा नहीं है कि उसकी बुद्धि को आपने तरक्की दे दी, नैतिक तरक्की दे दी। ऐसा नही है कि उसको अलग तरक्की दे दी। सब मिले—जुले हैं उसकी नैतिक और बौद्धिक और शारीरिक तरक्की अर्थात इसका प्रारम्भ-साथ साथ होना चाहिए।

चौथी बात है कि अच्छे विद्यालय में सब काम, काम के ढंग से हो, मस्तिष्क का काम भी और हाथ का काम भी। मस्तिष्क का काम भी हाथों से होता है और हाथों का काम भी मस्तिष्क से होता है। हर काम के लिए मालूम करना है कि काम क्या है ? फिर कैसे करना है और साधन क्या है ?

पांचवीं बात है काम करने के बाद जाँच करना चाहिए कि यह काम वही है जो मैं करना चाहता था। नैतिक फैसला हो चाहे बौद्धिक मामला हो चाहे कोई हाथ का काम हो, इन पांचों बातों को ध्यान में रखा जाये तो काम बनता है। शिक्षा ऐसी हो। मेरे ख्याल से सिर्फ काम से शिक्षा होनी है। यह तो मशहूर है कि बेसिक ऐज्यूकेशन बुनियादी शिक्षा से मेरा सम्बन्ध है, इसमें काम को रखा गया है इसके लिए यह नहीं समझना चाहिए कि मैं केवल हाथ के काम को महत्व देता हूँ। बौद्धिक काम को भी महत्व देना चाहिए। इसका विद्यालय के सारे काम के साथ सम्बन्ध जोड़ना चाहिए।

छठी बात, कि विद्यालय को एक समाज समझना चाहिए। विद्यालय में अकेले का, समाज का काम भी मिला हुआ रहता है। हर शिक्षक व विद्यार्थी का काम सारे समाज के लिए होता है और इसकी बुराई से सारा विद्यालय बदनाम होता है। हर एक की बुराई से सारा समाज बुरा होता है, इसको समाज समझना चाहिये और इस समाज के कुछ नियम होने चाहिए, तथा कुछ परम्परा बननी चाहिए। कभी ऐसा हो कि गांधी विद्यालय के बालक के लिए कोई कहे कि बालक ने झूंठ बोला है, तो हैड मास्टर खड़े होकर कह सकें कि मेरा लड़का झूंठ नहीं बोलता। मै ऐसे मदरसे जानता हूँ ऐसे विद्यालय जानता हूँ जिनके हैड मास्टर कहते हैं कि मेरा बच्चा झूंट नहीं बोल सकता। चोरी में पकड़ा जाता है, पुलिस आती है तो वे कहते हैं कि मेरा लड़का चोरी नही कर सकता। यदि बच्चे ने झूंठ बोला तो वह कह सकता है कि मेरा लड़का झूंठ नहीं बोल सकता है और यह सही साबित होता है। इसलिये इस समाज के ऐसे नियम हैं और ऐसी परम्परा है कि वहां लोग समझते हैं, वहां झूंठ नहीं बोल सकता, चोरी नहीं कर सकता। बहुत सी चीजें है इनकी आदतें हो जानी चाहिए, नियम बन जाने चाहिए, परम्परायें बन जानी चाहिए। हिम्मत से अपने दिल की बात कहने के लिए नियम और एक दूसरे को सहारा देने तथा सहारा लेने के नियम हो जायें तो समाज अच्छा समाज बन जाता है। विद्यालय का समाज और वह फिर सारे समाज के लिए बीज का काम देता है और सारे समाज को अच्छा कर देता है। इसमें बच्चों की, जो विद्यार्थी हैं उनकी, नजर सध जाती है। इनकी पसन्द निखर जाती है, उनका जीवन अच्छा हो जाता है। किसी ने ठीक कहा है कि हुनर तो अकेले ही बनता है

लेकिन परसनलिटी हुनर से नहीं बनती है, समाज से बनती है, इसलिए स्कूल को समाज बनाना चाहिये और उससे अच्छे से अच्छा विद्यार्थी पैदा करना चाहिये।

सातवीं बात : जब विद्यार्थी विद्यालय छोड़ कर जाय उसके दिल में यह लगन पैदा हो कि मैं उमर भर अपनी शिक्षा के काम को जारी रखूंगा,। उसे जानना चाहिए मनवाना चाहिये और यकीन दिलाना चाहिए कि वह यात्रा का अंत करने नहीं आया है। उसको उम्र भर शिक्षा का काम आप करने की ओर ख्वाहिश होनी चाहिए।

आप ऐसा कर देगें तो विद्यालय बहुत अच्छा विद्यालय हो जायेगा और मैं तो यह समझता हूँ कि इसमें ये सब बातें होंगी ही जो होनी चाहिएँ और जो कम हैं उनको बढ़ाना चाहिये और फिर रजत जयन्ती पर बड़ी खुशी मना सकते हैं, हिम्मत से आगे बढ़ सकते है।

लेकिन यह बात तो मैंने विद्यालय से कही। एक बात मै आपसे कहना चाहता हूँ जो विद्यालय में नही हैं किन्तु विद्यालय को पसन्द करते हैं। विद्यालय बड़े समाज का अङ्ग होता है अगर बड़ा समाज खराव है तो छोटा समाज बहुत मुश्किल से ठीक हो सकता है। छोटा समाज, आपका समाज आपकी तरफ ताकता है और ताकता हुआ आपकी एक-एक भूल को देखता है, आपकी एक-एक अच्छाई को देखता है और एक-एक बुराई को देखता है। अगर आप में बुराई ज्यादा फैली हुई है, तो उस समाज में भी बुराई ज्यादा हो सकती है, आपमें अच्छाई ज्यादा है तो अच्छाई ही पैदा होती है, इसलिए आप विद्यालय को अच्छे जीवन का नमुना दीजिये अपने जीवन को अच्छा बनाइये, अपने व्यवहार को अच्छा वनाइये। आप अपने व्यवहार को ठीक करें। साथ में जो छोटा समाज अपने विद्यालय में बन रहा है जिससे हमारी आगे की बहुत सी उम्मीदें हैं वह अच्छा समाज बन सके, आगे की उम्मीद विद्यालय से ही है। मैंने बार-बार कहा है, फिर कहता हूँ अगर इस देश में हर चीज अच्छी होगी, वैसे ससार में हर चीज अच्छी नहीं है आप भी जानते हैं, शिक्षा अच्छी नहीं होगी तो मैं चैन से नहीं मर सकता। मैं यह समझता हूँ देश बिगड़ता है जब शिक्षा अच्छी नहीं हो और सब कुछ अच्छा न हो तो फिर चैन से मरना मुश्किल है। लेकिन सब कुछ बिगड़ा हुआ हो और ईश्वर जानता है कि सब कुछ बिगड़ा हुआ नहीं है, लेकिन सब बिगड़ा हुआ हो और शिक्षा अच्छी हो तो मैं चैन से मरूंगा। यह देश अच्छा हो जायगा, और उभर जायगा। शिक्षा का बड़ा स्थान है। मुझे उम्मीद है कि आप सब काम करने वाले हैं, जैसे कि विद्यालय में काम करने वाले मलूम होते हैं, वे इस विद्यालय को एक आदर्श विद्यालय बनायेंगे। मोहन सिंह जी को तो आदर्श शिक्षक का सम्मान मिल ही चुका है।

मुझे उम्मीद है यह विद्यालय आगे बढेगा दिन पर दिन तरक्की करेगा, संख्या बढ़ने से नहीं अपने काम को शिक्षा के गुण भरने से, और विद्यालयों को भी इसे देख कर आगे बढ़ने की इच्छा होगी।

असली शिक्षा

[गुजरात विद्यापीठ में डा० जाकिर हुसैन के दीक्षांत भाषण का सारांश]

मुझे कुछ ऐसा लगा कि वह तंगी और बे-सामानी के दिन अच्छे ही दिन थे, सामान नहीं था, अरमान थे। दौलत नहीं थी, हिम्मत तो थी। सामने एक आदर्श था, जिसमें एक लगन थी, अधिकार माँगने पर ध्यान नहीं था कर्तव्य पूरा करने की धुन थी, वेतन बढ़ने का अवसर कह था, जान खपाने में जी सुख पाता था। हर बच्चा, हर स्नातक जो हमारे पास कुछ पढ़ने, सीखने, बनने के लिए आता था उसकी आंखों में हमें आजादी की चमक दिखाई दी थी। हमसे गुलामी ने जो कुछ छीन लिया था वह सब हमें एक गांधी, एक टगौर, अरविन्द, एक नेहरू, एक विनोबा छिपा लगता था, जो आगे चलकर अपने जीवन से, अपने काम से, अपने विचारों से देशका नाम उजागार कर देगा।

असली शिक्षा आदमी के अपने ही हाथों होती है। दूसरा घोड़े को पानी तक ले जा सकता है, पानी पीना तो उसे आप ही पड़ता है। मेरी प्रार्थना आप सबसे, शिक्षकों से भी, स्नातकों से भी यही है कि इस काम को अपना काम बनाइए, ऐसा काम, जिससे मन का विकास हो। आप अच्छे आदमी बनें, आप से यह बात भला क्यों छिपी होगी कि आदमी का मस्तिष्क अपने किये को परख कर, उसके अच्छे-बुरे पर नजर कर के ही उन्नति करता है। आदमी जब कोई काम करता है, चाहे हाथका काम हो, चाहे दिमाग का, तो उस काम मे उसे मानसिक लाभ—उसी वक्त पहुच सकता है जब वह उस काम का पूरा-पूरा हक अदा करे, काम के लिए अपने को जरा तजे, अपने ऊपर काबू पाए। उससे लाभ शैक्षणिक उसी को होता है, जो उस काम के डिसिपलिन को अपने ऊपर ओढ़े। यह शैक्षणिक काम, मस्तिष्क का यह विकास मानसिक आहार पाकर बुद्धि के नियमों के अनुसार होता है।

मस्तिष्क को यह आहार मिलता है संस्कृति से, उसकी लौकिक और चीजों से, समाज की वैज्ञानिक व्यवस्थाओं से, समाज की कलाओं से, समाज के धार्मिक संस्कारों से, उसके धन्धों से, उसके नैतिक सिद्धान्तों से, समाज के कानून से, समाज के रस्म रिवाज से समाज की घरेलू जिन्दगी की सहूलियत से, समाज के गांव, कस्बों, शहरों के जीवन से, समाज के शासन से अदालतों से, पाठशालाओं से, सबको सब से, नहीं, किसी को किसीसे, किसीको किसी से । इस बात को फैलाकर कहने का यह समय नहीं है । मैंजो बात आज खास तौर पर आपसे कहना चाहता हूँ, वह यह है, इस मानसिक आहार में समाज के बड़ों, अच्छों, सच्चों के जीवन-चरित्र से यह काम जितना होता है, या हो सकता है, वह शायद और किसी चीज से नहीं हो सकता । और चीजों से जानकारी बढ़ जाती है, कुशलताएं मुहय्या हो जाती हैं ।

इसी सच्ची शिक्षा के लिए समाज के अच्छों, सच्चों, नेकों, बड़ों का जीवन-चरित्र, जैसा काम करता है और कोई चीज नहीं करती ।

उस महात्मा, महापुरुष का खास गुण है कि एक मामूली लड़का होकर उसने अपनी सच्चाई से सच्चाई पर लड़ने की आदत से, अपनी मेहनत से, जिस काम में हाथ डाला उसका हक अदा कर के, यह दर्जा हांसिल किया । अदब से, हमेशा अच्छाई की तलाश से, चाहे कहीं से मिलें, दूसरों को नेकियाँ और अच्छाइयां ढूँढ़-ढूँढ़ कर निकालने से, उनकी बुराइयों और कमजोरियों के दर गुजर कर के अपनी कमजोरियों पर कड़ी पकड़ करके उसने अपने जीवन की गोद नेकियों से मालामाल कर ली अपनी कमियों को एक-एक करके छाँट डाला और अपने को उस ऊंचे मरतबे पर पहुँचा दिया । उसकी बड़ाई कुछ पैदाइश के इत्तिफाक पर निर्भर न थी, कुदरत की बेहिसाब देन भी न थीं । यह एक हिम्मत वाले मेहनती आदमी की उम्र भर की कोशिश का नतीजा था । अपने हाथों अपनी शिक्षा का फल था, उसने अपनी जिन्दगी की कच्ची धातु को मोहब्बत की भट्टी में तपा-तपा कर सच्चाई के निथरे पानी में बुझा-बुझा कर और बेगरज सेवा और मेहनत के हथोड़े से पीट-पीट कर एक ऐसी खरी, ऐसी पक्की, ऐसी वजनदार, ऐसी सुन्दर, ऐसी दमकती जिन्दगी बनाई थी, जो शताब्दियों में किसी को नसीब होती है ।

जिन्दगी बनाने में सब से पहले इच्छा शक्ति दरकार होती है । गाँधीजी के जीवन से यह सबक मिलता है कि इरादे को आजाद इरादा, इच्छा को आजाद इच्छा होना चाहिए । आदमी इरादा आप करे, यह नहीं कि दूसरा इरादा कर के थोप दे ।

अच्छे आदमी बनना और अच्छा समाज बनाना, अच्छे आदमियों को अच्छे समाज की सेवा में लगाने के लिए तैयार करना — यह कोई एक या दो की जिन्दगी में पूरा होने वाला काम है ? सच यह है कि यह तो कभी खत्म न होने वाला काम है । यह तो बराबर किये जाने और बराबर हुए जाने वाला काम है । हमें इस काम को करने का मौका दिलाने के लिए ही गांधीजी ने हमारे देश की आजादी चाही थी । आजादी हुई है बंधनों से, बेड़ियों से, बेजा पाबन्दियों से । गांधीजी ने आजादी किस लिए, दिलाई थी ? इस लिए कि हमारे इरादे आजाद हों, हम जो बन सकते हैं, वह बनें, अच्छे आदमी बन सकें, अच्छा समाज बना सकें । अच्छे बनने और अच्छा समाज बनाने का जो रास्ता उन्होंने बताया है यह मैं समझता हूँ कि तीन लफ्जों में बयान हो सकता है — अहिंसा, विज्ञान, काम ।

अहिंसा का रास्ता जैसा कि मैं समझता हूँ मोहब्बत का रास्ता है, सहन शक्ति का रास्ता है, आदमियत के एहतराम, मनुष्यता के आदर का रास्ता है, आदमी को आदमी के जुल्म से बचाने का

रास्ता है. दिलों की सफाई का रास्ता है, भाई को भाई से मिलने का रास्ता है, दुश्मन को दोस्त बनाने का रास्ता है, सच पर भरोसे का रास्ता है, अमन का सुलह का रास्ता है।

दोस्तो, हमें इस रास्ते पर चलकर एक नया देश, एक नया समाज बनाना है। जब तक इस देश में आदमी आदमी पर जुल्म करता है, जब तक इस देश में बसने वाले एक दूसरे पर भरोसा नहीं करते, जब तक यहां के बसने वाले हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई अपने को भाई भाई नहीं जानते और नहीं मानते, जब तक अमीर-गरीब को और ताकतवर कमजोर को उभरने नहीं देते, जब तक यहां किसी की मेहनत-मशक्कत से कोई दूसरा बेजा लाभ उठाता है, उस वक्त तक यह देश गांधीजी के विचारों का देश नहीं है। उनका काम बाकी है और मुझे और तुम्हें पूरा करना है। इसी को पूरा करने के लिए तो हमें आजादी मिली है।

दूसरा रास्ता विज्ञान का है। गांधीजी का सच पर जमना, समाजी एख्ला को मामलों में भी था और अपने ईर्द-गिर्द की कुदरत को समझने और इससे काम लेने के मामलों में भी। दोनों मैदानों में सच का रास्ता ही भलाई का रास्ता है। एक मैदान में यह अहिंसा और एखलाक और न्याय का रास्ता है और दूसरे मैदान में साइन्स और विज्ञान का। जब तक हमारे देश में करोड़ों आदमियों को जीते-जी पेट भर खाना नहीं मिलता है, जब तक करोड़ों आदमियों को दुख-दर्द में दवा नसीब नहीं होती जब तक हमारे देश में आदमियों की जान मक्खियों और भुनगों की जैसी सस्ती है, जब तक इस देश में करोड़ों आदमी अनपढ़ हैं और करोड़ों बच्चों को मदरसे जाना नसीब नहीं होता, उस वक्त तक अंग्रेजी साम्राज्य से निजात पा जाना ही काफी नहीं है। हमें इस देश के पहाड़ काटने हैं, समुन्दर पाटने हैं, खानें खोदनी हैं, नदियाँ मोड़नी हैं, इसके रेगिस्तानों को गुलजार बनाना है, जहालत को खत्म करना है, गरीबी को मिटाना है, रोगों को भगाना है, गांधीजी की आरजुओं वाला देश बनाना है तो यह सभी करना होगा और यह सब विज्ञान के रास्ते से होगा।

मगर दोस्तो, याद रखो, अहिंसा और विज्ञान खयाली बातें भी होकर रह जा सकते है, किताबी चीजें बन जा सकती हैं और बहुतों के लिए हैं भी। गांधीजी की अहिंसा और गांधीजी का विज्ञान खयाली और किताबी न था। इसलिए उन्होंने एक तीसरा रास्ता बनाया था। वह काम का रास्ता है। अहिंसा को भी जीवन में बरतना और विज्ञान को भी जीवन के लिए काम में लाना, उन्होंने अपने जीते ही यह करके दिखाया था।

राष्ट्र के प्रति हमारा दायित्व

[राष्ट्रपति के शपथ-ग्रहण के समय १३ मई १९६७ को दिये गये भाषण का सारांश]

मैं स्वीकार करता हूँ कि हमारी जनता ने इस उच्चतम पद के लिए निर्वाचित करके मुझ पर जो विश्वास प्रकट किया है, उससे मैं अधिक प्रभावित हुआ हूँ। यह भावना इस वजय से और भी प्रबल हो जाती है कि भारत के महान् सपूत डा० राधाकृष्णन् जी के वाद मुझसे इस पद को संभालने के लिए कहा गया है, जो वर्षों से मेरे पथ प्रदर्शक, दार्शनिक और मित्र रहे हैं और जिनके अधीन मुझे पिछले पांच साल से काम करने का अवसर प्राप्त हुआ है। मैं उनके कदमों पर चलने की कोशिश करूंगा, परन्तु उनकी बराबरी कैसे कर सकूंगा। डा० राधाकृष्णन् ने राष्ट्रपति पद को बुद्धिमत्ता, पाँडित्य और ऐसा सुसम्पन अनुभव प्रदान किया, जिसका उदाहरण नहीं मिलता। ज्ञान तथा सत्य की खोज के लिए समर्पित सारे जीवन में उन्होंने भारतीय दर्शन के विचारों को, सभी आध्यात्मिक सिद्धान्तों के एकत्व को बताने तथा उन्हें स्पष्ट करने के लिए किसी भी अन्य व्यक्ति से, सम्भवतः अधिक कार्य किया है। उन्होंने मनुष्य की अन्तरतम मानवता पर विश्वास कभी नहीं छोड़ा और स्वयं मनुष्यों के इज्जत और इन्साफ के साथ रहने के अधिकार का सदा समर्थन करते रहे। शिक्षा के क्षेत्र में उनकी सेवाएं बहुमूल्य रही हैं। उप-राष्ट्रपति तथा राज्य सभा के सभापति के रूप में उन्होंने १० वर्ष तक राष्ट्र की अनुपम सेवा की और यह उचित ही हुआ कि इस कार्यकाल के उपरान्त वे राष्ट्रपति चुने गये। अपने पद से अवकाश ग्रहण करते समय उन्हें सारा राष्ट्र कृतज्ञता से धन्यवाद दे रहा है और उनके प्रति अपना प्रेमपूर्ण आदर समर्पित कर रहा है। हमारी कामना है कि वे अनेक वर्षों तक स्वस्थ और सुखी रहें।

आपको इतना ही यकीन दिला सकता हूँ कि मैं इस पद को प्रार्थना-सहित और नम्रता से तथा सच्ची लगन से स्वीकार करता हूँ। मैंने अभी भारत के संविधान के प्रति वफादारी की शपथ ली है। और देशों के मुकाबले यह एक नये राष्ट्र का संविधान है, जिसको स्वतन्त्र नागरिकों ने अपने इतिहास में पहली बार अपने लिए अपनाया है। यह एक प्राचीन देश के लोगों का युवा राष्ट्र है, जिन्होंने हजारों सालों में और अनेक जातियों के सहयोग से देश-काल से परे परम तत्वों को अपने जीवन में अपने ढंग से उतारने का प्रयास किया है। मै उन तत्वों का अनुसरण करने की प्रतिज्ञा करता हूँ। हालाँकि परिस्थिति के बदलने से कोई मूल्य पूरी तौर से साकार भले ही न हो सके, मगर वह मूल्य हमेशा वही रहता है और नित-नूतन अनुभव करने को प्रेरित करता है। अतीत कभी भी निर्जीव तथा गतिहीन नहीं होता। वह सजीव तथा गतिशील होता है और इसका निश्चय करता है कि हमारे वर्तमान और भविष्य का स्वरूप क्या होगा! अपने अनूठे ढंग से कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा है:

हे शाश्वत अतीत
मैंने तेरे आगमन का अपने रक्त में अनुभव किया है,
कोलाहलपूर्ण दिवस के मध्य मैंने तुम्हारी शाँत मुद्रा को देखा है।
हमारे भाग्य की अदृश्य रेखाओं में
हमारे पिता की अधूरी कथाएं
लिखने के लिए तुम्हारा आगमन हुआ है,
तुम नवीन बिम्बों को स्वरूप देने के लिए विस्मृत काल को फिर जीवन देते हो।

उसे बराबर जीवन देना ही असल में राष्ट्रीय संस्कृति और राष्ट्रीय चरित्र का विकास है। मेरे विचार से शिक्षा का लक्ष्य इस प्रकार बराबर नवीन जीवन देने में योग देना ही है और मुझे यह मानने के लिए माफ किया जाय कि इस ऊंचे पद के लिए मैं मुख्यतः, यद्यपि पूर्णतः नहीं, इस कारण चुना गया हूँ कि मेरा अपने देशवासियों की शिक्षा से बहुत काल तक सम्बन्ध रहा है। मेरी यह धारणा है कि शिक्षा राष्ट्र के लक्ष्यों को प्राप्त करने का मुख्य साधन है। जैसी उनकी शिक्षा होती है, वैसा ही उनका स्वरूप भी हो जाता है। इसलिए मैं अपने अतीत की समग्र संस्कृति के प्रति, चाहे वह जिस-जिस स्रोत से प्राप्त हुई हो, चाहे उसके निर्माण में जिस किसी ने भी योगदान किया हो, अपनी निष्ठा व्यक्त करता हूँ। मैं अपने देश की सम्पूर्ण संस्कृति की सेवा का व्रत लेता हूँ। मैं अपने देश के प्रति अपनी वफादारी व्यक्त करता हूँ क्षेत्र व भाषा चाहे जो हो, मैं उसे सशक्त और उन्नत बनाने और बिना जाति, रंग और धर्म-भेद के अपने लोगों की भलाई के लिए कार्य करने का व्रत लेता हूँ। सारा भारत मेरा घर है और उसके लोग मेरा परिवार हैं। लोगों ने कुछ समय के लिए मुझे इस परिवार का कर्त्ता चुना है। मैं सच्ची लगन से इस घर को मजबूत और सुन्दर बनाने की कोशिश करूंगा, ताकि वह मेरे महान् देशवासियों का उपयुक्त घर हो जो कि एक सुन्दर जीवन के निर्माण के प्रेरणापूर्ण कार्य में लगे हुए हैं, जिसमें इन्साफ और खुशहाली का अपना स्थान हो। यह परिवार बड़ा है और बराबर ऐसी गति से बढ़ रहा है जो अनुकूल नहीं है। हममें से हर एक को देश के नये जीवन के निर्माण कार्य में अनवरत अपने-अपने ढंग से भाग लेना होगा। हमें जो काम करने हैं, वे इतने जरूरी हैं कि कोई भी आराम से देखता नहीं रह सकता और देश में निराशा को जड़ पकड़ने नहीं दे सकता। स्थिति ऐसी है कि हम काम करें,

अधिक काम करें, शांति से और सच्ची लगन से काम करें और अपने देशवासियों के समूचे भौतिक और सांस्कृतिक जीवन का ठोस और संतुलित ढंग से फिर निर्माण करें।

जैसा कि मैं देखता हूँ इस कार्य के दो पहलू हैं—एक वह जो अपने लिए किया जाता है और दूसरा वह जो अपने समाज के लिए। असल में ये दोनों सहायक अङ्ग हैं, जो कार्य को सफल बनाते हैं। अपने लिए जो कार्य किया जाता है, वह स्वतन्त्र और स्व-अनुशासित लोगों का नैतिक विकास के लिए है जिससे ही वह विकास सम्भव है। उसकी अन्तिम परणति स्वतन्त्र नैतिक व्यक्तित्व है। हम अपने आपको खतरे में डालकर ही इस अन्तिम परणति की उपेक्षा कर सकते हैं।

यह अन्तिम परणति तभी स्थायी हो सकती है जब इसमें न्यायपूर्ण और सुन्दर जीवन के अनुरूप समाज के निर्माण की चेष्टा तथा शक्ति निहित होगी। किसी व्यक्ति का पूर्ण विकास तब तक नहीं हो सकता जब तक कि सामूहिक रूप में समाज में उसके व्यक्तित्व का उसी प्रकार विकास न हो। हम सब व्यक्तिगत और सामाजिक कार्यों में पूरे दिल से लगने का संकल्प करें। यह दुहरा प्रयास राष्ट्र के जीवन को एक विशेष सौरभ प्रदान करेगा, क्योंकि राष्ट्र हमारे लिए शक्ति का संगठन मात्र न होगा, किन्तु वह एक नैतिक संस्था होगा। हमारे राष्ट्र का यह स्वभाव है और हमारे स्वतन्त्रता संग्राम के महान् नेता महात्मा गांधी की यह विरासत है कि शक्ति का उपयोग नैतिक उद्देश्यों के लिए ही किया जाय। समर्थ लोगों को शांति प्राप्त करने के लिए ही हम प्रयत्न करेंगे। हमारे राष्ट्र के भविष्य की कल्पना में विस्तारवादी विचारों और साम्राज्यवादी विकास का कोई स्थान नहीं होगा और हम हमेशा उद्दंड देश-प्रेम से दूर रहेंगे। हम यह कोशिश करेंगे कि हरेक नागरिक को कम-से कम वे चीजें हासिल हों, जो सुन्दर मानव-जीवन के लिए जरूरी हैं। हम बौद्धिक शिथिलता और आवश्यक सामाजिक न्याय की अपेक्षा से संघर्ष करेंगे। हम संकीर्ण सामूहिक खुदगर्जी को मिटायेंगे। और यह सब हम एक नैतिक कर्तव्य को खुश से स्वीकार करेंगे। हम अपने राष्ट्रीय जीवन में नैतिकता में शक्ति का, सदाचार में कार्य-कौशल का, ध्यान में कार्य का, पश्चिम में पूर्व का, बुद्ध में सीगफीड का समावेश करेंगे। हम शाश्वत और सांसारिक, जागृत आत्मा और दक्षतापूर्ण कार्य-कौशल, विश्वास और सफलता के दोनों लक्ष्यों को ध्यान में रखेंगे।

मुझे अपने लोगों से पूरी आशा है कि वे इस दुहरे कार्य को संतोषजनक रूप से निभाने की शक्ति का परिचय देंगे।

इस आकर्षक उद्यम में अपना योग देने में मैं अपना गौरव समझूंगा।

नए मूल्य

[२२ फरवरी, १९६७ को राष्ट्रपति का संगीत-नाटक अकादमी में भाषण]

कला को केवल समकालीन जीवन का प्रतिबिम्ब नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन के माध्यम का काम करना चाहिए। जो लोग कला के सृजन में लगे हुए हैं, उन्हें राष्ट्रीय एकता के आदर्श को लोकप्रिय बनाने का प्रयास करना चाहिए।

महान् कलाकारों का सम्मान करना अपना ही सम्मान करना है। एक दृष्टि से अच्छाई की तरह कला स्वयं में एक सम्मान की चीज है। उसे किसी बाहरी मान्यता की अपेक्षा नहीं है। महान् कलाकार अपनी गहन एवं तीव्र संचेत्यता के कारण कोई महान् विचार या रूप कल्पित करता है और फिर उसमें एक सुन्दर कृति की रचना की उद्दाम इच्छा होती है। किसी महान् कविता, नाटक, संगीत मूर्ति अथवा चित्र का जन्म इसी प्रकार होता है। प्रतिभाशाली व्यक्तियों की कलात्मक प्रतिभा का समाज बहुत बड़ा ऋणी होता है, क्योंकि किसी सभ्यता की परख कला और संस्कृति से ही होती है। यों तो इसमें संदेह नहीं कि किसी आधुनिक समाज की भौतिक समृद्धि के लिए हमें विज्ञान और शिल्प-शास्त्र का सहारा लेना आवश्यक है। लेकिन कोई भी राष्ट्र संस्कृति या अध्यात्मवाद के अभाव में जीवित नहीं रह सकता। ललित कलाएं शाश्वत होती है और जीवन को सुन्दर बनाती हैं।

भारतीय सभ्यता में बहुत प्राचीन काल से ही मस्तिष्क और आत्मा सम्बन्धी विषयों को प्रमुखता दी जाती रही है। इसी कारण हमारी संस्कृति एवं सभ्यता तमाम ऊंच-नीच और परिवर्तनों को झेल

सकी। मुझे इस बात की बड़ी खुशी है कि संगीत-नाटक अकादमी संगीत, नाटक एवं नृत्य सम्बन्धी हमारी शानदार परम्पराओं को बनाए रखने तथा उन्हें लोकप्रिय बनाने के लिए यथासाध्य प्रयत्न कर रही है। प्राचीन काल में कुछ अमीर लोग ही ललित कलाओं का संरक्षण किया करते थे, किन्तु सामन्त कालीन अभिजात्य वर्ग के समाप्त होने पर अब ललित कलाओं की उन्नति की जिम्मेदारी जनता एवं इस अकादमी जैसी संस्थाओं पर है। अकादमी के पुरस्कार हमारी सांस्कृतिक विरासत के प्रति जनता का ध्यान आकर्षित करते हैं और उसमें कलात्मक अभिरुचि जगाने के लिए उपयुक्त वातावरण बनाते हैं। आज हमने जिन कलाकारों एवं लेखकों का सम्मान किया है, वे हमारी कला विधाओं की विविधता एवं जीवंतता के प्रतिनिधि हैं।

हमारा देश इस समय एक कठिन समय से गुजर रहा है। ऐसे समय में मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि संगीत नृत्य, और नाटक जैसे माध्यम जनता को शिक्षित बनाने और उनके विचारों, रुचियों तथा आकांक्षाओं को रूप देने में बड़ा सशक्त और ठोस योगदान कर सकते हैं। आज जब भाषायी विवाद, साम्प्रदायिक वैषम्य और अनुशासनहीनता इतनी फैली हुई है, ऐसे समय कलाकारों का यह कर्त्तव्य है कि वे राष्ट्रीय एकता के आदर्श को लोकप्रिय बनाने में सहायता करें। हमें ऐसे नये सिद्धान्तों और मूल्यों की स्थापना करनी चाहिए जो गतिशील समाज के लिए उपयुक्त हों।

संगीत, नृत्य एवं नाटक के अलावा राष्ट्रीय एकता लाने का और कोई बेहतर साधन नहीं है। ये कलाएँ ऐसी हैं हो कि इनकी सहायता से लोग समीप आयेंऔर उनमें सद्भाव बढ़े। आज यह आवश्यक है कि इन नवयुवकों में कला एवं कला सम्बन्धी प्रयासों के प्रति दिलचस्पी बढ़े।

मैं आशा करता हूँ कि आज यहाँ जिन लोगों को फैलोशिप व पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है, नई पीढ़ी को उनसे प्रेरणा मिलेगी। ●

अध्यापकों की सहायता कीजिये

हमारे भविष्य के निर्माण में हमारे माता-पिता के बाद अध्यापकों का सबसे अधिक प्रभाव रहता है और जब हम स्वयं मां-बाप बन जाते हैं, तो अध्यापक हमारे बच्चों की देखभाल तथा दिशा-निर्देश करते हैं, जिससे हम उनके ऋणी हो जाते है।

आइए, हम अध्यापकों को इस बात का अहसास करा दें कि हम समाज के प्रति उनकी सेवाओं को महत्व देते हैं। उनके काम और लगन को हम सराहना करते हैं; और आइए, हम उन अध्यापकों की यथाशक्ति सहायता करें, जो कठिनाई के दौर से गुजर रहे हैं।

—डा० जाकिर हुसैन

छात्र असन्तोष

[उत्कल विश्वविद्यालय में २६ जनवरी १९६८ को राष्ट्रपति का भाषण]

हमारे देश के इतिहास में पहली बार विश्वविद्यालयों और कालेजों में लगभग २० लाख छात्र अध्ययन कर रहे हैं। पहली बार छात्र-समाज एक शक्तिशाली वर्ग के रूप में उभरा है। ये समाज के सभी वर्गों से आये हैं। शिक्षा को प्रभावकारी और सोद्देश्य बनाकर राष्ट्रीय प्रगति और विकास में इनका पूरा पूरा उपयोग किया जा सकता है। इसके विपरीत यदि छात्रों में व्याप्त असंतोष को काबू में न लाया गया तो उसका समाज पर बुरा प्रभाव पड़ेगा।

आज हम एक कठिन समय से गुजर रहे हैं। इसका प्रभाव छात्रों के असंतोष के रूप में विश्वविद्यालय के जीवन पर भी पड़ा है। मैं चाहूंगा कि आप सब इसकी ओर तत्काल और पर्याप्त ध्यान दें। छात्र असंतोष स्वयं एक बीमारी नहीं है किन्तु एक बीमारी का लक्षण है, जो शिक्षा को जीवन की वास्तविकताओं, राष्ट्रीय और सामाजिक जीवन से अलग रखने के कारण उत्पन्न हुई है। इसकी वजह से औसत युवक को हमारी अधिकांश शिक्षा निरुद्देश्य लगती है।

विश्वविद्यालय की डिग्री मात्र से अब नौकरी नहीं मिल जाती। हमारे अधिकांश छात्र गरीब परिवारों से आये हैं और पहली बार उच्च शिक्षा पा रहे हैं। उन्हें यथेष्ट सुविधायें और पथप्रदर्शन नहीं मिल रहा है। छात्रों और अध्यापकों के बीच की खाई निरन्तर बढ़ रही है। इसके अलावा सार्वजनिक जीवन में लगातार गिरावट आ रही है जिसके कारण नई पीढ़ी में सामाजिक उत्तरदायित्व और राष्ट्रीय जीवन के विकास में भाग लेने की भावना नहीं पनप रही है।

अब तक हमारे विश्वविद्यालय जन साधारण के जीवन से परे, अछूते और अलग रहते थे। किन्तु अब विश्वविद्यालयों को विकास का केन्द्र बनाना चाहिए। उन्हें समय-समय पर राष्ट्रीय विकास का मूल्यांकन करना चाहिये और बरबादी रोकने और कार्यक्रमों को सुधारने में सहायता देनी चाहिए। विश्वविद्यालयों में राष्ट्रीय सेवा की शुरूआत की जानी चाहिए, जिसमें छात्र और अध्यापक भाग लें और देश के विकास में योग दें।

राष्ट्र नेताओं का दायित्व

हमारे भारत की बहुत समस्याएं हैं जैसा बड़ा हमारा देश है और जैसी पुरानी संस्कृति और रवायात हैं, वैसी ही बड़ी और जटिल उसकी समस्याएं भी हैं, लेकिन स्वतन्त्रता के बाद हमारे देश में पुरअमन तरीके से एक तबदीली हुई है और बराबर होती जा रही है। हमारा भारत बीस वर्ष पहले जो था आज वह नहीं है। लोगों में नई आशाओं की किरण फूटी हैं और इनमें नई आकांक्षाओं और नये जज्बों की उमंगें पैदा हो रही हैं। राष्ट्रनेताओं के लिए सबसे पहला काम यह है कि वे इन प्रेरणाओं की पूर्ति करने की कोशिश करें और जन-समूह को राष्ट्रीय सम्पति के आधार पर मुनासिब ढंग से तरक्की के रास्ते पर लगाएं। यह एक बहुत बड़ा काम है और इसको पूरा करने के लिए बड़े आत्मसमर्पण और मजबूत इरादे की जरूरत है। हमें यह काम करना ही होगा। इसमें झिझकने या नाकाम होने का कोई सवाल ही नहीं है। हमें अपने निर्धारित लक्ष्य की तरफ़ मजबूती से आगे बढ़ना है।

—डा० जाकिर हुसैन

देशवासी हिंसा व अनुशासन-हीनता त्यागें

[गणराज्य दिवस, १९६८ पर राष्ट्रपति का संदेश]

यह हमारी १९वीं गणराज्य दिवस से पहले की शाम है। मैं देश और विदेश में रहने वाले सब देशवासियों को इस अवसर पर बधाई देता हूँ और भविष्य के लिए अपनी शुभ कामनाएं पेश करता हूँ।

हमारा गणराज्य अठारह वर्ष का हुआ है। यानी अब बालिग हो गया है। दरअसल अब हमें ठण्डे दिल से सोचना चाहिए और जायजा लेना चाहिए कि हम कहां पहुंचे हैं और अपने करोड़ों नागरिकों को अमन और खुशहाली की मंजिल की तरफ ले जाने के लिए हमने क्या-क्या कदम उठाये हैं और क्या-क्या और करना है।

जब मैं सोचता हूँ तो मेरी पहली भावना जिसमें आप भी यकीनन मेरे साथ शरीक होंगे, अहसानमन्दी और शुक्रगुजारी की भावना है। पिछला साल जिसे हमने अभी पार किया, इसमें शक नहीं कि बहुत कड़ा साल था। एक बार और सूखा पड़ने से हमें ऐसी खाद्य समस्या का सामना करना पड़ता कि हमें इस पर काबू पाना मुश्किल हो जाता। ऐसी स्थिति थी कि कई महीनों तक हमारे बहुत से लोग खासकर बिहार और उत्तर प्रदेश में बहुत ज्यादा दुखी थे, पर शुक्र है कि हमारे मित्रों की सहायता और हमारी अपनी कोशिशों से, जिसमें जनता का साहस भी था, हम इस चुनौती का मुकाबला कर सके और अकाल की मुसीबत और उसके बुरे नतीजों को टाल सके। सच तो यह है कि अभी तक हम मुश्किलों से पूरे-पूरे बाहर नहीं निकले हैं। फिर भी मैं जब देश भर में अपने दौरे पर लहलहाते खेतों को देखता हूँ, तो मेरा दिल नई उम्मीदों से और अपने देश तथा इसके निवासियों में नई आशा और विश्वास की लहर देखकर बाग-बाग हो उठता है और मुझे पूरा भरोसा हो जाता है कि हम

कृषि-उत्पादन में जो कि हमारे देश की अर्थ-व्यवस्था का आधार है, महत्वपूर्ण बढ़ावे के लिए पूरी तरह तैयार हैं । मैं अपने किसानों से खास करके अपील करता हूँ कि वे ज्यादा से ज्यादा उत्पादन करने में कोई कसर न उठा रखें । इसी से हमारी आर्थिक स्थिरता बनेगी ।

पिछले कुछ महीनों में तैयारशुदा माल की माँगों में कमी रही और इसका नतीजा यह हुआ कि औद्योगिक उत्पादन में ढील के कारण हमें आर्थिक मन्दी को सहना पड़ा । ऐसा होने में जो सबसे बड़ी वजह रही, वह यह थी कि हमारे कृषि-उत्पादन में कमी रही, जिसका नतीजा यह भी हुआ कि इससे हमारी अधिकांश जनता की कूवते खरीद पर असर पड़ा । किसानों को दो अच्छी फ़सलों से जो अन्न मिलने की आशा है, उससे इस समस्या का बहुत हद तक हल हो सकेगा । परन्तु विदेशी लेन-देन में जो बकाया है, उसकी अदायगी और विदेशी मुद्रा की हमारी मांग की जटिल समस्याओं का अभी हमें सामना करना है । हमें पूर्ण आशा है कि देहली में फरवरी में होने वाले संयुक्त राष्ट्र के व्यापार और विकास सम्मेलन मे उभरते–विकसते मुल्कों और सनती तरक्की किये हुए मुल्कों के दरमियान आपसी व्यापार में नई दिशा में बढ़ावा मिलेगा । लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हम आज मुकाबले की दुनियां में रह रहे हैं और अगर हमें अपना माल विदेशों में बेचना है, तो हमारा वह माल दाम और क्वालिटी दोनों लिहाज से उन देशों का मुकाबिला करने के योग्य होना चाहिए । यह एक निराली बात है कि हमारी मजदूरी की दरें तरक्कीयाफ्ता देशों के मुकाबले में कम हैं, लेकिन फिर भी जो माल हम तैयार करते हैं, वह सस्ता नहीं होता और कई बार तो उन मुल्कों से मंहगा ही होता है । इसका नतीजा यह होता है कि इसकी बिक्री में कठिनाई होती है । जाहिर है कि हम मजदूरी को कम नहीं कर सकते । लिहाजा बेहतर तरीके से आदमियों की शक्ति और साधनों को प्रयोग में लाने से उत्पादन की बढ़ोत्तरी ही इन तमाम समस्याओं का जवाब है । कारखानों में काम करने वाले और दफ्तरों में काम करने वाले सब ही कर्मचारियों से मैं दरख्वास्त करता हूँ कि वे अपनी मेहनत, ईमानदारी और लियाकत से यह मुमकिन कर दिखाएं ।

तरक्की करने वाली कृषि और खुशहाल सनत के लिए उचित राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक वातावरण की आवश्यकता है । जहाँ के लोग परिश्रम से जीवन बिताते हों और अमन से रहते हों और अपने मामलों को सुचारु रूप से चलाने की लियाकत रखते हों, ऐसा ही संगठित राष्ट्र आर्थिक स्थिरता पा सकता है । अगर हम काम की ताकत को बेकार झगड़ों में जाया करेंगे, तो हमारा भविष्य तारीक हो जाएगा । हमारे बुजुर्गों ने अपनी दानाई से राष्ट्र-जीवन में प्रजातन्त्र को अपनाया है । लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि प्रजातन्त्र केवल मशीनी तौर से बस बहुमत का ही शासन नहीं, बल्कि इसके पनपने के लिए जनता में फैला हुआ अखलाकी वातावरण दरकार होता है । यही एक अखलाकी सत्ता है, जो तरक्की या देशों की कमियों को पूरा कर सकती है । यही हर शख्स पर एक फर्ज आयद करता है । यह अखलाकी सत्ता जो इन्सान के कैरेक्टर पर असरअन्दाज होती है, इसे हासिल करने में हर एक नागरिक को प्रयास करना चाहिए ।

हमारे नव प्रजातन्त्र को बदनाम करने वाली बहुत सी बातें हो सकती हैं । इन गड्ढों से बचकर चलने के लिए मैं अपने देश के प्रत्येक नागरिक से इल्तजा करूंगा । आजकल के हालात पर विचार करते हुए मैं चन्द एक का जिक्र भी करूंगा । पहला अन्धकूप है हिंसा । हिंसा प्रजातन्त्र की सच्ची धारणा का प्रतिवाद है । हमें अपने राष्ट्रीय जीवन में समस्याओं को हल करने के लिए इस हिंसा

के प्रयोग को जड़ से निकाल देना चाहिए। मुझे दुःख है कि हम अपने व्यक्तिगत राजनीतिक झगड़ों को खुले-आम गली कूचों में हल करने का प्रयास करते हैं। हमें इस मौजूदा रुझान का भी हल ढूंढ़ना है। पेचीदा समस्याएं खाली प्रदर्शनों से हल नहीं होतीं : यह प्रदर्शन बहुत करके कानून को भी तोड़ते हैं और कभी-कभी तो जान-लेवा भी साबित होते हैं। इसके अलावा यह बात भी है कि जो यह समझ लिया गया है कि शिकायतें बस इस तरह से सुनी जा सकती और दूर हो सकती हैं, उसको भी हटाने की सूरत करनी चाहिए।

दूसरा खतरनाक अन्धकूप है—अनुशासनहीनता, जो हमारे राजनीतिक दलों, विचारक संस्थाओं और तालीमी संस्थाओं में फैल रहा है। लोकतन्त्र की बुनियाद है अपने ऊपर खुद अनुशासन लगाना। लोकतन्त्र में पूरी तरह से बहस करने की इजाजत है। लेकिन बहस के बाद एक मत से या बहुमत से जो फैसला किया जाए, उसे ईमानदारी और खुशी से लागू करना चाहिए।

प्रजातन्त्र की कार्यवाही में हिस्सा लेने वाले प्रत्येक व्यक्ति को अपने से हमेशा यह सवाल पूछना चाहिए कि वह इस लोकतन्त्र अनुशासन का पालन कर रहा है या नहीं। केवल इस तरह ही वह लोकतन्त्र को सफल बना सकता है। और हमें यह साफ तौर से समझ लेना चाहिए कि अगर हम में से किसी को सरकार के चन्द सुझावों या प्रस्तावों की आलोचना करनी पड़े, तो भी इसकी राष्ट्र के प्रति वफादारी तो सदा बनी ही रहनी चाहिए।

शासन बदल सकते हैं और बदलते भी हैं, लेकिन राष्ट्र हमेशा अपनी अखलाकी सत्ता और नागरिकों की वफादारी का दावा करता है। अपने लगातार प्रयासों से नागरिक राष्ट्र को शुद्ध मूल्य की मूर्ति मानकर अखलाकी सत्ता का बाना पहनाते हैं और राजभक्ति की भेंट अर्पण करते हैं।

यह हमारा सौभाग्य है कि इस प्राचीन देश में राष्ट्र का नव-निर्माण करने में हमें हाथ बंटाने का अवसर मिला है। आओ, इस मनोरंजक कार्य में दिल से जुट जाएं। यह एक महान् और शुभ कार्य है, जो केवल भाषणों से, शीशों पर पथराव से या राष्ट्र-सम्पत्ति को बिना सोचे-समझे नुकसान पहुँचाने से पूरा नहीं होगा, बल्कि पीढ़ी-दर-पीढ़ी लगातार और कठिन परिश्रम करने से होगा।

अपने देशवासियों, खासकर नवयुवकों से मेरी अपील है कि वे इस महान् कार्य के महत्व को जानें और इसमें अपनी पूरी ताकत से जुट जाएं। मुझे पूरा यकीन है कि उनकी कोशिशों से यह काम जरूर पूरा होगा।

मुझे इस बात की खुशी है कि पिछले आठ महीनों में भारत के बहुत सारे राज्यों में दौरा करने, तरह-तरह के लोगों से मिलने और हमारी सेना के योग्य और चुस्त दलों को नजदीक से देखने का मुझे मौका मिला है। आपसे यह कहते हुए बड़ी खुशी हो रही है कि यह सब देख कर मुझे इस बात का यकीन है कि हमारे संविधान का ढाँचा और उसको सहारा देने वाले खम्भे हमारी जनता के दिलों की तरह मजबूत और दुरुस्त हैं। मैं आप सबसे दरख्वास्त करता हूँ कि हम हमेशा एकता को बनाये रखें और एकदिल होकर सभी मसलों का डटकर मुकाबला करें।

आज के शुभ दिन मैं अपने दिल से आपके सब कार्यों की सफलता चाहता हूँ जिससे आप भी हमारे सपनों के इस नये भारत के निर्माण के दिल गरमाने वाले काम में एक दूसरे का हाथ बंटा सकें। मेरा यह पक्का विश्वास है कि यह प्राचीन देश हमेशा-हमेशा के लिए एक शानदार प्रजातन्त्र रहेगा और संसार के देशों में अपना उचित स्थान लेगा।

देश का भविष्य जन सहयोग पर निर्भर

[स्वतंत्रता दिवस, १९६८ पर राष्ट्रपति का संदेश]

कल हमारे स्वतन्त्रता दिवस की इक्कीसवीं सालगिरह है। इस शुभ अवसर पर मैं आपको मुबारकबाद देता हूँ और भविष्य के लिए अपनी शुभ कामनायें पेश करता हूँ।

पिछले साल जब मैंने योमे आजादी के मौके पर आपसे खिताब किया था, उस वक्त से अब तक हमने खासी तरक्की की है। अकाल और भूख की अन्धेरी रातें जो हमारे कुछ प्रदेशों पर, खास कर बिहार और उत्तर प्रदेश पर छाई हुई थीं, उनसे निकल कर अब हम उम्मीद के उजाले में आ गये है। बीजों को नई-नई किस्में और कृषि के नये-नये ढंग बरतने से और इन सब से ज्यादा किसानों के नये-नये कृषि-सम्बन्धी विचारों को अपनाने से इस साल अनाज की पैदावार साढ़े नौ करोड़ टन से भी ज्यादा हुई है। कृषि-सम्बन्धी अड़चनों पर हम धीरे-धीरे काबू पा रहे हैं लेकिन इनको पूरे तौर पर हल करना इस बात पर निर्भर है कि हम किस तरह कृषि-संघटन की गम्भीर समस्या का मुकाबला करते हैं। इस पुण्य अवसर पर यह बात हम सब को माननी पड़ेगी कि हमारी नाकामी की खास वजह मानवता के क्षेत्र में हमारी अपनी ही कमजोरियां हैं और यह हम सब के लिए एक जबरदस्त चुनौती है। ऐसी स्थिति में मेरी यही प्रार्थना है कि इस फसल की गैर मामूली पैदावार से हम कहीं गफलत में नहीं पड़ जायें और पिछले वर्षों के सबक आमोज़ तजरबों को कहीं भूल न जायें।

फिर सनअत को लें तो कच्चा माल भी अब अच्छी मिकदार में मिलने लगा है और लोगों की खरीद करने की ताकत भी बढ़ है। इन से हमारी सनअती पैदावार को काफी बढ़ावा मिलेगा। फिलहाल ऐसा लगता है कि जहाँ तक उद्योग के पिछड़ेपन

का सवाल था उसमें हमने यकीनन तरक्की की तरफ करवट ले ली है। उद्योग में हर तरफ हमने बड़ी उन्नति की है। पिछली तीन पंचवर्षीय योजनाओं में हमने अपने सनअती विकास की ठोस बुनियादें कायम कर ली हैं। हमारे कारखानों में तरह-तरह की चीजें तैयार की जाने लगी हैं। बढ़ती हुई सनअत के लिए कल-कारखानों और साजो-सामान की हमें जरूरत है। उनमें से ज्यादातर सामान जिसमें बढ़ी-चढ़ी कारीगरी की चीजें भी शामिल हैं हम खुद अब डिजायन कर सकते हैं और बना भी सकते हैं। कलों के मुतालिक अब तक जो काम विदेशी कारखानों के जरिये ही हो सकता था, अब हम उसे खुद कर सकते हैं। हमने मशीनों के डिजायन करने की ओर उस सिलसिले में सलाह मशवरह देने की कावलियत भी पैदा करली है और इस वक्त इसकी बड़ी अहमीयत भी है क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कई ऐसी वजह हैं जिनसे बाहर की मदद और सहारे में हो-न-हो कमी ही होती जाती है। ऐसी हालत में इस सलाहियत का होना एक बड़ी अहम बात है।

लेकिन इन तमाम सनअती और जरायती तरक्कियों के होते हुए भी हमारी गरीबी में कोई नुमायां कमी नहीं हुई है। जब हम सोचते हैं कि हमें अभी क्या कुछ करना बाकी है तो ऐसा मालूम होता है कि जो कुछ हमने अभी तक किया है वह उसके मुकाबले में कुछ भी तो नहीं है। इसमें शक नहीं कि हमारी समस्यायें इतनी गम्भीर हैं कि दुनिया में उनकी मिसाल मिलनी मुश्किल है। हमारी जन-संख्या बहुत बड़ी है। सारी दुनिया की आबादी का चौदह फीसदी हिस्सा कुर्रा-ए-जमीन के ढाई फीसदी से कम हिस्से में आबाद है। दुनिया का कोई भी हिस्सा ऐसा नहीं है जहां करोड़ों की तादाद में इस तरह लोग बसते हों, अपनी-अपनी मुख्तलिफ जबानें बोलते हों, जिनमें अपनेपन का भी अहसास हो और जो जमहूरी निजाम के एक ही सियासी रिश्ते में गुन्थे हुए हों। हम जिस अन्दाज से राष्ट्रीय संस्कृति का निर्माण करना चाहते हैं, वह प्रयास भी एक अनोखे ढंग का है। अलग-अलग भाषाओं, जुदा-जुदा मजहबों और भिन्न-भिन्न संस्कृतियों से हम एक सुन्दर, मधुर और शानदार संस्कृति को जिसमें भारतीय तहजीब की नुमायां झलक हो, व्यावहारिक रूप देना चाहते हैं। हो सकता है कि इस काम में गैर मामूली दिक्कतों और कठिनाइयों का सामना करना पड़े। उन्हें न तो नजर-अन्दाज करना चाहिए और न उनकी ताकत को बढ़ा-चढ़ा कर ही दिखाना चाहिए।

आज का दिन ऐसा है जबकि हमें वाकई शांति से सोचना चाहिए कि हम कहाँ तक पहुँचे हैं, किधर जा रहे हैं और कहां जाना है

हम अपनी आर्थिक स्थिति को मूल रूप से बदलने के प्रयत्न में लगे हुए हैं, लेकिन इस महान् काम में जब तक जनता का उत्साह दिली सहयोग और लगातार अनुशासित प्रयास नहीं होगा, हमारे लिए आगे बढ़ना मुश्किल है। विकास के लिए योजनाएँ बनाना और उन्हें असली जामा पहनाना खाली सरकार ही का काम नहीं है बल्कि जनता का भी काम है कि अपनी स्थिति सुधारने में तेज-तेज आगे बढ़े ताकि देश का भविष्य शानदार बन सके। एक सकारात्मक शक्ति जो कि इस विकास में हमें सहयोग दे सकती है, वह है स्वस्थ राष्ट्रीयता की सच्ची भावना जो तखरीबी रुहजानों को बढ़ावा नहीं देती। हमारा देश एक प्राचीन और महान देश है जिसने युगों से मानव प्रयास के हर क्षेत्र में बड़ी-बड़ी सफलतायें प्राप्त की हैं। उनके प्रति हमें अपने देशवासियों के दिलों में आदर और प्रेम की भावना उजागर करनी चाहिए। लोगों में देशभक्ति का जजबा और उस पर नाज भी होना चाहिए जिसके सहारे वह जबरदस्त और आगे ले जाने वाली ताकत पैदा हो सकती है, जिसकी आज हमें बड़ी सख्त जरूरत है। हमें फूट पैदा करने वाली सभी प्रेरणाओं का पूरी ताकत से मुकाबला करना चाहिए ताकि राष्ट्र

आत्म-परिचय और आत्म-विश्वास दोनों प्राप्त कर सकें। इसी आत्मविश्वास और राष्ट्रीय गौरव से ही हमारे आर्थिक और सामाजिक सम्बन्धों में नियमित परिवर्तन हो सकता है । अपने लम्बे इतिहास में भारत ने सदा से ही वफादारी, आपसी समझ-बूझ और मादूदी कदरों के मुकाबले में इखलाकी कदरों को ऊपर रखने के उसूलों को अपनाया है। हमें खबरदार रहना चाहिए कि हम कोई ऐसा काम न करें जिससे हमारी पुरानी परम्पराओं पर किसी प्रकार का धब्बा आये। अगर हमारा रवैया सही मानों में इस शानदार विरसे के हसबे-हाल हो तो मुझे पूरा विश्वास है कि भारतीय राष्ट्रीयता सच्ची अन्तर्राष्ट्रीयता के निर्माण में बड़ा सहयोग दे सकेगी। हाल के इतिहास से यह बात साफ जाहिर है कि विचारधाराओं की कोई भी शैली हो इन सब में जबरदस्त कौमी जज़्बे काम करते हैं । हमें अपनी राष्ट्रीय शख्सीयत को पहचानना होगा और उसका सही तौर पर इस्तेमाल करना होगा ताकि लोगों की क्रियात्मक भावनाएं संगठित हो सकें और तमाम बिगाड़ने वाली टूट-फूट पैदा करने वाली ताकतों का मुकाबला किया जा सके। हम सब में एक जबरदस्त जजबा होना चाहिए और हमें मुस्तादी से सरगरम रहना चाहिए ताकि हम एक मजबूत और मुत्तहिद भारत का निर्माण कर सकें और यह मजबूती रुहानी तकवीयत पर आधारित होनी चाहिए ताकि हम भरोसे और आत्मविश्वास से दुनिया की दूसरी ताकतों से बराबरी के स्तर पर व्यवहार कर सकें।

इस साल अक्टूबर में हम गांधी जी के जन्म की शताब्दी का उद्घाटन करने जा रहे हैं। उन्होंने घोषणा की थी, मैं उन्हीं के शब्दों को दोहराता हूँ "मैं नहीं चाहता कि मेरा घर सब तरफ दीवारों से घिरा हुआ हो और उसकी सारी खिड़कियां भी बन्द की हुई हों। मेरी ख्वाहिश है कि संसार की सारी संस्कृतियों की हवाएँ हमारे घर के चारों ओर बिला रोक-टोक चलती रहें, लेकिन इनमें से कोई भी मुझे विचलित न कर सके। मेरा धर्म कैद घर का धर्म नहीं है। मेरे मजहब में खुदा की नाचीज़ से नाचीज मखलूक के लिए भी जगह है लेकिन उस धर्म में किसी ढंग के गरूर या घमंड की कत्तई गुंजायश नहीं है, चाहे वह गरूर कौमियत का गरूर हो, धर्म का गरूर हो या रंग का गरूर हो।" आजकल के हालात में गांधी जी के उपदेश एक खास अहमीयत रखते हैं। पहले से कहीं ज्यादा आज देश को उनके संदेश की जरूरत है--निर्भयता के संदेश की, साहस, आत्मविश्वास और सच्चे, खलूस के संदेश की। गांधी जी का इखलाकी कानून की अजमत में, बड़ा एतकाद था। हमें चाहिए कि हम उस एतकाद को फिर से अपनायें। आज हमारे देश में सिद्धान्त और व्यवहार में बड़ा अन्तर है, जिसका नतीजा यह कि राष्ट्र-जीवन के हर पहलू में लोग आप अपने मेयार से गिर गये हैं और अनुशासन का अभाव बढ़ता जा रहा है। लोग इसे मानें या न मानें कि अहिंसा धर्म की एक प्रथा है लेकिन इतना तो हमें मानना ही पड़ेगा कि यह एक ऐसी चीज है जो कि सभ्य व्यवहार और मानवता के लिए आदर की सीख देती हैं। अहिंसा जमहूरियत का रूहे-रवां है और तशद्दुद या हिंसा जमहूरियत के मिज़ाज के बिल्कुल मनाफी है। हमें अहिंसा, रवादारी और आपसी समझ-बूझ का जज़्बा पैदा करना चाहिए। इसलिए कि यह जज़्बा खाली कौमी जिन्दगी की कदरों को बरकरार रखने के लिए ही जरूरी नहीं है बल्कि हमारी बका के लिए लाजमी है। और यह हमारी जनता के लिए कोई मुश्किल बात भी नहीं है क्योंकि कुदरती तौर पर उसमें इसकी सलाहियत मौजूद है। लेकिन जरूरत इस बात की है कि लोग आजकल की समस्याओं को अपने मुस्तकबल के तसव्वुर और शानदार माजी की रोशनी में देखना सीखें। मुझे उम्मीद है कि ऐसा ही होगा। जय हिन्द !

गांधी जी–एक दीप्तिमान नेता

[१ अक्टूबर १९६८ को गांधी शताब्दी समारोह पर राष्ट्रपति का संदेश]

गांधीजी अकेले भारत के ही नहीं थे। उन्होंने हर सभ्यता तथा संस्कृति के सर्वश्रेष्ठ तत्वों को आत्मसात् किया था। गांधी जी आध्यात्मिक तथा भौतिक जीवन को एक दूसरे से अविच्छिन्न मानते थे तथा उनके हर कार्यक्रम मे इस तथ्य की झलक मिलती थी। गांधी जी एक दीप्तिमान नेता थे, जिनके व्यक्तित्व में प्रखर मेधा तथा उदारतम हृदय, ऊंचे आदर्श तथा व्यवहारिकता दोनों का समावेश था। गांधी जी गहरी सत्यनिष्ठा तथा करुणा की साकार मूर्ति थे, इसी कारण उन्होंने अहिंसात्मक तरीके से कई क्रांतिकारी कार्य किए।

मेरा दृढ़ विश्वास है कि मानवता के विकास पर गांधी जी का जो प्रभाव पड़ा है, वह जैसे-जैसे शताब्दियां बीतती जायगी, और भी महत्वपूर्ण तरीके से प्रकट होता जाएगा। गांधी जी को केवल संत के रूप में ही स्मरण करना भूल होगी। वह इसी संसार के व्यक्ति थे और आधुनिक भारत तथा विश्व की राजनैतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक कठिनाइयों से सम्बद्ध थे। उनके व्यक्तित्व में आध्यात्मिक, नैतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक मूल्यों का, आदर्श कोटि का समन्वय था।

गांधी जी ने नैतिकता पर जो जोर दिया है उसकी चर्चा करते हुए राष्ट्रपति ने कहा कि कोई भी व्यक्ति या समाज अथवा राष्ट्र नैतिक कानून के दायरे के बाहर नहीं रह सकता और यदि वह ऐसा करेगा तो उसकी बरबादी निश्चित है। गांधी जी ने कभी इस बात को नहीं माना कि नैतिक आदर्श किसी व्यक्ति के लिए एक तथा वर्ग या राष्ट्र के लिए अलग हो सकता है। सभ्यता तथा संस्कृति तभी सार्थक होंगे, जब व्यक्ति तथा राष्ट्र नैतिक कानून के दायरे में रह कर

राजनीतिक तथा आर्थिक शक्तियों का प्रयोग करे। नैतिक कानून मान लेने पर किसी भी प्रकार का शोषण, चाहे वह राजनीतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक किसी भी प्रकार का हो नहीं हो, सकता। नैतिक कानून के अन्तर्गत कुछ व्यक्तियों अथवा वर्गों की दूसरे वर्गों पर अधिपत्य की भी कोई गुंजाइश नहीं रह जाती। गांधीजी ने बार-बार इस बात पर जोर दिया है कि व्यक्तिगत, सार्वजनिक, तथा राष्ट्रीय नैतिकता को अलग-अलग नहीं किया जा सकता। नैतिक सिद्धान्तों को अन्तर्राष्ट्रीय आधार पर मान लेने के इस सिद्धांत के इतने दूरगामी परिणाम हैं कि हम में से बहुत थोड़े व्यक्ति ही इस चुनौती का सामना करने को तैयार हैं। परन्तु अगर हम इस चुनौती को स्वीकार नहीं करते तो इस विश्व में जिसमें स्पर्द्धा, प्रतिद्वन्द्विता तथा आणविक हथियार जोड़ने की होड़ बढ़ रही है, क्या मानव समाज का कोई भविष्य रह जाएगा ?

गांधी जी के सम्बन्ध में इससे अच्छी तरह और कोई बात नहीं जानी जाती कि वे कितना भी महान अथवा क्रान्तिकारी लक्ष्य प्राप्त करने के लिए पवित्र साधनों को ही काम में लाने पर जोर देते थे। पवित्र साधनों से गांधी जी का अर्थ यह था कि जो कार्य किया जाय, वह प्रेम तथा अहिंसा की भावना से किया जाए। उनकी बड़ी सहज मान्यता थी कि प्रेम को कार्य रूप में परिणति ही अहिंसा है।

गांधी जी के सत्याग्रह के व्यावहारिक पक्ष की व्याख्या करते हुए डा० जाकिर हुसैन ने कहा कि गांधी जी का 'सत्याग्रह' अहिंसात्मक तरीके से किया गया सक्रिय प्रतिरोध था। हम लोगों को यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि गांधी जी ने अहिंसात्मक तरीके से काम करने पर जोर दिया था, अहिंसा के सिद्धांत मात्र पर नहीं। उनकी अहिंसा हर प्रकार के अन्याय तथा अत्याचार के विरुद्ध सक्रिय प्रतिरोध का दूसरा रूप थी। इस प्रकार अहिंसा का सिद्धांत चाहे जितना पुराना हो, सत्याग्रह अथवा अहिंसात्मक तरीके से सक्रिय प्रतिरोध का तरीका गांधी जी की अहिंसा का अपना रूप है। हमें यह भी याद रखना चाहिए कि सत्याग्रह व्यक्ति विशेष का कार्यमात्र नहीं है, बल्कि वर्ग का तथा सामुदायिक कार्य भी है। गांधी जी ने सत्याग्रह के सिद्धांत की खोज ही नहीं की, बल्कि तीन महान अहिंसात्मक आन्दोलन चलाए, जिसमें देश के लाखों लोगों ने भाग लिया और इस प्रकार ब्रिटिश शासन से भारत को मुक्ति दिलायी। इतिहास का कोई भी सत्यनिष्ठ विद्यार्थी इस बात को मानने से इन्कार नहीं करेगा कि भारत की स्वतन्त्रता की लड़ाई के मुख्य स्रोत गांधी जी के नेतृत्व में आयोजित ये अहिंसात्मक क्रांतियां थीं। गांधी जी द्वारा सत्याग्रह को व्यवहार में लाए जाने से पहले इतिहास का यह ध्रुव सत्य सा बन गया था कि कमजोर को या तो शक्तिशाली के सामने झुक जाना चाहिए अथवा नष्ट हो जाना चाहिए। परन्तु गांधी जी के बाद हमारे इतिहास की यह मान्यता समाप्त हो गई। सत्याग्रह की लड़ाई में उस व्यक्ति के पास, जो शारीरिक दृष्टि से चाहे दुर्बल हो, परन्तु जिसमें आत्मिक दृढ़ता हो, उस आदमी के खिलाफ लड़ने की अधिक ताकत है जो शारीरिक दृष्टि से सुदृढ़ है परन्तु जिसका चरित्र दुर्बल है। इसीलिए सत्याग्रह के समर्थक इसे, न्याय तथा स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष में, हर स्थिति में और सर्वत्र बहुत बड़ा हथियार मानते हैं। दुनिया जितनी जल्दी सत्याग्रह के सही अर्थ तथा इसकी ताकत को समझेगी, दुर्बल तथा असहाय समझे जाने वाले लोगों की अत्याचार तथा अन्याय के विरुद्ध लड़ने की ताकत उतनी ही बढ़ती जाएगी। कैसा भी अत्याचार तथा आधिपत्य उन लोगों की चुनौती का सामना नहीं कर सकता जो सिर झुकाने के बदले मरना पसंद करते हैं।

गांधी जी ने विश्व की तमाम धार्मिक परम्पराओं के प्रति समान आदरभाव रखने की शिक्षा

दी है। गांधी जी विभिन्न धर्मों में निहित शक्ति का पता लगाने के लिए सभी धर्मों की एकता के हामी थे। धर्मों की इसी समन्वित शक्ति से वे राजनीति तथा अर्थनीति को प्रभावित करना चाहते थे। अन्तर्राष्ट्रीय धार्मिक एकता की कुंजी तमाम धर्मों के प्रति समादर की भावना, सहिष्णुता तथा उदार दृष्टिकोण में निहित है। जब तक धर्म तथा नैतिकता की भावना से हमारी राजनीति तथा अर्थनीति प्रभावित नहीं होगी, हमारे धर्म अवसन्नता के शिकार रहेंगे तथा आधुनिक विज्ञान तथा तकनीक की प्रगति के साथ भौतिकता की जो प्रचंड लहर आएगी, उसमें ये धर्म नष्ट हो जायेंगे। गांधी जी हमारे समय के एकमात्र महान राजनेता थे, जिन्होंने इस बात को असंदिग्ध रूप से सिद्ध कर दिया कि धर्म में निहित प्रेरणा का उपयोग मानवीय स्वतन्त्रता तथा सामाजिक न्याय के लक्ष्य की प्राप्ति में किया जा सकता है।

गांधी जी ने लोकतन्त्र की अपनी नई परिभाषा दी है। इस पर अमल किए बिना हमारा त्राण नहीं है, अगर हम सच्चे अर्थों में लोकतन्त्रीय बनना चाहते हैं। जैसा कि कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा है: लोकतन्त्र में जो महत्व श्रेष्ठतम तथा अत्यधिक विकसित लोगों का है, वही निर्धनों, छोटे वर्ग के लोगों तथा उपेक्षितों का भी है। गांधी जी ने बहुसंख्यक वर्ग के अनियंत्रित शासन को कभी लोकतन्त्र नहीं माना। अल्पसंख्यक तानाशाही का तो उनके सामने कोई प्रश्न ही नहीं था, चाहे वह तानाशाही कितनी भी सुदृढ़ अथवा क्रांतिकारी हो। उन्होंने इस बात को कभी स्वीकार नहीं किया कि शक्तिशाली की स्वतन्त्रता तथा समृद्धि के लिए दुर्बल वर्ग की उपेक्षा की जाए। नाम मात्र के लोकतन्त्र में भी न केवल अल्पसंख्यकों की सुविधाओं का पूरा ध्यान रखना जरूरी है, बल्कि किसी जाति अथवा वर्ग के भेदभाव के बिना सबको समान स्वतन्त्रता तथा कल्याण की सुविधाएं मिलना भी जरूरी है। उन्होंने ऐसे जातिविहीन तथा वर्गहीन समाज का प्रतिपादन किया, जिसका निर्माण अहिंसात्मक संघर्ष तथा शांति के साथ हो सकता है। गांधी जी के लोकतन्त्र की यह नई शाखा ही जिसमें सबसे निचले स्तर के व्यक्ति के कल्याण की चिंता की जाती है, 'सर्वोदय' है।

गांधी जी व्यक्ति के पूर्ण विकास के समर्थक थे। परन्तु साथ ही इस बात पर भी जोर देते थे कि इसके लिए ऐसे समाज की नितांत जरूरत है, जिसमें सबको पूर्ण न्याय प्राप्त हो तथा जहां शोषण न हो। नैतिक व्यक्ति तथा नैतिक समाज को अलग-अलग नहीं किया जा सकता। गांधी जी की दृष्टि में सभ्यता तथा संस्कृति की कसौटी इस बात में है कि समाज में हर व्यक्ति को समान न्याय तथा उन्नति का समान अवसर मिले तथा साथ ही विशेष प्रतिभावान व्यक्ति उन्नति के चरम शिखर पर पहुँच सकें और अपेक्षाकृत दुर्बल व्यक्तियों को उनकी सामर्थ्य के अनुसार विकास करने का अवसर मिले। हर उन्नतिशील व्यक्ति की बुद्धि तथा उसके शरीर की शक्तियों का उपयोग कम विकसित व्यक्तियों की सेवा के लिए निस्वार्थ भाव से समर्पित होना चाहिए। इस लक्ष्य की प्राप्ति शिक्षा, कानून तथा जहां जरूरी हो, सत्याग्रह से की जानी चाहिए।

हमारी शताब्दी का या तो यह सौभाग्य होगा कि हम गांधी जी की शिक्षाओं पर ध्यान देकर न्याय, समानता तथा कल्याण पर आधारित नई तथा अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक व्यवस्था की दिशा में आगे बढ़ें अथवा हमारे युग का सबसे अधिक निराशाजनक पक्ष यह होगा कि हम उन्हें भूल जाएं और धीरे-धीरे ऐसे स्थल पर पहुँच जाएं, जिसके आगे आणविक शस्त्रों के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। मैं इस बात की वकालत नहीं करता कि गांधी जी की कोई बात बिना समझे बूझे मानी जाए। परन्तु मैं यह बात दृढ़तापूर्वक कहना चाहूँगा कि हम, जिन आदर्शों के लिए गांधी जी खड़े हुए, उनका गहन अध्ययन करें।

आपसी सहयोग

[काठमांडू में १३ अक्टूबर १९६८ को नागरिक अभिनन्दन समारोह में राष्ट्रपति का भाषण]

सम्माननीय प्रधान पंच जी, नगर पंचायत के माननीय सदस्यगण तथा काठमाण्डू के सहृदय नागरिकगण।

आपके इस प्यार भरे स्वागत के लिए मैं आपका हृदय से आभारी हूँ। आपका यह स्वागत और इसमें निहित आपकी उदार भावनाएँ सिर्फ मेरे अपने लिए नहीं हैं, बल्कि यह भारत और नेपाल के लोगों के बीच गाढ़े प्रेम, मित्रता और एक दूसरे के नजदीक होने की निशानी और सबूत हैं। दूसरी ओर आपके इस स्वागत ने भारत और नेपाल के पुराने और नये संबंधों को भी बहुत सुन्दर रूप से प्रगट किया है। इस स्वागत के लिए मैं आप लोगों को भारत सरकार तथा भारत की जनता की ओर से धन्यवाद देता हूँ और साथ ही नेपाल की जनता के लिए भारत की जनता के अमर और चिरस्थाई आदर और प्रेम का विश्वास दिलाता हूँ।

आपका यह नगर बहुत सुन्दर और मनमोहक है। प्रकृति ने हर प्रकार से अपने सौन्दर्य से काठमाण्डू घाटी को सजाया है। नेपाल के कुशल कलाकारों ने घाटी की इस सुन्दरता के साथ-साथ इस नगर में अपनी कला से चार चाँद लगा दिए हैं। इस नगर के घर-द्वार, खिड़कियाँ और कंगूरे इन कलाकारों की बेमिसाल कला के अनोखे नमूने हैं। ऐसा लगता है कि इस हरी-भरी घाटी को और उसमें जड़े हीरे जैसे सुन्दर नगर को प्रकृति और मानव दोनों ने मिलकर सजाया और संवारा है। आज आधुनिक युग के अनुरूप इन दोनों को और भी आकर्षक बनाने की विशाल संभावनाएं हैं। मुझे विश्वास है कि नेपाल के कलाकारों की अद्भुत सूझबूझ और विज्ञान तथा तकनीकी युग के साधनों द्वारा निकट भविष्य में ही काठमाण्डू एशिया में ही नहीं, बल्कि दुनिया

के सुन्दरतम नगरों में गिना जाएगा और इसका श्रेय आपकी नगर पंचायत को होगा।

मैने सुना है कि काठमांडू घाटी के आकर्षण अब भी विदेशी टूरिस्टों को बड़ी संख्या में आकर्षित कर रहे हैं और यह संख्या हर वर्ष बढ़ रही है। हर दृष्टिकोण से यह एक बहुत ही अच्छी और खुशी की बात है।

टूरिज्म यानी पर्यटन, अन्तर्राष्ट्रीय मित्रता और सद्भावना का अनन्त स्रोत है, साथ ही पर्यटन एक उद्योग माना जाता है। आज के युग में आर्थिक उन्नति और खुशहाली का यह एक बड़ा जरिया भी है। बहुत से देशों के लिए तो पर्यटन ही उनके बजटों और आमदनी का मुख्य आधार है।

खास तौर से ऐसे विकासशील देशों की उन्नति के लिए कि जिनके पास सय्याहों के लिए घने आकर्षण के स्थान हैं, पर्यटन उद्योग विदेशी मुद्रा की आमदनी का एक मुख्य साधन बन सकता है।

भारत सरकार ने नेपाल सरकार को पर्यटन उद्योग के विकास के लिए हर तरीके के सहयोग का आश्वासन दिया है। खासकर पोखरा और लुम्बिनी जो पर्यटन की दृष्टि से महत्वपूर्ण आकर्षण केन्द हैं, उनके विकास के लिए भारत ने पूरा-पूरा सहयोग देने का वचन दिया है। पोखरा की सुन्दर और विशाल झील और उसके किनारों से उभरते हुए ऊंचे-ऊंचे हरे-भरे पहाड़ और बर्फ से ढकी हुई उन पहाड़ों की चोटियाँ जिनका अक्स उस पानी में दिखलाई देता है, दुनिया के किसी भी पर्यटन केन्द्र का मुकाबला कर सकते हैं। पर्यटन उद्योग के विकास की नेपाल में असीम संभावनाएँ हैं।

हमारे दोनों देश पर्यटन उद्योग को महत्व देते हैं और जानते हैं कि जैसे-जैसे सय्याहों के लिए जरूरी सुख-सुविधाओं का प्रबंध होगा और जैसे-जैसे हमारे लोगों का सय्याहों के प्रति व्यवहार अधिक सुन्दर और सहायता और आदर की भावनाओं से भरा-पूरा बनता जाएगा, वैसे-वैसे हमारे देशों में पर्यटन उद्योग तेजी से बढ़ेगा। भारत और नेपाल की भौगोलिक समीपता को दृष्टि में रखते हुए यह आवश्यक है कि पर्यटन उद्योग के विकास के लिए दोनों देश एक दूसरे की सहायता करें और सहयोग दें।

नेपाल और भारत दोनों विकासशील राष्ट्र हैं, इसलिए अन्य क्षेत्रों में भी दोनों को एक दूसरे की सहायता करना बहुत ही जरूरी है। यह खुशी की बात है कि दोनों देशों में आपसी सहयोग और सहायता की एक शानदार मर्यादा कायम हो चुकी है।

कोसी और गंडक नदियों के पानी के सदुपयोग और बाढ़ की रोकथाम का जो महत्वपूर्ण काम हुआ है, उससे दोनों देशों की जनता के सुख और तरक्की का एक नया दौर शुरू हुआ है। इन योजनाओं में भारत को नेपाल से जो सहयोग मिला है उसके लिए भारत सदा आभारी रहेगा।

इस आपसी सहयोग की भावना से ही नेपाल के विकास कार्यों में भारत ने अपने सीमित साधनों और शक्ति के अनुसार नेपाल का हाथ बँटाया है। मुझे बताया गया है कि भारत के सहयोग से नेपाल में अब तक ११० विकास योजनाएं पूरी हो चुकी हैं और बहुत सी विकास योजनाओं पर काम चल रहा है। जो विकास कार्य पूरे हो चुके हैं, उनमें सड़कें और हवाई अड्डे बनाए जाने की योजनाएं सिंचाई तथा पीने के पानी की योजनाएं, बिजली पैदा करने की योजनाएं, शिक्षा और स्वास्थ्य की योजनाएं, कृषि और पशुपालन की योजनाएं तथा अन्य प्रकार की योजनाएं शामिल हैं। खास काठमांडू नगर में ही भारत जाने वाली सड़क त्रिभुवन राजपथ, तारघर, बड़ा डाकघर, विदेशी डाकघर टेलीफोन

एक्सचेंज, विश्वविद्यालय के कुछ भवन बिजली सप्लाई और पीने के पानी की योजनाएं इस आपसी सहयोग की प्रतीक हैं।

मैं कामना करता हूं कि दोनों देशों के बीच मित्रता, आपसी सहयोग और एक दूसरे के सुख-दुख में शामिल होने की यह भावनाएं दिन दूनी और रात चौगुनी बढ़ती रहें। मैं एक बार फिर काठमांडू नगर के नागरिकों को उनके इस भाव भरे स्वागत के लिए धन्यवाद देता हूं और काठमांडू के नागरिकों के सुख तथा उन्नति के लिए हार्दिक शुभकामनाएं अर्पित करता हूं।

जय नेपाल—जय भारत !

राष्ट्रीय मार्ग

हमारी सभी भारतीय भाषाएं हैं और उनका विकास करना राष्ट्रीय कार्य है जिसमें सब देशवासियों को योग देना चाहिये।

डा० जाकिर हुसैन

दो भाइयों का पुनर्मिलन

[२ जनवरी, १९६९ को ईरान के शहंशाह के स्वागत में राष्ट्रपति का भाषण]

महामहिम शहंशाह और शाहबानो,

भारत में फिर से आपका स्वागत करते हुए हमें खुशी है। लगभग बारह वर्ष पहले आपकी पिछली यात्रा की स्मृतियां अभी भी ताजा हैं।

आजकी दुनिया, ईरान और भारत बहुत बदल गये हैं। फिर भी, हमारे प्राचीन, परम्परागत और भाईचारे के सम्बन्ध इन परिवर्तनों के बावजूद न केवल नहीं बदले हैं बल्कि हमारे निरन्तर और व्यापक सहयोग के कारण दृढ़ हुए हैं। आपके विवेकपूर्ण नेतृत्व में ईरान ने जो बड़ी प्रगति की है, उसकी हमने प्रशंसा की है। हमें आशा है कि अपनी पिछली यात्रा के बाद हमारी जनता के प्रयासों और उपलब्धियों को देखने में आपकी रुचि होगी। हमें पूरा विश्वास है कि ईरान और भारत द्वारा एक दूसरे को फिर से खोज निकालने के कारण हमारे प्राचीन सम्बंध पुनर्जीवित हो उठेंगे, दोनों देशों के बीच सहयोग बढ़ेगा तथा एशिया और विश्व में शांति, स्थायित्व और प्रगति को बल मिलेगा।

भारत सरकार और भारत की जनता की ओर से मैं शाही मेहमानों के लिए विशेषकर आपकी सदासंगिनी के लिए जो पहली बार हमारे देश की यात्रा कर रही हैं, अपने देश को अत्यधिक सुखद यात्रा की कामना करता हूं।

आज अपने बीच आप शाही मेहमानों की उपस्थिति इस बात की याद दिलाती है कि ईसा के दो हजार वर्ष पूर्व से कुछ समय पहले हम एक ही परिवार के थे। जो अनेक राष्ट्र और जातियां हमारे सम्पर्क में आई हैं और जिन्होंने हमारे जीवन और संस्कृति को प्रभावित किया है, उनमें सबसे प्राचीन और

स्थायी ईरानी ही रहे हैं। भारत आर्य सभ्यता के आरम्भ से भी पहले के ये संबंध हैं। भारतीय आर्य और ईरानी एक ही मूल से अलग हुए। वैदिक धर्म और जरतुश्त मत में बहुत समानता है तथा वैदिक संस्कृति और पुरानी पहलवी एक दूसरे से बहुत मिलती हैं। इस प्राचीन पूर्वज परम्परा ने निरंतर दोनों देशों की स्थापत्यकला, संगीत, चित्रकला और मूर्तिकला में अभिव्यक्ति पाई है।

प्राचीन काल में भारत में फारसी भाषा के कुछ प्रतिभाशाली कवियों ने जन्म लिया, जबकि अशोक के भवनों पर भी "परसेपेलिस" की स्थापत्यकला का प्रभाव पड़ा। आपके संग्रहालय में डेरियस के चित्र में सूर्य और कमल के प्रीतक चिन्ह हैं जो पूरी भारत आर्य परम्परा में समान रूप से पाये जाते हैं। स्वर्गीय प्रधानमंत्री, श्री नेहरू ने कहा था कि भारत और ईरान की जनता के मूल और इतिहास के सम्बन्धों में जितनी निकटता है, उतनी निकटता बहुत कम लोगों में रही है।

अपनी पिछली यात्रा के दौरान आपने कहा था कि भारत और ईरान के राजनीतिक और आर्थिक सम्बन्धों के साथ अध्यात्मिक और सांसारिक सम्बन्ध विश्व के प्राचीन इतिहास के सर्वाधिक रोचक तथ्यों में से हैं तथा आप हमारे पूर्वजों से उत्तराधिकार में प्राप्त सहयोग की भावना को पुनर्जीवित करने का प्रयास कर रहे हैं। इस सन्दर्भ में आपकी भारत यात्रा हमारे मन में सभ्यता के आरम्भ में हमारे प्राचीन और पुनीत महाकाव्य रामायण में वर्णित इतने ही समय बाद दो भाइयों के सुप्रसिद्ध पुनर्मिलन की याद दिलाती है। इस पुनर्मिलन के बाद ही सत्य और न्याय पर आधारित एक आदर्श प्रशासन "रामराज्य" का शुभारम्भ हुआ, जिस सिद्धांत को पुनः गांधीजी ने हमारे सम्मुख रखा।

हमें पूरी आशा है कि आपकी यात्रा से, जो भारत-ईरान संबंधों में एक महत्वपूर्ण चरण है, केवल दोनो देशों के बीच प्राचीन संबंध ही फिर से नये नहीं होंगे, बल्कि शासन के आधुनिक सिद्धांतों के परिपालन में भी दोनों साथ-साथ आगे बढ़ेंगे।

आपकी पिछली यात्रा के बाद से दुनियां और हमारे दोनों देशों में बहुत कुछ हुआ है तथा भारत और ईरान के बीच विभिन्न क्षेत्रों में सहयोग के अनेक अवसर मिले हैं। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में हम सभी देशों, विशेषकर अपने पड़ौसियों के साथ मैत्री से अधिक कुछ नहीं चाहते हैं और दृढ़ता पूर्वक विश्वास करते हैं कि किसी देश के साथ हमारी मित्रता दूसरे देश की कीमत पर नहीं होनी चाहिए। हम अब भी मुख्य रूप से शान्ति और स्थायित्व चाहते हैं तथा बिना बाहरी हस्तक्षेप के संबंधित पक्षों द्वारा विवादों का शान्तिपूर्ण निपटारा चाहते हैं। आपकी स्वतंत्र राष्ट्रीय नीति तथा हमारी गुटों से अलग रहने की नीति में बहुत समानता है।

भारत-ईरान सम्बन्धों में हम सहयोग बढ़ाने के अवसरों का स्वागत करते हैं तथा आपके विवेकशील नेतृत्व में ईरान ने जो अत्यधिक प्रगति की है उसकी हम प्रशंसा करते हैं तथा उससे लगातार शिक्षा लेते हैं। अपनी अर्थव्यवस्था के विकास में हमारे साधन और अनुभव हमारे मित्रों, विशेषकर ईरान जितने निकट के मित्रों के लिए हैं।

दोनों देशों के बीच विभिन्न विकास कार्यों में ऐसे सहयोग का महत्वपूर्ण आरम्भ हुआ है और हम आशा करते हैं कि हमारे आधुनिक उद्योग मंदिरों की आपकी यात्रा से एक प्राचीन देश के नये रूप सामने आयेंगे तथा प्राचीन और परम्परागत मैत्री के नये युग का आरम्भ होगा।

देश के अन्दर हम अपनी लोकतंत्री जीवन पद्धति का राष्ट्रीय एकत्रीकरण और दृढ़ीकरण तथा अपनी जनता के रहन-सहन में तेजी से सुधार लाना चाहते हैं। हमारी नीतियां और प्रयास इसी लक्ष्य की ओर हैं। इसके लिये शान्ति और स्थायित्व अनिवार्य है, यद्यपि आपकी तरह हम अपने व्यापक प्राचीन मूल्यों के दृढ़ समर्थन, अन्य संस्कृतियों और विश्वासों के लिए अधिक उदारता व सहिष्णुता बनाये रखते हुए, जैसे हम दोनों की सभ्यता सामने आई वस्तुओं को अपनाकर करती रही है, रचनात्मक परिवर्तन का स्वागत करते हैं।

ईरान और भारत के सम्बन्ध इस्पात जैसे मजबूत और रेशम जैसे कोमल हैं। हमारी कामना है कि शान्ति, समृद्धि और प्रगति के हित में वे निरन्तर बढ़ें। ●

स्वतन्त्रता की रक्षा का तकाजा

स्वतंत्रता की रक्षा के लिए सतत जागरूकता आवश्यक है। इस काम को सेना के जवान और अधिकारी बखूबी कर रहे है। वे जहां कहीं भी हैं, अपने काम की जोखिमों और कठिनाइयों के उपरान्त भी सीमा की निरन्तर चौकसी कर रहे हैं और अपने काम में ऊंचे दर्जे की कुशलता, तैयारी और अनुशासन बनाए हुए हैं। मेरी ओर से उन्हें हार्दिक बधाई और शुभ कामनाएं।

—डॉ० जाकिर हुसैन

शास्त्रीजी की पावन स्मृति

[१० जनवरी, १९६९ को ताशकंद घोषणा की वर्षगांठ पर राष्ट्रपति के उद्‌गार]

आज ताशकद घोषणा पर हस्ताक्षर होने की तीसरी वर्षगांठ है। इस करार के जरिये भारत और पाकिस्तान अपने संबंध सामान्य बनाने पर तथा आपसी मतभेदों को द्विपक्षी बातचीत के जरिये शांतिपूर्ण सुलझाने पर सहमत हुए। इस करार से मैत्री और सद्‌भावना के नये युग के बारे में बड़ी आशायें पैदा हुईं।

भारत-पाकिस्तान संबंधों को सामान्य करने के लिए हमने कई बार पहल की है और उस पर बहुत कम प्रतिक्रिया के बावजूद हमारा विश्वास है कि दोनों देशों के बीच मामलों को सुलझाने के लिए ताशकंद घोषणा ठोस आधार है। मुझे इस बात से खुशी है कि अनेक अन्य देशों ने भारत-पाकिस्तान समस्याओं को आपसी बातचीत और शांतिपूर्ण ढग से निपटाने में अपना विश्वास प्रकट किया है, जो ताशकंद घोषणा की भावना के ही अनुकूल है।

ताशकंद घोषणा के चौथे वर्ष में प्रवेश करने के साथ ही मैं स्वर्गीय प्रधान मंत्री शास्त्री जी की स्मृति में श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं। उनके निधन ने इस घोषणा को पावन बना दिया।

मुझे आशा है कि भारत और पाकिस्तान चाहे उनकी वर्तमान कठिनाइयाँ कुछ भी हों, अपनी-अपनी जनता के कल्याण को नहीं भूलेंगे, जो संघर्ष में नहीं बल्कि शांतिपूर्ण सहयोग में है। ●

आगे बढ़ने का सही रास्ता

[२७ अक्टूबर, १९६३ को माउण्टआबू में राजस्थान प्रान्तीय रेड-क्रास सोसाइटी की सभा में डा० जाकिर हुसैन का भाषण]

बालक और बालिकाएं हमारे देश का भूषण हैं। देश बड़ा फैला हुआ देश है। इसमें भांति-भांति के लोग बसते हैं, अलग-अलग भाषाएं बोलते हैं. इनके अलग-अलग मत हैं, रहन-सहन भी बहुत कुछ अलग-अलग है पर ये सब यहां इकट्ठे हुए हैं इसलिए कि एक ही गोद के पले हुए हैं—भारत माता की गोद के। भारत इनका घर है और इस केन्द्र में उन्होंने अपने असली घर की एक झांकी देखी है। इस देश से हर भारतीय का संबंध उसकी समझ में तब आता है जब वह घर का अर्थ ठीक ढंग से समझ ले, जान ले। घर आदमी के लिए रंग-रंग के अर्थ लिए हुये हैं। बच्चे का घर उसकी मां की गरम-गरम प्यार से भरी गोद होती है। बढ़ता है तो मां-बाप की झोंपड़ी हो कि महल, बालक और बालिका का घर हो जाता है, फिर सारा गांव या मुहल्ला लगने लगता है, फिर आस-पास की बहुत सी चीजें, देखे-भाले पेड़, चिड़ियां, जाने-बूझे पहिचाने आदमी और जानवर इस घर का सामान बन जाते हैं। होते-होते चीजों से आगे बढ़कर यह घर अपने अन्दर विचारों को समेट लेता है। संस्कृति जिनमें दूसरे आदमियों ने अपने मस्तिष्क और अपनी आत्मा की शक्तियां सुला दी हैं, धार्मिक बातें, कलाएं, साहित्य, इतिहास, पूर्वजों की बातें, और पूर्वजों के कार्यों की यादें, और जाने क्या-क्या इस घर का सामान बन जाते हैं। घर का आंगन होते-होते सारे देश को घेर लेता है। सारे देश वाले अपने ही घर के लोग बन जाते हैं। देश का राजनैतिक संगठन, न्याय और नेकी पर चलने वाले राज्य, अपने इतिहास को सारी दौलत के साथ, अपनी संस्कृति के सारे अनमोल खजानों के साथ, अपने बड़ो की सारी बड़ाइयों और अपने अच्छों की सारी अच्छाइयों के साथ

इस घर का हिस्सा बन जाते हैं। मां की गोद से गांव और मुहल्ला, पास वाला टीला और नजदीक से गुजरने वाला नाला, फिर प्रान्त, फिर अपनी भाषा बोलने वाले, एक धर्म पर चलने वाले घर में आ जाते हैं और होते-होते घर में क्या-क्या नहीं सिमिट आता है, हिमालय और विंध्याचल गंगा और यमुना, ब्रह्मपुत्र, कृष्णा और कावेरी, बद्रीनाथ और रामेश्वरम्, द्वारिका और जगन्नाथपुरी, राम और लक्ष्मण, गौतम बुद्ध और भगवान महावीर, शंकराचार्य और मोइनुद्दीन अजमेरी, अशोक और अकबर, नानक और कबीर, सूरदास, तुकाराम और मीराबाई, कालिदास और तुलसीदास, गालिब और उनीस, वल्लतोल और टैगोर, गांधी और अबुल कलाम, विनोबा और नेहरू-ये सब, इनके नाम, इनके काम सब घर बन जाते हैं और इनसे वही सुख मिलता है, वही गर्मी मिलती है, वही सहारा मिलता है, वही शक्ति मिलती है जो पहिले-पहिले मां की गोद से मिली थी। इसकी सेवा और इसकी रक्षा की वही लगन दिल में लग जाती है जैसे मां की सेवा और मां की रक्षा की। मुझे आशा है कि इस केन्द्र में आकर इन बालक और बालिकाओं के विचारों में भी घर के चित्रण ने ऐसा ही फैलाव पाया है। इन बड़े घर के संबंध में एक याद रखने की बात यह है कि इसके बनने और बढ़ने का काम कभी समाप्त नहीं होता, सदा चलता ही रहता है। पीढ़ी के पीछे पीढ़ी इसमें लगी रहती है। कभी ऐसी विपदा आती है कि काम रुक जाता है। इस केन्द्र में जो बालक और बालिकाएं आई हैं वे सुना है, चौदह से अठारह वर्ष की उम्र की हैं। इनका सौभाग्य है कि इन्होंने देश की गुलामी का जमाना नहीं देखा। गुलामी में इस भवन के बनने का काम समझो कि बन्द था। गुलाम का घर कहां होता है? गुलाम का अपना जीवन कहां होता है? दूसरे के सहारे, दूसरे से मांग-माग कर, दूसरे से डर-डर कर, दूसरे से सहम जिए जाना भी कोई जीवन होता है। न विचार अपने, न वलवले अपने, न इच्छायें अपनी, जीभ पर बोली पराई, मन में इच्छाएं चोरी की, न बोझ अपना, न इसे उठाने की शक्ति अपनी। यह हाल हर उस समाज का होता है जिसके हाथ से गुलामी में इसका अपना अधिकार छिन जाता है। एक आजादी के न होने से सारा जीवन अकारथ हो जाता है। हम इस गुलामी की अन्धियारी से गुजर चुके हैं, तुम खुश नसीब हो कि आजादी का सूरज तुम्हारे सिर पर चमक रहा है। इस पर हम-तुम जितनी खुशियां मनाएं कम हैं।

हां, यह बात याद रखने की है कि आजादी से आदमी की जिम्मेदारी बढ़ती है। गुलामी में न हुनर अपने होते हैं, न ऐब अपने। हुनर का लाभ तो दूसरों को मिलता ही है ऐब भी दूसरे के सिर थोपे जा सकते हैं। आजादी में हुनर भी अपना, ऐब भी अपना; अच्छाई भी अपनी, बुराई भी अपनी। इसलिए अब आर्थिक और आत्मिक शक्ति की राह पर तेजी से आगे बढ़ने की जिम्मेदारी हमारी अपनी है। आजादी पा लेना काफी नहीं, आजादी को अच्छी तरह काम में लाना और आजादी की हिफाजत करना भी जरूरी है। इन दोनों कामों के लिए नौजवानों को बनाना होगा। आप बुरा न माने तो कहूँ कि मुझे कभी-कभी ऐसा लगता है कि नौजवानों का ध्यान अपने बनाने की ओर कम है। ये लोग कुछ तो बनना चाहते हैं पर शायद पैसा कमाने को केवल बनना चाहते हैं, दूसरों पर अपना हुक्म और जोर चलाना चाहते हैं, नौकरी चाहते हैं, दौलत चाहते हैं, हुकूमत चाहते हैं। यह सब चाहें ऐसा नहीं है कि बुरी ही हों, पर जो आदमी सारी शक्तियों के पूरे विकास पर ध्यान नहीं देता वह चलना पुर्जा बन जाय, रसायन की पुड़िया बन जाय, आदमी नहीं बन पाता। जो आदमी नहीं बन पाया वह चाहे जो कुछ बने, सच यह है कि कुछ नहीं बन पाया। अपने को इस तरह बनाओ कि किसी और बनावट में बिगाड़ न पड़े। लगता ऐसा है कि हम में यह विचार फैलता जा रहा है कि

आगे बढ़ने का रास्ता बस यह है कि जीवन की रेल-पेल में औरों को कुहनी मार कर हटा दो, और आगे बढ़ जाओ। औरों को दबाओ, चाकर बनाओ, इनसे काम लो. इन्हें कम दो, आप ज्यादा लो, और आगे बढ़ जाओ। यह ढंग बिना लगाम शक्ति वालों का ढंग है और याद रखो कि यह ज्यादा दिन चलने वाला नहीं हैं। आदमी इस ढंग से उकता चुका है। जो इस डगर पर चलेगा, बस थोड़े ही दिन चल पायेगा। औरों के कन्धों पर ही ऊंचा होना चाहेगा वह जल्दी ही मुँह के बल गिरेगा। अब तो आदमी बनने के रास्ते बस दो हैं,एक रास्ता प्रकृति को काबू में लाने का, इस पर विजय पाने का, इसे अपना साथी बनाने का रास्ता है; दूसरा रास्ता है अपने ऊपर अधिकार पाने का, दूसरे के हक को समझने का और मानने का, अपनी इच्छाओं को दबाने का, दूसरों को सहारा देने का, और दूसरों से सहारा लेने का; यह सद्व्यवहार और सदाचार का रास्ता है। एक बाहर को बढ़ने का रास्ता है, दूसरा अन्दर से बढ़ने का रास्ता है। हमें इस भूल से बचना चाहिये कि इन रास्तों में से एक रास्ते पर चलना और दूसरे रास्ते को छोड़ना है सद्व्यवहार और सदाचार, उद्योग और विज्ञान बहिनें—बहिनें हैं। इनके साथ--साथ रहने में ही मनुष्य की भलाई है। हमें भी अपने देश में इन दोनों को साथ—साथ लेकर चलना है, अहिंसा और विज्ञान को मिलाना है।

आज हमारे राष्ट्रीय जीवन में दो कमियां साफ दिखाई देती हैं : एक तो अच्छे, नेक या ईमानदार, बे-झिझक ठीक को ठीक और गलत को गलत जानने और बताने वाले आदमियों की कमी है। हम में एक दो नहीं बहुतेरे अपनी इच्छाओं को अच्छाई और बुराई का माप-दण्ड मानते हैं। ठीक और सच बस वही है जिसमें हमारा अपनी समझ के अनुसार हमारा लाभ है और सब कुछ झूठ और गलत है। हम किसी को जो हमारे मत का नहीं है सच्चा और अच्छा नहीं मानना चाहते। हम अपनी छोटी-छोटी आवश्यकताओं के सामने दूसरों की, समाज की बड़ी-बड़ी भलाइयों को ध्यान में नहीं लाते। हम जरा-जरा सी बातों पर दूसरों से रूठ जाते हैं, सहनशीलता नहीं है, झट बफर जाते हैं, लड़ पड़ते हैं।

दोस्तो, नौजवानों याद रखो कि जिन लोगों के सामने बड़े काम होते हैं ये उनके लक्षण नहीं हैं। हमारे-तुम्हारे सामने बड़ा काम है, बड़ा भविष्य है, हमें आदमी बनाना है अपने सुधार में लग जाना चाहिये नहीं तो हमारे से यह बड़ा काम नहीं हो पायेगा।

दूसरी कमी हम में काम करने के ढंग की कमी है। काम से पूरा-पूरा फल लेने की कमी है। मेहनत से बचने की आदत है। दूसरों पर काम को टालने का अवगुण है, काम की पूरी-पूरी जानकारी की कमी है, विज्ञान की कमी है।

नौजवान दोस्तो, यह अब तुम्हारा काम है, नेकी और मेहनत का, अहिंसा और विज्ञान को, पूर्व और पश्चिम को मिलने का काम, अपने को बनाने का काम, अपने ऊपर दूसरों की सी कड़ी नजर रखने का काम. दोस्त बनने और मित्र बनाने का काम, दोस्ती निभाने का काम, मिल-जुल कर काम करने का काम, देश को ऊंचा उठाने का काम, इसकी सेवा में अपने पूर्ण विकास का काम, ठट्ठे मारने और नारे पुकारते फिरने से, बेपढ़े परीक्षा पास करने से, बे टिकट रेलों पर चढ़ने फिरने से, शोर मचाने, हड़ताल करने, कुछ किये बिना पाने, कुछ दिये बिना लेने की आदत से यह काम होने वाला नहीं है। अपने को बनाओ, अपने को बनाओ, तब यह सब काम बनेगा।

अच्छे रहिये, खुश रहिये, औरों को खुश और अच्छा बनाइये।

प्रमुख घटनाएँ

एवं

चित्र

जीवन-क्रम

[डॉ० जाकिर हुसैन के जीवन की प्रमुख घटनाएँ]

सन् १८९७—८ फरवरी,	जन्म, हैदराबाद दक्षिण में ।
१९१३	इस्लामियां हाई स्कूल इटावा से मैट्रिक की परीक्षा पास की ।
१९१५	बी० एससी० में प्रवेश ।
१९१८	बी० ए० परीक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण ।
१९२०	एँग्लो ओरियन्टल कालेज अलीगढ़ में एम० ए० में प्रवेश ।
१९२०—१२ अक्टूबर,	महात्मा गांधी का अलीगढ़ आगमन । गांधीजी की प्रेरणा से डॉ० जाकिर हुसैन ने ब्रिटिश सरकार द्वारा संचालित कालेज का बहिष्कार किया ।
१९२०—२९ अक्टूबर,	जामिया मिलिया इस्लामिया की स्थापना ।
१९२२	प्रथम विदेश यात्रा ।
१९२४	जामिया मिलिया को जीवनदान का सकल्प ।
१९२५	जामिया मिलिया का गांधी जी की राय से अलीगढ़ से दिल्ली स्थानांतरण ।
१९२६	बर्लिन में पी एच.डी. की डिग्री प्राप्त । (अर्थशास्त्र में)
१९२६	स्वदेश वापसी । जामिया मिलिया के उपकुलपति पद पर नियुक्ति । (डा.ज़ाकिर हुसैन साहब इस पद पर सन् १९४६ तक रहे)
१९३०	गाँधीजी द्वारा निर्मित नई तालीम समिति के अध्यक्ष नियुक्त ।
१९३७	बुनियादी शिक्षा योजना को अन्तिम रूप दिया ।
१९३८	हिन्दुस्तानी तालीमी संघ, सेवाग्राम के अध्यक्ष नियुक्त (डा. जाकिर हुसैन साहब इस पद पर सन् १९५० तक रहे ।

१९४६		जामिया मिलिया की रजत जयन्ती।
१९४८		अलीगढ़ मुस्लिम विश्व विद्यालय के उपकुलपति नियुक्त । (इस पद पर जाकिर हुसैन साहिब १९५६ तक रहे।)
१९५२		अमेरिका यात्रा।
१९५४		पद्मभूषण से अलंकृत।
१९५६		यूनेस्को के कार्यकारी मण्डल के सदस्य निर्वाचित ।
१९५६		सऊदी अरब की यात्रा।
१९५७		राज्य सभा के सदस्य।
१९५७	६ जुलाई	बिहार के राज्यपाल नियुक्त। (इस पद पर डॉ० जाकिर हुसैन ११ मई, १९६२ तक रहे।)
१९६२	१३ मई	भारत के उपराष्ट्रपति बने।
१९६३		भारतरत्न की उपाधि से विभूषित।
१९६४		अल्जीरिया व मोरक्को की यात्रा।
१९६५		कुवैत, सऊदी अरब, जॉर्डन, तुर्की व यूनान की यात्रा।
१९६६		अफ़गानिस्तान की यात्रा तथा सीमान्त गांधी खान अब्दुल गफ्फ़ार खाँ से पुनर्मिलन।
१९६६		थाईदेश, कम्बोदिया, सिंगापुर तथा मलेशिया की यात्रा।
१९६७	१० अप्रेल	कांग्रेस संसदीय बोर्ड द्वारा राष्ट्रपति पद के लिए सर्व सम्मति से नामांकन।
१९६७	६ मई	राष्ट्रपति निर्वाचित।

डा० ज़ाकिर हुसैन : जीवन-परिचय

ताराचन्द वर्मा

हमारे वर्तमान राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन साहिब का जन्म १८६७ ई० में हैदराबाद दक्षिण में हुआ, किन्तु उनके पुरखों का ठिकाना कायमगंज से मील डेढ़ मील दूर एक गांव पितौरा है। पितौरा पठानों की पुरानी बस्ती है। अब भी यहाँ आधे से ज्यादा पठान आबाद हैं। डा० जाकिर हुसैन का पितौरा वाला मकान उनके पूज्य पिता फ़िदा हुसैन साहिब का बनवाया हुआ है और बहुत शानदार है। डा० साहिब ने इसे उत्तर प्रदेश सरकार को शिक्षा सम्बन्धी कार्यों के लिए दे दिया है। व्यस्तता के कारण उन्हें स्वयं को वर्षों से पितौरा जाने का अवसर नहीं मिला है। वैसे पितौरा गांव पहले वाला पितौरा भी नहीं रहा है; अब बहुत तरक्की कर चुका है।

यह सब कुछ एक बुजुर्ग जनाब सुल्तान आलम खाँ साहब के लगातार प्रयासों का फल है। सुल्तान आलम खां साहब उत्तर प्रदेश के कांग्रेसी मन्त्रि-मण्डल में योजना उप मन्त्री भी रह चुके हैं। पितौरा ग्राम का काया-पलट अधिकतर इन्हीं के समय में हुआ है। डा० साहब के दादा गुलाम हुसैन खां गांव के सम्पन्न लोगों में से थे। थोडी-बहुत जमींदारी भी थी। इनके दो पुत्र थे। हुसैनखां व फिदा हुसैन खां। हुसैन खां साहिब बड़े थ फौज में रिसालदार थे। इनके सन्तान नहीं थी। फिदा हुसैन खा साहब हैदराबाद चले गये। वहाँ उन्होंने वकालत का पेशा आरम्भ किया और इतनी उन्नति की कि थोड़े ही दिनों में चोटी के वकीलों में गणना होने लगी। "आइनेदकन" के नाम से एक पत्र भी निकाला। इसमें कानून से सम्बन्धित सामग्री प्रकाशित होती थी। फिदा हुसैन साहब की मृत्यु बहुत कम आयु में हो गई। वे २६ वर्ष के थे कि भगवान् ने उनको अपने पास बुला

लया । मृत्यु के पश्चात् उनकी विधवा बाल-बच्चों को लेकर कायमगंज, पतौरा आ गई । जाकिर हुसैन साहब उस समय केवल ६ वर्ष के थे ।

फिदा हुसैन खाँ साहब के सात बेटे थे । सबसे बड़े मुज्जफर हुसैन खाँ थे । ये रियासत हैदराबाद में स्पेशल मजिस्ट्रेट थे । इनकी मृत्यु भी ३० वर्ष की अवस्था में हो गई । इनसे छोटे आबिद हुसैन खाँ साहब थे । वे अलीगढ़ में बी. ए. के विद्यार्थी थे और वहीं उनका स्वर्गवास हो गया । तीसरे जाकिर हुसैन साहब हैं । चौथे जाहिद हुसैन खाँ साहब थे । अलीगढ़ में पढ़ते थे और उसी समय में उनका स्वर्गवाहसहो गया । पाँचवे यूसुफ हुसैन खाँ साहब हैं । छठे भाई जफर हुसैन खाँ साहब का भी कम आयु में स्वर्गवास हो गया । सबसे छोटे महमूद हुसैन खाँ साहब हैं । स्वर्गीय मुज्जफर हुसैन खाँ साहब के तीन बच्चे हैं । दो लडके इम्तयाज हुसैन खाँ और मकसूद खाँ और तथा एक लड़की खदीजा बेगम । माँ का भी स्वर्गवास हो गया था इसलिए तीनों की शिक्षा का भार जाकिर हुसैन साहब ने ले लिया । इम्त्याज हुसैन साहब जामिया से बी. ए. करके लन्दन चले गये । वहाँ से एम. काम. होकर लौटे और उस्मानिया विश्व विद्यालव में अध्यापक हो गये । कई डिग्री कालेजों के आचार्य भी रहे । उन्हें दिल का रोग लग गया था और यही १९६६ में उनकी मौत का बहाना बना । मकसूद हुसैन साहब यहाँ से पढ़-लिख कर इंगलैण्ड और फ्रांस चले गये और वहीं से पी-एच० डी० की डिग्री ली । कुछ दिनों अलीगढ़ में उर्दू के अध्यापक रहे और फिर उस्मानिया विश्वविद्यालय चले गये, जहाँ वे उर्दू विभाग के अध्यक्ष हैं । डा० जाकिर हुसैन साहब के छोटे भाई यूसुफ हुसैन खाँ साहब भी जामिया से बी० ए० पास करके फ्रांस चले गये । वहीं से पी-एच० डी० की डिग्री लाये और उस्मानिया विश्व विद्यालय में अध्यापक हो गये उस्मानियाँ विश्वविद्यालय से सेवा निवृत होने के पश्चात काफी दिनों अलीगढ विश्वविद्यालय में प्रो वाइस-चान्सलर रहे । डा० महमूद हुसैन खाँ साहब जामियां की तालीम के बाद जर्मनी चले गये । वहाँ से इतिहास में पी-एच. डी. की डिग्री ली । डा० साहब की सिर्फ दो लड़कियां है—सईदा बेगम और सफिया बेगम ।

सईदा बेगम श्री खुर्शेद आलम को ब्याही हैं । खुर्शेद साहब नौकरी के सिलसिले में दिल्ली में हैं और जाकिर हुसैन साहब के जामियानगर वाले मकान की इन्हीं दोनों के दम से रौनक है । दूसरी लड़की सफिया बेगम शाहजहाँपुर में ब्याही हैं । इनके पति अलीगढ़ महाविद्यालय में प्राध्यापक हैं ।

हर बड़े आदमी के जीवन में एक घड़ी ऐसी आती है, जब उसे अपने बारे में एक महत्वपूर्ण निर्णय लेना पड़ता है । यही निर्णय उसके भावी जीवन की रूपरेखा को तैयार करता है । डा० जाकिर हुसैन साहब की जिंदगी में निर्णय की यह घड़ी सन् १९२० में आई ।

डा० साहब उस समय मुस्लिम एंग्लो ओरियंटल कालेज (अब अलीगढ़ मुस्लिम विश्व-विद्यालय) में एम० ए० के छात्र थे । इस संस्था का संचालन कुछ ऐसे लोग करते थे, जो ब्रिटिश साम्राज्य के हिमायती और राष्ट्रीय आंदोलन के विरोधी थे । गांधी जी १२ अक्टूबर, १९२० को इस कालेज में आए । गांधी जी के साथ स्वतंत्रता आंदोलन के प्रमुख मुसलमान नेता अली भाई भी थे । गांधी जी उन दिनों ब्रिटिश राज के खिलाफ असहयोग के आंदोलन का संचालन कर रहे थे । इस सम्बन्ध में वे देश के अनेक महत्वपूर्ण स्थानों पर गए ।

उक्त कालेज के यूनियन हाल में विद्यार्थियों और अध्यापकों के सामने भाषण करते हुए गांधी जी ने ब्रिटिश सरकार द्वारा संचालित शिक्षा संस्थाओं के बहिष्कार के पक्ष में जोरदार तर्क दिए

और राष्ट्रीय शिक्षा संस्थानों के विकास का महत्व बताया। गांधी जी के भाषण से प्रभावित होने वाले कुछ व्यक्तियों में जाकिर हुसैन साहब भी थे, जिनकी आयु उस समय केवल २३ वर्ष की थी। डा० साहब कुछ उन इने-गिने विद्यार्थियों और अध्यापकों में थे, जिन्होंने उक्त कालेज का बहिष्कार किया और २९ अक्टूबर सन् १९२० को जामिया मिलिया इस्लामिया की स्थापना की।

डा० साहब की प्रारम्भिक शिक्षा एक अंग्रेज शिक्षक की देखरेख में घर पर हुई। पिता की मृत्यु के बाद उन्हें तीन भाइयों सहित इटावा भेज दिया गया, जहां वे प्रसिद्ध इस्लामिया हाई स्कूल में पढ़ने लगे। इस स्कूल में डा० साहब भी अन्य विद्यार्थियों की तरह मोटे कपड़े पहनने लगे और वही भोजन करने लगे, जो अन्य विद्यार्थियों को मिलता था। उन्होंने अपने बाल भी छोटे कटवा दिए।

जब डा० साहब मुस्लिम-एंग्लो ओरियंटल कालेज में गए, तो उन्होंने वहां बिल्कुल भिन्न परिस्थितियां पाईं। डा० साहब पढ़ने में बहुत होशियार थे। पढ़ाई के अलावा वे वाद-विवाद तथा अन्य सांस्कृतिक गतिविधियों में भी खुलकर हिस्सा लेते थे।

जब डा० साहब ने राष्ट्रीय संघर्ष के जोखिमों को बहादुरी के साथ उठाने का निर्णय किया, तो उनके मित्रों को बहुत अचम्भा हुआ क्योंकि डा० साहब उस समय विवाहित थे। उन दिनों में प्रचलित रिवाज के अनुसार डा० साहब की शादी १८ वर्ष की आयु में हो गई थी।

जामिया मिलिया में दो वर्ष तक पढ़ाने के बाद डा० साहब ने स्वयं आगे पढ़ने का निर्णय किया। असहयोग आंदोलन के किसी भी समर्थक के लिए भारत के किसी भी विश्वविद्यालय या इंग्लैण्ड जाकर उच्च शिक्षा प्राप्त करना संभवत नहीं थी। डा० साहब सन् १९२२ के अन्तिम दिनों में इंग्लैण्ड के लिए रवाना हुए। लेकिन वे इटली में उतर गए। इटली से वे जर्मनी गए, जहां उन्होंने तीन सप्ताह तक अध्ययन करने की अनुमति ली। लेकिन तीन सप्ताह के स्थान पर वे तीन वर्ष तक जर्मनी में रहे।

बर्लिन विश्वविद्यालय ने उन्हें पी-एच डी. की उपाधि से सम्मानित किया। पढ़ाई के अलावा यूरोप में उन्होंने अनेक गतिविधियों में भी हिस्सा लिया। उन्होंने स्कैंडेनेवियाई देशों का भ्रमण किया। अपना खर्च चलाने के लिए उन्होंने महात्मा गांधी पर अनेक लेख लिखे और भाषण दिए। उन्होंने चित्रकला और संगीत का भी खूब ज्ञान बढ़ाया।

जर्मनी में प्रवास के दौरान सन् १९२४ में जब डा० साहब को यह पता चला कि आर्थिक संकट के कारण जामिया मिलिया को बन्द किया जा रहा है, तो उन्होंने जामिया मिलिया के संचालकों को तुरन्त एक तार भेजा। तार में उन्होंने कहा कि मैंने और यूरोप में मेरे अन्य साथियों ने जामिया मिलिया के काम में अपना जीवन दान करने का निर्णय किया है। जब तक हम भारत नहीं लौटते, जामिया को बन्द न किया जाए। जामिया मिलिया बन्द नहीं हुआ और गांधी जी के कहने पर १९२५ में इसे अलीगढ़ से दिल्ली में स्थानान्तरित कर दिया गया। भारत लौटने पर १९२६ में डा० साहब को जामिया मिलिया का उपकुलपति नियुक्त किया गया।

२९ वर्ष की आयु में उपकुलपति बनना डा० साहब के लिए वास्तव में बड़े सम्मान की बात थी। लेकिन यह एक कांटों का ताज था। फिर भी उन्होंने इस चुनौती को बड़े साहस के साथ स्वीकार किया और २२ वर्ष तक निरन्तर मेहनत करके जामिया मिलिया को शिक्षा का एक महत्वपूर्ण केन्द्र बना दिया।

सन् १९३७ में जब भारत को प्रांतीय स्वायत्तता प्राप्त हुई तो गांधीजी ने नई सरकारों से बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्त को अपनाने का आग्रह किया। गांधीजी ने बुनियादी शिक्षा की राष्ट्रीय समिति की अध्यक्षता के लिए डा० जाकिर हुसैन साहब को निमन्त्रण भेजा, ताकि वह इस सिद्धान्त को ठोस रूप में सब के सामने पेश कर सकें। डा० जाकिर हुसैन साहब ने जिस जोरदार ढंग से बुनियादी शिक्षा की संतुलित परिभाषा प्रस्तुत की, उससे बुनियादी शिक्षा के कट्टर विरोधी भी नर्म पड़ गए।

विभाजन के बाद भारत के पहले शिक्षा मन्त्री मौलाना आजाद ने डा० जाकिर हुसैन से अलीगढ़ विश्वविद्यालय का उपकुलपति बनने का आग्रह किया। अलीगढ़ पृथक मुस्लिम राजनीति का गढ़ था और विभाजन के बाद इस विश्वविद्यालय के बहुत से अध्यापक और विद्यार्थी पाकिस्तान चले गए थे। इन परिस्थितियों में कुछ व्यक्तियों ने इस विश्वविद्यालय को बन्द करने का भी सुझाव दिया। डा० जाकिर हुसैन १९४८ में उस विश्वविद्यालय के उपकुलपति बने, जिसे ३० वर्ष पूर्व विरोध में उन्होंने छोड़ा था। इस विश्वविद्यालय को एक नए वातावरण में आगे ले जाने का प्रण उन्होंने लिया।

अलीगढ़ विश्वविद्यालय के उपकुलपति की हैसियत से उन्होंने विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग तथा प्रेस आयोग में भी काम किया।

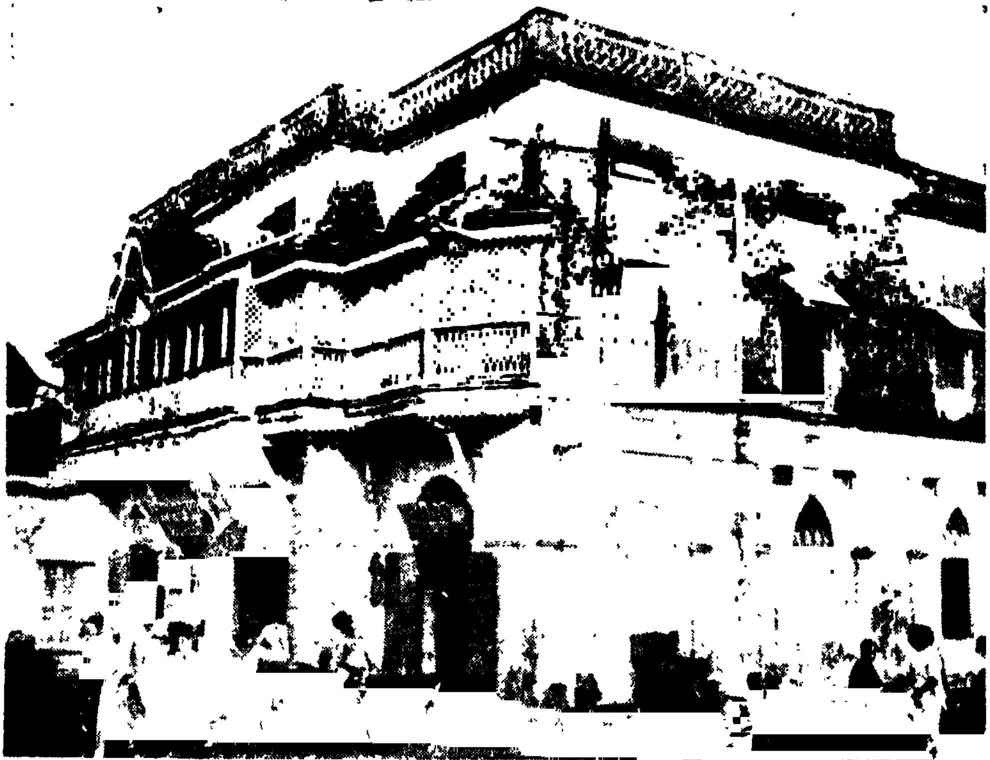
डा० जाकिर हुसैन साहब की राजनीति में आने की अपनी इच्छा कभी नहीं थी। उनका हमेशा यह विचार रहा है कि राष्ट्रीय पुनरुत्थान राजनीति के तंग दरवाजे से कभी नहीं आता है। किसी भी राष्ट्रीय पुनरुत्थान की जड़ें देश की संस्कृति और शिक्षा में होनी चाहिए। डा० जाकिर हुसैन साहब को ५५ वर्ष की आयु में सन् १९५२ में राजनीति में आना पड़ा। उस वर्ष इन्हें राज्य सभा का सदस्य नामजद किया गया।

डा० जाकिर हुसैन साहिब सन् १९५६ तक अलीगढ़ विश्वविद्यालय के उपकुलपति रहे। जुलाई, १९५७ में बिहार के राज्यपाल नियुक्त होने तक राज्य सभा के सदस्य रहे। राजनीति में प्रवेश पाने के बाद भी डा० जाकिर हुसन साहब ने शिक्षा और संस्कृति के क्षेत्र में अपना काम जारी रखा। उन्होंने अनेक बार यूनेस्को में भारत का प्रतिनिधित्व किया और १९५६–५८ में वे इसके कार्यकारी मण्डल के सदस्य रहे।

सन् १९६२ में उन्हें भारत का उपराष्ट्रपति नियुक्त किया गया। भारत का राष्ट्रपति राज्य सभा का अध्यक्ष भी होता है। राज्य सभा के अध्यक्ष की हैसियत में उन्हें सदन के सभी वर्गों से सम्मान प्राप्त हुआ।

राष्ट्रपति के चुनाव के समय मई, १९६७ में देश की राजनीतिक स्थिति पहले से कुछ भिन्न थी। कुछ राज्यों में गैर-कांग्रेसी सरकारें स्थापित हो गई थीं। देश के १७ में से ८ राज्यों में गैर-कांग्रेसी सरकारें बनीं। इस प्रकार पहली बार राष्ट्रपति के चुनाव में कड़ा मुकाबला हुआ। लगभग सभी विरोधी दलों ने कांग्रेस के प्रत्याशी डा० साहब के खिलाफ अपना एक उम्मीदवार खड़ा किया।

कांग्रेस दल के कुछ सदस्यों तथा बाहर के बहुत से व्यक्तियों का यह विचार था कि अल्पसंख्यक वर्ग से सम्बन्धित होने के कारण कुछ कांग्रेसी सदस्य शायद डा० साहब को वोट न दें। लेकिन यह बात गलत सिद्ध हुई क्योंकि डा० साहब बहुमत से विजयी हुए, जिससे भारत की धर्मनिरपेक्षता प्रमाणित हो गई तथा विदेशियों को हैरत हुई।



जहाँ बाल्यकाल व्यतीत किया



पिथौरा, कायमगंज

(उत्तर प्रदेश)

में

राष्ट्रपति का

पुश्तैनी मकान





बचपन के वे दिन



युवा अवस्था में



परिवार के बच्चों के बीच

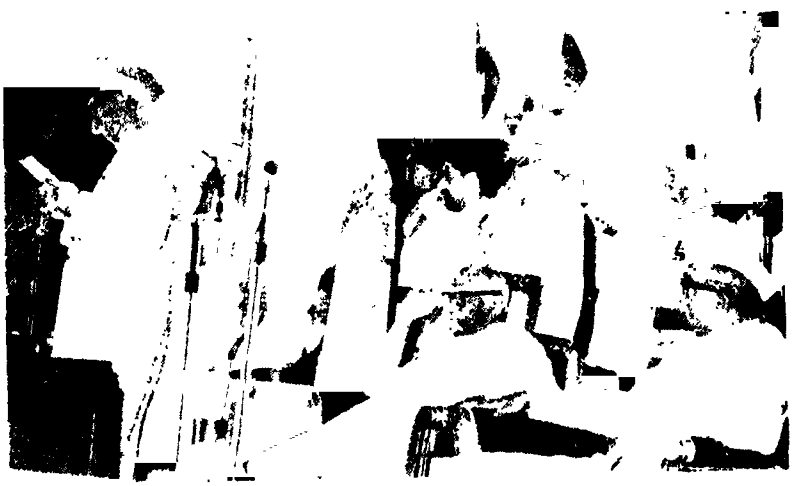


राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन् को विदाई देते हुए





शपथ ग्रहण करते हुए





राष्ट्रपति पद की शपथ लेते हुए





प्रधान मंत्री
इन्दिरा गांधी
के
साथ



कनेडा से लौटने पर
प्रधान मंत्री द्वारा
हवाई अड्डे
पर
स्वागत



विदेशी अतिथियों
के
बीच

विदेशी नेताओं



के साथ विचार करते हुए







अ ति थि



स्वा ग त





विदेशियों
के
बीच









विदेशी नेताओं के साथ अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर चर्चा करते हुए



विदेशी राष्ट्रों के नेताओं से



मधुर वार्ता



विभिन्न समारोह में



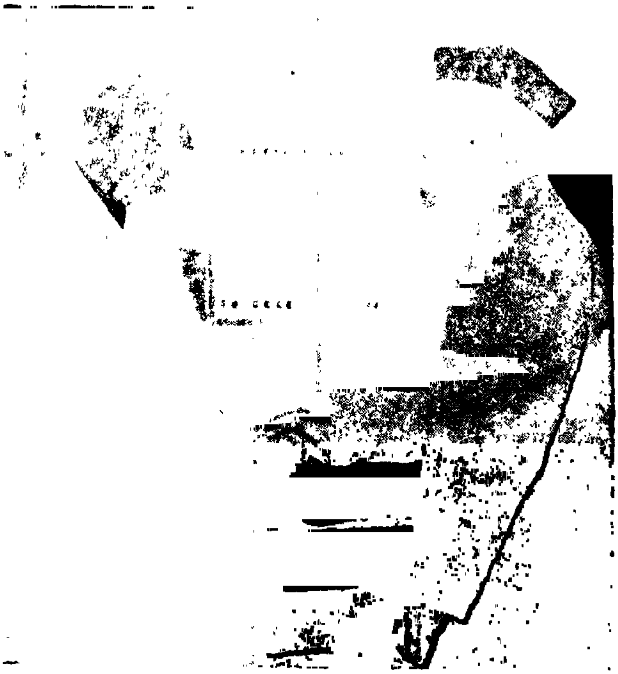


मंत्रियों को परामर्श





सदरे रियासत जम्मू व
काश्मीर डॉ. करणसिंह
और श्री पाटस्कर
राज्यपाल मध्य प्रदेश
के साथ



विदेशी नेताओं से सम्पर्क





विदेशी नेताओं के साथ





महात्मा गांधी के साथ



बिनोबा भावे से विचार विनिमय करते हुए



श्रद्धांजलि



खिलाड़ी के साथ



उपाधि वितरण समारोह में



उपाधि वितरण करते हुए



अध्ययनशील

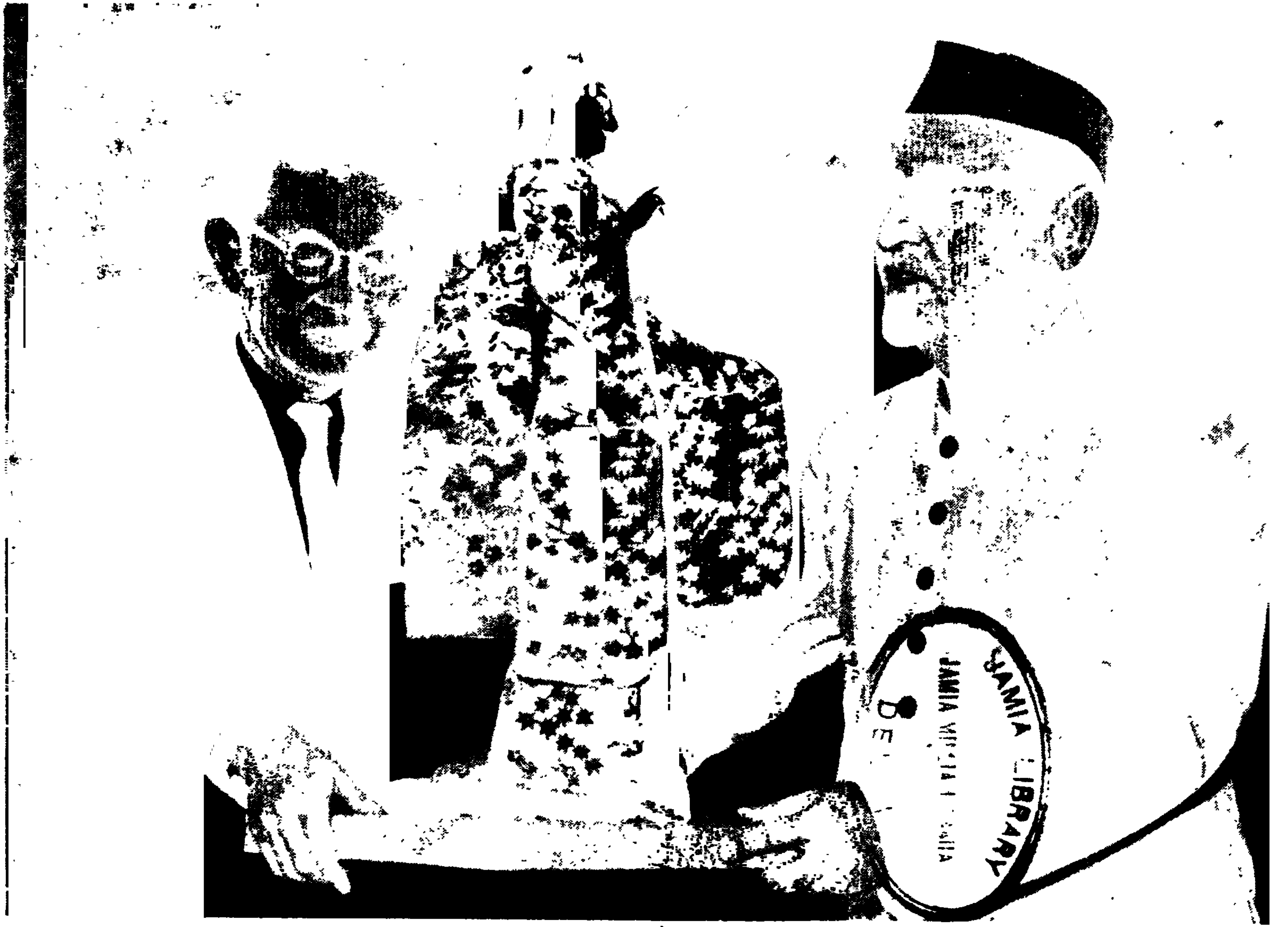


बच्चे से प्रेम करते हुए



बच्चों के बीच





बच्चों से प्रेम



वनस्थली में बच्चों के बीच





गाँधी विद्यालय गुलाबपुरा के वार्षिकोत्सव में

अग्रणी शिक्षण संस्थाओं में



वनस्थली विद्यापीठ मे



स्काउट नेताओं से भेंट करते हुए

राष्ट्रपतिजी राजस्थान में



राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित श्री बी० पी० जोशी, उदयपुर के साथ



भारत-पाक युद्ध के दौरान पाक बमबारी से जोधपुर जेल में हुई क्षति का निरीक्षण करते हुए





अजमेर में
दरगाह शरीफ में
सम्मान

राष्ट्रपतिजी राजस्थान में





मजहबी नेताओं के साथ

विशिष्ट धार्मिक भेंट

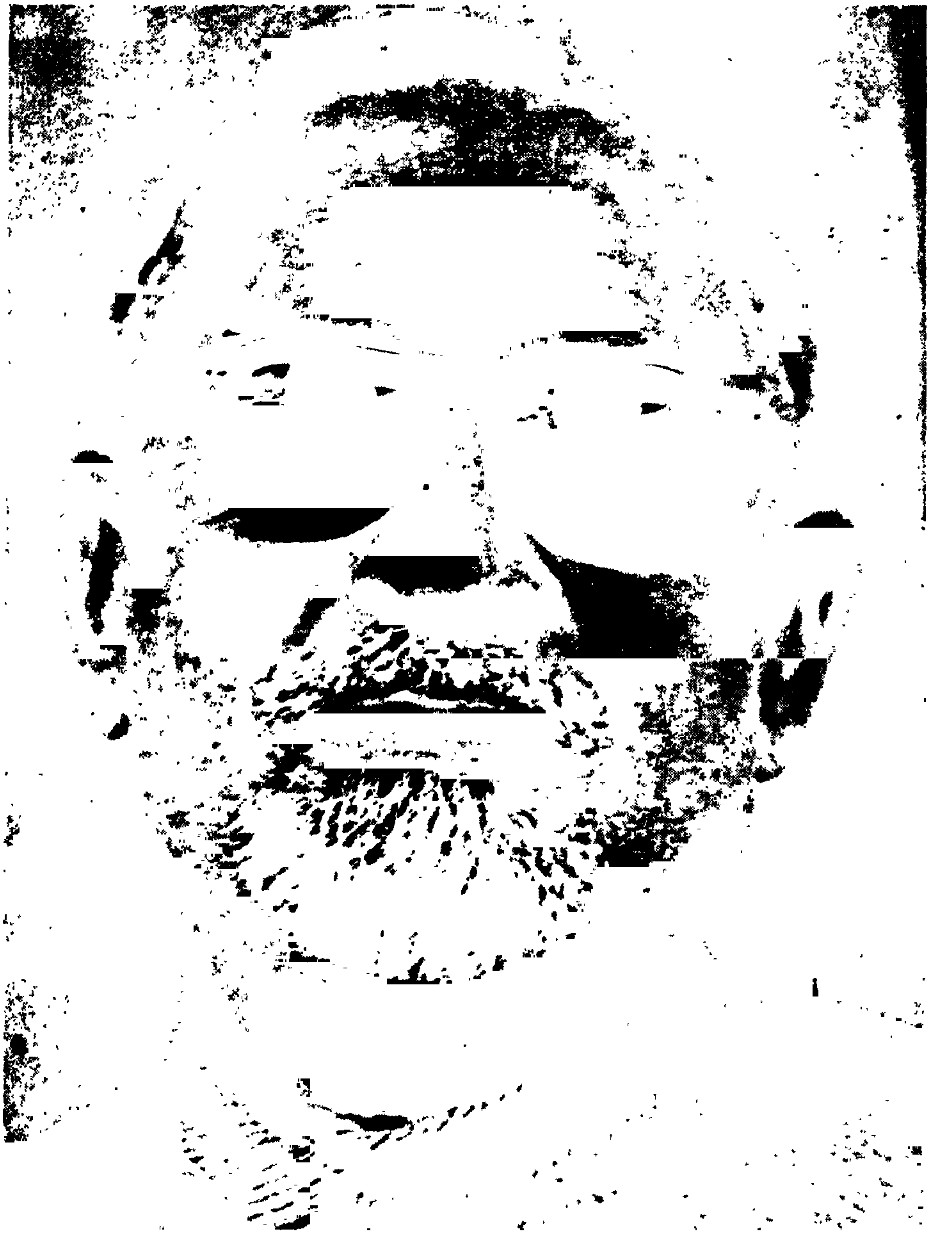
हमारे राष्ट्रपतिजी



विनय व नम्रता का मूर्त रूप

सारा भारत मेरा घर है और उसके लोग मेरा परिवार। मैं सच्ची लगन से इस घर को सुन्दर और मजबूत बनाने की कोशिश करूंगा ताकि वह मेरे महान् देशवासियों का उपयुक्त घर हो।

हमारे राष्ट्रपतिजी

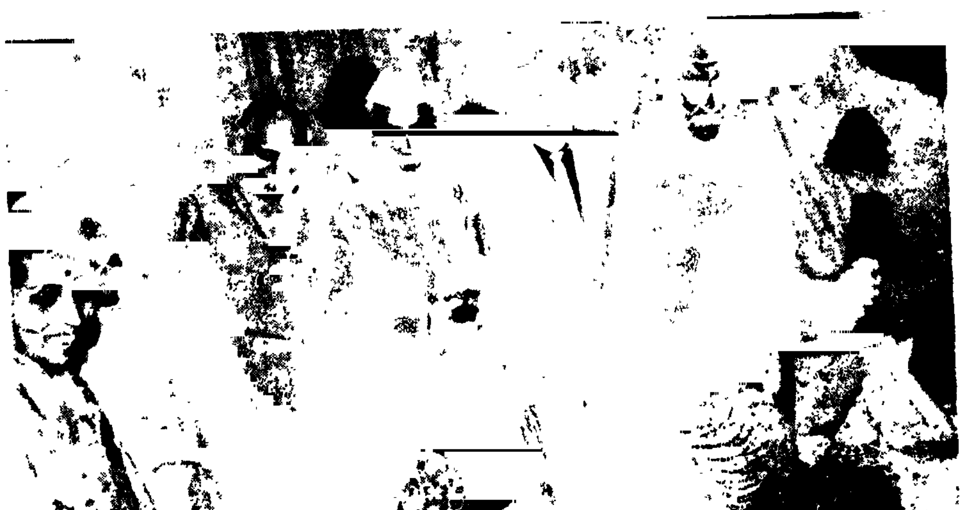


गहरे विचारों में डूबे हुए



राज्यपाल सरदार हुकुमसिंह जी के साथ

राष्ट्रपतिजी राजस्थान में



राज्य मन्त्रियों के बीच

जयपुर के नये सूचना केन्द्र में



जनसम्पर्क निदेशक श्री राजेन्द्र शंकर भट्ट द्वारा स्वागत



मुख्य मंत्री श्री मोहनलाल सुखाड़िया के साथ

राज्यपाल, मुख्य मंत्री व जयपुर नरेश के साथ



राष्ट्रपतिजी राजस्थान में



जयपुर में महाराजा सवाई जयसिंह की मूर्ति के
अनावरण के लिए जाते हुए

जयपुर नरेश महाराजा मानसिंहजी तथा महारानी गायत्री देवी के साथ



राष्ट्रपतिजी राजस्थान में



वर्तमान शिक्षा मन्त्री व प्रस्तुत ग्रन्थ के सलाहकार श्री बरकतुल्ला खां के साथ

प्रस्तुत ग्रन्थ के सलाहकार तथा तत्कालीन शिक्षा मन्त्री श्री शिवचरण माथुर द्वारा स्वागत



महाराजा बहु० उच्च मा० कन्या विद्यालय, जयपुर के शताब्दी समारोह में



प्रधानाध्यापिका श्रीमती विमला शर्मा व छात्राओं द्वारा परम्परागत स्वागत



तत्कालीन शिक्षा मंत्री व प्रस्तुत ग्रन्थ के सलाहकार श्री शिवचरणजी माथुर के साथ

राष्ट्रपतिजी राजस्थान में



मुख्य व अन्य मंत्रियों के साथ

राज्य के मंत्रियों से परिचय



राष्ट्रपतिजी राजस्थान में



हस्तशिल्प कृतियों का निरीक्षण

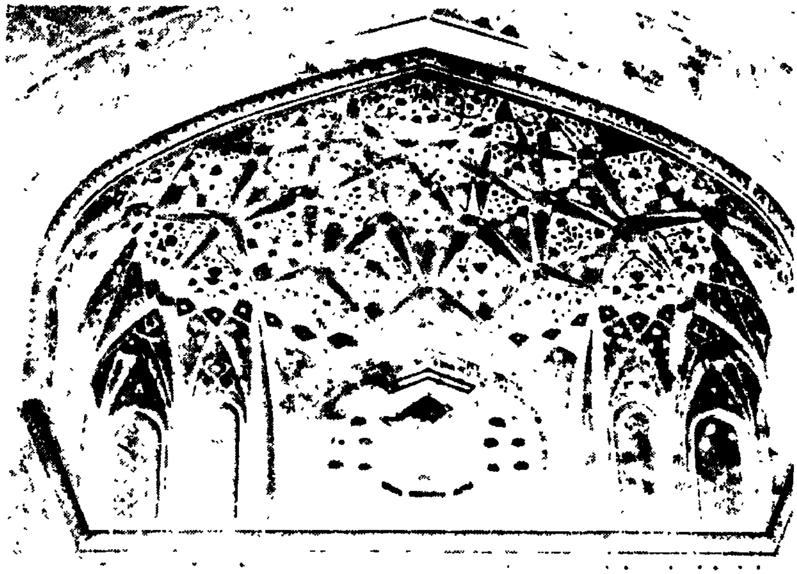


जयपुर में श्री मोहनलाल मुखाड़िया के साथ दर्शनीय स्थानों का निरीक्षण

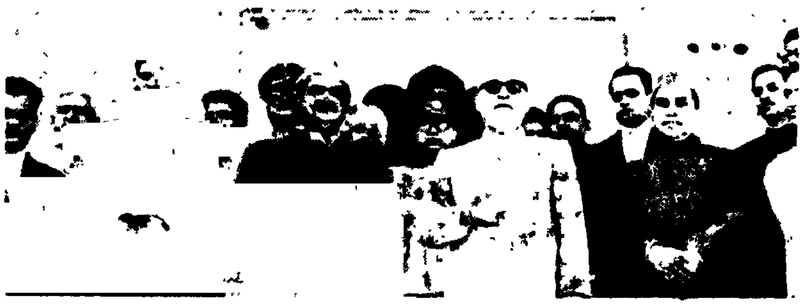
राष्ट्रपतिजी राजस्थान में



राज्य मन्त्रियों के साथ



जयपुर में दर्शनीय स्थानों का निरीक्षण



राष्ट्रपतिजी राजस्थान में



राष्ट्र और राज्य के कर्णधारों की वार्ता

प्रमुख लोगों से भेंट



राष्ट्रपतिजी राजस्थान में



एक सभा में भाषण करते हुए